राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन : अस्मिता एवं वैश्वीकरण

❑ प्रोफेसर श्यामधर सिंह

कहा जाता है कि भारत मानव प्रजाति का पालना, मानव वाणी का जन्म स्थान, इतिहास की माता, अनुश्रुति और परम्परा की दादी (पितामही) है। मनुष्य को इतिहास में सर्वाधिक मूल्यवान एवं सर्वाधिक शिक्षाप्रद सामग्री केवल भारत में संचित है। भारत की संस्कृति विश्व की अनुपम एवं चिरपुराण चिरनवीन तथा महान् सभ्यताओं में एक है। भारतीय संस्कृति का विषय अपार है। एक व्यक्ति के लिए तो यह सम्भव नहीं है कि अपने सारे जीवन में भी वह उसके साथ न्याय कर सकें।

संस्कृति है क्या? समाज विज्ञान में संस्कृति मानव समाज में वह सब है जो सामाजिक रूप में ही सीखे जाते हैं और सामाजिक रूप से ही हस्तान्तरित किये जाते हैं न कि जैविक रूप से। संस्कृति इस प्रकार मानव समाज के प्रतीकात्मक एवं सीखे हुए पक्षों के लिए सामान्य पद या शब्द है। इस प्रकार संस्कृति सामाजिक अन्तर्क्रिया के दौरान प्रत्यक्ष या परोक्ष, चेतन या अचेतन रूप से सीखी जाती है।

संस्कृति का सृजन कैसे होता है? संस्कृति सृजन की प्रक्रिया क्या है? संस्कृति मानव विवेक का चेतन सृजन है। संस्कृति सृजन के मूल में मानवीय वृत्ति की केन्द्रीय भूमिका होती है। मानवीय वृत्ति को दो निश्चित धाराओं में विभाजित किया जा सकता है : ऊर्ध्वमुखी वृत्ति से प्रभावित होकर मानव सत्य के नये आयामों का दर्शन करता है, संस्कृति के नवीन सूत्रों और घटकों का विरचन करता है। ऊर्ध्व की विशेषता यह है कि इसमें अन्तर्दृष्टि तथा आदर्श की प्रधानता रहती है; इसलिए द्रष्टा को यथार्थ का आकर्षक रूप ही दिखता है; यथार्थ की विद्रूपता, उसकी दृष्टि से ओझल हो जाती है। इस वृत्ति में संस्कृति को साध्य रूप में देखा जाता है। अधोमुखी वृत्ति से प्रभावित होकर मानव स्वविरचित सांस्कृतिक सूत्रों और घटकों के प्रति अनुगमन, अनुचलन और उपभोग प्रवृत्ति बना लेता है। उपभोग प्रवृत्ति से प्रभावित होकर मानव संस्कृति की जो मानसिक प्रतिमा बनती है, वह वास्तविकता से दूर होते हुए भी यथार्थ के पास होती है, यथार्थ की विद्रूपता से आक्रान्त हो जाती है। उपभोग प्रवृत्ति से आक्रान्त मानव संस्कृति को प्रदत्त बाध्यात्मक, सनातन, बाह्य, साधन, मूर्त, आरोपित तथा मानवोत्तर रचना के रूप में देखता है। स्वयं अपनी ही कृति को 'पहचानने' में असमर्थ हो जाता है। उसे अपनी कृति ही नहीं मानता है। यही कारण है कि सृजित संस्कृति अपने मूल में अति उज्जवल, उदात्त एवं निष्कलंक होती है परन्तु उपभोगक्रम में वह मलिन, अनुदात्त एवं विरूपित हो जाती है। संस्कृति के अर्थपूर्ण समुच्चय के घटकों जैसे- धर्म, विश्वास, कर्मकाण्ड आदि का उपभोग साध्य नहीं वरन् साधन के रूप में होने लगता है।

> भारतीय संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ तथा जिसे हम वैदिक संस्कृति कहते हैं, वह वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई है। आर्य और आर्येत्तर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। इस बुनियादी भारतीय संस्कृति के लगभग आधे उपकरण आर्यों के दिये हुए हैं और उसका दूसरा आधा आर्येतर जातियों का अंशदान है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति न तो आर्यों का सृजन है और न ही वैदिक संस्कृति, केवल प्राग्वैदिक संस्कृति का विकास है बल्कि यह इन दोनों का मिलन है। भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण इतिहास युगों-युगों से परिवर्तन का इतिहास रहा है। तथ्यतः भारतीय संस्कृति में पाँच वृहत् परिवर्तन हुए हैं और हमारी संस्कृति में परिवर्तन का इतिहास उन्हीं वृहत् परिवर्तनों का इतिहास है। आज हम वैश्विक युग के दरवाजे पर खड़े हैं। वैश्विक संस्कृति में मानव का जो विश्वास जगा था, अब वह हिल रहा है।

जब ऊर्ध्व वृत्ति से अनुप्रणित मानव किसी सांस्कृतिक तत्व का निर्माण करता है तो उसके चारों ओर एक व्यवस्था का निर्माण हो जाता है जिसे सामाजिक व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है। यह सम्भव नहीं है कि कोई व्यवस्था-विशेष ऊर्ध्व एवं अधो दोनों प्रवृत्तियों से युगपत हो। दोनों प्रवृत्तियाँ प्राणायाम की पूरक और रेचक प्रक्रियाओं की भाँति हैं। एक ही स्थिति में दूसरे का अभाव रहता है। ऊर्ध्ववृत्ति को दृष्टिविस्तार अथवा

❑ प्राक्तन प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)
उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रवर्तित एवं समाजशास्त्र विभाग, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार, २७-२८ फरवरी, २०१६ में प्रस्तुत प्रमुख शोध-प्रपत्र।

आदर्शोन्मुखता कहा जा सकता है। इसी प्रकार अधोवृत्ति को यथार्थावतरण अथवा दृष्टिसंकोच कहा जा सकता है।

उपभोग प्रवृत्ति से प्रभावित समूह के व्यवहारों में व्यवहारगत उन्मुखता के प्रतिमान की अभिकल्पना की जा सकती है। ऐसे प्रतिमान की पृष्टभूमि में दो प्रेरक मानसिक स्थितियाँ होती हैंः संकीर्ण स्वार्थ एवं अस्मिता की विभुक्षा। समाजगत हिंसा, संघर्ष, विभाजन इन दोनों मानसिकताओं से अनुप्राणित मानवीय व्यवहार का परिणाम है। अस्मिता विभुक्षा को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है - (१) अस्मिता-सीमा निर्धारण एवं (२) सीमा विस्तारण। अस्मिता सीमा-निर्धारण वह स्थिति है जिसमें समूह व सम्प्रदाय विशेष अपनी अस्मिता का संरक्षण इस प्रकार करता है जिससे उसका समुदायगत वैशिष्ट्य बना रहे। अस्मिता सीमा विस्तारण के अन्तर्गत वह केवल अस्मिता की रक्षा ही नहीं करता है वरन् उसके विस्तार के लिए चेष्टित रहता है। विस्तारण प्रक्रिया का परिणाम स्वाभाविक रूप से संघर्ष, हिंसा आदि होता है, क्योंकि सामान्यतया कोई समूह यह नहीं चाहता कि उसकी अस्मिता का विलय किसी अन्य समूह में हो।

समूह, समुदाय और समाज का विभाजन संघर्ष आदि संस्कृति के मूलतत्वों के कारण नहीं प्रत्युत मानवीय अधोवृत्ति के कारण होता है। मानवीय अधोवृत्ति के कारण मानव में स्वार्थ एवं अस्मिता विभुक्षा जैसी मानसिकताओं का जन्म होता है। ऐसी स्थिति में संस्कृति विशेष को संघर्ष और विभाजन के लिए कैसे उत्तरदायी माना जा सकता है? वस्तुतः संस्कृति के ऊपर विभाजकता एवं हिंसा का दोष मढ़कर मानव अपने पाप की गठरी को दूसरे के सिर पर लादना चाहता है। ऐसा करके हम अकारण को कारण के रूप में देखने का भ्रम पाल रहे हैं।

भारतीय संस्कृति का आविर्भाव : भारतीय संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ तथा जिसे हम वैदिक संस्कृति कहते हैं, वह वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई है। आर्य और आर्येत्तर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। इस बुनियादी भारतीय संस्कृति के लगभग आधे उपकरण आर्यों के दिये हुए हैं और उसका दूसरा आधा आर्येतर जातियों का अंशदान है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति न तो आर्यों का सृजन है और न ही वैदिक संस्कृति केवल प्राग्वैदिक संस्कृति का विकास है बल्कि यह इन दोनों का मिलन है।

भारतीय संस्कृति में परिवर्तन का चक्र : भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण इतिहास युगों-युगों से परिवर्तन का इतिहास रहा है। तथ्यतः भारतीय संस्कृति में पाँच वृहत् परिवर्तन हुए हैं और हमारी संस्कृति में परिवर्तन का इतिहास उन्हीं बृहत् परिवर्तनों का इतिहास है। पहला वृहत् परिवर्तन तब हुआ जब आर्य भारतवर्ष में आये अथवा जब भारतवर्ष में उनका आर्येतर जातियों से सम्पर्क हुआ। आर्यों ने आर्येतर जातियों से मिलकर जिस समाज की रचना की वही आर्यों अथवा हिन्दुओं का बुनियादी समाज हुआ और आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। वैदिक धर्म चार वर्णाश्रमों में विश्वास करता है और शूद्र को वेद-वेदान्त पढ़ने का अधिकार नहीं देता। वैदिक धर्म के अनुसार संन्यास का भी अधिकार केवल ब्राह्मण को है।

दूसरा परिवर्तन तब हुआ जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिन्ताधारा को खींचकर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये। इस परिवर्तन ने भारतीय संस्कृति की अपूर्व सेवा की, किन्तु, अन्त में, इसी क्रान्तिक परिवर्तन के सरोवर में शैवाल भी उत्पन्न हुए और भारतीय धर्म तथा संस्कृति में गंदलापन आया, वह काफी दूर तक, इन्हीं शैवालों का परिणाम था।

तीसरा वृहत् परिवर्तन उस समय हुआ जब इस्लाम, विजेताओं के धर्म के रूप में, भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका सम्पर्क हुआ।

चौथा वृहत् परिवर्तन तब हुआ जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया।

पाँचवा वृहत् परिवर्तन का श्रीगणेश तब हुआ जब विश्व में वैश्वीकरण का आरम्भ हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैश्वीकरण ने अत्याधुनिक विकास की अवधारणा उपस्थित करके समस्याओं पर सोचने और उन्हें समझने के काम में नवीन सूझ-बूझ दी है।

संस्कृति के इतिहास के अन्दर हम दो सिद्धान्तों को काम करते देखते हैं। एक तो सातत्य का सिद्धान्त और दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी से लगते हैं, परन्तु ये विरोधी हैं नहीं। सातत्य के भीतर भी परिवर्तन का अंश है। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर सातत्य का कुछ अंश लिये रहता है। ऐसी स्थिति में स्वयं परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो परम्परा के आवरण में लगातार चलती रहती है। बाहर से अचल दीखने वाली परम्परा भी यदि जड़ता और मृत्यु का पूरा शिकार नहीं बन गयी है तो धीरे-धीरे वह भी परिवर्तित हो जाती है।

सांस्कृतिक इतिहास में कभी-कभी ऐसा समय भी आता है जब परिवर्तन की प्रक्रिया और उसकी तेजी कुछ अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है। वैश्वीकरण में आज जो परिवर्तन हो रहे दिखाई पड़ रहे हैं, उसकी गतिकी कुछ ऐसी ही जान पड़ती है।

वैश्वीकरण अर्थबोध एवं अवधारणात्मक स्पष्टीकरणः हम लोग वैश्वीकरण युग में रह रहे हैं। समाज इतनी तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है कि इसकी गतिकी प्रवाह को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्वीकरण ही वस्तुतः विश्व के लिए एकमात्र विकल्प है। मूलतः यह सूचना तकनीकी एवं संचार तकनीकी में क्रान्ति का परिणाम है। इनमें जनसामान्य के जीवन के विभिन्न पक्षों को परिवर्तित करने की अद्भुत क्षमता है। साथ ही इनमें व्यक्तियों, राष्ट्रीय समाजों, समाजों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा सामान्यतः मानवता के बीच अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की अतुलित क्षमता भी अन्तर्निहित है। अस्तु, वैश्वीकरण के अन्तर्गत व्यक्तियों का जीवन तथा समुदायों एवं राष्ट्रों का भाग्य दूरस्थ राष्ट्रों की घटनाओं पर अधिक निर्भर हो जाता है। राष्ट्रीय एवं स्थानीय सीमाएँ कमजोर पड़ जाती हैं। क्रियाकलापों का पार-महाद्विपीय एवं पार-देशीय जाल बिछ जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से नये सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। वस्तुतः ये परिवर्तन वैश्वीकरण के सांस्कृतिक आयाम के द्योतक हैं। इस दृष्टि से यह आधुनिकीकरण की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संसार एक एकल स्थान बन जाता है। अस्तु, वैश्वीकरण को स्थान के दबाव के रूप में देखा जा सकता है। चूँकि वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व को एक ही व्यवस्था मानता है, अतः इसका हर प्रयास एक विश्व संस्कृति की रचना करना होता है। एतदर्थ एक विश्व संस्कृति के आविर्भाव के लिए यह स्थानीय संस्कृति तथा उपसंस्कृति के लोप को वैध प्रमाणित करता है।

सन् १६६० में मैक्लुहन ने संस्कृति एवं जनसंचार (मास मीडिया) के विश्लेषण के सन्दर्भ में 'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा की सृष्टि की। इस अवधारणा के माध्यम से उन्होंने यह दर्शाने का प्रयास किया कि किस प्रकार सम्प्रेषण की नवीन तकनीकी के परिणामस्वरूप विश्व संकुचित होता जा रहा है। यह विकसित तथा विकासशील दोनों प्रकार के देशों के लिए नए अवसर प्रस्तुत कर रहा है तथा सम्पूर्ण संसार को एक 'विश्व ग्राम' में परिवर्तित कर रहा है। मैक्लुहन का तर्क है कि सम्प्रेषण तकनीकी ने पूरे संसार को एक गाँव का स्वरूप प्रदान कर दिया है। व्यवसाय एवं सम्बन्धों को बढ़ाने के लिए विभिन्न देशों में तकनीकी रूप से विकसित कम्पनियों एवं उद्यमों की स्थापना पूरे विश्व को एक 'वैश्विक ग्राम' में बदल रही है।

'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा के सदृश ससकिया ससेन ने 'वैश्विक नगर' की अवधारणा का भी सृजन किया है। ससकिया ससेन का तर्क है कि वैश्वीकरण मूलतः नगरीय प्रघटना है। अवधारणात्मक रूप में विश्व नगर वह नगर है जो नवीन वैश्विक अर्थव्यवस्था का संगठनात्मक केन्द्र होता है। इसकी जड़ें नगरों एवं महानगरों में स्थित होती हैं। सन् १६६१ में अपनी पुस्तक 'दि ग्लोबल सिटी' में ससकिया ससेन ने 'विश्व नगर' की सर्वप्रथम चर्चा की। विश्व नगर से उसका तात्पर्य ऐसे नगरों से है जहाँ बहुराष्ट्रीय या पारराष्ट्रीय निगमों एवं वित्तीय संगठनों के परामर्शकेन्द्र स्थापित हैं। ये विश्वनगर वैश्वीकरण की संहिता एवं नीति-निर्धारण में महनीय भूमिका अदा करते हैं। वैश्वीय अर्थव्यवस्था की रचना इन्हीं के हाथों होती है। विश्वनगर नवीन आविष्कारों के भी केन्द्रस्थल होते हैं। इन विश्वनगरों के आस-पास अब क्षेत्रीयकेन्द्र भी सृजित होने लगे हैं। एक क्षेत्रीयकेन्द्र में कई विश्वनगर सम्मिलित होते हैं। नई दिल्ली, गाजीयाबाद, मुम्बई, कोलकाता, मद्रास या चेन्नई, न्यूयार्क, लन्दन आदि विश्व नगर के दृष्टान्त हैं। बहुराष्ट्रीय निगम पूरे विश्व को एक बाजार समझते हैं न कि राष्ट्रीय बाजारों का एक समूह। वैश्वीकरण ने बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए नये मार्गों को प्रशस्त किया है। यह सन्देह रहित सत्य है कि आज का संसार पुनर्रचित संसार है जिसमें परिवर्तन का तीव्र प्रवाह इस रूप में प्रवहमान है जो आधुनिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के स्वरूप को एक एकल वैश्विक समुदाय के स्वरूप के रूप में रूपान्तरित करने में चरैवेति (चल रहा) है।

आज इक्कीसवीं शताब्दी में रोजमर्रा की बातचीत में वैश्वीकरण की चर्चा घर-घर की कहानी हो गयी है। आज के अकादमिक जगत् में तो इसकी तेजस्विता की चर्चा की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। किन्तु, यहाँ भी वैश्वीकरण की अवधारणा का अर्थ भिन्न-भिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न ढंग से किया जाता है। इसी तरह भिन्न-भिन्न विषय अथवा अकादमिकशास्त्र भी वैश्वीकरण के भिन्न-भिन्न पक्षों पर ध्यान आकर्षित करते हैं।

मोटी-मोटी पुस्तकों और लम्बे-लम्बे लेखों के आधार पर वैश्वीकरण की प्रकृति की हकीकत समझना बहुत मुश्किल साबित हुआ है। वैश्वीकरण के अर्थबोध को सुस्पष्ट करने में एक खतरा यह भी है कि जब तक हम उसे पूरी तरह समझने का कोई ठोस दावा कर पायेंगे, तब तक वह हमें पूरी तरह बदल चुका होगा। हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ वे नहीं रह गयी होंगी जिनमें हमने

जन्म लिया था। वस्तुतः वैश्वीकरण एक बेहद ताकतवर प्रघटना है जो सब कुछ बदल दे रही है। वह दोनों तरफ से बदलती है अर्थात् वह परिस्थितियों को सार्वभौम ढाँचे में तो ढालती ही है, उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया भी एक खास तरह के परिवर्तन को जन्म देती है जो शुरू में वैश्वीकरण के खिलाफ लगता है पर अन्तिम विश्लेषण में उसकी संरचनाओं की मदद करता पाया जाता है। भारत ही नहीं, दुनियाँ भर में जो लोग उसके इतिहास से वाकिफ नहीं हैं, उन्हें लगता है कि पिछली शताब्दी के अन्तिम दस सालों में यह न जाने कहाँ से टपक पड़ी है। हमारे मिथकों में अगर वैश्वीकरण से प्रभावित आज के हालात का कोई उदाहरण मिल सकता है तो वह सिर्फ समुद्र-मंथन की पुराणगाथा ही है, जिसमें सभी पक्ष जुटे हुए थे और किसी को ठीक-ठीक नहीं पता था कि सुमेरू पर्वत से बनी उस विराट मथानी से क्या-क्या निकलेगा। लेकिन मंथन में सम्मिलित होने के कारण वे सभी उन परिणामों का फल भोगने के लिए अभिशप्त थे।
आज वैश्वीकरण की महिमा की प्रतिष्ठा को आधुनिक युग की चेतना का ही परिणाम कहा जा सकता है। यह भी कथ्य है कि उत्तर-औद्योगीकरण और उत्तर- आधुनिकीकरण की ओर बढ़ती हुई अभिरुचि के फलस्वरूप वर्तमान युग में वैश्वीकरण का बहुमुखी विस्तार हुआ है, किन्तु, उन सबका आकलन सम्भव नहीं है, क्योंकि भिन्न-भिन्न अध्येताओं के लेखन सामग्री में वैश्वीकरण का स्वरूप-निर्धारण और विवेचन उनकी निजी विशेषता है। अस्तु, हमें यह स्पष्ट रूप से जानने की आवश्यकता है कि वास्तव में इस अवधारणा का अर्थ क्या है?

अत्यन्त सरल शब्दों में वैश्वीकरण एक बहुआयामी जटिल प्रक्रिया है। यह भूमण्डलीय स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रघटनाशास्त्रीय प्रक्रियाओं का एक पुंज है जो व्यक्तियों, समूहों, समुदायों, समाजों तथा राष्ट्रों के बीच अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करता है। अस्तु, वैश्वीकरण का तात्पर्य सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या सांस्कृतिक प्रघटनाशास्त्रीय विस्तार के कारण विश्व में विभिन्न लोगों, क्षेत्रों एवं देशों के बीच अन्तर्सम्बन्धों की वृद्धि से है।
वैश्वीकरण के सर्वाधिक प्रभावशाली लेखक रोलेण्ड रॉबर्टसन हैं, जिन्हें वैश्वीकरण का जनक कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि यह बहुत स्पष्ट है कि रॉबर्टसन ने ही सबसे पहले वैश्वीकरण की केन्द्रीय अवधारणा का सूत्रपात किया। रॉबर्टसन ने इस अवधारणा का प्रयोग सन् १९६० में किया। रॉबर्टसन ने वैश्वीकरण को आधुनिकता और साथ ही साथ उत्तर-आधुनिकीकरण से निकटस्थ सम्बन्ध स्थापित किया है। उनका कहना है कि वैश्वीकरण के सम्प्रत्यय को विकास की उन विशिष्ट श्रेणियों के सन्दर्भ में प्रयुक्त करना चाहिए जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप में संसार के मूर्त संरचनाकरण से है। अर्थात् लोगों की जानकारी में वृद्धि होती जा रही है कि वैश्वीकरण पर आधारित विश्व निरन्तर रूप से विरचित पर्यावरण है। इस सन्दर्भ में उनका तर्क है कि वैश्वीकरण की अवधारणा का तात्पर्य सम्पूर्ण विश्व का एक हो जाना है, किन्तु, यह एकीकरण प्रकार्यवादी अवस्था में एकीकृत नहीं होता। वैश्वीकरण अपने आप में सम्पूर्ण विश्व की चेतना है। यह जगत् एक है, इसकी चेतना का आविर्भाव है। वैश्वीकरण को परिभाषित करते हुए राबर्टसन का कहना है कि "वैश्वीकरण विश्व का संकोचन या सिमटना एवं सम्पूर्ण रूप में विश्व की चेतना को प्रचंड या उत्कट बनाने की क्रिया दोनों ही है।"[1]
रॉबर्टसन का कहना है कि वैश्विक संकोचन (सिमिट जाने) की धारणा अन्तर्निभरता का द्योतक है। उनके कहने का तात्पर्य है कि जो व्यवस्थाएँ पहले स्वतन्त्र थीं, उनमें अब एक-दूसरे पर परस्पर निर्भर होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। किन्तु परिभाषा का अधिक महत्वपूर्ण घटक या अंग चेतना की प्रचंडता या उत्कटता अथवा तीव्रीकरण की धारणा है। इससे उनका अर्थ है कि लोगों की भावना अब स्थानीय या राष्ट्रीय स्तरीय न होकर सम्पूर्ण जगत् की हो गयी है अर्थात् ऐक्य भावना का जगतीकरण या विश्वायन अथवा भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण हो गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना या चेतना लोगों में घर कर गई है। यही विश्वायन या जगतीकरण या वैश्वीकरण की चेतना है। उदाहरणस्वरूप, हम सैन्य राजनीतिक मुद्दों को 'विश्व व्यवस्था के सन्दर्भ में या आर्थिक मुद्दों का एक 'अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी' या विपणन मुद्दों को विश्व उत्पादों (जैसे-विश्व-कार) के सन्दर्भ में या धार्मिक मुद्दों को सार्वभौम के सन्दर्भ में या नागरिकता के मुद्दों को 'मानवाधिकार के सन्दर्भ में' या पवित्रता एवं अपवित्रता के मुद्दों को ग्रहीय या भूमण्डलीय उद्धारक के सन्दर्भ में पुनः परिभाषित कर सकते हैं।

वैश्विक चेतना का वह आविर्भाव इस सम्भावना को बढ़ाता है कि विश्व को एक एकल व्यवस्था के रूप में पुनर्स्थापित किया जा सकता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को पुनर्जाग्रत किया जा सकता है। इस प्रकार रॉबर्ट्सन का दावा है कि विश्व अब अधिकाधिक रूप में संयुक्त होता जा रहा है, यद्यपि उनका तर्क यह है कि विश्व एकीकृत होता जा रहा है। यह एक एकल व्यवस्था है, किन्तु, यह संघर्ष द्वारा फटती जा

रही है और इसमें कोई सार्वभौम सहमति नहीं है कि भविष्य में इस एकल व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा?

वैश्वीकरण की सैद्धान्तिक व्याख्या में अन्थोनी गिडेन्स का महनीय योगदान है। उन्होंने आधुनिकता की व्याख्या एवं इसके विकास के विश्लेषण के सन्दर्भ में वैश्वीकरण की अवधारणा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार, ‘‘वैश्वीकरण को विश्वायन सामाजिक सम्बन्धों के ऐसे तीव्रीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूरस्थ क्षेत्रों को इस प्रकार से जोड़ता है कि स्थानीय घटनाओं को बहुत मील दूर (और बहुत सप्ताह दूर) घटित होने वाली घटनाओं द्वारा रूप प्रदान किया जाता है और इसके विपरीत स्थानीय घटनाओं द्वारा भी दूरस्थ घटनाओं को रूप प्रदान किया जाता है।’’[२]

गिडेन्स का कहना है कि प्रक्रिया द्वारा दिक् और काल, स्थान और समय की दूरी सिमट जाती है और सम्पूर्ण विश्व में लोगों की पारस्परिक निर्भरता की प्रवृत्ति में वृद्धि हो जाती है। गिडेन्स का यह भी तर्क है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया आधुनिकता की संस्थाओं- पूँजीवाद, उद्योगवाद, निगरानी तथा सैन्य व्यवस्था के एकाधिकरण के साधनों को सार्वभौमिक दिशा में रूपान्तरित कर देती है। गिडेन्स की दृष्टि में वैश्वीकरण आधुनिकीकरण का प्रत्यक्ष परिणाम है। इनकी परिभाषा की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वैश्वीकरण आधुनिकीकरण से संयुक्त है।

वैश्वीकरण की सर्वाधिक संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिभाषा मालकॉम वाटर्स ने दी है। कहना न होगा कि इस सन्दर्भ में उनकी रचना ग्लोबलाइजेशन (१९९५) को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इस ग्रन्थ में वैश्वीकरण का सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है। इसको परिभाषित करते हुए मेलकॉम वाटर्स का कहना है कि ‘‘वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर भौगोलिक दबाव या प्रतिबन्ध कम हो जाते हैं और जिसमें लोगों को यह जानकारी हो जाती है कि उनका अर्थात् भौगोलिक प्रतिबन्धों का दबाव या प्रतिबन्ध अब घट गया है।’’[३]

मालकॉम वाटर्स का मत है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक तथा राष्ट्रीय प्रतिबन्धों की सीमाएँ टूट जाती हैं और उनके बन्धन शिथिल हो जाते हैं। **ऑक्सफोर्ड** डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी के अनुसार, ‘‘वैश्वीकरण-सिद्धान्त एक भूमण्डलीय सांस्कृतिक व्यवस्था के आविर्भाव का परीक्षण करता है। यह सुझाव प्रस्तुत करता है कि वैश्विक संस्कृति विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकासों का उत्पाद है...अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वैश्विकवाद के अन्तर्गत एक एकल स्थान के रूप में विश्व की एक नवीन चेतना अन्तर्विष्ट है।’’[४]

निष्कर्ष के रूप में हम इस अवधारणा को परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि वैश्वीकरण एक ऐसी बहुआयामीय जटिल प्रक्रिया है जो भूमण्डलीय स्तर पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रघटनाशास्त्रीय अर्थ में क्रियाशील होती है तथा जो राष्ट्रीय परिसीमाओं को पार करती हुई व्यक्तियों, समुदायों एवं संगठनों को दिक्-काल में संयोजित कर विश्व को यथार्थतः अन्तर्सम्बन्धित और अन्तर्निभर बनाते हुए एकीकृत करने का प्रयास करती है।[५]

वैश्वीकरण की प्रधान विशेषताएँ : ‘हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता’ की भाँति वैश्वीकरण की अनेकानेक विशेषताएँ हैं जिनका सम्पूर्ण रूप में उल्लेख करना सम्भव नही ंतो कठिन अवश्य है। अस्तु, यहाँ हम वैश्वीकरण की प्रधान विशेषताओं का ही उल्लेख करना समीचीन समझते हैं। इस दिशा में हम ऊपर वर्णित प्रभृत अध्येताओं की परिभाषाओं एवं विवेचनाओं से प्रादुर्भुत प्रधान विशेषताओं का ही उल्लेख कर रहे हैं। वे विशेषताएँ अधोलिखित हैं :

(१) वैश्वीकरण ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की सुक्ति की भित्ति पर आधारित है।

(२) वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक ऐसा छाता है जिसकी कमानी है व्यक्ति, राष्ट्रीय समाज, समाजों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा मानवता। छाते का कपड़ा वैश्वीकरण की दृष्टि है जो उपर्युक्त चार कमानियों पर फैला हुआ है। वैश्वीकरण के छाते के नीचे व्यक्ति को एक राष्ट्रीय समाज का नागरिक माना जा सकता है जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के भूमण्डलीय प्रवाह द्वारा मानवता के रूप में प्रवाहित होता है। इसी तरह समान रूप से एक राष्ट्रीय समाज अपने सदस्यों द्वारा समझा जाता है, किन्तु, यह राष्ट्रीय समाज केवल वैयक्तिक नागरिक से ही नहीं बनता बल्कि स्वयं राष्ट्रों के समुदायों के सदस्यों और मानवता के सामान्य दायित्वों से बनता है। इन सन्दर्भों में वैश्वीकरण न केवल अविभेदीकरण की प्रक्रिया को चित्रित करता है बल्कि एक ऐसे नवीन ढाँचे के आविर्भाव का परिचायक होता है जिसमें विभेदीकरण निरन्तर प्रवाहमान रहता है।

(३) वैश्वीकरण की अवधारणा विश्व के सन्दर्भ में एक एकल समष्टि के रूप में एक नवीन चेतना के उद्भव को सूचित करती है।

(४) वैश्वीकरण के अन्तर्गत विश्व एक एकीकृत सामाजिक व्यवस्था का रूप धारण करता जा रहा है।

(५) वैश्वीकरण की दृष्टि विश्व समुदाय के रूप में सम्पूर्ण मानवता के लिए समानता, स्वतन्त्रता और न्याय प्रदान करने की है।

(६) वैश्वीकरण में केन्द्रीय स्थान सर्वदेशीय संस्कृति का होता है। वैश्वीकरण विश्व व्यवस्था का विस्तार है।

(७) वैश्वीकरण राष्ट्र-राज्यों के पार सम्बन्ध और अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करता है।

(८) वैश्वीकरण एक बहुआयामी जटिल प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत चार बृहद् आयाम हैं - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक। वस्तुतः वैश्वीकरण सामाजिक जीवन के इन चार आयामों के बीच अन्तर्सम्बन्धों को इंगित करता है।

(९) इसके अन्तर्गत लोग संस्कृतियों, पण्य पदार्थों, सूचना एवं दिक्-काल के पार जाकर सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(१०) आज विश्व में जो पारस्परिकता, अन्तर्सम्बन्ध व अन्तर्निर्भरता है वह सूचना व संचार तकनीकी विस्तार का परिणाम है।

(११) समाजशास्त्रियों ने वैश्वीकरण को आधुनिकीकरण का विस्तार माना है, जबकि आज के कुछ अन्य समाजशास्त्रियों ने इसे उत्तर-आधुनिकता की विशेषता के रूप में स्वीकार किया है।

(१२) वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत भौतिक विनिमय स्थानीय हो जाते हैं, राजनीतिक विनिमय अन्तर्राष्ट्रीय हो जाते हैं, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विनिमय वैश्विक हो जाते हैं। अन्य शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मानव समाज का वैश्वीकरण उस सीमा तक सम्भाव्य है जिस सीमा तक सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के साथ सम्बन्धित होती हैं।

(१३) वैश्वीकरण एक एकल विश्व बाजार की रचना है।

(१४) समकालीन वैश्वीकरण सिद्धान्त का तर्क है कि वैश्वीकरण के अन्तर्गत - समरूपीकरण एवं विभेदीकरण - दो पूर्णतया विरोधात्मक प्रक्रियाएँ हैं। इसमें स्थानीयवाद और विश्ववाद के बीच एक जटिल अन्तर्क्रिया होती रहती है और इसके अन्तर्गत वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के विरुद्ध विरोध का शक्तिशाली आन्दोलन चलता रहता है।

(१५) वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के समाजशास्त्र और विश्व-व्यवस्था सिद्धान्त से भिन्न है। विश्व-व्यवस्था सिद्धान्त वैश्विक आर्थिक अन्तर्निभरता के सम्बर्द्धन का विश्लेषण करता है - और यह दावा करता है कि सांस्कृतिक वैश्वीकरण सामान्यतः आर्थिक वैश्वीकरण का परिणाम है।

(१६) इस भ्रम का परिहार करना भी महत्वपूर्ण है कि वैश्वीकरण राष्ट्र-राज्यों के औद्योगिक समाज के एकीकृत एवं सुसंगत स्वरूप की ओर अभिमुख है।

(१७) वैश्वीकरण के कारण एवं सीमा के सन्दर्भ में विद्वानों में मतवैभिन्य है। कुछ विद्वानों ने वैश्विक व्यवस्था को आर्थिक सम्बर्द्धन एवं एकीकरण का उत्पाद माना है, जबकि अन्यों ने आवश्यक रूप से इसे सम्प्रेषण के नूतन इलेक्ट्रानिक मिडिया का सांस्कृतिक परिणाम माना है।

वैश्वीकरण : उद्‌भव, विकास और स्वभाव : रॉबर्ट्सन का तर्क है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया कोई नूतन प्रघटना नहीं है, बल्कि यह आधुनिकता एवं पूँजीवाद के उदय होने से पहले घटित हुई है। तथापि, आधुनिकीकरण ने वैश्वीकरण को गति प्रदान की है और इसकी प्रक्रिया को लगभग १० वर्षों के दौरान शिखर पर पहुँचा दिया है। इसके अतिरिक्त, यूरोपीय सभ्यता इसके उद्‌भव और विकास के लिए केन्द्रीय केन्द्रबिन्दु है। तथ्यतः वैश्वीकरण उस यात्रा का नाम है जिसकी शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ में आधुनिकता ने की थी। असलियत यह है कि यूरोपीय प्रबोधन या ज्ञानोदय की कोख से जन्मे आधुनिकता के सार्वभौम में 'एक विश्ववाद' का पहलू एक शक्तिशाली अन्तर्धारा के रूप में विद्यमान रहा है। चाहे किसी भी रंग के रहे हों, आधुनिकतावादी सदैव एक ग्लोबल प्रणाली, ग्लोबल नागरिक, 'ग्लोबल' राजनीति, ग्लोबल संस्कृति रचने की परिकल्पनाओं से प्रेरित होते रहे हैं। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक सीमाएँ आधुनिकता के इस आयाम के ऊपर कभी हावी नहीं हो पायी। सवा सौ वर्ष से अधिक लम्बी इस यात्रा में आधुनिकता ने इस मंजिल को कभी आँखों से ओझल नहीं होने दिया।

किन्तु यह भी सन्देह रहित सत्य है कि वैश्वीकरण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। यह पूर्णतया आधुनिक है। यदि उत्तर-आधुनिकता के सम्प्रत्यय का आविर्भाव सन् १९८० में हुआ है, तो वैश्वीकरण का अवतार सन् १९९० में हुआ। सन् १९९० में ही यह समाजशास्त्रियों के परम्परागत ज्ञान का एक अंग बना। प्रायः समाजशास्त्रीय अभिरुचि का प्रत्येक विषय वैश्विक व्याख्या का मानक रूप बना। सन् १९९६ में 'कन्टेम्पररि सोशियोलॉजी' नामक जर्नल के सितम्बर माह के अंक में विविध विषयों, जैसे-स्त्री आन्दोलन, अर्थव्यवस्था, जैविक पुनरुत्थान, अप्रवास, प्रजाति-पार्थक्य, प्रजातिवाद, वन उत्पाद,

उद्योग, पारराष्ट्रीय निगम, भोजन का उत्पादन एवं वितरण, केन्द्रीय बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था, अमेरिकीय विदेशी नीति, तीसरी दुनियाँ के नगरों का सम्बर्द्धन तथा प्रगत समाजों में नूतन परिवर्तन से सम्बन्धित ग्रन्थों की समीक्षा के अन्तर्गत 'वैश्विक', 'वैश्वीकरण' या 'वैश्विकवाद' की गम्भीर चर्चा की गयी। इससे सचमुच में विश्व का वैश्वीकरण होते दिखाई पड़ा और लोगों को ऐसा अनुभव होने लगा कि यह प्रक्रिया समतामूलक विचार के साथ जुड़कर एक आदर्श नागरिक समाज को जन्म देगी।

इन्टरनेशनल जर्नल के जून २००० के अंक में वैश्वीकरण के मुद्दे को लेकर जो प्रकाशन हुआ, उसमें वैश्वीकरण के उद्भव को लेकर एक बृहत् चर्चा की गयी। इस सन्दर्भ में आधार-स्रोत के रूप में प्रचुर नवीन सामग्री प्रकाश में आयी है। इस सामग्री के आधार पर १९९० के दशक को वैश्वीकरण के श्रीगणेश का औपचरिक दशक माना गया है। रॉबर्टसन की कृति ग्लोबलाइजेशन इसी दशक के सन् १९९२ में प्रकाशित हुई। इन्टरनेशनल जर्नल की स्थापना है कि रॉबर्टसन विश्व के वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने वैश्वीकरण पद का विरचन दुनियाँ में पहली बार वर्तमान तकनीकी वैश्वीकरण के सन्दर्भ में किया। इसके पूर्व पूरे विश्व के वृहत् अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन एवं स्पेनिश शब्दकोश इस पद के वर्तमान अर्थबोध के सन्दर्भ में मौन है। हाँ, अरबी में इस धारणा के चार भिन्न शब्द विहित अवश्य हैं। इसी तरह जापान में इस पद का व्यापारिक अर्थबोध १९८० में ध्वनित हुआ और चीन के अकादमिक जगत् में १९९० के दशक में इसकी निनाद सुनाई पड़ी। दि सोशल साइटेशन इन्डेक्स प्रतिवेदनों में भी वैश्वीकरण के कुछ स्वर १९८० में ही सुनाई पड़े। किन्तु, इस पद की लोकप्रियता की अभिव्यक्ति सन् १९९२ के बाद ही हुई है। इसलिए विवेचन की स्वच्छता की दृष्टि से सन् १९९० को ही वैश्वीकरण के प्रकटन की आधारपीठिका ग्राह्य मानना समीचीन प्रतीत होता है। इस प्रकार वैश्वीकरण पद के प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया है कि समाज वैज्ञानिकों के शब्दकोश में सार्वभौमिक पद के लिए अब वैश्वीकरण शब्द प्रयुक्त किया जाने लगा है।

वैश्वीकरण के ऐतिहासिक उद्भव के आधार-स्रोत की गवेषणा में अंथोनी गिडेन्स के योगदान की चर्चा अत्यावश्यक है। गिडेन्स की अपनी रचना 'दि कान्सिक्वेन्सेज ऑफ मॉडर्निटी' में वैश्वीकरण की मान्यताओं के सन्दर्भ में कई-कई नव्य दृष्टियाँ उभरकर आती लक्षित होती हैं। इस रचना में गिडेन्स का तर्क है कि उत्तर-आधुनिकता वस्तुतः आधुनिकता के भंजन का परिणाम नहीं है। आधुनिकता का उच्चाशय ही उत्तर-आधुनिकता है। अस्तु, वैश्वीकरण, आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता दोनों के सभी तत्वों का वहन करता है। तथ्यतः, जब हम वैश्वीकरण की चर्चा करते हैं, तब हम आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता दोनों की चर्चा करते हैं। तथापि गिडेन्स ने आधुनिकता और वैश्वीकरण में अन्तर स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता को अक्सर सांस्कृतिकवादी समझा जाता है, जबकि वैश्वीकरण को एक आर्थिक प्रघटना के रूप में अंगीकार किया जाता है। किन्तु, गिडेन्स का तर्क है कि आधुनिकता की व्याख्या पूर्णतया उसके आर्थिक आधार पर नहीं की जा सकती, प्रत्युत वह आधुनिक इसलिए है क्योंकि वह एक राष्ट्र-राज्य है। पश्चिमी यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र-राज्यों तथा अमेरिका ने राजनीतिक सैनिक साधनों के आधार पर ही वैश्विक साम्राज्य की स्थापना की है। राष्ट्र राज्य के क्रिया-कलाप वैश्वीकरण की रचना में कई रूप में मदद करते हैं। गिडेन्स यह भी मानते हैं कि राष्ट्र-राज्य तथा राष्ट्रीय पहिचान और वैश्वीकरण साथ-साथ होने में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है। इन तीन अवधारणाओं अर्थात् आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता और वैश्वीकरण के बीच अन्तर केवल बल का है। मूलतः ये सब तीनों आधुनिक समाज के संस्थागत स्वरूपों से सम्बन्ध रखते हैं।

रॉबर्टसन के अनुसार वैश्वीकरण का इतिहास बहुत नया नहीं है। तथ्यतः इसका आविर्भाव आधुनिकता के आने के पूर्व ही हो चुका था। यह पूँजीवाद के उदय के पूर्व में भी विद्यमान रहा है। उन्होंने इसके सम्बर्द्धन और विकास के मार्ग के प्रारूप (मॉडल) के रूप में पाँच अवस्थाओं या सोपानों की चर्चा की है :

(१) जननिक अवस्था (यूरोप, १४००-१७५०) - वैश्वीकरण का आरम्भ यूरोप में १४०० से १७५० के दौरान हुआ। जिन क्षेत्रों में वैश्वीकरण का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ है वे हैं : कैथोलिक चर्च, न्यायिक एवं मानवतावादी धारणा, सार्वभौम कलेण्डर एवं भूमण्डलीय खोज एवं उपनिवेशवाद।

(२) आरम्भिक अवस्था (यूरोप, १७५०-१८७५) - आरिम्भक अवस्था वैश्वीकरण की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में एक नये रूप में समरूप एवं एकीकृत राज्य के विचार का जन्म हुआ। औपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के स्वर सुनायी देने लगे। एतदर्थ विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए एक ओर तो राज्यों व राष्ट्रों को आवाहन किया जाने लगा और दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की श्रीवृद्धि करने के लिए राष्ट्रों में विश्वास की भावना उत्पन्न

करने का प्रयास किया जाने लगा। जीवन के जिन क्षेत्रों में वैश्वीकरण का प्रवेश आरम्भ हुआ उनके अन्तर्गत राष्ट्र-राज्यों के आविर्भाव, राष्ट्र-राज्यों के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन एवं सम्प्रेषण समझौता प्रथम गैर-यूरोपीय राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय और सार्वभौमवाद के बारे में प्रथम विचार आदि सम्मिलित हैं।

(३) प्रस्थान बिन्दु (१८७५-१९२५) - यह वह काल अवधि है जिसमें सन्दर्भ बिन्दुओं-राष्ट्र-राज्य, व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय समाज एवं मानवतावाद का आविर्भाव हुआ। वैश्विक संचार व संप्रेषण के विविध साधनों का विकास हुआ जिससे अन्तर्राष्ट्रीय जीवन एक नयी आशा और साथ ही एक नये समाज के निर्माण का अनुभव कर रहा था। यह नयी स्थिति पूर्व-आधुनिक जीवन-मूल्यों और आदर्शों के लिए चुनौती बनकर आयी। परिणामतः अन्तर्राष्ट्रीय संचार, खेल-कूद, क्रीड़ा-कौशल, सांस्कृतिक सम्बन्ध, एक सामान्य वैश्विक कलेन्डर, अन्तर्राष्ट्रीय क्लबों में गैर-योरोपीय लोगों का प्रवेश आदि का बड़े व्यापक पैमाने पर विस्तार हुआ। अस्तु, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोग नये सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए एवं एक वैश्विक समाज की स्थापना करने की ओर अग्रसर हुए। मानवतावादी दर्शन मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। हाँ, प्रथम विश्वयुद्ध का घटन भी इसी अवधि-काल में घटित हुआ।

(४) आधिपत्य के लिए संघर्ष (१९२५-१९६९) - प्रस्थान बिन्दु कालावधि के अन्त में ही आधिपत्य जमाने के लिए राष्ट्र-राज्यों के बीच संघर्ष की प्रक्रिया की शुरूआत हो चुकी थी। प्रत्येक राष्ट्र-राज्य अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए अपनी वैश्विक शक्ति खोकर आणुविक बम का प्रयोग करने लगा। प्रत्येक राष्ट्र-राज्य एक-दूसरे पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए संघर्षरत हो गया। युद्ध अपराध एवं मानवता के विरुद्ध अपराध होने लगे। सार्वभौमिक रूप से अणु-अस्त्रों का प्रयोग किया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध में भी मानवता दर्शन के सिद्धान्त को खोखला सिद्ध कर दिया। राष्ट्रसंघ एवं संयुक्त राष्ट्रों तथा शीतयुद्ध से सिद्ध हो गया है कि न तो वैश्विक न्याय और वैश्विक मानवता का सपना साकार रूप में देखा जा सकता है और न ही वैश्विीकरण की परी-देशीय कल्पना की सर्वभौम सत्ता की प्रामाणिकता को पुष्ट किया जा सकता है। तृतीय दुनियाँ के आविर्भाव ने इस पर मुहर लगाकर इसे और भी असहाय क्षुद्र और निरर्थक सिद्ध कर दिया।

(५) अनिश्चित अवस्था (१९६९-१९९२) - यह वह अवस्था है जिसमें सम्पूर्ण जगतीय समुदाय में वैश्विक चेतना का चरमोत्कर्ष विकास हुआ। दिक् और काल का नये ढंग से अन्वेषण हुआ। उत्तर-आधुनिकतावादी मूल्यों तथा अधिकारों के लिए चहुँओर विमर्श होने लगा। लैंगिकता, नारीवाद व नारी-आन्दोलन, नृजातीय या मानवजातीय एवं प्रजाति उत्थान से सम्बन्धित नवीन वैचारिकी सम्पूर्ण जगत् में एक केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर ली। उत्तर-आधुनिकतावादी नव्य दर्शन के प्रकाश में ज्ञान, सत्य और यथार्थ के परम्परागत स्वीकार्य अर्थों को चुनौती दी जाने लगी। समानता और स्वतन्त्रता की नवीन अवधारणाओं ने जाति, प्रजाति, वर्ग, लिंग आदि समूहों व समुदायों के परस्पर विभेदों को हटाकर समान अधिकारों के उपभोग की व्यवस्था प्रस्तुत की। अस्तु, इसी सन्दर्भ में स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों एवं प्रस्थितियों की असमानता एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उभरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के पाटों का विस्तार हुआ है और ये सम्बन्ध अधिकाधिक जटिल हुए हैं। वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं और उनसे सम्बन्धित आन्दोलनों को स्वीकार किया जाने लगा है। लोकतान्त्रिक सपनों को साकार करने के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पहल करने की रफ्तार में तेजी आयी है। वैश्विक जनसंचार (मास-मीडिया) और जन सम्प्रेषण या सम्बाद (मास कम्यूनिकेशन) स्पेस तकनीकी, नेटवर्क सोसाइटी में ज्ञान के बिना सूचना इत्यादि के आधार पर एक नयी दुनियाँ का आविष्कार किया जा रहा है जिसमें सब कुछ है पर किसी भी चीज की दैहिक उपस्थिति नहीं है। सचमुच में इस शताब्दी का हीरो तो नेटवर्क सोसाइटी होगी जिसे हम सूचना समाज कह सकते हैं। इस सन्दर्भ में यह कथ्य है कि जिस प्रकार दीमकों के ढूह में प्रत्येक दीमक की अलग-अलग शख्सियत नहीं होती, बल्कि पूरे ढूह को मिलाकर एक सम्पूर्ण शख्सियत बनती है। इसी तरह नेटवर्क भी एक नये किस्म के सामूहिक वजूद की तरह सामने आता है जो एक साथ तरल भी है और अमीबा की तरह स्वतः अपना खाना बटोरते हुए विकसित होता चला जाता है। जाहिर है कि बीसवीं सदी की उन निर्मितियों जैसा नहीं है जिन्हें हम पार्टी, राष्ट्र-राज्य या सर्वहारा के रूप में जानते रहे हैं।

रॉबर्टसन का कहना है कि ये विकास वैयक्तिक समाजों की आन्तरिक गतिशीलता से स्वतन्त्र रूप से घटित हुए हैं। सचमुच में वैश्वीकरण के पास अपना स्वयं का तर्क है जो इन आन्तरिक गतिशीलताओं को अपरिहार्यतः या अनिवार्यतः प्रभावित करेगा। रॉबर्टसन का यह भी कहना है कि अनिश्चितता की यह अवस्था वह सोपान है जिसमें जगतीय समुदाय को स्वयं

ही यह जानकारी नहीं होती है कि इसके भविष्य की दिशा किस प्रकार की होगी। हाँ, किन्तु, इसके भविष्य की दिशा का निर्धारण भूमण्डलीय लोगों द्वारा ही निश्चित किया जाएगा और इस प्रकार एक नये वैश्विक समुदाय का सृजन हो जाएगा।

वैश्वीकरण के आयाम : वैश्वीकरण इतनी सशक्त प्रघटना है जिसने सम्पूर्ण जगत् में अपने विस्तार के परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न देशों एवं विभिन्न लोगों के बीच अन्तनिर्भरता की वृद्धि की है। अस्तु, हमें इसके प्रमुख आयामों पर विचार करना अत्यावश्यक जान पड़ता है। वैश्वीकरण के प्रमुख तीन आयाम हैं - (१) आर्थिक, (२) राजनीतिक, एवं (३) सामाजिक-सांस्कृतिक। ये तीनों आपस में जुड़े हुए हैं।

(१) वैश्वीकरण का आर्थिक आयाम - वैश्वीकरण का आर्थिक आयाम एक एकीकृत वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में पूँजीवाद का विस्तार एवं रूपान्तरण है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन वैश्विक वित्तीय बाजारों का विस्तार है। वैश्वीकरण के वित्तीय प्रवाह के अन्तर्गत पूँजी का संचालन सम्पूर्ण दुनियाँ में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थप्रबन्ध को नियमित करने के लिए किया जाता है। इस सन्दर्भ में बहुराष्ट्रीय निगमों जिन्हें संक्षेप में एम.एन.सी. कहा जाता है तथा पारराष्ट्रीय निगमों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। बहुधा एक कम्पनी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के रूप में विकसित होकर पारराष्ट्रीय निगम बन जाती है। पारराष्ट्रीय निगम ऐसी कम्पनियाँ होती हैं जो एक से अधिक देशों में अपने माल का उत्पादन करती हैं अथवा बाजार सेवाएँ प्रदान करती हैं तथा विदेशी या पारराष्ट्रीय मुद्रा विनिमय द्वारा विनिमय करती हैं। ये अपेक्षाकृत लघु आकारीय फर्में भी हो सकती हैं। इन फर्मों के एक या एक से अधिक कारखाने उस देश से बाहर हो सकते हैं जहाँ वे मूलरूप से स्थित हैं। साथ ही, वे बड़े विशाल अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठान भी हो सकते हैं जिनका कारोबार सम्पूर्ण दुनियाँ में फैला हुआ हो। कुछ बहुत बड़े पारराष्ट्रीय निगमों के नाम जो सम्पूर्ण विश्व में प्रख्यात हैं, वे हैं : कोकाकोला, कालगेट, पामोलिव, जनरल मोटर्स, कोडैक आदि। यद्यपि इन निगमों का अपना एक स्पष्ट राष्ट्रीय आधार है, तथापि वे वैश्विक बाजारों और वैश्विक लाभों की ओर अभिमुख हैं। यह सन्देहरहित सत्य है कि कतिपय भारतीय निगम भी बहुराष्ट्रीय बन रहे हैं।

वित्तीय वैश्वीकरण का व्यापक विस्तार सूचना तकनीकी के विकास द्वारा ही हुआ है। सूचना तकनीकी की क्रान्ति के कारण ही पहली बार विश्व में वित्त का वैश्वीकरण हुआ है। कहना न होगा कि विश्व में तकनीकी के क्षेत्र और दूरसंचार के आधारभूत ढाँचे में हुई महत्वपूर्ण उन्नति के फलस्वरूप वैश्विक संचार व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब कुछ घरों और बहुत-से कार्यालयों में बाहरी दुनियाँ के साथ सम्बन्ध बनाये रखने के लिए अनेक साधन मौजूद हैं : जैसे- टेलीफोन (लैंडलाइन और मोबाइल दोनों किस्मों के), फैक्स मशीनें, डिजिटल और केबल टेलीविजन, इलेक्ट्रानिक मेल और इन्टरनेट आदि। आज इस भू-ग्रह पर दो सुदूर विपरीत दिशाओं - वाराणसी और न्यूयार्क में बैठे दो व्यक्ति न केवल बातचीत कर सकते हैं, बल्कि दस्तावेज और चित्र आदि भी एक-दूसरे को उपग्रह तकनीकी की सहायता से भेज सकते हैं। सूचना तकनीकी के तहत इलेक्ट्रानिक अर्थव्यवस्था एक ऐसा कारक है जिसने वैश्विक बाजार में वास्तविक समय में मौद्रिक विनिमय की गति एवं क्षेत्र को लोगों के बीच अधिक बढ़ा दिया है। कम्प्यूटर के माउस को दबाने मात्र से बैंक, निगम, कोष प्रबन्धक और निर्देशकर्ता अपने कोष को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में भेज सकते हैं। वैश्विक आधार पर एकीकृत वित्तीय बाजार इलेक्ट्रानिक परिपथों में कुछ ही क्षणों में अरबों-खरबों डॉलर के लेन-देन कर डलते हैं। पूँजी और प्रतिभूति बाजारों में चौबीस घण्टे व्यापार चलता रहता है। न्यूयार्क, टोकियो और लन्दन जैसे नगर वित्तीय बाजार के प्रमुख केन्द्र हैं। भारत में बम्बई को देश की वित्तीय राजधानी कहा जाता है।

आर्थिक वैश्वीकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था विगत युगों के विपरीत अब प्राथमिक रूप से कृषि या उद्योग पर आधारित नहीं है बल्कि भाररहित अर्थव्यवस्था या ज्ञानात्मक अर्थव्यवस्था पर आधृत होती जा रही है। भाररहित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसके उत्पाद सूचना तकनीकी पर आधारित होते हैं। जैसे-कम्प्यूटर, सॉटवेयर, मीडिया और मनोरंजक उत्पाद तथा इन्टरनेट आधारित सेवाएँ। ज्ञानात्मक अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें अधिकांश कार्य बल वस्तुओं के वास्तविक भौतिक उत्पादन अथवा वितरण में संलग्न नहीं होता बल्कि उनके डिजाइन, विकास, तकनीकी, विपणना, बाजार, बिक्री और सर्विस आदि में लगा रहता है। इस अर्थव्यवस्था में घरेलू खान-पान प्रबन्ध-सेवा से लेकर बड़े-बड़े ऐसे संगठन भी सम्मिलित होते हैं जो शादी-विवाह जैसे पारिवारिक आयोजनों के लिए मेजबान को अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं। ऐसे भी बहुत से नये-नये व्यवसाय उभरकर सामने आये हैं जिनके बारे में कुछ दशकों पहले सुना ही नहीं गया था। उदाहरणस्वरूप, कार्यक्रम प्रबन्धक। कार्यक्रम प्रबन्धों के बारे में पहले कभी नहीं सुना गया है कि ऐसे व्यक्ति क्या करते हैं? हाँ, किन्तु,

आजकल कुछ ऐसी सेवाओं की खोज की गयी है जिनमें कुछ लोग विरल बात से द्रव्य अर्जन करते हैं। वे ऐसा कुछ उत्पादित नहीं करते जिसे तौला हुआ या आसानी से मापा जा सकता हो। ऐसे लोगों की उत्पादन-सामग्री को न तो बन्दरगाहों पर ढेर लगाकर एकत्रित किया जा सकता है और न ही मालगोदाम में रखा जा सकता है अथवा रेलगाड़ी के माल डिब्बों में भरकर भेजा सा सकता है। वास्तव में ऐसे लोग अपनी आजीविका सेवाएँ देकर, निर्णय, सूचना और विश्लेषण देकर अर्थार्जन करते हैं, भले ही वे अपना काम किसी टेलीफोन कॉल सेन्टर, वकील के कार्यालय, सरकारी विभाग अथवा किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में करते हों। ये सभी विरल बात (थिन एअर बिजनेस) में संलग्न हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण का एक और अन्य महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में एक नया अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन उभर आया है जिससे तीसरी दुनियाँ के नगरों में अधिकाधिक नियमित उत्पादन किया जाता है और रोजगार प्रदान किया जाता है। नाइके कम्पनी जो जूतों का आयात करने वाली कम्पनी के रूप में विकसित हुई, इसका बेहतर उदाहरण है। यह कम्पनी १९६० के दशक में अपनी स्थापना के समय से ही बहुत तेजी से विकसित हुई। इसके संस्थापक सर्वप्रथम फिलनाइट जापान से जूते आयात करते थे। आरम्भ में केवल दो अमेरिकी कारखाने ही नाइके के लिए जूता बनाते थे। फिर १९६० के दशक में नाइके के जूता जापान में बनाए जाने लगे। जब वहाँ लागत बढ़ी तो उत्पादन कार्य १९७० के दशक के मध्य भाग में दक्षिण कोरिया को स्थानान्तरित कर दिया गया। फिर दक्षिण कोरिया में मजदूरी की लागत बढ़ी तो १९८० के दशक में उत्पादन को थाईलैण्ड और इंडोनेशिया तक फैला दिया गया। तत्पश्चात् १९९० के दशक में हम भारत में नाइके के जूतों का उत्पादन कर रहे हैं। अस्तु, एक केन्द्रीकृत स्थान पर विशाल पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन फोर्डवाद के बजाय हम अलग-अलग स्थानों पर उत्पादन की लचीली प्रणाली फोर्डवादोत्तर की ओर बढ़ चुके हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण का एक बहुत महत्वपूर्ण योगदान कुछ विशिष्ट आर्थिक नीतियों के निर्माण करने से सम्बद्ध है। वस्तुतः वैश्वीकरण का विस्तार कुछ विशिष्ट आर्थिक नीतियों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है। मोटे तौर पर इस प्रक्रिया को भारत में उदारीकरण कहा जाता है। उदारीकरण का तात्पर्य ऐसे अनेक नीतिगत निर्णयों से है जो भारत राष्ट्र द्वारा १९९१ में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व बाजार के लिए खोल देने के उद्देश्य से लिये गये थे। इसके साथ ही, अर्थव्यवस्था पर अधिक नियन्त्रण रखने के लिए सरकार द्वारा इससे पहले अपनाई जा रही नीति पर विराम लग गया। इस सन्दर्भ में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का तात्पर्य था भारतीय व्यापार को नियमित करने वाले नियमों और वित्तीय नियमनों को हटा देना। इन उपायों को 'आर्थिक सुधार' भी कहा जाता है। जुलाई १९९१ से भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपने सभी प्रमुख क्षेत्रों, जैसे- कृषि उद्योग, व्यापार निवेश और तकनीकी, सार्वजनिक क्षेत्र एवं वित्तीय संस्थाएँ आदि, में सुधारों की एक लम्बी श्रृंखला देखी है। इसके पीछे मूल धारणा यह थी कि वैश्वीय बाजार में पहले से अधिक समावेश करना भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी सिद्ध होगा। अस्तु, उदारीकरण की प्रक्रिया के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आई.एम.एफ.) जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेना भी अनिवार्य हो गया। ये ऋण कुछ निश्चित शर्तों पर दिये जाते हैं। सरकार को कुछ विशेष प्रकार के आर्थिक उपाय करने के लिए वचनबद्ध होना पड़ता है और इन आर्थिक उपायों के अन्तर्गत संरचनात्मक समायोजन की नीति अपनानी होती है। इन समायोजनों का तात्पर्य सामान्यतः सामाजिक क्षेत्रों, जैसे- स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा में राज्य के व्यय में कटौती है। अन्य अर्न्राष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे- विश्व- व्यापार संगठन के सन्दर्भ में भी यह बात कही जा सकती है।

आर्थिक वैश्वीकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान है रोजगार और भूमण्डलीकरण के बीच के सम्बन्धों का। यह दलील दी जाती है कि नगरीय केन्द्रों के मध्यवर्गीय युवाओं के लिए वैश्वीकरण और सूचना तकनीकी की क्रान्ति ने रोजगार के नये-नये अवसर प्रस्तुत किये हैं। कालेजों और विश्वविद्यालयों से नाम के लिए बी.एससी., बी.ए., बी.कॉम., बी.एससी. एजी. की डिग्री लेने के बजाय वे कम्प्यूटर के संस्थानों से कम्प्यूटर की भाषाएँ सीख रहे हैं अथवा कॉल सेन्टरों में या व्यापार प्रक्रिया बाह्योपयोजन (बी.पी.ओ.) कम्पनियों की नौकरियाँ ले रहे हैं। वे विशाल बिक्री भण्डारों (शॉपिंग माल्स) में काम करते हैं या हॉल में खोले गये विभिन्न जलपान केन्द्रों में नौकरी करते हैं। तथापि, यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि रोजगार की ये प्रवृत्तियाँ मोटे तौर पर निराशाजनक ही हैं। जैसा कि 'एशिया और प्रशांत क्षेत्र में श्रम एवं सामाजिक प्रवृत्तियाँ २००५' नामक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की रिपोर्ट में कहा गया है। इस रिपोर्ट के तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि निःसन्देह इस क्षेत्र में प्रभावशाली आर्थिक वृद्धि हुई है, किन्तु उसके अनुसार कार्य के नये अवसर उत्पन्न नहीं हो सके हैं। वर्ष २००३ और २००४ के बीच एशिया और

प्रशान्त क्षेत्र में १.६ प्रतिशत यानी २.५ करोड़ रोजगार के अवसरों की वृद्धि हुई, जबकि उनकी कुल संख्या १.५८८ अरब थी जो कि ७ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर को देखते हुए थी।[६]

आर्थिक वैश्वीकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान उत्पादन के वैश्वीकरण से सम्बन्धित है। कहना न होगा कि बहुराष्ट्रीय निगमों एवं स्थापनाओं से भूमण्डलीय स्तर पर विश्व व्यापार तथा आर्थिक भूमिकाओं, आर्थिक क्रिया-कलापों एवं आर्थिक उत्पादों में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

(२) वैश्वीकरण का राजनीतिक आयाम - राजनीतिक क्षेत्र में वैश्वीकरण ने अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे- विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष एवं विश्व व्यापार संगठन आदि को जन्म दिया है, जो वैश्विक अर्थव्यवस्था को नियमित व नियन्त्रित करते हैं और इसलिए, ये राष्ट्र राज्यों की स्वतन्त्रता को परिसीमित करते हैं। अस्तु, राष्ट्र-राज्य की शक्ति और प्रभावोत्पादकता में कमी आ जाती है। राज्य के कई परम्परागत अधिकार-क्षेत्र उसके हाथ से निकल जाते हैं। वैश्विक वित्तीय बाजार एवं बहुराष्ट्रीय निगमों ने भी राष्ट्रीय सरकारों की राज्य के सीमाओं के भीतरी क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करने के लिए शक्तियों को घटाया है, क्योंकि कम्पनियाँ अपने व्यवसाय को अन्यत्र संचालित कर सकती हैं, क्योंकि वे सरकार की नीतियों को नापसन्द करती हैं। पुनः यूरोपीय संघ सदस्य राज्यों के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को परिसीमित करता है। क्योंकि राष्ट्र-राज्यों की प्रभुसत्ता बड़े-बड़े राजनीतिक संगठनों के साथ जुड़ जाती है। ऐसे संगठनों में नॉर्थ एटलान्टक ट्रिटी ऑरगेनाइजेशन, ऑर्गेनाइजेशन ऑफ पेट्रोलियम एस्पोर्टिंग कन्ट्रीज, संयुक्त राष्ट्र संघ, इन्टरनेशनल मोनेटरी फण्ड सम्मलित हैं। कुछ समाजशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्धकीय बूर्जुआ या पारराष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग के आविर्भाव के तादात्म्य को स्थापित किया है, यद्यपि यह आनुभविक रूप से विवादास्पद है। राजनीतिक समाजशास्त्रियों का सम्बन्ध वैश्वीकरण से उत्पन्न अनेक मुद्दों से है। इन मुद्दों के अन्तर्गत राष्ट्र राज्य की सत्ता का क्षरण, पर्यावरणीय समस्याओं, आदिवासी अधिकारों से सम्बन्धित प्रश्नों एवं नागरिकता, प्रवर्जन तथा अन्तर्प्रजातीय और नृजातीय संघर्ष एवं मानव और नागरिक अधिकारों के बीच तनाव इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है। कहना न होगा कि वैश्वीकरण की बहुत बड़ी उपलब्धि मानवाधिकार है। अब मानवाधिकार का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो गया है। अस्तु, विश्व में कहीं भी इस अधिकार का हनन नहीं हो सकता। वैश्वीकरण ने स्थानीय संस्कृतियों की निरन्तरता एवं प्रामाणिकता व वास्तविकता को संकट में डाल दिया है जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय सांस्कृतिक रूपान्तरण का एक नया स्वरूप आ रहा है। यह नया स्वरूप है संस्कृतियों का समरूपीकरण। किन्तु, इस नये स्वरूप के विरुद्ध अनेक सामाजिक आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन तनावों के परिणामस्वरूप स्थानीय एवं वैश्विक संस्कृतियों के बीच एक दरार पड़ गयी है जिसके लिए एक नवीन परिभाषिक शब्दावली का सृजन हुआ है जिसे ग्लोक्लाइजेशन के नाम से सम्बोधित किया गया है जो वैश्विक व्यवस्था में समावेशन के विरुद्ध प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है।

वैश्वीकरण का भूमण्डलीय व्यवस्था में अभिशासन मूर्तरूप से प्रकट हो जाएगा। जब वैश्वीकरण अभिशासन व्यापक स्तर पर आसीन हो जाएगा और इसमें सुदृढ़ता आ जायेगी तब राष्ट्र-राज्यों की शक्ति कमजोर हो जायेगी। किन्तु, गिडेन्स इस तरह की सम्भावना को नकारते हैं। उनका तर्क है कि वैश्वीकरण ने ही राष्ट्र-राज्य का सृजन किया है। इसके पूर्व सभी राष्ट्र केवल राज्य ही थे। अस्तु, वैश्वीकरण किसी भी स्थिति में राष्ट्र-राज्य को निगल नहीं सकता। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण एक नवीन भूमण्डलीय रानजीतिक व्यवस्था प्रदान करता है, क्योंकि राजनीतिक संगठन की सम्प्रेषण या संचार समस्याओं को कम कर दिया जाता है।

(३) वैश्वीकरण का सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम - सामाजिक-सांस्कृतिक वैश्वीकरण को बहुपर्यटन के उदय, समाजों के बीच लोगों के बढ़ते प्रव्रजन, सांस्कृतिक उत्पादों का व्यापारीकरण और उपभोक्तावाद की वैचारिकी के वैश्विक प्रसार का परिणाम कहा जाता है, जो अधिक स्थानीयकृत संस्कृतियों के स्थान पर काम करता है या उसकी कमी को पूरा करता है। बहुराष्ट्रीय निगमों के विपणन क्रियाकलाप एवं बहुसंचार मीडिया का विकास (जिस पर मुख्यतः बहुराष्ट्रीय निगमों का स्वामित्व होता है) सामाजिक-सांस्कृतिक वैश्वीकरण में सहायक होते हैं। मैक्डोनाल्डाइजेशन (मैकडोनाल्डीकरण) इसका एक बेहतर उदाहरण है। मैकडोनाल्ड अमेरिका का एक रेस्टारेन्ट या जलपान-गृह। यह जलपानगृह अन्य देशों में भी अपनी शाखाओं का जाल बिछाया है। भारत के भी कुछेक महानगरों में इसकी शाखाएँ कार्यरत हैं। इसमें खाने-पीने की वस्तुओं (फास्टफुट) को उपभोक्ता के पास शीघ्रातिशीघ्र प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे जलपानगृह अतिबुद्धिसंगतता के परिणाम हैं जिन्हें समकालीन समाज में अमेरिकीकरण, मैकडोनाल्डाइजेशन

और फास्टफुड फैशन कहते हैं। वस्तुतः मैक्डोनाल्डीकरण एक सामाजिक-सांस्कृतिक क्रिया-कलाप का साकार रूप है। कथनीय है कि मैकडोनाल्ड में बिल का भुगतान क्रेडिट कार्ड से होता है जिसका कार्यान्वयन बैंकों द्वारा सम्पादित किया जाता है। दुनियाँ में कार्ड के प्रचलन की परम्परा अमेरिकी सामाजिक पर्यावरण का उत्पाद है। अमेरिकीय सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा विश्व के सभी देशों में अनुकरण का विषय बन बैठी है। यह सब शायद उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक सशक्तता के परिणाम हैं। विकासशील देशों के लिए अमेरिकीकरण एक सशक्त प्रक्रिया है जो वस्तुतः वैश्वीकरण की प्रक्रिया है। कथ्य है कि वैश्वीकरण के शुरूआती दौर में ग्लोबलाइजेशन को अमेरिकीकरण का पर्याय बताने में कोई संकोच नहीं किया गया था। अमेरिका के वर्चस्व को मान्यता देते हुए 'ग्लोबलाइजेशन' की स्पेलिंग में से एस की जगह जेड का प्रयोग आज भी आम है। पर कुछ विश्लेषकों को लगता है कि केन्द्र होते हुए भी अमेरिका आज वैश्वीकरण का वैसा निर्विवाद केन्द्र नहीं है जैसा कभी उन्नीसवीं सदी में हुआ करता था। फ्रैडरिक जेमसन के दो-टूक कथन की रोशनी में देखें तो क्या वैश्वीकरण एक ऐसी पश्चिम-केन्द्रीयता का नाम नहीं लगता जो यू.एस. को यूनीवर्सल या सार्वभौम का पर्याय मानकर चलती है? ...इसके कारण केवल लोकतंत्र ही दोबारा परिभाषित नहीं हो रहा है, संस्कृति और यहाँ तक की नागरिकता का विचार भी दोबारा गढ़ा जा रहा है। जो बहस हो रही है वह दो खानों में बँटी हुई है। एक तरफ अमेरिकीकरण का खाँटी डर है और दूसरी तरफ वैश्वीकरण को एक मुलायम सिद्धान्त के रूप में पेश करने वाला रवैया है जो विकास और उसके टिकाऊपन जैसे परस्पर विरोधी विचारों को जोड़ने वाला सूत्र बन जाता है। विज्ञापन और कामनाओं का सौन्दर्यमूलक संसार रचकर चेतना के ऊपर हावी हो जाता है और बाजार के जरिये हर चीज की कीमत तय करके उसे मुनाफे का स्रोत बना देता है। इस तरीके से संस्कृति और अर्थतन्त्र के बीच वैश्वीकरण एक अभंग जाल की तरह काम करता है। सबसे बुरी बात तो यह है कि वैश्वीकृत होते ही असहमति भी स्वयं में एक सांस्कृतिक बनने के खतरे से ग्रस्त हो जाती है। एक व्यक्ति की असहमति दूसरे की पी-एच.डी. बन जाती है। आज संस्कृति का फैलाव या विस्तार केवल नृत्य या संगीत के जरिये नहीं, बल्कि गेट, यू.एन.डी.पी. और डब्ल्यू.टी.ओ., इ.यू.एसियन, नाटो, ओ. पी.इ.सी., यू.एन. और आई.एम.एफ. जैसे अभिकरणों (एजेंसियों) के नीरस नेटवर्क के जरिये हो रहा है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने सम्पूर्ण विश्व की सामाजिक- सांस्कृतिक व्यवस्था को प्रभावित किया है। आज की लोक-चेतना वैश्वीकरण की भावना से अनुप्राणित है। परिणामस्वरूप आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में न केवल सक्रियता है, अपितु इन सबमें गहन अन्तर्सम्बन्ध विद्यमान हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण ने भौतिक विनिमयों को स्थानीयकृत, राजनीतिक विनिमयों को अन्तर्राष्ट्रीयकृत तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विनिमयों को वैश्वीकृत कर दिया है।

वैश्वीकरण बनाम स्थानीय संस्कृति : वैश्वीकरण को सामाजिक सम्बन्धों के विश्वव्यापी तीब्रीकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दूर-दूर स्थित स्थानीयताओं को आपस में जोड़ देता है। यह सूत्र कुछ इस तरह से काम करता है कि स्थानीयताओं के दायरे में होने वाली घटनाओं की शक्ल-सूरत उनसे बहुत दूर चल रहे घटनाक्रम के आधार पर बनती है और ऐसा ही असर स्थानीयताओं का घटनाक्रम स्वयं को प्रभावित कर रही सुदूर घटनाओं पर डालता है। अध्येताओं के एक वर्ग का मानना है कि वैश्वीकरण का मुख्य रूझान न तो स्थानीय संस्कृतियों से प्रभावित होता है और न ही स्थानीय संस्कृतियों से सम्बद्ध लोगों की रोजमर्रा की जिन्दगी से सम्बन्धित समस्याओं को समझने एवं उसके समाधान करने से सम्बद्ध होता है बल्कि इसकी मुख्य प्रवृत्ति अपने वैचारिक सन्देशों द्वारा लोगों पर अपना मत आरोपित कर उन्हें विदेशी सांस्कृतिक मूल्यों तथा विश्व को स्वीकार करना है।

अस्तु, वैश्वीकरण का प्रमुख उद्देश्य अपने आदर्शनियमों एवं परिनियमों के आधार पर एक सार्वभौमिक संस्कृति की रचना करना है। एतदर्थ वह स्थानीय संस्कृतियों की विभिन्नताओं को समरूपीकरण के ढाँचे में रूपान्तरित करने का प्रयास करता है। परिणामतः वैश्वीकरण के उपकरणों के सन्निवेश से स्थानीय संस्कृति का स्वरूप अपने-आप बदलने लगता है। इस बदलाव में ही सार्वभौमिक संस्कृति के नकाब से स्थानीय संस्कृतियों को ढँकने का प्रयास किया जाता है। किन्तु, स्थानीय संस्कृति की अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं। अस्तु, जब कोई स्थानीय संस्कृति अपनी निजी विशेषताओं से पृथक् होती है तब उसके पूर्ववर्ती स्वरूप का क्षरण होना स्वाभाविक है और निश्चित रूप से वह पर रूप धारण कर लेती है। वैश्विक संस्कृति को ग्रहण करते ही उनकी अपनी स्थानीय संस्कृति के मूल्य, आदर्श, विश्वास, विचार, भाषा, संगीत, कला, विधि, नैतिक मानदण्ड, परम्परा, आदत इत्यादि पर ग्रहण लग जाता है और उनपर सार्वभौमिक संस्कृति का रंग चढ़ जाता है। अस्तु, सर्वभौमिक संस्कृति को प्रधानता दी जाने लगती है।

सार्वभौमिक संस्कृति के प्रभाव में आकर स्थानीय संस्कृति की एकांगिकता में दरारें पड़ने लगती हैं और वह बदलाव की प्रक्रिया से गुजरने लगती है। यह बदलाव वैश्विक परिस्थितियों की अनिवार्यता है। स्थानीय संस्कृति लुप्त होने लगती है।

वैश्वीकरण तथा स्थानीय संस्कृति के बारे में कुछ और चर्चा करने की अपेक्षा यहाँ संस्कृति और स्थानीय संस्कृति में अन्तर स्पष्ट करना अत्यावश्यक जान पड़ता है। संस्कृति मानव समाज का अविभाज्य अंग है। यह किसी भी सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य तत्व है। समाजशास्त्रीय अर्थ में संस्कृति उन सभी सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक सामूहिक पद है जो किसी सामाजिक व्यवस्था में सृजित, अर्जित तथा हस्तान्तरित किये जाते हैं। इस अर्थ में संस्कृति ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, विधि और प्रथा का सीखा हुआ मिश्रण व्यवहार है। अस्तु, प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है, जिसकी अपनी निजी विशेषताएँ होती है, जैसे- हिन्दू समाज की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। कहा जाता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलतः वह वैसा ही है। भारत ही एक ऐसा देश है, जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा है। भारत का अतीत काल भी जीवित था, आज भी जीवित है और कदाचित, आगे भी जीवित रहेगा। किन्तु, किसी समाज विशेष की संस्कृति में क्षेत्रीय विविधता पाई जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय संस्कृति में अनेक धाराएँ देखने को मिलती हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में अवस्थित हैं। इन सांस्कृतिक क्षेत्रों के विश्वास, विचार, दृष्टिकोण एवं परम्पराएँ भिन्न-भिन्न हैं। इन्हें हम उप-संस्कृति कह सकते हैं। कुछ अध्येताओं ने इन क्षेत्रीय संस्कृतियों को स्थानीय संस्कृति कहा है। स्थानीय संस्कृति शब्द का प्रयोग तुलनात्मक अर्थ में हुआ है। जब हम किसी देश की संस्कृति की बात करते हैं तब दूसरे देशों में लोगों के लिए यह एक राष्ट्रीय संस्कृति है। किन्तु, सन्दर्भ किसी देश के भीतर अवस्थित सांस्कृतिक क्षेत्रों से है तब प्रसंग बदल जाता है। उदाहरणस्वरूप, अमेरिका और ब्रिटिशवासियों के लिए भारतीय संस्कृति भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। परन्तु भारतवासियों के लिए स्थानीय संस्कृति से तात्पर्य बिहार, उड़ीसा, यू.पी., राजस्थान, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु या केरल में पाये जाने वाले स्थानीय सांस्कृतिक प्रतिमानों से है। इस प्रसंग में हम जनजातीय समुदायों की स्थानीय संस्कृतियों की भी चर्चा कर सकते हैं।

जैसे-जैसे वैश्वीकरण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, यह सम्पूर्ण संसार को एक 'विश्व ग्राम' में परिवर्तित कर रहा है। आज हम 'विश्व ग्राम' की देहली पर खड़े हैं जैसा कि मैक्लुहन का कहना है। हमारा प्रतिदिन का जीवन संसार सभी कोनों के उत्पादों से नियन्त्रित होता है। अधिकाधिक लोग वैश्विक धारा के अन्तर्गत प्रवाहमान हैं। अस्तु, आज के वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक मिलन का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है। अब दुनियाँ भर की संस्कृतियाँ एकस्थ होती जा रही हैं। लोगों की जीवन-शैली एक जैसी होती जा रही है। यही कारण है कि लोग राष्ट्र-राज्यों की सीमाओं को पार कर एक जैसी संस्कृति को अपनाने लगे हैं। विभिन्न देशों में उपभोग के प्रकारों में व्यापक बदलाव दिखलाई पड़ रहा है। परिधान, खान-पान, कला के स्वरूपों, सांस्कृतिक सम्पादनों तथा क्षेत्रीय सांस्कृतिक विशिष्टताओं से परे अन्य सांस्कृतिक स्वरूप धारण करती जा रही हैं। उपभोग की वस्तुएँ भी एक समान होती जा रही हैं, जैसे- टूथब्रश, टूथपेस्ट, ब्रेड, पीजा, चामिन, ड्राई फूड, पैक्ड या बन्द खाद्य पदार्थ, जीन्स-पैन्ट, जीन्स शर्ट, पैनट्रि (रसोईघर) इत्यादि बोलने के तौर-तरीके, जैसे ममा, डैड, पापा, मम्मी भी समान होते जा रहे हैं। इस प्रकार एक समान एक वैश्विक संस्कृति का जन्म हो रहा है। इस वैश्विक संस्कृति के सृजनहार पूँजीवादी व्यापारी हैं। उनका लक्ष्य दुनियाँ भर की संस्कृतियों को एक समान संस्कृति में अपने नियमों एवं परिनियमों के परिधि में रूपान्तरण करना है। अस्तु, पूँजीवादी व्यापारियों के परिणामस्वरूप दुनियाँ में एक नवीन सामाजिक- सांस्कृतिक क्रान्ति आयी है। इस क्रान्ति से दुनियाँ भर की संस्कृतियाँ एकसमान होती जा रही है, क्योंकि समरूपीकरण वैश्वीकरण की पूर्व आवश्यकता है। यह समानता और समरूपता के विचारों पर आधारित है। किन्तु, दूसरी ओर, संस्कृति का मूलतत्त्व अद्वितीयता या अनोखापन है। एक सांस्कृतिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता समरूपता नहीं बल्कि विविधता है। अस्तु, समकालीन वैश्वीकरण सिद्धान्त की मान्यता है कि यह पूर्णतः दो परस्पर-विरोधी प्रक्रियाओं-समरूपीकरण और विभेदीकरण- द्वारा निर्मित होती है। इन प्रक्रियाओं के दौरान स्थानीयवाद और वैश्विकवाद दोनों में निरन्तर अन्तर्क्रिया होती रहती है तथा वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं के प्रति विरोध हेतु सशक्त आन्दोलन होते हैं।

ऐसे आन्दोलन अक्सर बहुसांस्कृतिक समाजों में होते हैं। भारत बहुसांस्कृतिक व्यवस्था वाले समाज का अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण है। चूँकि वैश्वीकरण बहुल सांस्कृतिक विशिष्टताओं को मिश्रित करने का प्रयास करता है, उनको समरूप बनाने का प्रयत्न करता है, अतः वह बहुसांस्कृतिक विशिष्टताओं को

नकारने का प्रयास करता है। वैश्विक संस्कृति का सार्वभौमिक लक्ष्य सांस्कृतिक भिन्नताओं और विशिष्टताओं को खण्डित करना है, उनको अस्वीकार करना है। चूँकि वैश्वीकरण सम्पूर्ण विश्व को एक ही व्यवस्था मानता है, अतः इसका हर प्रयास एक वैश्विक संस्कृति की सृष्टि करने से सम्बन्धित होता है। एतदर्थ वैश्विक संस्कृति की स्थापना के लिए वह स्थानीय संस्कृति तथा उपसंस्कृति के लोप को तर्कसंगत सिद्ध करता है।

इस प्रकार वैश्वीकरण के अन्तर्गत राष्ट्रों की सांस्कृतिक स्वायत्तता खतरे में है। सामाजिक स्तर पर परम्परागत सांस्कृतिक संरचनाओं एवं संस्थाओं का विघटन हो रहा है। पश्चिमी देशों द्वारा निर्मित संचार सामग्री आज पूरी दुनियाँ के संचार चैनलों में प्रभुत्व जमाए बैठी है। हमारे अपने देश में भी टेलीविजन नेटवर्कों ने विदेशों में तैयार कार्यक्रमों का प्रसारण प्रारम्भ कर दिया है। ये कार्यक्रम स्थानीय संस्कृति को नष्ट कर रहे हैं। ये अपने वैचारिक संदशों द्वारा लोगों पर अपना मत आरोपित कर उन्हें विदेशी मूल्यों तथा विश्वासों को स्वीकार करने के सन्दर्भ में एक बेहतर रंचमंच तैयार करने में लगे हैं। सर्वदेशीय संस्कृति के नाम पर छिछला उपभोक्ता पैकेज तीसरी दुनियाँ के देशों में परोसा जा रहा है। इस संस्कृति के प्रभाव से सम्बन्धों में अस्तित्व तथा संकीर्णता आई है और वे केवल आर्थिक सन्तुष्टि के लिए रह गये हैं। सहयोग, सहभागिता तथा समन्वय जैसे मूल्यों में गिरावट आई है और समाज में तनाव बढ़ा है। वस्तुतः संस्कृति की यह अप्रतिष्ठा वैश्वीकरण की प्रघटना का एक गम्भीर नकारात्मक पहलू है।

चूँकि वैश्वीकरण के अन्तर्गत लोगों का जीवन तथा समुदायों का भाग्य दूर देशों की घटनाओं पर अधिक निर्भर हो जाता है, अतः राष्ट्रीय तथा स्थानीय सीमाएँ कमजोर पड़ जाती हैं। क्रिया-कलापों का पारमहाद्वीपीय तथा पारराष्ट्रीय जाल बिछ जाता है। राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय संस्कृति का स्वरूप पारराष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लेता है। अस्तु, वैश्वीकरण ने हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को संकट में डाल दिया है।

वैश्वीकरण की प्रघटना ने स्थानीय एवं लघु सांस्कृतिक पहचानों के लिए वास्तविक और अनुभवाश्रित भय बढ़ा दिया है। बाजार के महत्व की वृद्धि ने सांस्कृतिक प्रतीकों को पदार्थों के रूप में रूपान्तरित कर दिया है। संस्कृति को बाजार में बिक्री के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है। संस्कृति का बाजारीकरण स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पर्यटन का उद्योग के रूप में उभरना, पर्यटन स्थलों की बढ़ती संख्या और सांस्कृतिक वस्तुओं का विपणन - ये सभी मुद्दे स्थानीय समुदायों को प्रभावित कर रहे हैं। परिणामतः सांस्कृतिक वस्तुओं का अर्थबोध लुप्त होता जा रहा है। लोक संस्कृति का क्षरण इसका स्वाभाविक परिणाम है। इस प्रकार वैश्वीकरण संस्कृति का विखण्डन करता है क्योंकि इसने सांस्कृतिक परम्परा के सारवान मूल्यों को संकटग्रस्त कर दिया है। उदाहरणस्वरूप, अनेक स्वदेशी शिल्पों, साहित्यक परम्पराओं और ज्ञान-व्यवस्थाओं को वैश्वीकरण से खतरा उत्पन्न हो गया है। यद्यपि, यह कथ्य है कि आधुनिकता ने वैश्वीकरण से पूर्व-परम्परागत सांस्कृतिक स्वरूपों और उन पर आधारित व्यवसायों में अपनी घुसपैठ बना ली थी। तथापि, अब वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप परिवर्तन का अनुपात और उसकी गहनता अत्यधिक तीव्र है। इस सन्दर्भ में १६ नवम्बर, १६६६ को 'इवेलुएशन ऐण्ड इन्टरेक्शन ऑफ टेक्नॉलाजी, इकॉनोमी, पॉलिटी ऐण्ड सोसाइटी' विषय पर हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने वैश्वीकरण की विघटनात्मक प्रवृत्ति के खिलाफ जो सही चेतावनी दी थी, यहाँ हम उद्धृत करना चाहेंगे :

"**वैश्वीकरण** की वर्तमान प्रवृत्ति बुनियादी पहचानों और समूहों की पहचान के खिलाफ है और अब तो राष्ट्रों को भी वैश्वीकृत विश्व के लिए पुराने जमाने की चीज और इससे मेल न खाने वाली व्यवस्था बताया जा रहा है। मुझे नहीं लगता कि यह सही दिशा में की जा रही प्रगति हैं। मानव सभ्यता काफी कुछ राष्ट्र के रूप में हुए सामूहिक अनुभवों से जुड़ा है। ऐसे में यदि वैश्वीकरण राष्ट्रवाद को पीछे धकेलने वाली चीज बन जाता है तो मनुष्य जाति द्वारा किया गया अधिकांश मूल्यवान अनुभव इस वैश्वीकरण द्वारा यूँ ही पीछे छोड़ दिया जायेगा। इसलिए जरूरी है कि जब पूरी दुनियाँ एक विश्व की तरह की तरह बढ़ रही है और हम निश्चित रूप से वैश्विक होते जा रहे हैं तब विभिन्न समुदायों, राष्ट्रों और समूहों द्वारा किये गये अनुभवों को संभाल कर रखा जाय और वैश्वीकरण के नाम पर नष्ट न किया जाय।"

भारत में स्थानीय संस्कृति एवं क्षेत्रीय संस्कृति में अन्तर क्या है?

संस्कृति मानव समाज का अविभाज्य अंग है। यह किसी सामाजिक व्यवस्था का एक मुख्य तत्व है। अस्तु, प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है जो उसकी निजी विशिष्टताओं के अनुप्राणित और आप्लावित होती है। संस्कृति को परिभाषित करते हुए टायलर का कहना है कि "संस्कृति वह जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएँ, नैतिकता, विधि, प्रथाएँ और वे सभी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ सम्मिलित की जाती हैं जिन्हें

समाज के एक सदस्य के रूप में मानव अर्जित करता है।''[७] टायलर की यह परिभाषा आज भी अपनी अर्थवत्ता बनाए हुए हैं।

संस्कृति हमारे रहन-सहन तथा सोचने-समझने की शैली में हमारे प्रतिदिन की बात-चीत में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद में हमारे स्वभाव की अभिव्यक्ति है। अस्तु, संस्कृति उन सभी व्यवहार प्रतिमानों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक अर्थपूर्ण सामूहिक शब्द है जो सामाजिक रूप में अर्जित एवं सामाजिक रूप से ही हस्तान्तरित किये जाते हैं। संस्कृति का संचरण औपचारिक या अनौपचारिक सीखने अथवा प्रशिक्षण की प्रक्रियाओं द्वारा होता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से, स्थानीय संस्कृति और क्षेत्रीय संस्कृति में अन्तर है। स्थानीय संस्कृति का एक गाँव अथवा बस्ती (खानाबदोश समूहों के अपवाद सहित) के विशिष्ट सन्दर्भ में अस्तित्व होता है। इसके सांस्कृतिक स्थान की परिभाषा पवित्र भूगोल, मन्दिरों, तालाबों, देवताओं एवं आत्माओं के स्थानों, टोटमवादी पौधों एवं पशुओं के वितरण तथा दफन या दाह-संस्कार स्थानों आदि के द्वारा की जाती है। भौतिक एवं पारिस्थितिकी परिदृश्य इतिहास, कथा एवं मिथक की स्मृतियों से सम्पन्न होता है। अनेक कर्मकाण्ड एवं संस्कार स्थानीय स्थलों एवं पहलुओं से सम्बन्धित होते हैं जिनके प्रति वहाँ के लोगों में भावात्मक एवं सांस्कृतिक लगाव होता है। लोक-संगीत और लोक-नृत्य भी इन स्थानों एवं वस्तुओं से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित होते हैं। ये कर्मकाण्ड, धर्मानुष्ठान तथा संस्कार स्थानीय भाषा के माध्यम से सम्पादित किये जाते हैं। कला और शिल्प की भी स्थानीय परम्परा होती है। कला और शिल्प की स्थानीय शैली भी होती है जिसकी उपलब्धि के लिए वहाँ की जातियों, जनजातियों या समुदायों में गर्वोक्ति की भावना पायी जाती है। स्थानीय मन्दिरों में जो कला और कारीगरी है, उसको देखकर मन किसी सुदूर दिशा में उड़ने लगता है। ये प्रयत्न क्षेत्रीय प्रतियोगिता, आकांक्षा एवं सर्वोत्कृष्टता के लिए विषय बन जाते हैं। ऐसे स्थानीय सांस्कृतिक पहचान क्षेत्रीय या राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान से पूर्णतया अलग-अलग भी नहीं होते।

स्थानीय संस्कृति का सम्यक् अवबोध भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण भारत के लोग से सम्बन्धित प्रतिवेदन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रतिवेदन के अनुसार स्थानीय संस्कृतियों को समुदायों के राज्यानुसार वितरण के तहत देखा जा सकता है। इस सर्वेक्षण में समुदायों को नृजाति वर्णन के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे सजातीय विवाह, व्यवसाय और प्रत्यक्षीकरण द्वारा चिन्हित किया गया है।[८] सम्प्रति भारत में ४,६३५ समुदाय हैं एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से विविध स्तरों को स्पष्ट करते हैं। प्रथमतः जाति एवं अल्पसंख्यक वर्ग के आधार पर समुदायों की श्रेणियाँ बहुत अधिक हैं और द्वितीयतः भाषा एवं सांस्कृतिक वर्गों के आधार पर अपने समुदायों को सूचित करने वाले लोग हैं, जैसे- असमवासी, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी एवं तमिल आदि। कुछ समुदाय अपने ऐतिहासिक उद्भव के आधार पर अपना परिचय देते हैं, जैसे- आदिधर्म, आदिआन्ध्र, आदिकर्नाटक इत्यादि। किन्तु ये समुदाय प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत ही आते हैं जो वस्तुतः अधिक प्रभावी हैं। आन्ध्रप्रदेश एवं तमिलनाडु में सर्वाधिक ३५० से अधिक समुदाय हैं। वे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा एवं गुजरात में पाये जाने वाले २५० से ३५० समुदायों से भिन्न हैं। पश्चिमी बंगाल, राजस्थान एवं केरल में पाये जाने वाले समुदायों का विस्तार १५० से २५० तक है। अरूणाचल प्रदेश, असम, त्रिपुरा, जम्मू एवं कशमीर, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा एवं पंजाब में इन समुदायों का विस्तार ५० से १५० तक है। नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, सिक्किम, गोवा, चण्डीगढ़ एवं खाड़ी द्वीपों में समुदाय की संख्या ५० से कम है।[९]

समुदायों के घनत्व-प्रतिमानों एवं छितराव के सर्वेक्षण परिणामों से स्थानीय संस्कृतियों एवं उनके क्षेत्रीय विभेदीकरण के बाहुल्य पर प्रकाश पड़ता है। इससे स्पष्ट होता है कि समुदायों को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है : स्थानीय अथवा क्षेत्रीय (राज्य की सीमा के अन्तर्गत विद्यमान यू.टी.), अन्तर-क्षेत्रीय (निकटवर्ती राज्य सीमाओं के पार), तथा राष्ट्रीय (अर्थात् देश का विशाल भाग)। पोल सर्वेक्षण द्वारा संग्रहीत आँकड़ों के अनुसार २,७६५ अर्थात् ७१.७७ प्रतिशत समुदायों ने स्वयं अपने को स्थानीय स्तर (राज्य के भीतर यू.टी.) के रूप में स्थापित किया है, जबकि २४.२६ प्रतिशत समुदायों ने अपने को निकटवर्ती क्षेत्रों के पार स्थापित किया है, तथा शेष ३.६७ प्रतिशत समुदाय देश के विशाल भाग में फैले हुए हैं।[१०] सम्पूर्ण ४,६३५ समुदायों में से ७६६ समुदाय देश के विशाल भाग में वितरित हैं। एक सौ से अधिक समुदायों का छितराव अन्तर्राष्ट्रीय स्तरीय है और उनमें से अधिकांश मिजोरम, मेघालय, सिक्किम एवं त्रिपुरा से सम्बन्धित हैं।

पोल सर्वेक्षण की उपलब्धियों से स्पष्ट होता है कि भारत एक बहुधार्मिक समाज है। सर्वेक्षण ने विभिन्न धर्मों एवं समुदायों के बीच के सम्बन्धों एवं उनके सांस्कृतिक विशेषताओं को भी अवलोकित करने का प्रयास किया है। भारत में सभी धार्मिक

समूहों के बहुल समुदाय हैं। मुसलमानों के ५८४, ईसाइयों के ३३६, सिक्खों के १३०, जैनियों के १००, बौद्धों के ६३, यहूदियों के ७, पारसियों के ३ एवं जनजातियों के ४११ समुदाय हैं। इन विभिन्न धार्मिक समुदायों का विखराव भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में है। प्रत्येक धर्म की अपनी स्थानीय सांस्कृति शैली, आदर्शात्मक व्यवहार एवं परम्पराएँ हैं। तथापि, इन विभिन्न धर्मों के अन्तर्गत पाये जाने वाले विभिन्न समुदायों में अन्तर्सामुदायिक तथा अन्तधार्मिक सांस्कृतिक सम्बन्ध पाये जाते हैं।

भारत के स्वरूप को निर्धारित करने में भाषा की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका न केवल क्षेत्रीय एवं स्थानीय सांस्कृतिक पहचानों के सन्दर्भ में है, बल्कि इसकी आर्थिक एवं राजनीतिक आकांक्षाओं को स्वरूप प्रदान करने में भी है। भारत के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समुदायों द्वारा ३२५ भाषाएँ बोली जाती हैं। किन्तु, ३३ भाषाएँ प्रमुख हैं क्योंकि वे ६,४३५ समुदायों में से ३,२६३ समुदायों द्वारा बोली जाती हैं। ये भाषाएँ जनजातियों एवं अनुसूचित जातियों के लिए भी सामान्य हैं। भारत में १८ भाषाओं को संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों की संख्या ६१ है। द्विभाषिक की दृष्टि से लोगों का प्रतिशत ६४. २ है। भारत के संविधान में ५८.६१ प्रतिशत समुदाय अब f} Hkk'kh gS[9]

उपर्युक्त आँकड़े यह उद्घाटित करते हैं कि भारत सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में एक बहुसामुदायिक, बहुधार्मिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज है। इसकी संरचना कुछ इस प्रकार है कि यह विविधता सम्पूर्ण देश को एक-दूसरे से राष्ट्रीय डोरी से बाँधती है। इसे ही हम भारतीय विविधता में एकता कहते हैं। अस्तु, जब हम वैश्वीकरण के प्रभाव को भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में देखते हैं तब हमारा ध्यान बरबस इस बहुलवादी संस्कृति की ओर ही जाता है। यही हमारी स्थानीय और क्षेत्रीय संस्कृति की पहचान है।

क्षेत्रीय संस्कृति की आधारभूमि स्थानीय संस्कृतियों के अवयव ही हैं जो वस्तुतः भारतीय संस्कृति के ही सूचक हैं। ऐतिहासिक रूप से, भाषा भारत में एक महत्वपूर्ण कारक है जिसके आधार पर क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान की रचना होती है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् शीघ्र ही भारत में लोगों की क्षेत्रीय सांस्कृतिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए राज्यों को पुनर्गठित किया गया। भारत के राज्यों की वर्तमान संरचना भारत के भाषायी नक्शे के समान है। भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा एक ऐसी क्रमागत धारा है जो वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक होती हुई अब तक यहाँ आ पहुँची है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा स्थानीय एवं क्षेत्रीय संस्कृतियों से अलग नहीं है बल्कि जुड़ी हुई है। इसलिए राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा स्थानीय एवं क्षेत्रीय संस्कृतियों से जुड़कर भी समकालीन परिवेश में अपना वैशिष्ट्य प्रकट करती है।

ग्लोक्लाइजेशन : स्थानीयकरण एवं वैश्विकरण के बीच समाविष्ट तनाव का क्षयन करने के लिए समाजशास्त्रियों ने एक नवीन पारिभाषिक शब्दावली की रचना की है। इस नवीन पारिभाषिक शब्दावली का नाम 'ग्लोक्लाइजेशन' के रूप में अभिहित किया गया है। समाजशास्त्र में यह पद स्थानीय एवं वैश्विक संस्कृतियों के बीच अन्तर्निहित तनाव को अभिव्यक्त करता है। एक प्रक्रिया के रूप में यह पद स्थानीयता को वैश्वीकरण के रूप में एवं वैश्विकता को स्थानीयकरण के रूप में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार ग्लोक्लाइजेशन को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह (ग्लोक्लाइजेशन) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक ओर जहाँ स्थानीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति के साथ मिश्रित किया जाता है, वहाँ दूसरी ओर वैश्विक संस्कृति को स्थानीय संस्कृति के साथ भी संयुक्त किया जाता है।

यह सन्देहरहित सत्य है कि वैश्विक संस्कृति पश्चिमी संस्कृति है और अमेरिकीय संस्कृति को सार्वभौमिकता का पर्याय मानकर चलती है। किन्तु, आज वैश्वीकरण ने विश्व भर की संस्कृतियों को सहसम्मिलित करने का प्रयास किया है। ऐसी स्थिति में वैश्वीय संस्कृति जब स्थानीय संस्कृति के सम्पर्क में आती है तब वैश्वीय संस्कृति को स्थानीय संस्कृति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में स्थानीय संस्कृति की विशिष्टताओं के साथ अनुकूलन करना अत्यावश्यक है। यह अनुकूलन न तो स्वतः प्रवर्तित होता है और न ही वैश्वीकरण के व्यापारिक हितों से इसका पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकता है। अस्तु, यह एक ऐसी रणनीति है जो बहुधा विदेशी कम्पनियों या फर्मों द्वारा अपने बाजार के उत्कर्ष के लिए स्थानीय संस्कृति के साथ व्यवहार में लायी जाती है। उदाहरणस्वरूप, भारत में हम यह देखते हैं कि स्टार, एम.टी.बी., चैनल वी और कार्टून नेटवर्क जैसे सभी विदेशी टेलीविजन चैनल भारतीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि मैक्डॉनाल्ड्स भी भारत में अपने निरामिष और चिकन उत्पाद ही बेचता है, गोमांस के उत्पाद नहीं, जो विदेशों में बहुत लोकप्रिय है। धार्मिक पर्वों पर जैसे नवरात्रि पर्व पर तो मैक्डॉनाल्डस विशुद्ध निरामिष हो जाता है। संगीत के क्षेत्र में 'भाँगड़ा पॉप', 'यूजन म्यूजिक' यहाँ तक कि रीमिक्स गीतों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखा जा सकता है।

ऐसा न करने से वैश्वीकरण का प्रक्रिया साँसत में पड़ सकती है। अस्तु, वैश्वीकरण के पैराकारों ने विश्व अर्थव्यवस्था की

चालक शक्ति के रूप में भूमण्डलीकरण की दावें की वैधता पर गौर करते हुए उसकी परम्परा में एक नया मोड़ लाया है। यह नया मोड़ संस्कृति के स्थानीयकरण की ओर अभिमुख है। अब वैश्वीकरण की प्रक्रिया में दो स्वर सुनायी पड़ते हैं - स्थानीय संस्कृति को वैश्विक संस्कृति में मिश्रित करना और वैश्विक संस्कृति को स्थानीय संस्कृति में सहसम्मिलित करना। वैश्वीकरण के पैरोकारों के इस प्रयास को हम वैश्वीकरण कह सकते हैं।

वैश्वीकरण की दृष्टि मूलतः बहुल सांस्कृतिक दृष्टि है, और इस कारण वैश्विक संस्कृति बहुसांस्कृतिक संस्कृति है। वैश्विक संस्कृति में एक ओर जहाँ तिजारत है, अंग्रेजी भाषा-नीति है, गाय और सुअर का मांस व मदिरा है, लिबास है, एकेश्वरवाद है, विज्ञान है, सफाई है, उदार दृष्टि है, हैट है, टाई है, पैन्ट है, पीजा है, अण्डा है, कोकाकोला है तो वहाँ दूसरी ओर, इसी संस्कृति में गाँधी-टोपी, धोती-कुर्ता, पायजामा, पगड़ी और साफा, ठण्डई, पकौड़े, दहीबड़ा एवं पान भी हैं। यह वैश्विक अंश स्थानीय संस्कृतियों के संगम का विलक्षण व अनुपम दृष्टान्त है जो बहुसांस्कृतिकता का संकेतक नहीं तो और क्या है?

इसका तात्पर्य यह है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया अस्थानीयकरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि इसके अन्तर्गत स्थानीय सांस्कृतिक विशिष्टताओं को वैश्विक स्तर पर भी देखा जाता है। वैश्विक संस्कृति स्थानीय संस्कृति की उपेक्षा कर जीवित नहीं रह सकती। अस्तु, वैश्वीकरण का उद्देश्य विश्वायन का स्थानीय भूमिकरण करना है। एक बात और है कि जब से संसार में वैश्वीकरण और स्थानीकरण को लेकर द्वन्द्व छिड़ी है, तब से हमारी प्रत्येक समस्या के साथ यह प्रश्न भी उपस्थित होने लगा है कि समाधान वैश्वीकरण के लिए खोजा जाय या स्थानीयकरण के लिए। वैश्वीकरण के आरम्भिक काल में, प्राय, प्रत्येक देश के लोग वैश्वीकरण को मानव जीवन का सबसे लक्ष्य मानते थे। किन्तु, अब लोगों को यह आभास हो गया है कि वैश्वीकरण की कल्पना स्थानीय संस्कृति के बिना निरे स्वार्थ की ही बात नहीं है बल्कि हास्यास्पद और निरी मूर्खता है। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण के सौदागार स्थानीयकरण को प्रधानता देने लगे हैं। अस्तु, वैश्वीकरण का सम्बन्ध पुनर्स्थानीयकरण से है। वैश्वीकरण और स्थानीयकरण से जिस नव्य चीज की सृष्टि होती है वह है स्थानीय संस्कृति को बहुसांस्कृतिक बनाना।

वैश्विकता और स्थानीयता की अन्तर्क्रिया में जहाँ एक ओर वैश्विकता से स्थानीयता सार्वभौमिकता के गुणों से समृद्ध होती है, वहाँ दूसरी ओर स्थानीयता की विशिष्टताओं से वैश्विकता भी सार्वभौमिकता की राह पकड़ने में नैतिक रूप से शक्तिशाली होती है। अस्तु, यह सुस्पष्ट होना चाहिए कि क्या वैश्वीकरण की भेद-नीति अनिवार्य रूप से स्थानीयता की विशिष्टताओं को निगल जाएगी? हमें नहीं लगता कि स्थानीयता विशेषकर हमारे देश की स्थानीयता टेलीविजन चैनलों या बाजार पर छा जाने वाले हेमवर्गरों और कोकाकोला के दबाव में ध्वस्त हो जाएगी। अगर कोई स्थानीयता इतनी कमजोर है कि ऐसे मामूली प्रभाव नहीं झेल सकती तो उसके बने रहने की भी कोई तुक नहीं होनी चाहिए। हमारी स्थानीयता, भारतीय स्थानीयता इस तरह के खोखले खतरे से नष्ट होने वाली नहीं है। आज भी इस बात की सम्भावना बलवती है कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कुछ नयी स्थानीय परम्पराएँ ही नहीं बल्कि वैश्विक परम्पराएँ भी निर्मित होंगी। पिपुल ऑफ इण्डिया की रिपोर्ट के अनुसार सम्प्रति हमारे देश में ९१ सांस्कृतिक क्षेत्र हैं। वैश्विकता ने इन सभी क्षेत्रों को अपना बाजार बना लिया है। प्रत्येक क्षेत्र की विशिष्टता के अनुरूप यहाँ सांस्कृतिक उत्पाद किया जा रहा है और इसे स्थानीय बाजार में बेंच दिया जाता है। बाजारवाद और स्थानीय सांस्कृतिक उत्पाद एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। हाँ, किन्तु, इस दिशा में तीन संस्कृतियाँ दृष्टिगोचर होती है - एक वैश्वीय संस्कृति, दूसरी राष्ट्रीय संस्कृति और तीसरी स्थानीय संस्कृति। ये तीनों संस्कृतियाँ यद्यपि सापेक्षित होती हैं, तथापि बाजार और मीडिया के सम्पर्क में आने पर कुछ क्षेत्रों में तो इनमें स्वतः अनुकूलन हो जाता है, किन्तु कुछ क्षेत्रों में तनाव की भी सृष्टि हो जाती है। तनाव के कारण कई भू-भाग व क्षेत्रों में सांस्कृतिक वैश्वीकरण के खिलाफ आन्दोलन उठ खड़े होते हैं। इसे हम स्थानीयता द्वारा वैश्विक संस्कृति को चुनौती देना कहते हैं। सौभाग्य से भारत में ऐसे उभरे विवादों से हम अपनी संस्कृति की अक्षुण्यता कायम रखने में सक्षम रहे हैं जिससे हम अपनी संस्कृति की पैठ पर गर्व करते फूले नहीं समाते।

वैश्वीकरण के सन्दर्भ में हम दो संस्कृतियों का उल्लेख कर सकते हैं - एक उपभोग की संस्कृति और दूसरी निगम संस्कृति। यद्यपि वैश्वीकरण के शुरूआती दौरा में हमारे देश में विशेषकर, १६७० के दशक तक उत्पादन करने की दशा में उद्योग नगरों की स्थापना करना हमारा प्रमुख उद्देश्य रहा। किन्तु, अब सांस्कृतिक उपभोग, जैसे फैशन, पर्यटन, कला, संगीत और खाद्य के क्षेत्रों में बढ़ती वृद्धि के परिणामस्वरूप नगरों की वृद्धि को एक स्वरूप या आकार प्रदान कर रहे हैं। यह तथ्य भारत के सभी बड़े नगरों में विशाल विक्री भण्डारों (शॉपिंग माल्स), बहुविधि सिनेमाघरों, मनोरंजन उद्यानों और जलक्रीड़ा स्थलों के विकास में आई तीव्रता से स्पष्ट होता है। अधिक उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि विज्ञापन और सामान्य रूप से जनसम्पर्क के सभी आधुनिक माध्यम एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं

जिसमें पैसा खर्च करना ही महत्वपूर्ण माना जाता है। 'ब्रह्माण्ड सुन्दरी' (मिस युनिवर्स) और 'विश्व सुन्दरी' (मिस वर्ल्ड) जैसी फैशन प्रतियोगिता के समारोह की उत्तरोत्तर सफलताओं के कारण फैशन, सौन्दर्य प्रसाधन एवं स्वास्थ्य उत्पादों से सम्बन्धित उद्योगों की अत्यधिक वृद्धि हुई है। अविवाहित युवा कन्याएँ कटरीना बनने का सपना देख रही हैं तथा अविवाहित युवक सलमान खाँ बनने का सपना देख रहे हैं। "कौन बनेगा महाकरोड़पति" जैसे लोकप्रिय प्रतिस्पर्द्धात्मक कार्यक्रमों से वास्तव में ऐसा प्रतीत होने लगा है कि कुछ ही क्षणों में हमारा भाग्य बदल सकता है।

निगम संस्कृति प्रबन्धन संगठन का एक ऐसा स्वरूप है जिसमें किसी निगम जैसे व्यापारिक फर्मों व कम्पनियों के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से एक अनुपम संगठनात्मक संस्कृति के निर्माण के माध्यम से ऐसे मुख्य आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक नीतियों के सन्दर्भ में निर्णय लिये जाते हैं जिससे उनमें संलग्न कार्यकर्ताओं की सर्जनात्मक शक्ति का उपयोग करते हुए उनकी उत्पादकता और प्रतियोगिता को बढ़ाया जा सके तथा बाजार में उनकी व्यावसायिक साख स्थापित कर उपभोक्ताओं को लुभाकर उन्हें अपना उत्पादित माल बेचकर अधिकाधिक अर्थार्जन करने में कामयाबी हासिल की जा सके। भारत में बहुराष्ट्रीय फर्मों व कम्पनियों के प्रसार और सूचना तकनीकी में आई क्रान्ति के परिणामस्वरूप यहाँ के नगरों में व्यावसायिक निगमों का जाल बिछ गया है। उपभोक्ता संस्कृति का दावा है कि आधुनिक समाज एक ऐसा विशिष्ट समाज है जो उपभोग के चारों ओर लोगों को संगठित कर रहा है। उपभोक्तवादी संस्कृति की वैश्विक संस्कृति को समरूप बनाने में महनीय भूमिका है।

वैश्वीकरण की राह : भारतीय परिप्रेक्ष्य : वैश्वीकरण के क्रम में भारतीय अध्येताओं के भीतर जो भाव उदित हुए हैं उनकी दिशा एक नहीं है। भारतीय अध्येताओं के एक वर्ग का मत है कि भारत सिद्धान्ततः और यथार्थतः एक बहुजातीय, बहुसामाजिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज होने के कारण अगणित विषमताओं से आवृत है, अतएव वैश्वीकरण के गुणों का अनुकरण करके हमें उसको समानतापूर्ण बनाना चाहिए। भारतीय अध्येताओं के दूसरे वर्ग का तर्क है कि समतामूलक समाज की स्थापना के लिए हमें परमुखापेक्षी होने अथवा वैश्वीकरण जैसी विदेशी दृष्टि का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है, अपितु भारत के इतिहास में 'बसुधैव कुटुम्बकम' की बुनियादी प्रवृत्ति से ही हमें हर तरह की प्रेरणा मिल सकती है। इस जमात के अध्येताओं का तर्क है कि 'बसुधैव कुटुम्बकम' की भावना हमारी सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था का अभिन्न अंग रही है। इसी के चलते हमारी संस्कृति सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता शक्ति का स्रोत होने के साथ 'अनेकता में एकता' वाली पहचान परिभाषित करने का स्रोत भी रही है। इसमें वैश्वीकरण की समरूपतावादी दर्शन का तार अनुस्यूत है। भारतीय अध्येताओं का एक तीसरा वर्ग भी है जो वैश्वीकरण की राह पर भारत को ले जाना तो चाहता है, किन्तु, उसमें आवश्यक भारतीय संस्कृति को आत्मसात करके ताकि वैश्वीकरण के रूप में भारतीय संस्कृति का तेज और ओजस्विता मूर्तिमान रहे। अस्तु, तीसरे वर्ग के अध्येता वैश्वीकरण और भारतीय संस्कृति का मिला-जुला रूप कायम रखना चाहते हैं। इनका कहना है कि जिस दिन पश्चिमी वैश्वीकरण भारत राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करेंगे, भूमण्डल का कल्याण उसी दिन होगा और उसी दिन विश्वभर के वैश्वीकरण के सौदागरों के सपने साकार होंगे।

मोटे तौर से वैश्वीकरण पर होने वाली बहस को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक ओर वैश्वीकरण के समर्थक हैं और दूसरी ओर इसके विरोधी। दोनों का अखाड़ा बुनियादी तौर पर अर्थतन्त्र है। इन दोनों के बीच एक ऐसा बिन्दु भी है जहाँ दोनों वर्गों के असन्तुष्ट आपस में मिलते हैं। इस बिन्दु को तीसरा वर्ग कहा जा सकता है। इस वर्ग के अध्येता वैकल्पिक वैश्वीकरण की चर्चा करते हैं। इस सन्दर्भ में व्यापक जनतन्त्र के लिए वैश्विक दृष्टि से पहल करना चाहते हैं। वस्तुतः ये वैश्वीकरण के जनतन्त्रीकरण के लिए राजनीतिक पहल करना चाहते हैं। इस बिन्दु पर संस्कृति और राजनीति के सन्दर्भ में प्रश्न उठाये जाते हैं, किन्तु, इनके ऊपर पर्याप्त गहराई से ध्यानाकर्षित नहीं किया जाता। कुछ प्रभृत विद्वानों का अभिमत है कि भारतीय राष्ट्रीयता का वैश्वीकरण इसी समन्वयात्मक बिन्दु पर सम्पादित किया जा सकता है।

वैश्वीकरण के समर्थकों की मान्यता है कि भूमण्डलीकरण का प्राथमिक उद्देश्य चूँकि सम्पूर्ण मानवजाति का सुधार अथवा रूपान्तरण है और यह सुधार या रूपान्तरण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समरूपीकरण की भूमि पर आधारित है। अतएव सर्वजन या समग्र मानवता की सार्वभौमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह अत्यावश्यक है। इस प्रक्रिया के तहत मनुष्यों की अपनी इच्छाओं व आकांक्षाओं को पूरा करने में आसानी होगी। वैश्वीकरण ने विश्वायन विचारधारा को एक नया मोड़ दिया है। संसार के चिन्तकों को एक नयी उत्तेजना दी है। इस प्रक्रिया ने भूमण्डल पर एक नये मानवतावाद को जन्म दिया है। इसका ध्येय विश्व-जीवन को एक नये साँचे में ढालना, मनुष्य को जीने का एक नया ढंग सिखाना है एवं इस कार्य में आधुनिक विद्वान एवं तकनीकी की बड़ी भूमिका है। विज्ञान एवं

सूचना तकनीकी में क्रान्ति के परिणामस्वरूप संसार सिकुड़कर छोटा हो गया है। एक देश का ज्ञान दूसरे देश के लोगों तक अनायास पहुँच रहा है। विचारों की टकराहट से एक नयी चेतना उत्पन्न हुई है। मनुष्य-जाति एक है, वह एक समान आचरण करती हुई एक ही दिशा की ओर जा रही है। देशों की दीवारें खींचकर हम मनुष्य को मनुष्य से अलग नहीं रख सकते। प्रत्येक देश के मनुष्य की जिज्ञासा इन दीवारों से ऊपर उठकर एक ही दिशा की ओर प्रभावित हो रही है। वैश्वीकरण ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी मनुष्यों की मनोदशाएँ और रीतियाँ अब एक ही मानवचेतना के अंग हैं। मनुष्य का एक दर्शक मनुष्य है। क्षितिज पर वैश्वीकरण उदारीकरण की प्रक्रिया से पहली बार घनिष्ठता से जुड़ा है। एक नये मानवतावादी दर्शन का उदय हो चुका है। इससे वह भेदभाव से ऊपर उठकर समग्र मानवजाति का आलिंगन करेगा। इसने आधुनिकता, आधुनिकीकरण एवं उत्तर-आधुनिकीकरण को न केवल प्रोत्साहित किया है वरन् विस्तार भी दिया है। वैश्वीकरण ने जातियों के ऐतिहासिक अमर सत्य एवं महान वृत्तान्तों के मोह को भंग किया है। अस्तु, समग्र मानवता के लिए इतिहास अब एक सार हो गया है और उदारतावादी जनतन्त्र के साथ ही सामाजिक विकास-क्रम अपने चरम पर पहुँच गया है। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में जो कुछ बाकी बचा है वह भी जल्दी ही पूरा कर लिया जाएगा और सारी दुनियाँ के समाज उदारवादी जनतन्त्र और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को अपने स्थायी बन्दोबस्त के रूप में अपना लेंगे। वैश्वीकरण के समर्थकों का एक महत्वपूर्ण तर्क है कि भूमण्डलीकरण का कोई विकल्प नहीं है। हर राज्य को उसके सामने घुटने टेकने पड़ेंगे। इनकी दृष्टि में वैश्वीकरण के आयाम भारत को एक नये युग में ले जाने वाले वाहक के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

वैश्वीकरण के विरोधी खेमे के अध्येताओं का तर्क भूमण्डलीकरण की डरावनी तस्वीर पेश करता है। इस सन्दर्भ में रजनी कोठारी, धीरूभाई सेठ, रवि सुन्दरम, शिवविश्वनाथन, रविकान्त, आदित्य निगम, अभय कुमार दुबे, गोपाल गुरु, शैल मायाराम, राजेन्द्र रवि, संजय कुमार, डोड्डबेलापुरा रामैया नागराज, शुद्धव्रत सेन गुप्ता, विजय प्रताप, आशीष नन्दी आदि की रचनाओं के अनेक प्रसंग भूमण्डलीकरण के विरोधी अभियानों के लिए प्रेरणा के स्रोत बन गये हैं।

वैश्वीकरण के विरोध में इन विद्वानों के कथनों को शाब्दिक रूप में हम निम्नलिखित रूप में उधृत कर सकते हैं :

(१) ''वैश्वीकरण के फायदे अधिकांशतः अमीरों और साधन सम्पन्नों को ही नसीब हुए हैं।''

(२) ''अभी वैश्वीकरण यह वायदा पूरा करने में बहुत दूर है कि उसके जरिये मानवता को अपना आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। अभी तो वह बाजारों को एक करने वाले और मनुष्यों को बाँटने वाले तंत्र के रूप में उभरा है।''

(३) ''यह अतार्किकता के ऐसे विधानों को स्थापित करने वाले विचार के रूप में सामने आया है जिसमें बाजार की ताकत को अंतिम सत्य मान लिया गया है, जबकि जार्ज सोरोस जैसे भूमण्डलीकरण के पैरोकार स्वयं मानते हैं कि यह एक सन्तुलित वैश्विक वित्तीय प्रणाली स्थापित करने और संचालित करने में विफल हो चुकी है।''

(४) ''गिरिधर दत्तात्रेय देशिंगकर, जो जीवन पर्यन्त वैश्वीकरण पर अमेरिकी वर्चस्व का विरोध करते रहे, का मत है कि दुनियाँ को ढंग से चलाने के लिए एक वैश्वीकृत नजरिया जरूरी है। परन्तु, ये वैश्वीकरण के वर्तमान स्वरूप के अनुदार आलोचक थे। उनका कहना है कि अमेरिका विश्व की एक-ध्रुवीय हालत का फायदा उठा कर वैश्वीकरण की आड़ में विश्व प्रभुत्व और कारपोरेट वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश कर रहा है। उनका यह भी अभिमत है कि उपनिवेशवाद और उसकी मुखालफत के महावृत्तांत ने कई सरलीकृत दावेदारियों को जन्म दिया है जिसके कारण दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ और सभ्यतामूलक रुझानों की भूमिका गौण हो गयी है।''

(५) वैश्वीकरण के ये आलोचक विद्वान मानते हैं कि ''भूमण्डलीकरण के मुख्य रुझान न तो गरीबों की समस्याओं से प्रभावित होते हैं और न ही गरीबों की रोजमर्रा की जिन्दगी को प्रभावित करते हैं। इसका मुख्य सुझाव पूँजीपतियों को और अधिक पूँजीपति बनाना है। वैश्वीकरण पूँजीवाद का समर्थक है न कि गरीबों का।''

(६) ''रजनी कोठारी'' वैश्वीकरण का ताजा वैचारिक इतिहास उकेरते हुए उसे शीतयुद्ध के बाद उभरे एक नये प्रकार के साम्राज्यवाद के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी दृष्टि में यह राज्य प्रणाली के दायरों में सक्रिय रहने वाला पुराने प्रकार का वैश्विक साम्राज्यवाद नहीं है। यह अराजनीतिक, प्रौद्योगिकी आधारित और राष्ट्र-राज्य को कमजोर करने वाला नवपूँजीवादी साम्राज्यवाद हैं। इस नये वैश्वीकरण के कारण राष्ट्र- राज्य अपनी सर्वोच्च हैसियत से वंचित हो जा रहा है। जैसे ही वह अपने देश की जनता के बीच साख खोता है वैसे ही दुनियाँ के पैमाने पर सकारात्मक हस्तक्षेप करने की उसकी क्षमता भी चुक जाती है। कोठारी आरोप लगाते हैं कि तीसरी दुनियाँ के अभिजनों ने अपनी ही जनता से

डरकर वैश्वीकरण की शक्तियों के सामने घुटने टेक दिये हैं। ये शक्तियाँ किसी प्रकार के विकल्प को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। वे असहमति के सभी स्वरों को या तो कुचल देना चाहती हैं या फिर प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लेना चाहती हैं।

(७) "कोठारी के तर्कानुसार वैश्वीक कारपोरेट उद्यम ने सारी दुनियाँ को दो हिस्सों में बाँट दिया है - एक तरफ दुनियाँ का वह हिस्सा है जो वैश्वीकृत हो चुका है और दूसरी तरफ वह जो इस प्रक्रिया से बाहर रह गया है। वैश्वीकृत हिस्सा उत्तरोत्तर प्रौद्योगिकीय समाधानों, वित्तीय सट्टेबाजियों और 'घोटालों' के जरिये दूसरे हिस्से का अतिक्रमण करने में लगा हुआ है। उसके भीतर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बैकिंग, स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार और अपराधीकरण के बीच गठजोड़ बढ़ रहा है। वैश्वीकृत हिस्सा आर्थिक और पर्यावरणीय संसाधनों को हड़प ले रहा है। वह खेतिहर जमीन के बहुत बड़े हिस्से को अपने कब्जे में करता जा रहा है। एक तरफ वह किसानों को फुसला रहा है और दूसरी तरफ नगरीय क्षेत्रों में मध्यवर्ग को पटाया जा रहा है। उसका इरादा यह है कि इन सभी तत्वों को "वैश्वीकृत दुनियाँ" में 'शामिल' कर लिया जाय और दुनियाँ पर विभिन्न 'शर्तों' की बन्दिशें थोप कर उसे अधिकारवंचित कर दिया जाय। ऊपर से वैश्वीकृत दुनियाँ यह भी नहीं चाहती कि हाशिये पर चले जाने के बाद भी उससे पूरी तरह नाता तोड़कर गैर-वैश्वीकृत लोग किसी 'वैकल्पिक भविष्य की खोज कर सकें। वैश्वीकृत अभिजन उसे हाशिये पर फेंकने के लिए तो तैयार हैं पर उस पर अपनी चौधराहट नहीं छोड़ना चाहते हैं।"

(८) "कोठारी के अनुसार वैश्वीकरण के दायरे में न आने वाले क्षेत्रों, लोगों और राज्यों को अलग-अलग करके हाशिये पर डाल दिया जाता है। वैश्वीकरण और हाशियाकरण एक ही प्रघटना की प्रतिछवियाँ है। हाशियाकरण वैश्वीकरण का अनिवार्य परिणाम है। वैश्वीकरण ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करता है जिसके कारण लाखों-करोड़ों लोग खुद को हाशिये पर पाकर अवांछित और त्याज्य समझने लगते हैं। कोठारी टायनबी का यह विख्यात उद्धरण याद करते हैं, जिसमें उन्होंने कहा था, "वैश्वीकरण एक बहुस्तरीय प्रक्रिया न होकर एक प्रभुत्वशाली केन्द्र का घटक बन जाने का नाम है।"

(९) कोठारी भूमण्डलीकरण की एक चौंकाने वाली आलोचना करते हुए लिखते हैं कि "भारत की अभिजन राष्ट्र-राज्य की भारतीय किस्म विकसित करने का प्रयोग बीच रास्ते में छोड़ते जा रहे हैं। वे चिंतित हैं कि जनता की माँगों और दावेदारियों के कारण राजकाज चलाना कठिन होता जा रहा है पर उन्हें विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन जैसी राष्ट्रातीत संरचनाओं के वर्चस्व के कारण हो रहे राष्ट्र-राज्य और अपने प्राधिकार और प्रताप में हो रहे क्षय की चिन्ता नहीं है। वे यह भी देखने के लिए तैयार नहीं है कि घरेलू मोर्चे पर कदम खींचने के कारण भारत की अन्तर्राष्ट्रीय हैसियत गिर गयी है।"

(१०) अभय कुमार दूबे[१२] की टिप्पणी है कि "जिन-जिन देशों की अर्थव्यवस्था पर पूँजी के चंचल चरित्र के कारण भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभाव पड़े, उन देशों को पर्यटन और मनोरंजन उद्योग के नाम पर स्त्रियों के निर्यात के लिए प्रोत्साहित किया गया। अमीर देश में घरेलू काम के लिए और यूरोप के चकलाघरों के लिए करोड़ों स्त्रियों को अपराधी गिरोहों के जरिये सीमा पार भेजा गया। इस व्यापार में भूमण्डलीकृत राष्ट्रों की छिपी और खुली सहमति शामिल थी। अजनबी धरती पर अपना श्रम और देह बेंचकर इन औरतों ने बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा भेजी जिससे अर्थतन्त्रों ने विदेशी कर्जा चुकाया और भूमण्डलीकरण की होड़ जारी रखी। भूमण्डलीकरण ने औरत की देह, उसके श्रम, उसकी छवि, उसके सौन्दर्य और कमनीयता का अतीत के किसी काल के मुकाबले सर्वाधिक दोहन किया।"

औरतों के इसआयात-निर्यात को वैश्वीकरण का प्रति-भूगोल बताते हुए ससकिया सासेन[१३] ने पर्दे के पीछे होने वाले देह-व्यापार का वर्णन किया है। "सीमाओं के भीतर और उसके आर-पार होने वाली इस तिजारत में श्रम तथा अन्य सेवाओं के लिए औरतों की जबरिया भर्ती की जाती है। इसके लिए अपनाये जाने वाले नाना प्रकार के तरीकों में जोर-दबाव का सहारा लिया जाता है। यह व्यापार औरतों के मानवीय, राजनीतिक और नागरिक अधिकारों का हनन करके सम्पन्न होता है। यह तिजारत मुख्यतः वेश्यावृत्ति, श्रम बाजार और अवैध आव्रजन के लिए की जाती है।" ससकिया का दावा है कि यौन व्यापार का परिदृश्य सीधे-सीधे वैश्वीकरण से जुड़ा है।

(११) राजेन्द्र रवि वैश्वीकरण की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि कहने के लिए भूमण्डलीकरण का केन्द्रीय घटनास्थल शहर है। लेकिन वित्तीय पूँजी का नया विजय जिस शहर की रचना कर रहा है, उसमें शहरी गरीबों की जिन्दगी और

भी मुश्किल हो गयी है। वे जिस हाशिये पर पड़े हुए थे, भूमण्डलीकरण ने उन्हें वहाँ से भी बेदखल कर दिया है। आधुनिकीकरण, सुन्दरीकरण, पर्यावरण और नयी प्रौद्योगिकी के नाम पर प्रशासन, राजनीति और अदालतों की पहली गाज उन्हीं पर गिर रही है। रोजगार की सम्भावनाएँ सिकुड़ रही है। भूमण्डलीकरण के बुलडोजर ने गरीब की झुग्गी के साथ-साथ इंसान की आत्मा भी कुचल डाला है।

राजेन्द्र रवी की टिप्पणी है कि वैश्वीकरण की पूरी अवधारणा 'विकास की कुंजी', 'विदेशी पूँजी' के नारे के तहत बुनी गयी है। इसके पीछे एक गैर-जिम्मेदाराना तर्क है विदेशी पूँजी आयेगी तो नये कारखाने और कारोबार खुलेंगे। इससे रोजगार में वृद्धि होगी। राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी होगी। विकास की दर बढ़ जाएगी। साथ ही, विदेशी मुद्रा में वृद्धि होगी। शहरों में ढाँचागत विकास होगा तो इससे निर्माण कार्य और उससे जुड़े कामों में तेजी आयेगी।" मगर इस पूरी श्रृंखला की निरर्थकता सबके सामने है। उदारीकरण को जारी हुए एक दशक से ऊपर हो चुका है, फिर भी न तो विदेशी पूँजी का द्रुत प्रवाह भारत की ओर है और न ही नयी प्रौद्योगिकी का बोलबाला हुआ। सिर्फ यही है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारतीय उद्योगों को लील रही हैं। वे विदेशी पूँजी बहुत कम ला रही हैं। वे पूँजी की उगाही भारतीय बैंकों और अन्य स्रोतों से करके विभिन्न उद्यमों में अपना शेयर बढ़ा रही हैं। अक्सर ऐसा भी होता है कि विदेशी कम्पनियों ने भारत में पैर जमाने के लिए पहले किसी भारतीय कम्पनी के साथ संयुक्त उपक्रम बनाया। जब वे यहाँ जम गयीं, यहाँ के बाजार में उनकी पैठ और पहचान बन गयी, तब उन्होंने अपने पार्टनर के शेयर को खरीदकर उसे व्यवसाय से बाहर कर दिया।"[१४]

(१२) वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप सरकार ने कल्याणकारी योजनाओं से अपने को अलग कर लिया है। अब सरकार जन-कल्याण में रुचि नहीं रखती।

(१३) वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय समाज में शिक्षा-व्यवस्था अमीर और गरीब के बीच भेद को और भी स्पष्ट करती है। सबको समान शिक्षा का लक्ष्य बहुत पीछे छूट गया है। अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूल प्राइवेट हाथों में है और वे शिक्षा के जरिये व्यापार कर रहे हैं। अमीर परिवार के बच्चे इन स्कूलों में पढ़कर वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर या मैनेजर बनने का सपना लिए बड़े हो रहे हैं। वहीं गरीब बच्चों के लिए नगर-निगम और राज्य सरकार के वे स्कूल हैं जिनमें साधनों का घोर अभाव है। यहाँ तक कि इनमें पर्याप्त शिक्षक भी नहीं हैं। इन स्कूलों में जाने वाले बच्चे किसी तरह साक्षर भले ही हो जाएँ, मगर इनके सामने कोई सपना नहीं है। जब से वैश्वीकरण शुरू हुआ है तब से इन स्कूलों में शिक्षा का स्तर लगातार गिर रहा है, जबकि एक दौर में इन्हीं स्कूलों से निकलकर गये विद्यार्थियों ने आगे चलकर समाज के सभी क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभायी। अस्तु, सरकारी स्कूलों की पढ़ाई एकदम बकवास है।

(१४) भारत में वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया के चलते एक ओर तो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अधिक बढ़ावा दिया जा रहा है तथा दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र के आकार को छोटा किया जा रहा है। परिणामतः निजी क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वामित्व वाले उद्यम बढ़ते जा रहे हैं। कथनीय है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अधिकांश कार्यक्षेत्रों में राज्य की उपस्थिति रहती आयी है। राज्य का नियन्त्रण एवं संचालन व्यापक रहा है और कई दृष्टियों से निजी क्षेत्र के उद्योगों को भी प्रभावित करता रहता है। बहुत से लाइसेन्सों और परमिटों द्वारा निजी उद्योगों को नियन्त्रित किया जाता रहा है। वास्तव में यह तरीका इतना व्यापक है कि इसको अक्सर कोटा परमिट राज कहा जाता था। कुल मिलाकर भारत निजीकरण की प्रक्रिया की चुनौतियों का सामना कर रहा है। अब निजीकरण के परिणामस्वरूप सरकारी नौकरी की संख्या नगण्य रह गयी है।

(१५) वैश्वीकरण की प्रक्रिया समाज में अनेक प्रौद्योगिकी, आर्थिक परिस्थिति एवं सामाजिक परिवर्तन को उद्घाटित करती है जो परम्परागत सांस्कृतिक शैलियों, स्वरूपों एवं विचारधाराओं को प्रभावित करती है। इससे राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय सांस्कृतिक स्वायत्तता खतरे में है। सामाजिक स्तर पर परम्परागत सांस्कृतिक संरचनाओं एवं संस्थाओं का विघटन हो रहा है। पश्चिमी देशों द्वारा निर्मित संचार सामग्री आज पूरी दुनियाँ के संचार चैनलों में प्रभुत्व जमाए बैठी हैं। हमारे अपने देश में भी टेलीविजन नेटवर्कों ने विदेशों में तैयार कार्यक्रमों का प्रसार प्रारम्भ कर दिया है। ये कार्यक्रम स्थानीय संस्कृति को नष्ट कर रहे हैं। वैचारिक सन्देशों द्वारा लोगों पर मत आरोपित कर उन्हें पराए मूल्यों तथा विश्वासों को स्वीकार कराने में लगे हैं।

(१६) विश्वव्यापी संस्कृति के नाम पर छिछला उपभोक्ता पैकेज तीसरी दुनियाँ में परोसा जा रहा है। इस संस्कृति के प्रभाव से सम्बन्धों में अस्थायित्व तथा संकीर्णता आयी है और वे केवल आर्थिक संतुष्टि के लिए रह गये हैं। सहयोग,

सहभागिता तथा समन्वय जैसे मूल्यों में गिरावट आयी है और समाज में तनाव बढ़ा है। वस्तुतः संस्कृति की यह अप्रतिष्ठा वैश्वीकरण का गम्भीर नकारात्मक पक्ष है।

(१७) आलोचकों का यह भी दोषारोपण है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने संस्कृति को बाजारीकरण के रूप में रूपान्तरित कर दिया है। बाजारीकरण के बढ़ते महत्व ने सांस्कृतिक प्रतीकों को उपयोगी वस्तुओं के रूप में बदल दिया है। यह प्रक्रिया ही संस्कृति का बाजारीकरण कहलाती है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया की अनुदार आलोचना करते हुए कुछ आलोचकों का कहना है कि आज हमें जो वैश्वीकरण दिखायी दे रहा है, वह ठीक उल्टी चीजों के एकजुट होने का नतीजा है। यह एक प्रभुत्वकारी व भूमण्डलीकरण है जिसे सिर्फ शैतानी शक्ति के रूप में ही पहचाना जा सकता है। इन आलोचकों का तर्क है कि इस वैश्वीकरण का शैतानी चरित्र इसके इस केन्द्रीय तत्वों में परिलक्षित होता है। इसने मनुष्य जाति के लिए ऐसी स्थितियाँ बना दी हैं, जिसमें वह रोटी-कपड़ा और व्यावहारिक मुद्दों व अपने आदर्शों और सपनों की बात को गम्भीरता से उठा ही नहीं पाती। इतनी राजनीतिक आजादी और हर तरह के राजनीतिक दर्शनों के होते हुए भी भारतीय राजनीतिक दलों ने विश्व व्यापार संगठन से जुड़े मुद्दों पर ढंग से विचार ही नहीं किया (हिन्दू, सम्पादकीय, ३० मई २००१)। यह मान लिया गया है कि वैश्वीकरण का कोई विकल्प नहीं है। गाँधीजी ने जिसे 'आधुनिक उद्योगीकरण का शैतानी पहलू करार दिया था, उसे अब वैश्वीकरण के लिए सर्वानुमति के रूप में पेश किया जा रहा है। 'अमेरिकी उपभोक्ता के स्वर्ग' के रूप में यह शैतान काफी सारे लोगों और नेताओं का आदर्श बना हुआ है। यूरोप में अनुदारों से लेकर ग्रीन्स तक सभी वैश्वीकरण के पीछे इस तरह पड़े हैं मानों अमेरिकी उपभोक्ता के स्वर्ग द्वारा परमानन्द व स्वच्छन्दता का सपना कोई हासिल हो सकने वाला लक्ष्य हो, दुनियाँ के बहुसंख्यकों के लिए कोई मृगमरीचिका नहीं।''

वैश्वीकरण पर होने वाली बहस के सन्दर्भ में हमने एक तीसरे वर्ग की मौजूदिकी की भी चर्चा की है। यह तीसरा वर्ग वैकल्पिक वैश्वीकरण की खोज में लगा है। यह वर्ग वस्तुतः लोकतंन्त्रवादी वैश्वीकरण का समर्थक है। अपने मत के समर्थन में इस वर्ग के अध्येताओं का तर्क है कि 'एक तरफ शोषण और विषमता पर आधारित विश्व व्यवस्था है और दूसरी तरफ सारी दुनियाँ में लोकतन्त्र की उभरती हुई आकांक्षा है। यह आकांक्षा लोकतन्त्र के पाँच रूपों में सूत्रबद्ध होकर भूमण्डलीकरण के खिलाफ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश दे सकती है। लोकतन्त्र के ये पाँच रूप हैं - दरिद्रनारायण का सशक्तीकरण, प्राकृतिक संसाधनों पर समाज का स्वामित्व, मानवीय गरिमा की गारन्टी, बहुलतावादी सहअस्तित्व और राजनीतिक लोकतन्त्र।' एतदर्थ, लोकतान्त्रिक सपनों को साकार करने के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम' की पहल अनिवार्य है। लोकतन्त्र का समग्र विस्तार और विकास ही हर समय के दुराग्रह से लड़ने की असली दवा है।

'वसुधैव कुटुम्बकम' की शिक्षा भारत के लिए पुरानी चीज है। इसकी महिमा भारतीय संस्कृति में सर्वत्र गायी गयी है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' भारत की सम्यता का सार है। यह हिन्दुओं का सनातन धर्म है। वर्तमान में वैश्वीकरण की जो गहन, गम्भीर चिन्तनधारा फूटी है, उससे श्रेष्ठता 'वसुधैव कुटुम्बकम' का दिव्य आख्यान भारतीय ऋषियों ने बहुत पहले ही किया है। सच पूछिये तो भूमण्डलीकरा का उपदेश भारत में इतने दिनों से दिया जा रहा है कि शेष विश्व भारत को 'वसुधैव कुटुम्बकम' का देश ही मान बैठा है। लोकतन्त्र ही मनुष्य की प्रवृत्तियों और जरूरतों के बीच तालमेल बैठाने वाली सबसे सशक्त विचार एवं व्यवस्था है। अभी तक समाज के वैश्विक मानवीय मूल्यों को जोड़ने का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक ढाँचा राजनीतिक लोकतन्त्र ही है। सचमुच में, उत्तम सरकार, उत्तम शासन, शान्ति रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और मनुष्यों में सद्गुणों का प्रचार, ये सभी अच्छे कार्य और आवश्यक कार्य हैं जो लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था में सम्भव है। भारत में लोकतान्त्रिक जड़ें बहुत गहरी हैं। इस लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था में ही हमें पूँजीवाद विरोधी और कारपोरेट विरोधी के स्वर सुनायी पड़ते हैं। अस्तु, वर्तमान वैश्वीकरण का विकल्प योरोपीय केन्द्रित विश्व दृष्टि नहीं बल्कि भारतीय मूल्य ही भारतीय समाज के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं। अस्तु, वैश्वीकरण की राहें भारतीय परिप्रेक्ष्य की आधारीय मान्यता है कि यूरोपीय विश्व-दृष्टि के तहत संचालित यह प्रक्रिया भारतीय लोकतन्त्र की बुनियादी संरचनाओं और वैचारिकीय मूल्यों एवं विश्वासों को बेहद रफ्तार एवं निर्ममता से रौंदती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय सांस्कृतिक विशिष्टताएँ पश्चिमी सभ्यता और अलगाव तथा महाजनी या सौदागरी सभ्यता की भावना से आक्रान्त होती जा रही है। अस्तु, इस आक्रान्त होती हुई भारतीय राज्य, एकता और अस्मिता के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्व-संस्कृति के बोध का बल फूँकने के लिए भारतीय संस्कृति के समुज्जवल रूप का प्रस्तुतीकरण अत्यावश्यक है। अध्येताओं का तर्क है कि वैश्वीकरण बिना लोकतन्त्रीकरण

के अननुमेय परिणामों के साथ नव-उपनिवेशवाद एवं शक्तियों में वृद्धि कर सकता है।[१५]

निष्कर्ष : आज हम वैश्वीकरण-युग के दरवाजे पर खड़े हैं। भारतीय संस्कृति में परिवर्तन बड़ी तेजी से आ रही है और हम नाना रूपों में बदलते जा रहे हैं। ऐसा नहीं करने से हम पर जो बोझ पड़ेगा, उसे हम बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे, उसके नीचे हम टूट जायेंगे। यह निश्चित रूप से सच है कि वैश्वीकरण से भारत के दरवाजे एक खास दिशा की ओर खुल गये हैं। आधुनिक औद्योगिक एवं तकनीकी सभ्यता, बिना किसी शोर-गुल के, धीरे-धीरे इस देश में प्रविष्ट हो गयी है। नये भावों और नये विचारों ने हम पर हाबी होना शुरू कर दिया है। यह मानसिक परिवर्तन बाहर की ओर वातायान खोलने का यह भाव, अपने ढंग पर अच्छा रहा, क्योंकि इससे हम आधुनिक जगत् को समझने लगे हैं। मगर, इससे एक दोष भी निकला। हम अपनी संस्कृति से विच्छिन्न होते जा रहे हैं। परम्परा से भारत में आचार-विचार कि जो पद्धतियाँ चली आ रही थीं, वे तेजी से टूट रही हैं। वैश्विक संस्कृति में मानव का जो विश्वास जगा था, अब वह हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन, और हम बिना यह जाने हुए कहते जा रहे हैं हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज, जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियन्त्रित कर सके।

यह खतरे की स्थिति है। अगर इसका अवरोध और सुधार नहीं हुआ तो इससे भयानक परिणाम निकल सकते हैं। सम्भव है, यह उसी स्थिति का अनिवार्य परिणाम हो। लेकिन सूचना तकनीकी एवं संचार तकनीकी युग में किसी देश को अपना सुधार करने के लिए ज्यादा मौके नहीं दिये जायेंगे और इस युग में मौका चूकने का अर्थ सर्वनाश भी हो सकता है। अतः वैश्विक संस्कृति को भारतीय संस्कृति की अस्मिता के अनुरूप ही स्वीकार करना चाहिए और यदि हम ऐसा नहीं कर सके तो हमारे भाव, विचार और काम सब-के-सब अधूरे रह जायेंगे।

सन्दर्भ

1. "Globalization is both the compression of the world and intensification of consciousness of the world as a whole." R. Robertson, Globaloization, Sage, London, 1992, p. 8
2. "Globaliozation can thus be defined as the intensification of worldwide social relations which link distant localities in such a way that local happenings are shapped by events occurring many miles away (and many weeks away) and vice-versa." Anthony Giddens, Modernity and Self-Identity, Polity, Cambridge, 1991, p. 21. For Giddens analysis of modernity and its development, please see his book, The Consequences of Modernity, Polity, Cambridge, 1950.
3. "Globalization is a social process in which the constraint of geography on social and cultural arrangements recede and in which people are becoming increasingly aware that they are receding ". Malcolm Waters, Globalization, Routledge, London, 1995.
4. "Globalization theory examins the emergence of global culture system. It suggests that global culture is brought about by a variety of social and cultural developments…More importantly, globalism involves a new consciousness of the world as a single place", Oxford Dictionary of Sociology, Edited by Gorden Marshall, Oxford University Press, Oxford, 1998, p. 258.

५. श्यामधर सिंह एवं अशोक कुमार सिंह आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, सपना अशोक प्रकाशन, बी.३६/४७ डी-१, कबीर नगर, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पृ. ४७७.

6. Job Growth remains disappointing-I.L.O. Labour File, Sept.-Oct.-2005, p. 54.
7. Tylor, E.B., 'Primitive Culture', New York, 1974, p.1
8. K.S. Singh, People of India : An Introduction, Anthropological Survey of India, Calcutta, 1992, p. 23.
9. K.S. Singh, Ibid.
10. K.S. Singh, Identity, Ecology, Social Organization, Linkages and Development Process : A Quantitative Profile, Volume VII, New Delhi, OUP, 1996, p. 5.
11. K.S. Singh, Ibid.

१२. देखिए, भारत का भूमण्डलीकरण, सम्पादक : अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन प्रा० लि० नई दिल्ली, पृ. २२०.

१३. सासकिया सासेन, 'वूमेन्स बर्डन : काउटर ज्योग्राफीज ऑव ग्लोबलाइजेशन ऐण्ड फमिनाइजेशन ऑव सरवाइवल', जनरल ऑव इन्टरनेशनल अफेयर्स, बसंत अंक २०००, ५३, संख्या २, दि ट्रस्टीज ऑव कोलम्बिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क से उद्धृत, भारत का भूमण्डलीकरण, सम्पादित द्वारा अभय कुमार दूबे, वही, पृ. २२३.

१४. सामयिक वार्ता, दिसम्बर-जनवरी २०००-०१, पृ० १३.

15. Parth Chatterjee, "Beyond the Nation ? Or Within ?" Economic and Political Weekly, January 4-11, 1977.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

आजादी के बाद भूमि सुधारों की प्रक्रिया का विवेचनात्मक अध्ययन

❑ डॉ. मानिक लाल गुप्त

आजादी के बाद भूमि सुधारों की प्रक्रिया मूल रूप से दो चरणों में विकसित हुई। पहला चरण आजादी प्राप्त होते ही प्रारम्भ हुआ और लगभग साठ के दशक के आरम्भ होने तक जारी रहा था। साठ के दशक के अंत में दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। इन दो चरणों के मध्य कोई सीमा रेखा अंकित नहीं की जा सकती है क्योंकि वे एक-दूसरे के पूरक हैं और इन दोनों चरणों के कार्यक्रमों में अत्यधिक समानता और पुनरावृत्ति है। पहले चरण का दौर संस्थागत सुधारों का दौर कहलाता है। दूसरे चरण का दौर हरित क्रान्ति का दौर था, यह तकनीकी सुधारों का दौर कहलाता है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत आजादी के बाद भूमि सुधारों की इस प्रक्रिया का विवेचनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

आजादी के बाद भूमि सुधारों की प्रक्रिया मूल रूप से दो चरणों में विकसित हुई। पहला चरण आजादी प्राप्त होते ही प्रारम्भ हुआ और लगभग साठ के दशक के आरम्भ होने तक जारी रहा था।

साठ के दशक के अंत में दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। इन दो चरणों के मध्य कोई सीमा रेखा अंकित नहीं की जा सकती है क्योंकि वे एक-दूसरे के पूरक हैं और इन दोनों चरणों के कार्यक्रमों में अत्यधिक समानता और पुनरावृत्ति है।

पहले चरण की प्रमुख विशेषताएं थीं-

१. बिचौलियों की समाप्ति अर्थात् जमीदारों, जागीरदारों से मुक्ति।
२. काश्तकारी सुधार : इसके अंतर्गत काश्तकारों को जोत की सुरक्षा प्रदान करना, भूमिकर कम करना और काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार प्रदान करना।
३. भूमि पर हदबन्दी।
४. सहकारी और सामुदायिक विकास कार्यक्रम।

पहले चरण का दौर संस्थागत सुधारों का दौर कहलाता है। दूसरे चरण का दौर हरित क्रान्ति का दौर था, यह तकनीकी सुधारों का दौर कहलाता है।

जमींदारी उन्मूलन : आजादी के शीघ्र पश्चात १६४६ ई. में जमींदारी-उन्मूलन बिल (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, मद्रास, असम, और बम्बई प्रदेश में) बनाये गये। गोविन्दबल्लभ पंत की अध्यक्षता में बनी यू.पी. जमींदारी उन्मूलन समिति की रिपोर्ट अनेक प्रदेशों के लिए (मॉडल) नमूना स्वीकार की गयी थी।

संविधान निर्माताओं को भय था कि जमींदार अपनी सम्पत्ति बचाने के लिए अदालतों का आश्रय ले सकते हैं और सम्पत्ति के अधिकारों एवं अपर्याप्त मुआवजे के तर्क देंगे। इन समस्याओं से निपटने हेतु संविधान में आवश्यक प्रावधान तैयार किये गये। संविधान निर्माताओं को यह विश्वास हो गया था कि राज्य असेम्बलियों में जमींदारी उन्मूलन बिल राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्धारित मुआवजे के साथ पारित कर दिये जायेंगे। इन समस्त पहलुओं को न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में बाहर रखा गया। इन बिलों के लिए केवल राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता थी, जिसका स्पष्ट तात्पर्य था केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदन। यह उल्लेखनीय है कि जमीदारों को दिये जाने वाले मुआवजे संबंधी निर्देशन के अधिकार विधायिका को देने के सबंध में आम सहमति थी।[2]

संविधान-निर्माताओं की इनती सावधानी और तैयारी के उपरान्त भी घटनायें उनकी अपेक्षा के विपरीत दृष्टिगत हुईं। देश के विभिन्न क्षेत्रों के जमींदारों ने जमींदारी उन्मूलन कानूनों की वैधता का विरोध किया। उदाहरण के लिए पटना हाईकोर्ट ने भू-स्वामियों की अपील स्वीकार कर ली। कांग्रेस सरकार ने प्रतिउत्तर में संविधान में संशोधन किये। प्रथम संशोधन १६५१ ई०. में और चौथा संशोधन १६५५ ई. में किया गया।[3] उनका उद्देश्य जमींदारी उन्मूलन लागू करने के लिए राज्य विधायिकाओं के अधिकारों को सुदृढ़ करना और मूलभूत अधिकारों एव मुआवजे के प्रश्नों को अदालतों को परिधि से बाहर रखना था।

जमींदार हाईकोर्टो और सुप्रीम कोर्ट में अपीले करते रहे। इनका उद्देश्य कम से कम अपनी सम्पत्ति के अधिग्रहण में देरी करवाना था परन्तु पचास के दशक के मध्य तक उनका प्रतिरोध निष्क्रिय किया जा चुका था। जमींदारी उन्मूलन एक्ट अधिकतर राज्यों में १६५६ ई. तक पारित हो गया था परन्तु उन्हें क्रियान्वित करने में सर्वाधिक बड़ी बाधा भूमि संबंधी

❑ सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष इतिहास, युवराजदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

पर्याप्त रिकार्डों का अभाव था फिर भी समस्त प्रक्रिया t urk=d <kpsds v ubljk i wkZ dhx; h[४] जिसमें लगभग हिंसा का प्रयोग नहीं हुआ। इसका कारण था कि जमींदार वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही अलग-थलग पड़ गया था और उसे साम्राज्यवादी खेमे के रूप में समझा जाता था

जमींदारी उन्मूलन का स्पष्ट तात्पर्य था लगभग दो करोड़ काश्तकारों का भू-स्वामी बनना जमींदारों को दिया जाने वाला मुआवजा सामान्यतया कम था। इसमें एक राज्य से दूसरे राज्य में अंतर था। यह किसान आंदोलन की शक्ति और भू-स्वामियों एवं किसानों के बीच वर्ग-संतुलन पर निर्भर था। साथ ही यह कांग्रेस नेतृत्व तथा विधायिका की विचारधारा के चरित्र पर भी निर्भर था।[५] उदाहरण के लिए, कश्मीर में कोई मुआवजा नही दिया गया। पंजाब के पटियाला के दखल करने वाले काश्तकारों को कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ। छोटे काश्तकारों को भी बहुत कम राशि दी गयी। यू.पी. में मुआवजा जमीन के आकार के विपरीत अनुपात में दिया गया।

जमींदारी उन्मूलन में गम्भीर त्रुटियाँ : देश के विभिन्न भागों में जिस तरह जमींदारी उन्मूलन कानून क्रियान्वित किया गया, उसमें कुछ महत्वपूर्ण त्रुटियाँ दृष्टिगत हुईं। उदाहरण के लिए, उ.प्र. में जमींदारों को वे जमींने अपने पास रखने की अनुमति दे दी गयी जिन्हें उन्होंने अपनी व्यक्तिगत खेती घोषित की थी।[६] यह बड़ा ढीला-ढाला अस्पष्ट शब्द था, इसके अंतर्गत उन सभी को खेतिहर बनाया जा सकता था जो न केवल जमीन जोत रहे थे अपितु व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने किसी संबंधी के द्वारा जमीन की देखभाल कर रहे थे। इसके अतिरिक्त उ.प्र., बिहार और म्रदास जैसे राज्यों में व्यक्तिगत खेती की कोई सीमा नहीं थी। यह सीमा तभी स्पष्ट हुई जब हदबन्दी कानून पारित किये गये।[७]

यह कहना युक्तिसंगत है कि भू-स्वामियों के प्रतिरोध के बावजूद बिहार के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर देश के अधिकांश क्षेत्रों में जमींदारी उन्मूलन प्रक्रिया भारतीय गणतत्र की स्थापना के एक दशक के अंदर मूल रूप से पूर्ण कर ली गयी थी। पूर्णतया सामंत सम्पत्तियां समाप्त हो गईं थीं। बड़े, भू-स्वामियों को सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ा था और वे अधिकतर जमीन खो बैठे थे। जमींदारी उन्मूलन का सर्वाधिक लाभ ऐसे काश्तकारों को हुआ जो दीर्घकाल से उसी जमीन पर खेती करते आ रहे थे वे अब भू-स्वामी बन गये थे।

काश्तकारी सुधार : जमींदारी उन्मूलन के पश्चात काश्तकारी की समस्यायें विद्यमान रही थीं, इस प्रकार की काश्तकारी उन भूतपूर्व जमींदारों की जमींन पर जारी रही, जिनकी जमींने अब व्यक्तिगत खेती की श्रेणी में व्यक्त की जाने लगी थीं।[८] इसके अतिरिक्त आजादी प्राप्ति के समय मात्र आधी भूमि ही जमींदारी व्यवस्था के अंतर्गत थी, शेष आधी भूमि रैयतवारी व्यवस्था के अतर्गत थी। इन क्षेत्रों में भू-स्वामित्व की समस्यायें, असुरक्षा, अत्यधिक लगान वाली काश्तकारी आदि समस्यायें, अत्यत व्यापक थीं। इसलिए भूमि सुधारों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य काश्तकारी से संबंधित कानून बनाना था। भारत के विभिन्न राज्यों में राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी विविध थीं कि काश्तकारी कानूनों एवं उनके अमल में भारी अंतर था, परन्तु उनके कुछ समान उद्देश्य थे और समय के साथ, उनके बीच से कुछ निर्णय की रूपरेखा दृष्टिगत हुई।

काश्तकारी सुधारों की तीन प्रमुख विशेषतायें थीं:-

१. उन काश्तकारों के लिए काश्तकारी की गांरटी करना जिन्होंने विशेष अवधि तक उस जमीन पर खेती की हो, जैसे छः वर्ष, यह अवधि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न थी।
२. काश्तकारों द्वारा दिये गये लगान को एक उचित स्तर पर लाना, यह सामान्यतः लगान पर दी गई जमीन के कुल उत्पादन का एक-चौथाई से एक-छठा भाग थी।
३. काश्तकार को उसके द्वारा जोती जा रही जमीन के स्वामित्व का अधिकार मिलना।

यहाँ इस तथ्य को स्मरण रखना चाहिए कि काश्तकारों की स्थिति सुधारने की चेष्टा में भारत के काश्तकारी कानूनों का सामान्यतः भू-स्वामी, विशेषकर छोटे भू-स्वामी और काश्तकारों के हितों के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयत्न रहा है।[९]

भारत के अधिकतर क्षेत्रों में अनुपस्थित भू-स्वामियों द्वारा पुनः व्यक्तिगत खेती का कार्य प्रारम्भ करने की अनुमति दी गई। जमीन पर अनुपस्थित भू-स्वामी का अधिकार पुनः स्थापित करने की सीमा निर्धारित की गई। यह बड़े भू-स्वामियों से संबंधित था। प्रत्येक राज्य द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक पर पुनः खेती आरम्भ नहीं की जा सकती थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में पारिवारिक भू-सम्पत्ति की तीन गुना की सीमा निश्चित की गई। पारिवारिक भू-सम्पत्ति का अर्थ एक हल द्वारा जोती जाने वाली भूमि स्वीकार किया गया। छोटे भू-स्वामियों के संबंध में यह निर्णय किया गया कि भू-स्वामी की समस्त जमीन प्रत्येक राज्य द्वारा निर्धारित हदबन्दी से अधिक नहीं होनी चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सुझाव दिया गया कि बहुत छोटे भू-स्वामी अपनी सम्पूर्ण जमीन पर पुनः स्वयं खेती कर सकते हैं परन्तु काश्तकारी कानूनों का क्रियान्वयन अधिक जटिल

था। छोटे भू-स्वामियों के लिए बनाये गये कानूनों का बड़े भू-स्वामियों ने राजस्व अधिकारियों से सांठ-गांठ करके दुरूप्रयोग किया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में यह भी उजागर हुआ कि बड़े भू-स्वामियों ने अपनी जमीनें अपने संबंधियों एवं अन्य लोगों के नाम लिखा दीं जिससे वे छोटे भू-स्वामी कहलाये, तत्पश्चात उन्होंने छोटे भू-स्वामियों के लिए बनाये गये कानूनों का प्रयोग इन जमीनों से काश्तकारों को बेदखल करने के लिए किया। अनुपस्थित भू-स्वामियों को अपनी जमीन पर पुनः खेती के अधिकार को और व्यक्तिगत जोत की ढीली-ढाली परिभाषा का प्रयोग व्यापक रूप से काश्तकारों को बेदखल करने के लिए किया गया। बेदखली का कार्य वास्तव में बनने वाले कानूनों से बचने के लिए पहले ही प्रारम्भ हो गया था। कानून बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में असाधारण देरी का लाभ उठाकर निहित स्वार्थ ने इन कानूनों से लाभ मिलने वालों को पहले ही बेदखल कर दिया।

बेदखली के विरूद्ध कानूनी संरक्षण प्राप्ति से पहले ही काश्तकारों को बड़े पैमाने पर बेदखल किया जाने लगा। भूमि सुधारों संबंधी योजना कमीशन के पैनल ने १९५६ ई. में अंकित किया कि १९४८ तथा १९५१ ई. के बीच संरक्षित काश्तकारों की संख्या बम्बई राज्य में १७ लाख से घटकर १३ लाख हो गई अर्थात् २३ प्रतिशत से अधिक की गिरावट आ गई।[१०] इसी प्रकार हैदराबाद राज्य में ५७ प्रतिशत की गिरावट दृटिगत हुई। सम्पूर्ण देश में काश्तकारों में मात्र ४५.४ प्रतिशत ही अपनी स्थिति बनाये रख पाये। शेष गैर-कानूनी तरीके से बेदखल किये गये अथवा अपना अधिकार स्वतः ही छोड़ दिया, परन्तु यह स्वयं ही छोड़ने की बात वास्तव में धमकी देकर निकाल बाहर करने का एक आवरण मात्र था। यह तरीका इतना व्यापक हो गया कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में यह कहना पड़ा कि समस्त बची जमींने सरकार को ही सौंपी जायें, जो पुनः उचित व्यक्तियों को इसका बंटवारा करेगी परन्तु इस वक्तव्य पर केवल कुछ ही राज्यों ने अमल किया।

वास्तव में काश्तकारी छुपे रूप से चलती रही अब काश्तकारों को खेत का नौकर कहा जाने लगा, जबकि उसकी स्थिति पहले वाली ही थी। भूमि सुधारों के आरम्भिक दिनों में काश्तकार बटाईदार (उपज के हिस्सेदार) में बदल दिये जाते, बटाईदारों को काश्तकार नहीं माना जाता था, इसलिए काश्तकारी कानून के अंतर्गत उन्हें कोई सुरक्षा नहीं प्राप्त थी। पैसों के रूप में कर देने वालों को ही काश्तकार स्वीकार किया गया था। उन खेतिहरों को भी काश्तकार नहीं स्वीकार किया गया था जो बटाईदार थे। पश्चिम बंगाल मे बटाईदारों को बरगादार कहा जाता था। उन्हें कोई सुरक्षा नहीं प्रदान की गई थी। इस प्रकार काश्तकारों की असुरक्षा का सबसे बड़ा कारण अधिकतर काश्तकारी का मौखिक एवं अनौपचारिक होना था।[१२] उनका कोई लिखित रिकार्ड नहीं था। इसीलिए उन्हें कानून बनने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। १९६१ ई. की जनगणना के अनुसार देश की ८२ प्रतिशत काश्तकारियां असुरक्षित रह गई थीं।

उचित रिकार्डों का न होना उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार एक्ट के प्रारंभिक वर्षों में अमल में विशेष बड़ी बाधा सिद्ध हुये, तत्कालीन राजस्व मंत्री चरणसिंह को रिकार्ड सही करने अथवा नये बनाने का व्यापक अभियान चलाना पड़ा था।[१३] कालान्तर में कुछ क्षेत्रों में ऐसे अभियान वामपंथियों की पहल पर संचालित हुये।[१४] इससे गरीब, असुरक्षित बटाईदारों और अस्थायी काश्तकारों को भी लाभ प्राप्त हुआ।

निष्कर्षः यह कहना युक्तिसंगत है कि भारत में काश्तकारी कानून के प्रथम उद्देश्य को सीमित सफलता ही मिली। सभी काश्तकारों को काश्तकारी की सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास रहा परन्तु अधिकांश असुरक्षित बने रहे। बड़ी संख्या में असुरक्षित काश्तकारों के बने रहने से काश्तकारी कानून का दूसरा उद्देश्य अर्थात् भू-कर को उचित स्तर पर लाना लगभग असम्भव हो गया। बाजार की स्थिति अर्थात् प्रतिकूल भूमि-व्यक्ति अनुपात के कारण जो औपनिवेशिक भारत में पैदा हुआ, भू-कर बढ़ने लगे। ऐसी स्थिति में कानूनी उचित भू-कर केवल उन्हीं काश्तकारों पर लागू हो सकता था जो सुरक्षित थे और जिन्हें जोत का अधिकार मिला हुआ था अर्थात् उन्हें हटाया नहीं जा सकता था।

खेती करने वाले काश्तकारों द्वारा भुगतान किये जाने वाले भूमि कर को नियमित करने के विधान सभी राज्यों में बनाये गये। अधिकतर राज्यों में प्रथम एवं द्वितीय योजनाओं द्वारा निर्धारित अधिकतम भूमि-कर अपनाये गये अर्थात् कुल उत्पाद को २० से २५ प्रतिशत।

साठ के दशक के अंत में देश के कुछ भागों में चल रही हरित क्रान्ति ने समस्या और भी गम्भीर बना दी। जमीन की कीमतें और किराये बढ़ने लगे। सर्वाधिक गम्भीर बात यह थी कि ये गरीब असुरक्षित काश्तकार अथवा बटाईदार ही थे जिन्हें बाजार भाव अदा करना पड़ता था।

भारत में काश्तकारी कानून का तीसरा उद्देश्य काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार दिलवाना था। यह भी आंशिक रूप में ही लागू हो पाया।

जमींदारी उन्मूलन, काश्तकारी कानूनों और हदबन्दी कानूनों का कुल मिलाकर अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगत हुआ। इनके

कारण भूमि-सुधारों के एक मुख्य उद्देश्य अर्थात् निवेश करने वाले तथा उत्पादक प्रगतिशील किसानों का वर्ग तैयार करने में विशेष सहायता प्राप्त हुई।

जमींदारी उन्मूलन के कारण लगभग दो करोड़ बेहतर जोत वाले काश्तकार भू-स्वामी बन गये। अनेक अनुपस्थित जमींदार पुनः खेती में कार्यरत हुये और अपनी व्यक्तिगत खेती प्रारम्भ की। इन सबको काम करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और ये प्रगतिशील किसान बने।

सन्दर्भ

१. चन्द्र विपिन, 'आजादी के बाद का भारत', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, २००२, पृ. ४६५
२. वही
३. गुप्त मानिक लाल, 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास', साहित्य रत्नायलय कानपुर, २००६, पृ. १३७
४. खुसरो, ए.एम., वी.बी. सिंह द्वारा सम्पादित, 'इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', राजपाल सिंह सन्स, दिल्ली, १६६५, पृ. १८६
५. वही
६. चन्द्र विपिन, पूर्वोक्त, पृ. ४७६, ४६७-४६८
७. खुसरो ए.एम., वी.बी. सिंह, पूर्वोक्त, पृ. १६७
८. प्लानिंग कमीशन सेकेण्ड फाइवर इयर प्लान, १६५६, पृ. १८८
६. चन्द्र विपिन, पूर्वोक्त, पृ. ४६६
१०. चन्द्र विपिन, पूर्वोक्त, पृ. ५००
११. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. १४६
१२. चन्द्र विपिन, पूर्वोक्त, पृ. ५०१
१३. वही
१४. वहीं

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

नास्तिक सम्प्रदाय में मोक्ष

❑ डा० सीमा श्रीवास्तव

भारतीय दर्शन में नौ दार्शनिक सम्प्रदाय मुख्य हैं – चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त जिन्हें दो वर्गो में विभाजित किया जाता है – आस्तिक और नास्तिक। जहाँ तक मोक्ष का प्रश्न है तो धार्मिक व्यक्तियों के लिए बन्धन तथा मोक्ष का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि धर्मपरायण व्यक्ति जन्म मृत्यु के बन्धन चक्र से स्थाई छुटकारा पाना चाहता है और उसके इसी लक्ष्य को सामान्य शब्दों में मोक्ष कहा जाता है। भारतीय दर्शन में केवल स्थूल ऐन्द्रिक सुखवादी चार्वाक को छोड़कर अन्य सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने मोक्ष को स्वीकार किया, चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक किन्तु मोक्ष के स्वरूप और इसे प्राप्त करने के साधन के विषय में मतभेद हैं। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत इस तथ्य को उजागर किया गया है कि मोक्ष आस्तिक सम्प्रदायों का ही केन्द्रीय विषय नही है अपितु नास्तिक सम्प्रदायों में भी मोक्ष अथवा निर्वाण के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है।

भारतीय दर्शन में नौ दार्शनिक सम्प्रदाय मुख्य हैं – चार्वाक, जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त जिन्हें दो वर्गो में विभाजित किया जाता है – आस्तिक और नास्तिक। इसे निर्धारित करने के तीन आधार हैं।

वेदों के आधार पर वेदों को मानने वाले आस्तिक, वेदों को न मानने वाले नास्तिक कहे जाते हैं। इस दृष्टिकोण से सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त आस्तिक कहे जाते हैं जिन्हें संयुक्त रूप से षड़दर्शन भी कहा जाता है। दूसरी तरफ चार्वाक, बौद्ध और जैन नास्तिक सम्प्रदाय हैं।

ईश्वर की मान्यता के आधार पर ईश्वर को मानने वाले आस्तिक और ईश्वर की सत्ता को न मानने वाले नास्तिक कहे जाते हैं। इस दृष्टि से केवल योग, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त आस्तिक हैं तथा शेष दर्शन नास्तिक हैं।

पुनर्जन्म के आधार पर पुर्नजन्म को स्वीकार करने वाले आस्तिक और पुर्नजन्म को न मानने वाले नास्तिक दर्शन कहे जाते हैं। इस दृष्टि से केवल चार्वाक दर्शन नास्तिक है शेष सभी आस्तिक हैं।

इनमें से वेदों के आधार को ही निर्णायक माना जाता है और यही कारण है मनुस्मृति में ''नास्तिको वेदनिन्दकः कहा गया है अर्थात् वेदों की निन्दा करने वाले नास्तिक हैं। उपर्युक्त विभाजन का विश्लेषण करें तो कुछ सम्प्रदाय सभी दृष्टिकोण से आस्तिक हैं- योग, न्याय, वैशेषिक और वेदान्त जबकि एक सम्प्रदाय सभी दृष्टिकोणों से नास्तिक जैसे चार्वाक।यदि वेदों के आधार को ही स्वीकार करें तो भी पूर्णतः और मूलतः के रूप से सूक्ष्म विभाजन किया जा सकता है। पूर्णतः आस्तिक वे हैं जो वेदों को मानते ही नहीं वरन् वेद के ही भाग हैं- मीमांसा और वेदान्त। वेदों के पूर्व भाग को मीमांसा और उत्तर भाग को वेदान्त कहा जाता है। जबकि मूलतः आस्तिक वे हैं जो वेदों के भाग तो नहीं हैं किन्तु वेदों को प्रामाणिक मानते हैं जैसे सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक। इसी प्रकार पूर्णतः नास्तिक वे हैं जो वेदों के न तो भाग हैं न ही वेदों को मानते हैं और उनमें न ही वेदों जैसी बातें की गई हैं जैसे चार्वाक, जबकि मूलतः, नास्तिक उन्हें कहा जाता है जो न तो वेदों के भाग है और न वेदों को मानते हैं लेकिन उनके प्रमुख व्यक्तियों ने वेदों जैसी बातें कीं जैसे-जैन और बौद्ध।

जहाँ तक मोक्ष का प्रश्न है तो धार्मिक व्यक्तियों के लिए बन्धन तथा मोक्ष का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि धर्मपरायण व्यक्ति जन्म मृत्यु के बन्धन चक्र से स्थाई छुटकारा पाना चाहता है और उसके इसी लक्ष्य को सामान्य शब्दों में मोक्ष कहा जाता है। पाश्चात्य दार्शनिकों ने इसके लिए freedom या लिबरेशन शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य है स्वयं को दैवी साम्राज्य का अंग बना लेना लेकिन मोक्ष की भारतीय संकल्पना ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय संस्कृति में वर्णाश्रम और पुरूषार्थ व्यवस्था को स्वीकार किया गया है चार पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं। जिसमें से मोक्ष चरम पुरूषार्थ है। इसे साध्य पुरूषार्थ कहा गया है जबकि अन्य साधन पुरूषार्थ हैं। भारतीय दर्शन में केवल स्थूल ऐन्द्रिक सुखवादी चार्वाक को छोड़कर अन्य सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने मोक्ष को स्वीकार किया, चाहे वे आस्तिक हों या नास्तिक। किन्तु मोक्ष के स्वरूप और इसे प्राप्त करने के साधन के विषय में मतभेद हैं।

❑ एसोशिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

भारतीय दर्शन में दो प्रकार की मुक्ति की चर्चा की गई है जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति शरीर को धारण करते हुए प्राप्त की जाती है जबकि विदेहमुक्ति शरीर को त्यागने के बाद प्राप्त की जा सकती है। जीवन्मुक्ति को मानने वाले दार्शनिक भी अंतिम मुक्ति के रूप में तो विदेहमुक्ति को ही स्वीकार करते हैं जैसे सांख्य और वेदान्त। कुछ दार्शनिक सम्प्रदाय केवल विदेह मुक्ति को ही स्वीकार करते हैं जैसे न्याय, रामानुज आदि। भारतीय दर्शन में मोक्ष की व्याख्या भी दो प्रकार से की गई है- भावात्मक और निषेधात्मक व्याख्या। मोक्ष की निंषेधात्मक व्याख्या में केवल दुखों से निवृत्ति का आश्वासन दिया जाता है अर्थात् आनन्द की बात नहीं की जाती तो जबकि मोक्ष की भावात्मक व्याख्या में दुखों से निवृत्ति के साथ आनन्द की प्राप्ति भी होती है। सांख्य और न्याय जैसे सम्प्रदाय मोक्ष की निषेधात्मक व्याख्या करते हैं जबकि वेदान्ती भावात्मक व्याख्या को मानते हैं।

चार्वाक दर्शन में मोक्ष : नास्तिक शिरोमणि चार्वाक दर्शन प्राचीनतम भारतीय दर्शन है। चार्वाकों का कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं है। अतः चार्वाकों के विषय में जानकारी हमें पूर्व पक्ष के रूप में होती है।

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण के रूप में मान्यता देते हैं इसलिए उनकी तत्वमीमांसा ज्ञानमीमांसा पर आधारित है। अपनी तत्वमीमांसा में वे उन्हीं तत्वों को स्वीकार करते हैं, जिनका प्रत्यक्ष संभव हो। यही कारण है कि चार्वाक आत्मा, ईश्वर जैसी सत्ताओं को स्वीकार नहीं करते। चार्वाक आत्मा को तत्वमीमांसीय और आध्यात्मिक सत्ता के रूप स्वीकार नहीं करते वरन् चेतना युक्त भौतिक शरीर को ही आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं (देहात्मवाद)। शरीर के समाप्त होने के बाद आत्मा समाप्त हो जाती है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

चार्वाकीय नीतिशास्त्र का मूलमंत्र हैं जब तक जियो सुख से जियो, उधार लेकर घी पियो क्योंकि देह जब एक बार जल गयी तो दुबारा कहां आने वाली है। मोक्ष के विषय में चार्वाकों का मानना है कि मृत्यु ही मोक्ष है - ''मरणमेवापवर्गः''[१]

जीवनमुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों ही कोरी कल्पना हैं। यदि मोक्ष दुखों का अंत है तो जब तक शरीर है सुख-दुख बना रहता है। देह समाप्ति के बाद अस्तित्व का नाश हो जाता है तब मोक्ष किसे मिलेगा?चार्वाक ने सुख या काम को ही परम पुरूषार्थ माना है और अर्थ को काम की प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया है धर्म और मोक्ष को अस्वीकार कर देता है।

जैन दर्शन में मोक्ष विचार : चार्वाक के बाद दूसरा नास्तिक सम्प्रदाय है जैन दर्शन। जैन मत की स्थापना मूलतः एक आचारशास्त्र के रूप में की गई थी जबकि इसे दार्शनिक रूप बाद में प्रदान किया गया। अनीश्वरवादी, अवैदिक, नास्तिक सम्प्रदाय के रूप में जैन दर्शन में २४ तीर्थकारों की परम्परा है जिसमें २४वें तीर्थकर महावीर स्वामी हुए। प्रचलित जैनदर्शन में महावीर स्वामी की प्रमुख भूमिका हैं आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और सामाजिक जीवन में अपरिग्रह ये चार जैन दर्शन के आधार स्तम्भ हैं।

जैन दर्शन में मोक्ष को नैतिक जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन में मोक्ष की व्याख्या दो प्रकार से की गई है-

(अ) वीतराग दशा के रूप में मोक्ष

(ब) आत्मपूर्णता के रूप में मोक्ष

जैन दर्शन में जीव को स्वभावतः मुक्त माना जाता है वह अनन्त चतुष्ट्य सम्पन्न है। मोक्ष पूर्ण समत्व है जिसके लिए आत्मपूर्णता जरूरी है। अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति। वस्तुतः मोक्ष चेतना के तीनों पक्षों की पूर्णता का द्योतक है। जीवन के ज्ञानात्मक पक्ष की पूर्णता अनन्त ज्ञान एवं दर्शन; भावात्मक पक्ष की पूर्णता अनन्त आनन्द एवं संकल्पनात्मक पक्ष की पूर्णता अनन्त शक्ति में है।

सभी आस्तिक दर्शनों में एक ऐसी सत्ता स्वीकार की गई है जो आत्मतत्व या चेतना की शुद्धता को प्रभावित करती है और उसे बन्धन में डालती है। जैन दर्शन में उसे कर्म कहा जाता है। जैन दर्शन में मुक्ति बाधक तत्व कर्म भौतिक है पुद्गल है।

आचार्य देवेन्द्र सूरि कर्म की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं - ''जीव की क्रिया का जो हेतु है वह कर्म है।''[२]

जैन परम्परा में कर्म के दो पक्ष है (१) रागद्वेष, कषाय आदि मनोभाव और (२) कर्म पुदगल। कर्म पुदगल से तात्पर्य उन जड़ परमाणुओं से है जो प्राणी की किसी क्रिया के कारण आत्मा की ओर आर्कषित होकर उससे अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं और समय विशेष में परिपक्व होने पर अपना फल देकर अलग हो जाते हैं इन्हें द्रव्य कर्म कहते हैं। जैन कर्म सिद्धान्त में कर्म के निमिन्त कारण के रूप में द्रव्य कर्म और उपादान कारण के रूप में मनोभावों को स्वीकार किया गया है।[३]

स्वभावतः मुक्त जीवन अज्ञानता के कारण कर्म पुद्गलों की ओर आर्कषित होताा है जो बन्धन के कारण है और ये आठ प्रकार के होते हैं -

ज्ञानावरणीय - जो आत्मा की ज्ञानात्मक शक्ति को संकुचित

करता है।

दर्शनावरणीय – जो आत्मा में उत्पन्न होने वाली श्रद्धा को नष्ट करता है।

मोहनीय – जो मोह को उत्पन्न करते हुए सदाचरण में बाधक है।

अन्तराय – जो अभीष्ट की सिद्धि में बाधा उत्पन्न करता है।

वेदनीय – जो सुखात्मक और दुःखात्मक वेदना उत्पन्न करता है।

नाम – जो भौतिक व्यक्तित्व का निर्माता होते हैं तथा सौन्दर्य व असौन्दर्य के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

गोत्र – जो कुल का निर्धारण करते हैं।

आयुष्य – जो आयु का निर्धारण करते हैं।

इनमें से प्रथम चार घातीय कर्म कहलाते हैं जो सीधे आत्मा पर आघात करते हैं जबकि अन्तिम चार कर्म अघातीय कर्म कहे जाते हैं जो आत्मा नहीं वरन् शरीर से सम्बन्धित होते हैं। घातीय कर्म आत्मा के ज्ञान, दर्शन और शक्ति नामक स्वाभाविक गुणों का आवरण करते हैं। ये कर्म आत्मा की स्वभावदशा को विकृत करते हैं। अतः जीवन्मुक्ति में बाधक होते हैं। अघातीय कर्म भुने हुए बीज के समान है जिनमें नवीन कर्मों की उत्पादन क्षमता नहीं है। वे कर्म परम्परा का प्रवाह बनाए रखने में असमर्थ होते हैं और समय की परिपक्वता के साथ ही अपना फल देकर सहज ही अलग हो जाते हैं। जैन दर्शन में बन्धन के पांच कारण हैं –

मिथ्या दर्शन – अज्ञानता की स्थिति

अविरति – वैराग्यभाव या व्रताभाव

प्रमाद – उन्मन्तता या भूल चूक

कषाय – जिसके अन्तर्गत क्रोध, लोभ, मान, माया आते हैं।

योग – जिसका अर्थ कायिक, मानसिक, वाचिक क्रिया से है।

इससे बचने के लिए सम्यकत्व (ज्ञान), वैराग्य या विरति, अप्रमाद अकषाय और अयोग को आवश्यक माना गया है।

अन्तिम कर्म पुद्गल भी जब नष्ट हो जाता है तो वह अवस्था मोक्ष या मुक्ति या कैवल्य कहलाती है। यह भी भाव मोक्ष और द्रव्य मोक्ष दो रूपों में नाश होता है। भाव मोक्ष में केवल घातीय कर्मो का नाश होता है यह अवस्था जीवन्मुक्ति कहलाती है। ऐसा साधक केवली कहलाता है। द्रव्य मोक्ष जहां अघातीय कर्मों का भी नाश हो जाता है। उसे विदेह मुक्ति कहते हैं और ऐसे साधक मुक्त कहलाते हैं।

जीवन्मुक्त विदेहमुक्त को क्रमशः सयोग केवली और अयोग केवली भी कहा जाता है। आध्यत्मिक विकास के लिए मिथ्या दर्शन से लेकर अयोग केवली तक कुल १४ सोपान है जिन्हें 'गुण स्थान' कहा जाता है।[४] इनमें तेरहवाँ सयोग केवली और चौदहवाँ अयोग केवली कहलाता है।

"**मुक्त दशा** में एक साथ तीन घटनाएं घटित होती हैं। जीव का शरीर से विच्छेद हो जाना, विच्छेद रहित होकर उर्ध्वगमन और लौकिक आकाश के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच जाना जिसे जैन दर्शन में सिद्धशिला कहा जाता है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप अनन्त चतुष्ट्य का साक्षात्कार कर लेती है। मुक्त आत्मा स्थायी रूप से यहां रहती है।"[५]

आत्मा की विभाव अवस्था (वासना मल से युक्त) बन्धन है और स्वभाव अवस्था विशुद्ध आत्म तत्व की अवस्था मुक्ति मोक्ष है।

जीव के बंधन से मोक्ष की यात्रा के विभिन्न सोपान हैं आश्रव, बंध, संवर निर्जरा, मोक्ष। 'आश्रव' का अर्थ है कर्म पुद्गलों का आत्मा की ओर प्रवाह, कर्म पुद्गलों के लिए द्वार खोलना। आश्रव शब्द, क्लेश या मल का बोधक है। आश्रव के दो भेद हैं। (१) भावाश्रव (२) द्रव्याश्रव है। भावाश्रव कारण है और द्रव्याश्रव कार्य है जैसे शरीर में तेल का लेपन और धूलकणों का चिपकना। तार्किक दृष्टि से यह पूववर्ती और अनुवर्ती है किंतु सामयिक दृष्टि से दोनों समानान्तर एक साथ घटित होती हैं। आश्रव बन्धन का कारण है।

'बन्ध' अर्थात् बन्धन के भी दो भेद हैं भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध। भाव बन्ध मानसिक स्थिति है जिसमें जीव अपने ही रागद्वेषों से बंधता जाता है जबकि कर्मों द्वारा जीव के वास्तविक बन्धन को द्रव्यबन्ध कहा जाता है। यह कार्य द्रव्यों का जीव के साथ वास्तविक संयोग है। कर्म बन्ध के चार भेद हैं।[६]

प्रकृति बन्ध– इसका आधार जीवों को बांधने वाले कर्मों की प्रकृति है। स्थिति बन्ध– इसका आधार वह समय है जिसके लिए कर्मों ने जीवों को बांधा है। अनुभाग बन्ध– इसका आधार है कर्मो ने जीवों को जिस तीव्रता से बांध रखा है। प्रदेश बन्ध – इसका आधार है कर्म जीव के कितने हिस्से को बाँधते हैं।

जब बंधक का कारण कर्म पुद्गलो का जीव की ओर प्रवाह है तो मोक्ष के लिए कर्म प्रवाह को रोकना मोक्ष का पहला कदम होगा। अतः साधक को कर्म पुद्गलों का जीव की ओर प्रवाह रोकना होगा। यही अवस्था 'संवर' कहलाती है जब कर्म पुद्गलों का आत्मा की ओर प्रवाह रुक जाता है। संवर भी भाव संवर और द्रव्य संवर दो रुपों में होता है। संवर सदाचरण से ही संभव होता है। गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चरित्र वे साधन है जिनसे संवर संभव होता है।

संवर द्वारा कर्म पुद्गलों के लिए द्वार बंद हो जाने के बाद

जीव की ओर पूर्व मे जिन कर्म पुद्गलों का प्रवाह हो चुका था उनको नष्ट किया जाना जरुरी है जिसका आशय तपस्या या तप है। पूर्व सम्बद्ध कर्मों से जीव को छुड़ाना 'निर्जरा' है। निर्जरा भी दो प्रकार की है अवियास और सवियास निर्जरा। कर्मो को फल देने से पूर्व ही तपादि द्वारा जीव से बाहर निकालना अवियास निर्जरा तथा फल प्रदान करने के बाद कर्म का आत्मा से अलग होना सवियास निर्जरा है। निर्जरा भी भाव और द्रव्य दोनों रुपों में संभव होती है।

मोक्ष प्राप्ति के मार्ग- जैन दर्शन का मोक्ष प्राप्ति का मार्ग नैतिक अथवा आचरण संबंधी मार्ग है। त्रिविध साधना मार्ग - जैन दर्शन में मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्रिविध साधना की चर्चा की गई है। तत्वार्थ सूत्र में सम्यक् ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक् चारित्र को मोक्ष मार्ग माना गया है। ''सम्यक दर्शन ज्ञान pfj =f.k ek§k ekxZ"[७] त्रिविध साधना मार्ग के पीछे जैन आचार्यों की मनोवैज्ञानिक सोच थी कि मानवीय चेतना के तीन पक्ष होते हैं। ज्ञान, भाव और संकल्प। इन तीनों पक्षों के विकास के लिए ही त्रिविध मार्ग अपनाया गया। भावात्मक पक्ष का विकास सम्यक दर्शन से, ज्ञानात्मक पक्ष का विकास सम्यक् ज्ञान और संकल्पनात्मक पक्ष का विकास सम्यक् संकल्प के माध्यम से होता है। जहाँ कुछ भारतीय दार्शनिक त्रिविध मार्ग के किसी एक पक्ष को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन स्वीकार कर लेते हैं जैसे शंकराचार्य मात्र ज्ञान से, रामानुज मात्र भक्ति से वहीं जैन दार्शनिक ज्ञान, भक्ति, कर्म तीनों की समवेत साधना को मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग मानते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार दर्शन के बिना ज्ञान और ज्ञान के अभाव में सम्यक् आचरण संभव नहीं होता है। इसलिए मोक्ष अथवा मुक्ति के लिए तीनों अंग अनिवार्य हैं

सम्यक् दर्शन - यद्यपि जैन आगमों में दर्शन शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जैसे अन्तर्बोध, प्रज्ञा, दृष्टि, श्रद्धा आदि। इनमें से श्रद्धापरक अर्थ ही अधिक संगत जान पड़ता है। अतः सम्यक् दर्शन का अर्थ तीर्थंकरों एवं उनके प्रतिपादित नैतिक उपदेशों या सिद्धान्तों में श्रद्धा रखना है।

सम्यक् ज्ञान - जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान के भी दो अर्थ हैं। व्यवहार दृष्टि से जीवादि तत्वों के स्वरुप को समझना जबकि निश्चय दृष्टि से सम्यक् ज्ञान आत्म - अनात्म विवेक है। अनात्म के स्वरुप को जानकर अनात्म से आत्म का भेद करना। इस प्रकार जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान आत्म-अनात्म विवेक है। आचार्य अमृत चन्द्र सूरि के अनुसार ''जो सिद्ध हुए हैं वे इस आत्म-अनात्म के विवेक ज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जो बन्धन में हैं वे इसके अभाव के कारण ही हैं।''[८]

सम्यक् चरित्र - सम्यक चरित्र के भी जैन परम्परा में दो भेद स्वीकार किए गए हैं- व्यवहार चरित्र और निश्चय चरित्र। आचरण के विधि निषेध व्यवहार चरित्र जबकि मानसिक पवित्रता निश्चय चरित्र है। नैतिकता की दृष्टि से निश्चय चरित्र और सामाजिक दृष्टि से व्यवहार चरित्र का महत्त्व है। निश्चय चरित्र का सच्चा अर्थ समभाव या समत्व की उपलब्धि है और इसमें व्यवहार चरित्र सहायक है। निश्चय चरित्र मुक्ति का सोपान कहा जाता है।

व्यवहार चरित्र का सम्बन्ध मन, वचन कर्म की शुद्धता और उसके लिए नियमों के पालन से है। इसके दो रुप हैं - आगार धर्म (गृहस्थ धर्म) अनागार धर्म (मुनि धर्म)।

गृहस्थ धर्म - जैन दार्शनिकों ने गृहस्थ धर्म के लिए षड्कर्तव्य, बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमाओं की चर्चा की है।

षड्कर्तव्य - ग्रहस्थ के लिए अनिवार्य कर्तव्य छः हैं- १ देवपूजा, २. गुरु की सेवा, ३. स्वाध्याय, ४. संयम, ५. तपस्या, ६. दान।

बारह व्रत - १. अहिंसाणुव्रत - प्राणियों की हिंसा न करना। उनकी शक्ति से अधिक काम न लेना २. सत्याणुव्रत - धोखे की भावना से असत्य वचन न बोलना, दूसरों के रहस्य को न खोलना, ३. अचौर्याणुव्रत - चोरी, करों की चोरी न करना, ४. स्वपत्नी संतोष व्रत - स्वपत्नी अथवा स्वपति से संतुष्ट रह कर काम वासना को नियंत्रित करना, ५. परिग्रह परिणाम व्रत - परिग्रह की सीमा, इच्छाओं को सीमित रखना, ६- दिशा परिमाण व्रत - व्यवसाय एवं मनोरंजन का क्षेत्र निश्चित रखना। ७. उपभोग - परिभाग परिमाण व्रत उपभोग की वस्तुओं को सीमित रखना। ८. अनर्थदण्ड विरमण - निरर्थक (अनावश्यक) संग्रह न करना। ९. सामयिक व्रत - समभाव की साधना करना। १०. देशावकाशिक व्रत- सांसारिक क्रिया कलापों से आंशिक रुप से निवृत रहना, ११. प्रोषधोपवास - उपवासपूर्वक धर्म साधना करना। १२. अतिथि संविभाग - निर्धन, रोगी, वृद्ध, मुनियों की भोजन, वस्त्र आदि से सेवा करना।

ग्यारह प्रतिमाएं - साधक (गृहस्थ) जीवन की सााधना के क्रमिक विकास के लिए भूमिकाएं निर्धारित की गई जिन्हें प्रतिमाएं कहते हैं- १. दर्शन प्रतिमा, २. व्रत प्रतिमा, ३. सामयिक प्रतिमा, ४. पोषध प्रतिमा, ५. नियम प्रतिमा, ६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ७. संचित त्याग प्रतिमा ८. आरम्भ त्याग प्रतिमा, ९. परिग्रह त्याग प्रतिमा, १०. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा और ११. श्रमणभूत प्रतिमा।

मुनिधर्म - मुनिधर्म में षडावश्यक, पंचमहाव्रत, रात्रि भोजन

निषेध, पंच समिति, तीन गुप्ति दस यति धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाइस परीषह का वर्णन किया गया है-

षडावश्यक - अनिवार्य कर्तव्य छः हैं - १. सामयिक २. स्तवन (तीर्थकरों का गुण- गान) ३. गुरु-बन्दन, ४. प्रतिक्रमण (पापालोचना), प्रत्याख्यान (त्याग) और कायोत्सर्ग (ध्यान)।

इसके पश्चात् भिक्षुओं के लिए बताए गए पंचमहाव्रत आते हैं - सत्य का तात्पर्य है सदैव सत्य बोलना। अहिंसा का तात्पर्य है कायिक, मानसिक, वाचिक हिंसा से वचना। अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। अपरिग्रह का अर्थ है संचय न करना। ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है स्त्रियों से कोई सम्बन्ध न रखना। इन पाँच महाव्रतों को थोड़ा शिथिल करते हुए गृहस्थों के लिए अणुव्रत बताए गए हैं।

जैन दर्शन में मोक्ष के लिए पांच समितियाँ बतायी गयी हैं जिसके अन्तर्गत हैं-

ईर्या समिति - चलने फिरने का संयम हिंसा से बचना

भाषा समिति - मीठा वचन बोलना

एषणा समिति - उचित उपायों से शिक्षा प्राप्त करना।

आदान निक्षेपण समिति - वस्तुओं के आदान प्रदान में संयम रखना

उत्सर्ग समिति - उचित् स्थान पर मल-मूत्र का त्याग करना।

जैन दर्शन में मोक्ष के लिए तीन गुप्तियाँ भी बतायी गयी है। जिसके अन्तर्गत हैं-

वाक् गुप्ति - वाणी का संयम

काय गुप्ति - शरीर का संयम

मनोगुप्ति - मन का संयम

तीन गुप्तियों के बाद बारह अनुप्रेक्षाएं बतायी गयी हैं - किसी विषय का आत्मगत चिंतन अनुप्रेक्षा कहलाता है। अणु प्रेक्षाएं इस प्रकार हैं - १. नित्य संसार की अनित्यता का चिंतन। २. अशरण - जीवन की असहायता का चिन्तन । ३. एकत्व - जन्म जरामृत्यु में कोई साथी नहीं बनता, ४. अन्यत्व - संसार में अपना कुछ भी नहीं होता, ऐसा चिन्तन। ५. अशुचि - शरीर की अपवित्रता का चिंतन ६. संसार के स्वरुप का चिंतन ७. लोक - लोक के स्वरुप का चिंतन ८. आश्रव - बन्धन के कारणों का विचार, ९. संवर के उपायों का चिंतन १०. निर्जरा - निर्जरा के साधनों का विचार। ११. धर्म - धर्म के स्वरुप का चिंतन १२. बोधि - ज्ञान प्राप्ति के उपायों का विचार।

इसके अतिरिक्त दस धर्म - १ क्षमा, २. आर्जव (सरलता) ३. मार्दव (तरलता) ४. शौच (पवित्रता) ५. सत्य (प्रामाणिकता) ६. संयम ७. तप ८. त्याग ९. आकिन्चन्य (निर्लोभता) और १०. ब्रहमचर्य, की चर्चा की गई है। साथ ही परीषद बताये गये हैं।

बाइस परीषह - साधक जीवन में शीत, उष्ण, क्षुधा, व्यास आदि कष्ट आते हैं। उन्हें समभाव पूर्वक सहन करना ही परीषह जय है। इनकी संख्या २२ हैं। परिस्थितियों से चित्त को विक्षोभित न होने देना यही समग्र साधना का लक्ष्य है जो साधक ऐसी मनः स्थिति को प्राप्त कर लेता है वह अपने चरम साध्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

बौद्ध दर्शन में मोक्ष विचार : जैन दर्शन के समान ही बौद्ध दर्शन की उत्पत्ति भी एक आचारशास्त्र के रुप में ब्राहमणवाद के विरोध में हुई और इसने दार्शनिक रुप बाद में ग्रहण किया। बौद्ध दर्शन के प्रवर्तक गौतम बुद्ध का कोई मौलिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। बुद्ध ने मौखिक शिक्षाएं दीं जिन्हे बाद में चलकर उनके शिष्यों ने चार बौद्ध संगीतियों के माध्यम से संकलित किया त्रिपिटकों' के रुप में। त्रिपिटक हैं - विनय पिटक, सुत्तपिटक, अधिधम्म्य पिटक।

बौद्ध धर्म एवं दर्शन की प्रमुख शाखाएं हैं वैभाषिक, सौतान्त्रिक, शून्यवाद और विज्ञानवाद। इनमें से आरम्भिक दो हीनयान और शेष दो महायानी हैं। वसुमित्र ने अपने अष्टादश निकायशास्त्र में तो १८ शाखाओं का उल्लेख किया है। इतनी अधिक शाखाओं का कारण अव्याकृत प्रश्नों पर बुद्ध को मौन माना जाता है, जिसका शिष्यों ने भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण किया।

"सब कुछ अनित्य है, सब कुछ निःसार है तथा केवल निर्वाण में ही शान्ति है।"[६] यह त्रिसूत्री शिक्षा बौद्ध दर्शन का आधार है। भगवान बुद्ध एक व्यवहारिक चिन्तक थे इसलिए उन्होंने तात्विक प्रश्नों में उलझने को समय और शक्ति का अपव्यय माना और इन प्रश्नों को अव्याकृत कह कर वह मौन रह जाते थे। उनके अनुसार मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ी समस्या है दुःख। इसलिए उन्होंने दुःख पर आधारित चार आर्य सत्यों का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख निरोध संभव है और दुःख निरोध के मार्ग।

निर्वाण (मोक्ष) के विषय में बौद्वग्रन्थों में अतिशय परक कथनों की चर्चा की गई है जैसे यह पर्वत से ऊंचा है सागर से गहरा है मधु से मीठा है इत्यादि। निर्वाण के सम्बन्ध में तथ्यात्मक कथन न होने के कारण इसकी भिन्न-भिन्न व्याख्या की गई।

निर्वाण का अर्थ बुझ जाना, पुनर्जन्म से मुक्ति, दुख से मुक्ति, पंचस्कन्धों से मुक्ति आदि। त्रिपिटक में अर्हत्व, असंस्कृत,

अकृत इत्यादि शब्दों का निर्वाण के पर्यायवाची के रुप में प्रयोग किया गया है। हीनयानी बौद्ध दार्शनिक, ओल्डनबर्ग, पॉल दहलके आदि का मानना है कि निर्वाण का अर्थ है बुझ जाना जिस प्रकार दीपक के बुझ जाने से उसका प्रकाश समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार निर्वाण प्राप्ति के पश्चात- मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उसके समस्त दुःखों का अंत हो जाता है। इसे उच्छेदवाद भी कहते है। यह निर्वाण विषयक निषेधात्मक अवधारणा है।

किंतु महायानी बौद्ध दार्शनिक, मैक्समूलर, डॉ० राधा कृष्णन, पूसिन आदि इस मत से सहमत नहीं हैं। इनका मानना है कि बुद्ध के अनेक वचनों में निर्वाण को सभी दुःखों से रहित पूर्णशांति अथवा आनन्द की अवस्था कहा गया है। इस स्थिति में मनुष्य सांसारिक बंधनों और दुःखों से मुक्त हो अपार शांति का अनुभव करता है। निर्वाण के इसी स्वरुप को 'धम्मपद' (२०२-२०३) में कहा गया है कि निर्वाण लोभ, घृणा तथा भ्रम से रहित पूर्ण शांति तथा आनन्द की अवस्था है सुन्त पिटक के एक भाग अंगुतर निकाय में भी इसी मत का समर्थन किया गया है।

निर्वाण – 'निर' का अर्थ है नहीं 'वाण' का अर्थ है पुनजर्न्म का पथ अर्थात् निर्वाण का अर्थ है पुर्नजन्म का अंत, दुःखों का अंत जिसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। यह निर्वाण विषयक भावात्मक अवधारणा है जिसमें निषेधात्मक अर्थ समाविष्ट है।

संभवतः इसी अर्थ में बुद्ध ने अपने जीवन काल में ही निर्वाण प्राप्त किया था। कुछ अनुयायी निर्वाण और परिनिर्वाण में भेद करते है जिसे उपाधि शेष निर्वाण और निरुपाधिशेष निर्वाण भी कहते हैं। निर्वाण जीवन काल में और परिनिर्वाण मृत्यु के बाद संभव है। निर्वाण प्राप्ति बुद्ध उपदेशित चार आर्य सत्यों के पालन से ही संभव है।

इन दोनो विचारों से भिन्न एक तीसरा मत सुरेन्द्र नाथ गुप्ता, कीथ आदि विचारकों का है जो निर्वाण को भावात्मक, निषेधात्मक व्याख्या से इतर अवर्णनीय मानते हैं।[१०] बौद्ध धर्मोपदेशक नागसेन निर्वाण को सागर की तरह गहरा, पर्वत की तरह ऊंचा और मधु के समान मधुर मानते है।[११]

एक प्रश्न यह था कि क्या निर्वाण व्यक्तिगत है या सार्वभौम?यह स्वयं का है या मानव मात्र का? स्वयं के लिए प्रयास किया जाय या मानव मात्र के लिए। यहाँ हीनयानी व्यक्तिगत निर्वाण को स्वीकार करते हैं और यहीं कारण है कि हीनयानी मुक्त पुरुष का आर्दश अर्हत् को मानते हैं। जबकि महायानी मुक्त पुरुष का आर्दश बोधिसत्व को मानते हैं जिसका मूल व्रत यह है कि जब तक संसार के सभी जीवधारियों को निर्वाण न मिल जाय प्रयत्न जारी रखना चाहिए। उसे अपने संचित पुण्यों को अंतिम कण तक जीवों के दुःखों को दूर करने के लिए समाप्त कर देना चाहिए।

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनके शिष्यों में उनकी धार्मिक दार्शनिक शिक्षा को लेकर मतभेद था जिसके फलस्वरूप अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का जन्म हुआ। अतएव प्रस्तुत आलेख में भी हम निर्वाण विषयक बौद्ध मत की चर्चा कतिपय शीर्षकों में करेंगे, जैसे आरंभिक बौद्ध दर्शन, हीनयान बौद्ध दर्शन, महायान बौद्ध दर्शन।

आरम्भिक बौद्ध दर्शन में देखें तो बुद्ध प्रायः यही कहा करते थे कि "भिक्षुओं मैं तुम्हें दो ही बातों का आदेश देता हूँ दुःख और दुःख निरोध" जिसमें दुःख संसार है और दुःख निरोध निर्वाण है।[१२] अविघा के नाश से भवचक्र या जन्ममरण से मुक्ति संभव है। अविघा निरोध प्रज्ञा से ही संभव है। निर्वाण का अर्थ है बुझना जैसे तेल के क्षय से दीपक बुझ जाता है। वैसे ही अविघा के क्षय से बुद्ध पुरुष निर्वाण को प्राप्त करता है।[१३] बुद्ध ने सभी संस्कृत धर्मो को अनित्य दुःख रुप माना और निर्वाण को असंकृत धर्म कहा है। बुद्ध के अंतिम शब्दों में भी निर्वाण का कथन किया गया है। "भिक्षुओं सब संस्कृत धर्म नश्वर है अप्रमाद के साथ निर्वाण प्राप्त करों।"[१४]

हीनयानी ग्रन्थों में निर्वाण को अविघा, तृष्णा, उपादान एवं उनसे उत्पन्न होने वाले क्लेशों के निरोध के रुप में वर्णित किया गया है। निर्वाण के लिए पुद्गल नैरात्म्य का ज्ञान आवश्यक बताया है जिससे क्लेशावरण का क्षय हो जाता है और निर्वाण की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार तेल के क्षय से दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार क्लेश के क्षय से निर्वाण रूपी शांति मिलती है। स्थविरवाद और स्वास्तिवाद दोनो ने ही निर्वाण को असंस्कृत धर्म, नित्य और अमृत तत्व माना है। निर्वाण को निरोध इसलिए कहा जाता है कि उसमे अविघा, तृष्णा, भव क्लेश आदि समस्त संस्कृत धर्मों का, दुःखों का एवं जन्म मरण चक्र का क्षय हो जाता है। निर्वाण धर्म नहीं वरन् सब धर्मो की धर्मता है वह निरपेक्ष तत्व है।

महायान के प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदाय शून्यवाद और विज्ञानवाद हैं। इनमें से शून्यवाद में अविघा को बन्धन का मूल कारण माना है। "शून्यवाद में निर्वाण चतुष्कोटि विनिर्मुक्त है।"[१५] नागार्जुन अपने द्वंद न्याय के आधार पर सिद्ध करते हैं कि यदि निर्वाण को भावरुप माना जाय तो अन्य भावों के समान वह भी जन्म मरण शील संस्कृत धर्म बन जाएगा यदि उसे अभावात्मक माना जाय तो उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं होगी

अभाव तो भाव के सापेक्ष होता है। निर्वाण को भावाभाव रुप या उभय भी नहीं मान सकते क्योंकि ये प्रकाश और अंधकार के समान विरोधी हैं और निर्वाण को नोभय न भाव न अभाव भी नहीं होगी अभाव तो भाव के सापेक्ष होता है। निर्वाण को भावाभाव रुप या उभय भी नहीं होगी अभाव तो भाव के सापेक्ष होता है। इस कारण निर्वाण सत्, असत्, 'सत् और असत् दोनों तथा न सत् न असत्' चारों कोटियों से परे सर्वदृष्टि प्रहाण, निरपेक्ष और अद्धैत है।

इसी को शून्यता की दृष्टि भी कहा जाता है जो सापेक्ष है। 'क्योंकि व्यवहार की दृष्टि से जो उत्पत्ति विनाशशील संसार है परमार्थ की दृष्टि से वही निर्वाण है। संसार और निर्वाण में भेद नहीं है।[१६] प्रोफेसर शेरवात्स्की लिखते हैं ''इसी विश्व को जब पूर्ण रुप में देखा जाता है तो यह परमत्व है और प्रक्रम रुप में देखा जाता है तो यह प्रपंचात्मक जगत है।''[१७]

योगाचार विज्ञानवाद महायान बौद्धों का दूसरा प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदाय है इसके अनुसार बन्धन को संक्लेश या अशुद्धि और मोक्ष को व्यवदान या विशुद्धि कहा गया है विज्ञान परिणाम अविघाजन्य होने के कारण बन्धन और मोक्ष दोनों ही अविघा कृत हैं क्योंकि अनादि अविघा से कर्म संस्कार उत्पन्न होते है और कर्म संस्कार से विज्ञान। बौद्ध दर्शन में इसी क्रम में प्रतीत्य समुत्पाद या भवचक्र को समझाया गया है। अविघा के नाश से ही विशुद्ध विज्ञान मात्र का साक्षात्कार होता है। यही मोक्ष या निर्वाण है। अविधा कर्म और क्लेश को बन्धन या संक्लेश और निर्विकल्प प्रज्ञा द्वारा इनके नाश को मोक्ष अथवा व्यवदान कहते हैं। विज्ञानवादियों ने त्रिविध सत्ताओं को स्वीकार किया है- परिकल्पित, परतंत्र एवं परिनिष्पन्ना परिकल्पित आत्मा (पुद्गल) और पदार्थ (धर्म) बंध्यापुत्र के समान असत् है। इनका न बन्धन होता है न मोक्ष। परतंत्र प्रतीत्यसमुत्पन्न होने के कारण अनुत्पन्न हैं और इनका भी संक्लेश, व्यवदान संभव नहीं है। इसलिए संक्लेश (बंधन) और व्यवदान (मोक्ष) आगुन्तक धर्म है जो अविघा नाश से निरुद्ध हो जाते हैं।[१८] परंतु व्यवहार में बंधन का नाश जरुरी है। पुद्गल नैरात्म्य के ज्ञान से क्लेशावरण का क्षय तथा धर्म नैरात्म्य के ज्ञान से ज्ञेयावरण का क्षय होने पर एक अद्वितीय विशुद्ध विज्ञान का साक्षात्कार होता है। यदि परिनिष्पन्न आगन्तुक क्लेशों से संक्लिष्ट प्रतीत न हो तो बंधन नहीं होगा और सभी प्राणी मुक्त हो जाएंगे। यदि वह स्वभाव से ही विशुद्ध न हो तो मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं होती।

आगन्तुक अविधा या बन्धन के नाश से परिनिष्पन्न के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं होता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जल को छानकर निर्मल कर लेने से या स्वर्ण को तपाकर शुद्धकर लेने से उसके स्वभाव में कोई कर परिवर्तन नहीं होता और इस प्रकार अविघा ही आती है और अविघा ही जाती है। विज्ञानवाद का एक अन्य नाम योगाचार भी है यही कारण है कि इसमें योगसाधना पर अत्यधिक बल दिया गया हैं जिसमें चार ध्यान, छः पारमिताएं (दान पारमिता, शील पारमिता, शान्ति पारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यान पारमिता और प्रज्ञा पारमिता) दस भूमियाँ इत्यादि का वर्णन किया गया है।

बौद्ध दर्शन में निर्वाण प्राप्ति के साधन : बौद्ध दर्शन में निर्वाण (दुःख निरोध) प्राप्ति के साधन के रुप में आष्टांगिक मार्ग को स्वीकार किया गया है। आष्टांगिक मार्ग उन नैतिक नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने का उपदेश देता है जो वैयक्तिक और सामाजिक कल्याण के लिए अनिवार्य हैं।

आष्टांगिक मार्ग के अनुसार मनुष्य को जीवन में निम्नलिखित आठ नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना अनिवार्य है- (१) सम्यक् ज्ञान अथवा सम्यक् दृष्टि - यह अष्टांगमार्ग का प्रथम अंग है। सम्यक् दृष्टि चार आर्य सत्यों का समुचित ज्ञान। वस्तुओं का जैसा स्वरूप है उन्हें वैसा ही जानना सम्यक् दृष्टि की साधना है। सम्यक् संकल्प - यथार्थ विचार और चिन्तन को सम्यक् संकल्प कहते हैं। हिंसा, राग-द्वेष मोह आदि दुर्गणों तथा सांसारिक विषय- भोगों का परित्याग करने का दृढ़ निश्चय सम्यक् सकंल्प कहलाता है। सम्यक् वचन- यथार्थ और सत्य वचन बोलना सम्यक् वाक् की साधना है। अनुचित और मिथ्या वचनों का त्याग करके सत्य के अनुसार आचरण करना सम्यक वचन है। सम्यक् कर्मान्त- उचित कर्मों का अनुशीलन सम्यक कर्मान्त कहलाता है। हिंसा, द्रोह, दुराचार आदि दुष्कर्मों का परित्याग करते हुए, सदैव शुभ कर्म करना चाहिए। सम्यक् आजीव - सम्यक् आजीव का अर्थ है उचित एवं न्यायपूर्ण उपायों द्वारा जीविकोपार्जन करना। आजीविका जितनी शुद्ध होगी जीवन भी उतना ही शुद्ध होगा। सम्यक् व्यायाम- समस्त बुराइयों को नष्ट करने तथा सदैव सद्कर्म करने का सतत् प्रयास करना ही सम्यक् व्यायाम है। व्यायाम शब्द प्रयत्न या पुरूषार्थ का द्योतक है। इसके अन्तर्गत आत्म संयम, इंद्रिय निग्रह, सभी प्राणियों के कल्याण, शुद्ध विचारों को जागृत करना शामिल है। यह चार प्रकार का होता है - (१) बुरे विचारों को उत्पन्न न होने देना। (२) शुभ विचारों का चिंतन। (३) उत्पन्न हुए विचारों को रोकना और नष्ट करना। (४) उत्पन्न अच्छे कर्मो को सुरक्षित करना। सम्यक् स्मृति- लोभ, मोह, क्रोध आदि दोषों से मुक्त होकर चित्त की शुद्धि करना सम्यक् स्मृति है। स्मृति जितनी ही अधिक दृढ़ होती है,

व्यक्ति उतना ही जागरूक एवं सावधान रहता है। इसमें शरीर, चित्त वेदना तथा संसार को मूल स्वरूप में स्मरण रखा जाता है क्योंकि यथार्थ स्वरूप भूल जाने के कारण दुःख और बन्धन होता है। 'बोधिचर्यावतार' में कहा गया है कि नरक की पीड़ा का स्मरण करते हुए स्मृति को क्षण भर के लिए भी नहीं हटाना चाहिए। सम्यक् समाधि - राग द्वेष आदि द्वंदो के विनाश से उत्पन्न चित की पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करना सम्यक् समाधि है जो अष्टांग मार्ग की चरम अवस्था है। सम्यक् समाधि की चार अवस्थाएं हैं -

१. शांत चित्त से चार आर्य सत्यों का चिन्तन किया जाता है।
२. इस अवस्था में तर्क वितर्क सन्देह दूर हो जाता है। चार आर्य सत्यों के प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है तथा चित् में शान्ति और स्थिरता आती है।
३. इस अवस्था में मन में शान्ति और आन्नद के भाव से हटकर तटस्थता और उपेक्षा का भाव आता है।
४. यह पूर्ण शान्ति की अवस्था है। इसमें दुःख सुख सब नष्ट हो जाते हैं और सत्व निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह पूर्ण प्रज्ञा की अवस्था है।

इन नियमों के निष्ठापूर्वक पालन से प्रज्ञा का उदय होता है जिससे दुःख का अंत होता है। बौद्ध दर्शन का अष्टांग मार्ग भी त्रिविध साधना- शील, समाधि और प्रज्ञा में अर्न्तभूत है। शील का अभ्यास करते हुए सत्व अपने कार्य और वचन पर पूरा संयम रखता है। शील का परित्याग नहीं करना चाहिए। प्रज्ञा यथार्थ ज्ञान है। प्रज्ञा का स्थान बौद्धिक ज्ञान से ऊंचा है। यथार्थ ज्ञान के बिना सदाचार संभव नहीं है और सदाचार के बिना यथार्थ ज्ञान या पूर्णता संभव नहीं है। बुद्ध ने शील और प्रज्ञा को एक दूसरे का पूरक माना है। प्रज्ञा से कामासव, भावासव एवं अविद्यासव का नाश होता है। प्रज्ञा का उदय अखण्ड समाधि में होता है। अष्टांग पथ का पालन करने तथा शील और प्रज्ञा का पालन करते हुए पूर्ण समाधि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इस आष्टांगिक मार्ग के माध्यम से बुद्ध ने अतिशय भोगवाद और कठोर सन्यासवाद के मध य संतुलन बनाया है इसलिए इसे मध्यम प्रतिप्रदा भी कहते हैं। मानव जाति के व्यापक कल्याण के लिए अष्टांगिक मार्ग सराहनीय भी हैं।

इस प्रकार मोक्ष आस्तिक सम्प्रदायों का ही केन्द्रीय विषय नही है अपितु नास्तिक सम्प्रदायों में भी मोक्ष अथवा निर्वाण के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है।

सन्दर्भ

१. शर्मा कार्यानन्द, 'भारतीय दर्शन के मूल सम्प्रत्यय', मोतीलाल बनारसीदास पटना, १९९२, पृ. ६३
२. आचार्य देवेन्द्र सूरि, ''कर्म ग्रन्थ', पृ. १
३. बंदिष्टे, डी.डी., 'भारतीय दार्शनिक निबन्ध', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९९५, पृ. २५५-५६
४. लाड, अशोक कुमार, 'भारतीय दर्शन में मोक्ष विचार', पृ. ४६-५१
५. बंदिष्टे डी.डी., पूर्वोक्त, पृ. १३२
६. वही, पृ. १३६
७. उमा स्वामी तत्वार्थीधगम सूत्र- १, २, ३
८. तत्वार्थ सूत्र १/१, उत्तराध्ययन सूत्र ८/३०, समय सार टीका - १३२
९. बंदिष्टे डी.डी., पूर्वोक्त पृ. १२८
१०. गुप्ता सुरेन्द्र नाथ दास, 'भारतीय दर्शन का इतिहास भाग १', राजस्थान हिन्दी अकादमी, जयपुर, १९८९, पृ. १०६ 'जिस प्रकार भुना हआ बीज अंकरित नहीं होता उसी प्रकार निर्वाण प्राप्त व्यक्ति अनासक्त भाव से कर्म करते हुए बन्धन में नहीं पड़ता। यह अवर्णनानीत अलौकिक अवस्था है।'
११. शर्मा कार्यानन्द, पूर्वोक्त, पृ. ६५
१२. शर्मा सी.डी., 'भारतीय दर्शन : आलोचना और अनुशीलन', मोतीलाल बनारसी दास, पटना, १९९०, पृ. ५९
१३. दीर्घनिकाय-१६ महापरिन्बिबानसुत्त
१४. सौन्दरनन्द १६, २८-२९
१५. शर्मा सी.डी., पूर्वोक्त, पृ. ८६
१६. 'न संसारस्य निर्वाणात किंचिदस्ति विशेषाम'- माध्यमिक कारिका २५/१९
१७. बंदिष्टे डी.डी., पूर्वोक्त पृ. १३०
१८. मध्यांत विभाग का. ५,२२ टीका पृ. १६८

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

आधुनिक शोधों में अकबर महान्

❑ **डॉ. रविशंकर कुमार चौधरी**
❖ **कमल शिवकान्त हरि**

मुगल भारत पर विश्वसनीय अध्ययन एवं इसके सबसे महत्वपूर्ण भाग अर्थात अकबर का शासनकाल भारतीय इतिहास के सबसे नाजुक शोध-क्षेत्रों में से एक है, जैसे कि इसका गहरा संबंध पूर्व विचारों एवं नए विचारों से रहा हो एवं फलस्वरुप अकबर के काल से ही यह मान्यता रही कि ब्रिटिश राज से होते हुए वर्तमान की कई घटनाओं ने बाबरी मस्जिद विध्वंस एवं ऐसी ही घटनाओं को जन्म दिया है। असांप्रदायिक इतिहासकारों ने उन नायकों के सकारात्मक योगदान को नकार दिया है जिनका मुख्य वास्ता मुस्लिम समुदाय एवं विश्वास के प्रति था बल्कि उन्होंने आर्थिक ह्रास के मुद्दे पर विशेष बल दिया है। दोनों तरीकों से इतिहासकारों ने पुर्नमूल्यांकन के तरीकों में अकबर का विविध या अलग तरीके से मूल्यांकन किया गया है। प्रस्तुत आलेख आधुनिक शोधों में अकबर महान के मूल्यांकन को प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

मुगल भारत पर विश्वसनीय अध्ययन एवं इसके सबसे महत्वपूर्ण भाग अर्थात अकबर का शासनकाल भारतीय इतिहास के सबसे नाजुक शोध-क्षेत्रों में से एक है, जैसे कि इसका गहरा संबंध पूर्व विचारों एवं नए विचारों से रहा हो एवं फलस्वरुप अकबर के काल से ही यह मान्यता रही कि ब्रिटिश राज से होते हुए वर्तमान की कई घटनाओं ने बाबरी मस्जिद विध्वंस एवं ऐसी ही घटनाओं को जन्म दिया है।[1] अभी तक की सबसे बड़ी समस्या को मार्शल जी. एस. हॉगसन ने शब्दबद्ध किया है। हिंदू एवं मुस्लिमों ने अपने मतभेदों के दौरान एवं सांप्रदायिकतावादी और असांप्रदायिकतावादी मुसलमानों ने पाकिस्तान के निर्माण का प्रस्ताव दिया और तैमुरी काल के आधुनिक सिद्धांतों के लिए जाँचपरक सुविधा उपलब्ध कराई है। कुछ विद्वानों ने इस्लामिक सिद्धांतों पर जोर दिया है कि जबकि कुछ ने अपने समय के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के भारतीय परिपेक्ष्य पर गौर कराया है। मुस्लिम साम्राज्य के पतन की व्याख्या का सार्वजनिक चर्चा एवं विवाद की बढ़ोतरी में विशेष योगदान रहा है। प्रारंभिक ब्रिटिश इतिहासकारों ने यह प्रमाणिक सिद्धांत दिया है कि, अकबर ने अपने साम्राज्य का निर्माण एवं विस्तार धार्मिक संगठनों की आपसी सहिष्णुता के आधार पर किया जबकि औरंगजेब ने सांप्रदायिक नीति अपनाकर अन्य धार्मिक संगठनों को अपने विरोध में कर लिया और अपने साम्राज्य का भी नाश कर दिया। मुस्लिम सांप्रदायिक इतिहासकारों ने इस सिद्धांत को अलग मोड़ देते हुए लिखा है कि औरंगजेब धर्म के प्रति अपनी कर्तव्यनिष्ठा के चलते नायक बन गया t cfd vdcj [kyuk;d cu x;kA[2]

मार्शल आगे कहते हैं, असांप्रदायिक इतिहासकारों ने उन नायकों के सकारात्मक योगदान को नकार दिया है जिनका मुख्य वास्ता मुस्लिम समुदाय एवं विश्वास के प्रति था बल्कि उन्होंने आर्थिक ह्रास के मुद्दे पर विशेष बल दिया है। ''दोनों तरीकों से इतिहासकारों ने पुर्नमूल्यांकन के तरीकों में अकबर का विविध या अलग तरीके से मूल्यांकन किया गया है।''[3] फर्नांड ब्रॉडेल के मुगल भारत पर किए गए सर्वेक्षण, जो कि उस समय 'विश्व की सर्वश्रेष्ठ अर्थव्यवस्था' का सबसे महत्वपूर्ण भाग था, इतिहासकारों के लिए एक दूसरी समस्या खड़ी कर दी, जो लोग उन्हीं के तरह विश्वसनीय खोजों की तलाश में थे अर्थात बीते कुछ दशकों में भारत, चीन आदि देशो में इस्लाम दुर्लभ रूप से प्रकट हुआ यहाँ तक कि पारंपरिक इस्लामवादियों की रुचि भी अद्वितीय तरीके से सामने आई। ''और तो और, पूर्वी राष्ट्रों के मुद्दों में दिलचस्पी रखने वाले विद्वानों का झुकाव भाषा एवं संस्कृति पर ज्यादा, और समाज एवं अर्थव्यवस्था पर कम रहा है और पूर्वी राष्ट्रविद, भाषाविद एवं सांस्कृतिक विशेषज्ञ होना सामाजिक एवं आर्थिक इतिहासकार होने के मुकाबले ज्यादा पसंद करते हैं।''[4] इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय इस्लाम को विश्व इस्लाम के इतिहास में उसकी वास्तविक जगह नहीं मिली। आश्चर्य की बात है कि भारतीय इस्लाम की विचित्र प्रकृति की तुलना इस्लाम के अन्य रूपों से करने की कुछ कोशिशें की गई है। इसका नतीजा यह हुआ कि

❑ **पोस्ट डॉक्टरल फेलो, इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)**
❖ **शोध अध्येता, इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)**

भारतीय इस्लाम के कई पहलुओं का समावेश इस्लाम की सभ्यता संस्कृति के आम बुनियादी ढाँचें में अभी तक नहीं हो पाया है। वहीं दूसरी ओर, भारतीय इतिहास के सांप्रदायिकतावादी नजरिए के कारण भारतीय इस्लाम भारतीय इतिहास का प्राकृतिक रुप से हिस्सा नहीं बन पाया है। यह अस्वीकृति की टिप्पणी इतिहासकारों के मध्य श्रम के अशुभकारी विभाजन के तौर पर की गई है। इस स्थिति का गवाह है इतिहासकारों में कार्य क्षेत्रों का बँटा होना। पिछले कुछ दशकों को छोड़ दें, तो इस्लामी इतिहास को मुसलमान इतिहासकारों ने सँवारा है, जबकि हिंदू इतिहासकारों ने पिछले कुछ दशकों में इसमें बदलाव देखने को मिला है। इस प्रक्रिया को ब्रॉडेल कुछ यूँ समझाते हैं : ''सबसे अच्छी बात तो यह है, कि पिछले बीस से तीस सालों में, जिस तरह उन्होंने अपने देश के प्रति रुख अपनाया है जो अब यूरोपीय राष्ट्रों के शासन से मुक्त हो चुका है, और जिस तरह पूर्वी इतिहासकारों की संख्या में जो इजाफा हुआ है और जिन्होंने एक नए सिरे से ऐतिहासिक घटनाओं को संजोना शुरू किया है, इससे लुशियन फेवर की इस बात का प्रमाण मिलता है जिसे उन्होंने ''समस्या-आधारित इतिहास'' करार दिया था। ये इतिहासकार नए इतिहास के कारखानों के उम्दा कारीगर रहे हैं, जिनकी मेहनत का परिणाम नई किताबों एवं जर्नलों में दिखने लगा है। इस मामले में हम किसी दूरगामी क्रांति के कगार पर खड़े हैं।"[५] इसलिए हम यह कह सकते हैं कि ''अलीगढ़ विद्यालय'' (इरफान हबीब, मोहम्मद अतहर अली, शीरीन मूसवीं, इक्तिदार आलम खान आदि) एवं अन्य भारतीय विद्वान (जैसे सतीश चंद्र, जे० एस० ग्रेवाल आदि) के बेहतरीन कार्यों को जब कोई "वर्तमान मानसिकता वाले" व्याख्या कहता है, तो यह गलत होगा। इन विद्वानों ने, नए स्रोतों का इस्तेमाल करते हुए कुछ बेहतरीन ऐतिहासिक जर्नलों को बनाया : वह भी राजनीति से प्रेरित "वर्तमान मानसिकता" को तोड़ते हुए।[६] द कैंब्रिज इकोनहमिक हिस्ट्री अहफ इंडिया (चैप्टर-१२००-१७५०) का प्रथम भाग इस नवीन भारतीय विद्वत्ता का प्रमाण है।[७]

पिछले कुछ वर्षों में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में अकबर पर १९९२ के अक्टूबर माह में हुए दो सेमीनारो में किया गया अनुसंधान, जो अकबर के काल और उसके अद्वितीय व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है उसके साम्राज्य के कई अलग-अलग पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करता है।[८] जिससे अकबर के इतिहास को न केवल भारतीय इतिहास में बल्कि विश्व इतिहास में भी उसके सही परिपेक्ष्य में रखा जा सकेगा। हम अपने संक्षिप्त निरीक्षण में उन्हीं विशाल अध्ययनों के कुछ नमूनों पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जिससे यह बात सिद्ध होगी कि अकबर पर किए गए नवीन अनुसंधान किस प्रकार वास्तविक एवं क्रांतिकारी है।

१९९२ में हुई दोनों सभाओं के प्रतिभागियों ने कई अनोखी चीजों की पेशकश की, पर अकबर पर होने वाले आगे के अध्ययनों में इनका इस्तेमाल कर पाने में काफी समय लग सकता है। यहाँ तक कि प्रतिभागियों की संख्या एवं लेक्चरों की श्रेणी का बड़ा फैलाव भी आदरणीय है। अलीगढ़ में ३४ लेक्चर दिए गए और नई दिल्ली में ३१ प्रतिभागियों ने अकबर और उसके काल विषय पर अपना योगदान दिया। इसी समय मे सामाजिक वैज्ञानिकों ने अकबर के जन्मदिन पर दो प्रकाशन किए,[९] जिसमें सात पेपर प्रकाशित हुए एवं सतीश चंद्रा, जे० एस० ग्रेवाल और इरफान हबीब द्वारा दिए गए भाषणों के कई पहलुओं पर संक्षिप्त चर्चा की गई है। ज्यादातर पेपर जो सामाजिक वैज्ञानिकों ने प्रकाशित किए, वे अकबर के कार्यकाल के वैसे पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं, जिनसे अकबर ने अपने राज्य में सांप्रदायिकता को खत्म करने का प्रयास कर एक मिलनसार समाज बनाने का सपना देखा था। अगर वे सफल हो जाते तो पूर्व-आधुनिक भारत की नींव रखने में एक महत्वपूर्ण कदम होता।

इरफान हबीब ने अपने "अकबर एण्ड टेक्नोलहजी" नामक पेपर में अकबर के प्रौद्योगिकी के नजरिए की सफलतापूर्वक व्याख्या की है, जो तात्कालिक यूरोपीय एवं फारसी साहित्य पर आधारित है। खासकर फारसी के आरीफ कंधारी के "तारीख-ए-अकबरी" और अबुल फजल के "आइन-ए-अकबरी" को ध्यान में रखा गया है। इन स्रोतों से यह सिद्ध होता है कि अकबर ने प्रौद्योगिकी विकास में, जिसमें कपड़ों की बनावट का विकास, पानी निकालने के यंत्र एवं स्वचालित हथियार शामिल हैं- में खासी दिलचस्पी दिखाई थी। इस क्षेत्र में अकबर की दूरदर्शिता ने रूसी जार पीटर द ग्रेट आदि को भी मान्यता दिलाई। वैसे तकनीकी विकास की सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि उसे गाँवों के मजदूर वर्ग को कोई फायदा नहीं हुआ। इरफान हबीब के अन्य पेपरों से हमें जो कारण मिलता है[१०] वह यह है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अत्यधिक निर्भरता सस्ते मजदूरी पर थी, जिसके कारण तकनीकी विकास की महत्ता नहीं आंकी जा सकी।

इक्तिदार आलम खान ने अपने पेपर "अकबर्स पर्सनल ट्रेट्स एण्ड वर्ल्ड आउटलुक, ए क्रिटिकल रिप्रेजल" में अपने शोध को जारी रखते हुए उसकी सार्थकता को और मजबूत किया है।[११] उनकी एक बेहतरीन कोशिश रही है अकबर के

धार्मिक विकास का आकलन ऐतिहासिक एवं मानसशास्त्र के आधार पर करना। लेखक ने कई जगहों पर अकबर को लेकर साधारण धारणा को चुनौती देते हुए उनके भावभंगी, जैसे कि शियाओं को लेकर सूफी अभियान को लेकर, या मुस्लिम कट्टरपंथ को चुनौती देते हुए लिखा है कि उनकी सोच स्थाई नहीं थी, जैसा कि पहले सोचा गया था। इक्तिदार आलम खान की सबसे बड़ी श्रेष्ठता इस बात में है कि उन्होंने अकबर के व्यक्तितव को एक बदलते क्रिया के तौर पर देखा है, जहाँ उनकी मानसिकता में लगातार बदलाव होते रहता है। इस तरह से सोचने पर हमें यह महसूस होता है कि अपने राज के अंतिम दौर में अकबर ने कट्टरपंथ इस्लाम के लिए कड़ा रवैया अख्तियार किया था। इस बात पर इक्तिदार आलम खान ने बिल्कुल सही ढंग से अतहर अली के पहले के वाक्यों को सुधारा है।[१२]

सामाजिक वैज्ञानिकों के बाकी पेपरों में, अकबर की काफी गहरी चाहत, जो वसुधैव कुटुंबकम को लेकर भी एवं जो तात्कालिक भारतीय सोच से मिलती है,[१३] इस बात पर प्रकाश डालती है कि अकबर ने एक समष्टियुक्त सभ्यता बनाने की कोशिश की थी।[१४] वैसे ही कुछ पेपर तत्कालिक राजस्थानी एवं जैन साहित्य पर प्रकाश डालते हैं,[१५] जिससे अकबर की एक बेहतर एवं स्पष्ट तस्वीर पेश की जा सके। उसके बाद भी ये योगदान विस्तृत रूप से सारे तात्कालिक तत्थों एवं सबूतों पर प्रकाश नहीं डालते, अलग-अलग धार्मिक एवं सांस्कृतिक नजरिए से अकबर की क्रांतियों एवं व्यक्तित्व को नहीं देख पाते हैं। फिर भी इस दिशा में किया यह पहला कदम है।

मोहम्मद अतहर अली के पेपर अकबर के युग में संस्कृत और फारसी सभ्यता के बीच परस्पर संबंधों का निरीक्षण करता है। विंसेंट स्मिथ ने इस प्रक्रिया की महत्ता को ना समझते हुए एक नकारात्मक रवैया अख्तियार करते हुए कहा है : ''आजकल शायद कोई भी बदाँयूनी एवं दूसरे लोगों द्वारा, अकबर के कहने पर, संस्कृत के अनुवादों को नहीं पढ़ता है, जिसे करने में अत्यंत मेहनत लगी थी। उनकी साहित्यिक काबिलियत पर एक सही आकलन प्राप्त कर पाना लगभग असंभव सा है, और उसके बावजूद लगता नहीं है कि उससे कोई फायदा होगा।''[१६]

दोनों सभ्यताओं के समागम का प्रश्न विश्व के इतिहासकारों के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण रहा है, जिससे बहुत गिने चुने इतिहासकारों ने ही समझा है और दोनों सभ्यताओं के रहस्यमयी "चुनाव पर आधारित लगाव" की व्याख्या कर पाने में सक्षम रहें जिसे Wahlver Wandschaft भी कहा गया है। अकबर के युग पर की गई अधिकतर शोध क्रियाओं की मुसीबत यह है कि वे खुद को अबुल फजल और बदायूँनी के बयानों से संतुष्ट हो जाते हैं, वह भी अपने वक्तव्यों की मूल स्रोतों से तुलना किए बगैर। इस दिशा में पहला कदम मुस्तफा खलिकदाद के प्रकाशन 'अब्बासी पंखकख्याना' के द्वारा की गई, जिसमें दो विद्वानों ने प्रस्तावना लिखी है। यह दो संपादक है ताराचंद और एस० जे० एच० अबीदी, जिन्होंने असली संस्कृत स्रोतों (पूर्णभद्रा पंखकयनाका) और उनके साहित्यिक अनुवादों में एक वफादार समानता दिखाई है। दोनों संस्कृतियों में परस्पर संबंध की गहरी चर्चा करते हुए एक बात का विश्लेषण करते वक्त यह पता चलता है, कि दोनों फारसी और अरबी विद्वानों की कई लहरें आई जिन्होंने भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने की बहुत कोशिश की, परंतु भारतीय विद्वानों द्वारा समान प्रयास नहीं किए गए।

कुछ चुने गए सामाजिक वैज्ञानिकों के पेपरों में कठिन विवरण किया गया है "पाकिस्तानी पुस्तकों में अकबर" जिसे मुबारक अली ने लिखा है, के विषय में जिन्होंने पाकिस्तान में इतिहास शिक्षा के बिगड़ते स्तर की चिंताजनक स्थिति की व्याख्या की है। वे चर्चा करते हैं उस वक्त की, जब साठ के दशक में अमेरिकी दबाव में इतिहास के विषय को पूर्णतः समाजशास्त्र से बदल दिया गया (जो इतिहास, राजनीतिक, अर्थशास्त्र एवं भूगोल का मिश्रण था) और बाद में इस मसाले को राज्य सिद्धांत प्रचार मंडली का हिस्सा बना दिया गया। इस विषय के अध्ययन हेतु "केवल वैसे इतिहास के पृष्ठों को शामिल किया गया जो दो-राज्यों के सिद्धांत को बल देता है एवं एक पूर्ण भारत के मिलनसार स्वभाव से किनारा कर लेता है। चूँकि अकबर इस स्थिति में प्रभावशाली प्रतीत नहीं होता, उन्हें बहुत बारीकी से नजरअंदाज कर दिया जाता है और प्रथम कक्षा से मैट्रिक की पढ़ाई तक चर्चा नहीं की जाती है।" ये मानसिकता एक तर्कधारित नतीजा है संप्रदायिकतावाद का, जो भारत से नफरत करना सिखाता है। यह बिल्कुल विपरीत है अकबर ने जिस का सपना देखा था।

इस परिपेक्ष में इस बात की चर्चा करना सही होगा कि भारतीय पुस्तकों में अकबर और उनके राज को कितनी तवज्जो मिलती है। मेरे नजरिए में, इस बात का गहन अध्ययन करना काफी कठिन हो सकता है कि यूरोपीय और अमेरिकी पुस्तक भारतीय इतिहास को कितनी तवज्जो देते हैं, और उसमें भी इस्लामिक काल को, और कैसे पिछले कुछ दशकों में इसके प्रति नजरिया बदला है। यूरोप में ज्यादातर विश्वविद्यालयों में इससे संबंधित शिक्षा व्यवस्था की बनावट उन्नीसवीं सदी के

अंत की ओर बन सका। उन दिनों में यूरोप खुद को (हीगेल और मार्क्स के दर्शनशास्त्र के इतिहास के मायने में) प्रखर करने में व्यस्त कर रखता है। ये बात महत्वपूर्ण है कि यूरोपीय लोग तात्कालिक इतिहास को, जो यूरोप के बाहर के लोगों से संबंधित हो, अपनी सफलता से तुलना करते हैं और उसे ही इतिहास की मुख्य धारा मानते हैं। इस तरह कई समस्याओं और लोगों के पूरे इतिहास को ही अनदेखा किया गया है। जैसे कि हंगरी के इतिहास का ध्यान उन्हें उन्नीसवीं सदी के अंत तक आया, और पूर्वी इतिहास की परवाह तब तक नहीं की जब तक कि सीधा अनुवाद इस क्षेत्र से नहीं हुआ। इस इतिहास में, यूनानी एवं रोमन लोगों का जिक्र है, प्राचीन मिस्त्र और इराकी एवं फारसी इतिहास का भी जिक्र है, जबकि भारत का जिक्र सिर्फ तब आता है जब सिकंदर दुनिया जीतने भारत पहुँचा था। विद्यार्थियों को इस क्षेत्र से कोई मतलब तब तक नहीं रहा, जब तक यूरोपिय व्यवसायी इस क्षेत्रों में पूँजीवाद के शुरूआती काल में नहीं पहुँचे। इस मानसिकता के अनुसार, पूर्व के लोग इतिहास के मूल दर्शक थे, जिस पर काफी पहले से, यानी प्राचीन यूनानी से, यूरोपीय लोगों का बोलबाला रहा है। एक तर्क आधारित सैद्धांतिक व्याख्या की जा सकती है “एशियाई निर्माण के तरीके” के आधार पर, जो इतिहास पर पूर्वी लोगों के प्रभाव छोड़ने के सक्षमता पर सवाल खड़ा करता है। लेकिन इस स्थिति में साठ के दशक से बदलाव शुरू हुआ है। हंगरी के विश्वविद्यालयों में भी भारत को अब सही स्थान प्राप्त हो रहा है।

मेरे छोटे से शिक्षण अनुभव के आधार पर मैं संयुक्त राज्य में उपयुक्त पुस्तकों पर टिप्पणी करना चाहता हूँ, अंतिम अस्सी या शुरुआती नब्बे के दशक में। अमेरिका, यूरोप और एशिया से समान दूरी पर स्थित है, जिस कारण से इतिहास के अध्ययन में कोई भेदभाव नहीं है। अतः हमें कुछ पुस्तकें मिल जाती हैं जिनमें यूरोपीय एवं एशियाई इतिहास को जोड़कर पढ़ाया गया है, इस बात को ई० मैकनॉल बर्न्स ने अपनी प्रख्यात पुस्तक में कुछ इस तरह दर्शाया है : ‘‘वो जमाना कब का गया जब आधुनिक मनुष्य दुनिया को संयुक्त राज्य और यूरोप तक सीमित मानता था। पश्चिमी संस्कृति को मूलतः यूरोपीय मूल का माना जाता है। लेकिन यह कभी भी इतना निशेधक नहीं रहा है। इसकी असली नींव दक्षिण पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका में रखी गई है। इनको काफी मदद भारत से, और धीरे-धीरे चीन से भी मिली है। भारत और मध्य पूर्व से पश्चिम को शून्य का ज्ञान प्राप्त हुआ, कंपास का, बारूद का, रेशम का, कपास एवं सूत्र का और कई धार्मिक एवं दर्शनशास्त्र के सिद्धांत का भी.........”[१७]

एक दूसरा, थोड़ी ज्यादा आधुनिक पुस्तक में, एक कदम आगे बढ़कर पूर्वी इतिहास और यूरोपीय सफलताओं को बराबर का श्रेय दिया है। कुछ इस तरह लेखकों ने अपनी बात की पुष्टि की है : हमारी दूसरी संस्कृतियों और लोगों को समझ पाने की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि हम उनके इतिहास एवं मूल्यों को समझ पाते हैं या नहीं। इस समय समझ के बिना कोई जिम्मेदार नागरिकता, कोई जागरुक निर्णय या कोई प्रभावशाली संवाद कर शांति और इज्जत प्राप्त करना संभव नहीं है। ये लेखनी इतिहास की हमारी समझ में एक नया रास्ता बनाने का कार्य करती है। ज्यादातर पुस्तकें जो यूरोपीय इतिहास की व्याख्या करती हैं, उनमें केवल गिने चुने गैर-यूरोपीय पाठ ही डाले जाते हैं। विश्व की समस्याएँ शुरू से ही विश्व इतिहास का भाग रही हैं........... एक वास्तविक प्रयास है जो ऐतिहासिक घटनाओं सभ्यताओं, समाजों और श्रद्धाओं को वैश्विक परिपेक्ष में व्याख्या करता है.........”१८

इस तरह से देखे जाने पर अकबर और उनकी सफलताओं को उनकी जगह मिलती दिखती है। उन्हें एक महान शासक के तौर पर दिखाया गया है, जो अपने ”प्रतिद्वंद्वियों पर भारी पड़ते थे” और जिन्होंने कोशिश की : ‘‘भारत के कई सामाजिक वर्गों के प्राचीन संस्कृति और धार्मिक धरोहर को मिलाने की.....जिन्होंने खुद को एक भारतीय शासक के तौर पर देखा, ना कि एक विदेशी आक्रमणकारी की तरह, और शुरू से ही इस बात को समझा कि उनके शासनकाल की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वो भारत के सभी सामाजिक वर्गों को साथ लेकर चल पाते हैं या नहीं....”[१९]

इन कुछ उदाहरणों से इस बात की पुष्टि होती है कि शायद, संयुक्त राज्य में यह शायद यूरोप में ही, हमारे परस्पर इतिहास में रुचि बढ़ती हुई दिख रही है।

मैं अब ध्यान केंद्रित करना चाहूँगा उन पेपरों पर जिन्हें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सेमिनारों में प्रस्तुत किया गया, पर प्रकाशित नहीं किया जा सका।[२०]

शीरीन मूसवी ने अबुल फजल पर लिखे पेपर पर अबुल फजल के जीवन पर किए गए अध्ययन पर गहन अध्ययन की कमी को दर्शाया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि सारी कोशिशें जो विद्वानों ने उनके चरित्र को समझने हेतु की है, वे निराशाजनक रही हैं, उनकी जटिल दुनिया, उनका नजरिया एवं उनकी लेखनी का तरीका जो इतिहास की अद्वितीय चित्र हमारे समक्ष रखता है। अपने पेपर में शीरीन मूसवी ने अपने शुरुआती शोध को आगे बढ़ाया है, जो अबुल फजल के

'अकबरनामा'[21] पर आधारित है और यह दिखाता है कि अकबर के युग के मूलभूत एवं खास चरित्र को, और कैसे इस युग के द्वारा समझा जाना आवश्यक है। वो भारत के इस्लामी इतिहास की खासियत पर जोर देते हुए कहती हैं, कि अबुल फजल ने किन परिस्थितियों में कितने मेहनत एवं निःस्वार्थ भाव से कार्य किया है। एक विस्तृत और गहन अध्ययन जो फजल के जीवन और व्यक्तित्व पर केंद्रित हो, की पहली कड़ी है कठिन तथ्यों को जमा करना, जो एक विस्तृत जाँच प्रक्रिया पर आधारित हो, जैसे मूसवी ने किया। तत्पश्चात् उस जानकारी को क्रमबद्ध करना और तात्कालिक स्रोतों से मिली जानकारी से उसकी तुलना करना, चाहे वे नर्म हो या सख्त, और आखिर में संभवतः आधुनिक एवं आकर्षक सिद्धांतों को अनदेखा करना। अबुल फजल को, अकबर की ही तरह, उनकी युग और उम्र के आधार पर ही न्याय करना सही होगा, ना की बीसवीं सदी के आधार पर।

जे० एफ० रिचर्ड्स ने अपने पेपर[22] में अकबर पर अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण समस्या को हल करने का प्रयास किया है जो अकबर के राज्य निर्माण पर आधारित है। कुछ ही समय पूर्व इस आधारभूत मुद्दे की चर्चा दो अन्य विद्वानों द्वारा की गई है, जिन्होंने मुगल को वेबेरियन के पितृ प्रधान नियम में फिट करने की कोशिश की है। जब तक एस० पी० ब्लैक और पी० हार्डी ने मुगल राज्य के मुख्य पैतृक गुण पर विशेष ध्यान दिया, जे० एफ० रिचार्ड्स इस बात पर बल देते हैं कि अकबर द्वारा निर्मित साम्राज्य पितृप्रधान और नौकरशाही दोनों ही प्रकार का था। यह विचित्र और काफी हद तक कुशल राज्य नौकरशाही और साम्राज्य के हर क्षेत्र पर काबू करने के लिए और सफल पूँजीवादी साम्राज्य के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त केंद्रीयकृत था।

उदाहरण के लिए, राजस्व की बढ़ोत्तरी और कार्य के पुनः बँटवारे वाली समिति का चलन। लेकिन यह मनसबदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ हद तक पितृवादी था क्योंकि स्थानीय सेनाओं को कुछ स्वतंत्रता दी गई थी। राज्य के नागरिकों और सैन्य तत्वों के बीच हमेशा बदलने रहने वाला रिश्ता अकबर जैसे साम्राज्य के सबसे गुप्त गुणों में से एक है जो आंतरिक और बाह्य दोनों (जे० एफ० रिचार्ड इसे सामाजीकरण कहते हैं) प्रवृत्ति का था। अकबर के राज्य के ऐतिहासिक जड़ों का पुनर्निर्माण एवं इसे विस्तृत और इस्लामिक एवं भारतीय, दोनों परिपेक्ष्य में रखा जाना एक चुनौती है। इस जटिल समस्या के व्यवहार के समय कोई यह नहीं भूल सकता कि पारंपरिक इस्लाम में भी, नगर सरकार के नियमित शक्ति ह्रास या सैन्य नियम को देखा जा सकता है, अकबर के राज्य ने, हालाँकि अद्वितीय अनुभव प्रस्तुत किए जिसकी जड़े, तत्त्व और बदलते अनुपातों का परीक्षण किया जाना चाहिए।

सावधानीपूर्वक किया गया परीक्षण ज्यादा जरूरी एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि, द्वितीयक साहित्य और पुस्तिकाओं में मुगल राज्य पर कुछ घिसी-पिटी बातें हैं जिन्हें बिना विद्वत्तापूर्ण छानबीन किए दोहराया गया है। इन बातों में से एक है मुगल राज्य के मध्य एशियाई मूल के होने पर जोर दिया जाना। इस समस्या को रोकने के लिए कुछ कोशिशें की गई हैं क्योंकि इसके लिए, मध्यकालीन भारतीय इतिहास के साथ-साथ मध्य एशियाई अध्ययन या पारंपरिक इस्लाम दोनों के ही विशेषज्ञों की जरूरत है। यह सराहनीय है कि अलीगढ़ सेमिनार के मौके पर, एम० हैदर ने इस समस्या पर ध्यान दिया। मुगल और मध्य एशियाई संस्थाओं के बीच सामंजस्य बैठाते समय, वे उन संस्थाओं के बीच भेद करती है जिनमें वास्तविक बदलाव (सुयुरधल इत्यादि) आया और जिनमें कुछ हद तक सुधार आया ('गाजी-ए-लश्कर' और 'साहिब-ए-तौजिह', सेना का पुर्नावलोकन एवं इकट्ठा होना)। वे उन गुणों को भी वर्णित करती है जिनका मुगल अभ्यास पर असर हो सकता था, उदाहरण के लिए वित्तीय व्यवस्था और राजसत्ता की संकल्पना। लेखिका द्वारा उठाए गए मुद्दों की आगे जांच की जरूरत है। एम० हैदर के पेपर की सबसे बड़ी विशेषता है कि उम्मीद है कि यह विस्तारित अध्ययन को प्रेरणा देगा यह स्वंय लेखिका का कथन है।

बीते दशकों में अकबर पर शोध ने विशेषकर आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में प्रगति की है, परंतु कुछ समस्याएँ अभी भी सुलझाई जानी बाँकी है।[23] के० एस० मैथ्यू, ने दिखाया कि एक समस्या को नए तरीके से प्रकाश में लाया जा सकता है जो कि अब तक मुख्य तौर पर धार्मिक मुद्दा कहा जाता है। अपने पेपर में, टी० आर० डीसूजा अकबर के पुर्त्तगालियों एवं जेस्युइटों के प्रति रवैये को आर्थिक एवं सैन्य नजरिए से देखते हैं। कुछ लेखकों से प्रभावित होकर एम० एन० पीयरसन और शीरीन मूसवीं के सांख्यकीय आंकड़ों[24] का प्रयोग करते हुए लेखक "हज बाजार" का पुनर्निरीक्षण करते हैं जो भारत के समुद्र व्यापार पर आर्थिक महत्त्व होने के साथ-साथ अकबर द्वारा तय किए गए तटीय गुजरात के उच्च महत्त्व का है। वह तीन मुद्दों को विश्वासपूर्वक साबित करते हैं। पहला यह कि अकबर के लिए हज काफी आर्थिक महत्व का था। इसलिए इसके धार्मिक उद्देश्य के अलावा यह आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। दूसरा, यह कि पुर्तगालियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध होना

महत्वपूर्ण राजनयिक निर्णय था जिस कारण अकबर ने पुर्त्तगालियों की उपस्थिति का फायदा उठाकर तुर्कों को सिर उठाने से रोका और शायद हिंद महासागर[२५] में खतरनाक भूमिका निभाने से भी रोका और तीसरा यह कि जेस्युटों से संपर्क अकबर के लिए महत्वपूर्ण था लेकिन मात्र धर्म के लिए नहीं। दो सेमिनारों में प्रस्तुत किए गए कागजों के संक्षिप्त परीक्षण के बाद, हम कुछ मुद्दों और कार्यो की ओर मुड़ते हैं जो अकबर से जुड़े हैं तथा जिन्हें बीते कुछ वर्षों में लिखा गया है। पूर्व ब्रिटिश भारत में "पूँजीपतियों की शक्ति में बढ़ोत्तरी" के समाप्त होने का ब्यौरा दिए बिना मैं एक दिलचस्प पुस्तकें[२६] की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगा, जिसकी सत्रह प्रतियाँ दक्षिण एशिया और विश्व पूँजीवाद पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय कहन्फ्रेंस में प्रकाशित हुई जो कि तुफ्व्स विश्वविद्यालय में ११-१४ दिसंबर १९८६ में मनाया गया। यह हमारे लिए विशेष रुप से रुचिकर है क्योंकि यह विश्व व्यवस्था विशेषकर आई० एम० वेलरस्टेन और बड़ी संख्या में इतिहासकार जो भारतीय इतिहास की व्याख्या कर रहे हैं के बीच मनमुटाव को साफ जाहिर करता है। ज्ञातव्य है कि वेलरस्टेन के पास सामंतवाद से लेकर पूँजीवाद तक परिवर्त्तन को लेकर कम या ज्यादा मजबूत पक्ष है। उनके सिद्धांत ये सिद्ध करते हैं कि विश्व में एक वैश्विक अर्थव्यवस्था (पूँजीवाद) होना चाहिए, जो आगे चलकर तीन खंडों में परिवर्त्तित होते हैं :

क. शुरूआती दौर में सामंतवादी यूरोप का पूँजीवादी वैश्विक अर्थव्यवस्था में परिवर्त्तन

ख. यह परिवर्त्तन बाद में बाहरी गैर पूँजीवादी व्यवस्थाओं से वर्त्तमान और आवश्यक पूँजीवादी विश्व-अर्थव्यवस्था द्वारा अनुकरण किया गया और

ग. परिवर्त्तन की तीसरी कड़ी है, गरीब वर्गों के मेहनत में और पूँजीवाद विश्व अर्थव्यवस्था में भूमि का व्यापारीकरण में विस्तार। इस सिद्धांत के अनुसार, उनके मैग्नम ओपस के प्रथम संस्करण में मुगल भारत और हिंद महासागर सिर्फ अधिकार[२७] करने योग्य भूमि के अंतर्गत आते हैं और भारत में पूँजीवाद में परिवर्त्तन इंग्लैंड द्वारा अपने विश्व पूँजीवाद में सम्मिलन द्वारा C-१७५० और C-१८२० के बीच हुआ है, जब भारत में कपड़ों के व्यापार के नाश के साथ आर्थिक आत्मनिर्भरता खत्म हो गई[२८] इस ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में आंतरिक मुद्दों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है। जो विद्वान, वास्तविक ऐतिहासिक क्रमों पर ध्यान देते हैं जो ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से आगे बढ़ती है, उन्हें भारत के पूँजीवादी विकास का अधिक विस्तृत रूप दिखेगा।

उदाहरण के लिए सी० ए० बेली ने, अपने पेपर[२९] में ऐतिहासिक पहुँच को खारिज किया है जो भारत को एक पत्थर के दुर्गम स्मारक की संज्ञा देता है और राजनीतिक अर्थव्यवस्था और सामाजिक संस्थाओं में अंतर बताता है बल्कि पुरोहितों द्वारा शासित राजनीतिक अर्थव्यवस्था की रूपरेखा भी बनाने की कोशिश करता है। उसकी रूपरेखा जो कि कारण सहित एवं विश्वासी दोनों ही थी, राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही कारणों को खुद में शामिल करती है और यह दिखाती है कि मुगल शासक की बनावट हलांकि उच्च वर्गीय समाज वाली थी, परंतु इसे एकमात्र राजनीतिक या आर्थिक कारणों में नहीं गिना जा सकता था। इसकी कई उपव्यवस्थाएँ थी और यह वैश्विक शासन और वैश्विक अर्थव्यवस्था दोनों के लिए समान रूप से खुला था। इस रूपरेखा का संबंध पूर्व-ब्रिटिश भारत से भी है। **डी० लुडेन** के पेपर को भी एक इतिहासकार के विश्व-व्यवस्था सर्वेक्षण के सैद्धांतिक चुनौती का सुंदर जवाब कहा जा सकता है। मुगल भारत के मुख्य गुणों में से एक को डी० लुडेन "कर देने वाले व्यापारिक व्यवस्था"[३०] बुलाते हैं, जिनसे पूँजीवाद शहरों एवं सांकेतिक ग्रामों के मध्य गहरा संबंध स्थापित किया। साम्राज्यवादी भागों के कारण यह गुण आवश्यक था लेकिन परिणामस्वरुप इसने पूँजीवादी गुणों को बढ़ावा दिया। "राज्य करो पर आश्रित थे, जो कि व्यापार पर आश्रित होता था, जबकि व्यापार पर खर्च करने वाले लोग तरल पूँजी पर निर्भर होते थे जो करो के आदान-प्रदान के बल पर सुरक्षित था और फलता-फूलता था।"[३१] "कर के लेन-देन पर आधारित इस व्यापार" मुख्य रूप से तटीय क्षेत्रों में एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था का विकास किया, लेकिन इसने साथ की कृषि अर्थव्यवस्था पर बड़ा खींचतान वाला प्रभाव डाला जो धीरे-धीरे आगे चलकर "यूरोपीय व्यापारिक पूँजीवाद के वैश्विक अभियान" में शामिल हो गया। इस तरीके से दोनों ओर की निर्भरता विकसित हुई। कंपनी का निर्यात और खर्च अंतर्देशीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कर व्यापारिक व्यवस्था पर निर्भर करता था जिससे समुद्रपार के अत्याचार द्वारा संचालित राजनीतिक अर्थव्यवस्था में बढ़ोत्तरी की।"[३२] ग्रामों की बहुसंख्या के लिए करद व्यापार व्यवस्था का मतलब हबीब की रचनाओं (कार्यों) का समझ आता है, अर्थात केवल उनके बचत की उपज पर व्यापार होता था किसानों की एकतंत्रीय शासन अछूती रही, किंतु किसी मौद्रिक अर्थव्यवस्था के विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और एक ओर जैविक कृषि का विकास हुआ और दूसरी ओर पूँजीवादी शर्तो का जो पूँजीवादी विश्व-अर्थव्यवस्था

में आसानी से जगह बना सकती थी। यह दोनों ओर की निर्भरता, हालांकि वैलरस्टेन के एकवादी सिद्धांत से काफी अलग है।

हमारे युग के महानतम इतिहासकारों में एक ब्रॉडेल ने जब उनके मैग्नम ओपस में भारत जो सभ्यता की प्रगति क्रम और पूँजीवाद में १५वीं और १८वीं सदी में[३३] ऐतिहासिक जगह हासिल की है उसको दिखाना चाहा, तो उन्होंने एकवादी निर्णय को स्वीकार नहीं किया और अपने आधिकारिक सर्वेक्षण में पोस्ट हॉक अरगो प्रोप्टर हॉक के कुछ संकटपूर्ण अवधारणा को शायद दरकिनार किया गया है। यहाँ तक कि प्रतीत होने वाले पूँजीवाद के बिना समस्या वाली धारणा को ब्रॉडेल द्वारा इतिहासकारों के आधिक्य से अलग कल्पना किया गया है। उन्होंने अपनी रचना के शुरूआती पन्नों[३४] में पूँजीवाद की वृहत अवधारणा में अंतर दिखलाया है और यह तीन स्तर पर है। जो भी हो जो सबसे महत्वपूर्ण है और जो सबसे वृहत और विषम भाग है उसे वे ''भौतिक जिंदगी", ''भौतिक सभ्यता" या अतिरिक्त अर्थव्यवस्था ''आर्थिक गतिविधियों का अनौपचारिक आधा, विश्व की स्वयं पर्याप्तता और वस्तुओं एवं सेवाओं का एक अलग क्षेत्र में विनिमय कहकर बुलाते हैं।"[३५]

अभी कुछ समय पहले तक, ''विश्व की ८० से ६० प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या" का संबंध इससे था।[३६] यह भौतिक सभ्यता आर्थिक चक्र उससे मिलती जुलती थी पर उस जैसी नहीं थी। इसकी जड़ें पूँजीवादी युग से पहले पाई जा सकती है और इसे स्ट्रिक्टों सेन्सु के लिए महान संग्रह कहा जा सकता है, लेकिन पूँजीवाद के फैलाव में यह पहले से पूर्णतः बदलाव या निगमित से दूर है। इसका दूसरा स्तर बाजार अर्थव्यवस्था है, जो अपने शुद्ध रूप से औद्योगिक क्रांति का परिणाम है और इसके अबाधित कार्य को राजनीतिक अर्थव्यवस्था की उर्जा के सैद्धांतिक धारणा के रूप में कहा जा सकता है।[३७] तीसरा भाग "पूँजीवाद का समर्थन क्षेत्र" उन "सामाजिक पुरोहितों का शासन"[३८] को घेरता है जो राजनीतिक और सेना द्वारा अपने विभिन्न हितो को लागू करने की कोशिश करता है अर्थात (राज्य, पार्टी, संसद, सेना आदि)। १८वीं सदी तक प्रथम विश्व युद्ध तक यह कहा जा सकता है "राजनीतिक पूँजीवाद" यूरोपीय और अमेरिकी पूँजीवाद की सफलता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण था। ऐसे विश्वासी और खुले दिमाग के इतिहासकार विभिन्न सभ्यताओं को विभिन्न तरीकों से देखते हैं और १६वीं सदी तक यह खोज लिया गया था कि- यूरोपियनों के मध्य उत्पादन एवं व्यापार की कई शाखाओं की गुणवत्ता में कोई फर्क नहीं है और उदाहरण के लिए दुरस्थ पूर्वी अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। ऐसा करने में, शायद कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया के शुरूआती काल से इसकी एक प्रथा के परिणाम की सुविधाजनक स्थिति की व्याख्या में हुई गलती को नजरअंदाज कर सकता है।

सैद्धांतिक तौर पर ये सच हो सकता है कि मानव की शरीर रचना वानरों का संकेत है पर यदि हमें वानरों की चर्चा करनी हो तो यह बड़ी भूल होगी कि हम उससे मानवों की तरह से लें। और तो और, लोगों को ये नहीं भूलना चाहिए कि १८वीं सदी तक यूरोपीय पूँजीवाद भी अपने शुरुआती काल में था। यही कारण है कि ब्रॉडेल विश्व-अर्थव्यवस्था (=पूंजीवाद) और वैश्विक अर्थव्यवस्था में मतभेद करते हैं। इस काल में स्वाभाविक रूप से विश्व अर्थव्यवस्थाओं[३९] पर गौर करते हैं। जबकि विश्व-अर्थव्यवस्था में, "ब्रह्मांड का बाजार"[४०] भाव-भंगिमा के काफी अंतराल के बाद १६वीं सदी[४१] से ही सिर्फ पूर्ण विकसित हो चुका था। "एक वैश्विक अर्थव्यवस्था....... का संबंध केवल विश्व की झलक से है, एक आर्थिक रुप से स्वतंत्र ग्रह जो ज्यादातर अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम है, एक शाखा जिसको इसका आंतरिक जुड़ाव और विनिमय केंद्र एक निश्चित रचनात्मक दृढ़ता[४२] देता है।

ब्रॉडेल के अनुसार, आधुनिक युग की इन अतिआवश्यक चार सदियों में यूरोपीय अर्थव्यवस्था के निकट और दूसरी तीन विश्व अर्थव्यवस्था थी : रूस की वैश्विक अर्थव्यवस्था,[४३] तुर्की साम्राज्य[४४] और सुदूर पूर्व, जिसका मुख्य भाग भारत था "सभी विश्व अर्थव्यवस्थाओं में सर्वोच्च" था।[४५] यह प्रस्ताव मुगल-काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के परीक्षण के लिए और इसके स्तर और पूँजीवादी सामर्थ्य की दूसरों से, यूरोपीय विश्व अर्थव्यवस्थाओं से भी तुलना के लिए दृढ़ सैद्धांतिक पृष्ठभूमि देता है। इस तुलना में भारत १८वीं सदी तक ज्यादा बुरा नहीं साबित होता है।

अपनी सीमाओं के अंदर, भारत बिल्कुल सुविधापूर्ण था एक मजबूत प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के साथ यहाँ की खेती पारंपरिक थी परंतु काफी उपजाऊ और पैदावार देने वाली थी, यहाँ का उद्योग पुरानी व्यवस्था वाला था पर विकसित एवं कुशल था। (१८२० तक, भारत का स्टील वास्तव में इंग्लैंड में बने किसी भी चीज से बेहतर प्रकार का था और सिर्फ स्वीडिश स्टील से कमतर था) पूरे देश में एक बेहतरीन तरीके से स्थापित अर्थव्यवस्था व्याप्त और कई कुशल व्यापारिक प्रतिपक्ष भी थे। अंतरिम तौर पर कोई यह उम्मीद कर सकता है कि भारत की व्यापारिक एवं औद्योगिक ताकत एक प्रबल निर्यात व्यापार पर आधारित थी, और यह उसके अपने तटों से होने वाले बेहतर

व्यापार का एक आर्थिक हिस्सा था।"[४६]

शुरुआती आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था की विकसित शाखाओं में कृषि में निर्यात के उद्देश्य कृषि पौधों (इंडिगो, कपास, गन्ना, अफीम, तंबाकू और गोल मिर्च) के विकास में बढ़ोत्तरी की गई होगी। इनमें मुख्यतः "मुश्किल व्यापारिक तकनीक की जरूरत पड़ती थी।" इसलिए ब्रॉडेल ने इन्हें "भारत में फैला एक जोखिम भरा पूँजीवाद, जो किसानों, व्यापारियों, यूरोपीय कंपनियों के प्रतिनिधि और मुगल सरकार के बड़े कर द्वारा नियमित मदद जिसने राज्य के एकाधिकार की कोशिश अधिकार मान्यता प्राप्त करने द्वारा की"[४७] कहते हैं। उद्योग में, स्टील उत्पादन के साथ, जहाज निर्माण[४८] मुख्य था और वस्त्र उद्योग जिसने १६वीं सदी के आरंभ को धनी कर दिया। इन आर्थिक उपलब्धियों के आधार पर ये आश्चर्य की बात है नहीं है कि जहाँ तक मुनाफे की बात है एवं प्रति व्यक्ति आय का संबंध है, भारत और यूरोप में औद्योगिक क्रांति तक कोई विशेष अंतर नहीं था। १८०० में, पश्चिमी यूरोप का आंकड़ा यू० एस० के २०३ डहलर का था। (इंग्लैंड के ये ऑकड़े १७०० में १५० से १६० डॉलर के बीच था) जबकि भारत में १६० से २१० डॉलर के बीच था (पर १६०० में ये १४० से १८० डॉलर के बीच था)।[४६]

इन आंकड़ों के आधार पर ब्रॉडेल ये निष्कर्ष निकालते हैं कि, भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य से पहले, यूरोपियन उपनिवेश एक परजीवी की तरह पूर्ण व्यापारिक स्वभाव से चिपका हुआ था। यूरोपियन उत्पादन की उपलब्धता और बाजार की सुविधा की खोज में व्यापारिक रास्तों से, उनके आने से पहले के अस्तित्व को साधन की खोज करते हुए निकले और इसलिए उन्होंने खुद को बुनियादी ढाँचे के निर्माण, और सामानों को बंदरगाह तक ले जाने के यातायात का जिम्मा स्थानीय समुदाय के लिए छोड़ते हुए उत्पादन के प्रबंधन एवं वित्त व्यवस्था करते हुए और मौलिक विनिमय को संभालते हुए मुश्किल से बचाए रख।[५०]

इसलिए ब्रॉडेल की व्याख्या में, भारत की पूँजीवादी समावेश का पूँजीवादी वैश्विक अर्थव्यवस्था में अर्थ वास्तव में यह था भारत में अंततः १६वीं सदी में औद्योगीकरण खत्म हो चुका था और इसकी भूमिका सिर्फ कच्चे मालों के बड़े उत्पादक की रह गई थी,[५१] और इसके बाजारों पर भी इंग्लैंड ने अधिकार कर लिया था। यह "इंटर आलिया है" अर्थात वैलरस्टेन के सिद्धांत पर ब्रॉडेल का प्रत्युत्तर है। इसका सबसे महत्वपूर्ण संदेश है कि उन्नीसवीं सदी के आधार पर किसी को मुगल भारत पर कोई राय नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसकी उत्पत्ति और प्रवृत्ति का निश्चय इसके शुरुआत के आधार पर नहीं किया जा सकता।

अंत में हम कुछ हाल के अत्यंत जरुरी मौलिक ग्रंथों की चर्चा करेंगे जो अकबर की अधिकारिक तौर पर मुगल साम्राज्य के निर्माण के ढाँचे के आधार पर उल्लेख करते हैं। बाद की व्याख्या का महत्वपूर्ण भाग, अकबर के लिए प्रत्यक्ष कारणों से पवित्र है। एक के विस्तारपूर्ण और न्यायपूर्ण मूल्यांकन के लिए इस साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या की जानी चाहिए। इसीलिए मैं उनकी (अकबर और उसके राज्य) कुछ सर्वाधिक सकारात्मक एवं नकारात्मक खूबियों की चर्चा करना चाहूँगा। हालाँकि इसके प्रकाशन की कुछ ही वर्ष बीते हैं, के० ए० निजामी के अकबर और धर्म[५२] की चर्चा सबसे पहले की जानी चाहिए क्योंकि अकबर पर भारतीय खोज का बड़ा भाग है। **भारतीय** इतिहासकारों के रक्षक के रूप में निजामी ने अपने असीमित जीवन कार्य को मध्यकालीन भारतीय इतिहास[५३] के धार्मिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को बेहतर तरीके से समझने के क्रम में पवित्र बना लिया है और 'धर्म के कुछ पहलू' और '१३वीं सदी में भारतीय राजनीति'[५४] और 'इलियट का परिशिष्ट' और 'डाउसन का भारतीय इतिहास'[५५] के माध्यम से उन्होंने विश्लेषणात्मक भारतीय इतिहास के मध्यकालीन भारत को काफी सम्मिलित किया है। मध्यकालीन भारत में सूफी काल पर उनका अध्ययन भी इतना ही महत्वपूर्ण है जो उनके असाधारण अध्ययन और स्वयं को उनके पसंदीदा सूफी संतों की वैचारिक प्रक्रिया में ढ़ालने की अवधारणा क्षमता को दर्शाता है। निजामी की पुस्तक "अकबर और धर्म" को अपेक्षाकृत अरुढ़िवादी और निजी पुस्तक होने के कारण रूढ़िवादी एवं मामूली नहीं कहा जा सकता है। यह एक इतिहासकार का विवादास्पद कार्य है जिसका कद किसी पुर्नावलोकन करने वाले को लेखक के विशाल महत्व के निर्णय से उत्पन्न विवादास्पद बयान देने में हिचकिचाहट पैदा करेगा। निजामी को अकबर के धर्म के विषय में लगभग सब मालूम है और उनके कार्य को इस विषय से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण स्रोत का भंडार कहा जा सकता है। इस कार्य से संबंधित दस्तावेज (पृ. ३४३-४१३) अकबर और उसके प्रकाशन पर हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि करती है एवं इसकी व्याख्या निजामी के लिए गए स्रोत सामग्री में दक्षता को दर्शाते हैं। हालांकि उन कार्यों में वे विषयवस्तु को लेकर सकारात्मक थे, पर 'अकबर और धर्म' में वे अकबर के प्रति नकारात्मक थे यूँ कहें दोतरफेपन के रूप में दिखाए गए है। यह निश्चित रुप से पूर्वाग्रह का बड़ा कारण हो सकता है। असामंजसतापूर्ण व्यवहार का दूसरा स्रोत अतिसंकीर्ण ऐतिहासिक

यथार्थ हो सकता है जिसमें अकबर को देखा गया है। धर्म के प्रति अकबर के दृष्टिकोण की खोज तब तक नहीं हो सकती जब तक हम इस तथ्य को ध्यान में ना रखें कि अकबर कोई मामूली इंसान नहीं था बल्कि इन सबसे ऊपर एक विशाल और विषमांग साम्राज्य का सजग शासक था और कुछ समयावधि की परिपक्वता के बाद उसने जानबूझकर एक महान शासक होने के रवैया का परिचय देते हुए धार्मिक महत्व को कमतर कर दिया। सैद्धांतिक तौर पर, अकबर के धार्मिक रवैये को उसके व्यक्तित्त्व एवं उसके राजनीति से संबंध के दूसरे पहलूओं से अलग करना सही नहीं है। अब हम कुछ उन कथनों के विषय में शंका व्यक्त करेंगे जो इससे घटित होते हैं।

अकबर के साथ मंगोल परंपरा की निरंतरता उजागर करने के लिए लेखक ने शुरू में ही एक रहस्यमयी 'अलंकावा प्रथा' की रचना की असफल कोशिश की है जिसे वे देखते हैं कि अकबर ने अपनी अवधारणा बचपन में ही विकसित कर ली है। निजामी के मुताबिक मंगोल धार्मिकता को सिद्ध हुए बिना मान लिए जाने की विशेषता के छः कारण है जिसने अकबर के चरित्र को प्रभावित किया होगा। (पृ. ६-६) यदि हम इन विशेषताओं को करीब से देखें, सिर्फ ६ ही विशेषता ("जानवरों की सुरक्षा का अगला क्रम") को आखिरी तौर पर अस्थाई रवैया कहा जा सकता है, बाकी का विशेष यायावर प्रथा से कोई लेना देना नहीं है। दूसरी प्रथा ("ये विश्वास कि सूर्य जीवन का आधार स्रोत है") किसानों की संस्कृति में काफी फैली हुई पूर्वजों की मान्यता है, पर जहाँ तक अकबर का सवाल है तो ये सब जानते हैं कि उसने सूर्योपासना की कला पारसियों से सीखी थी। हम ये अंदाज लगा सकते हैं कि निजामी को अकबर के इस्लाम के प्रति नजरिए का मंगोल प्रथा से संबंध तलाशने के लिए इस तथाकथित अलंकावा प्रथा की जरूरत थी। मुश्किल ये है अकबर का इस्लाम के प्रति बदलता नजरिया, शुरुआती स्वीकार्य से लेकर बढ़ती समानता, उन्नीसवीं सदी के आखिर में एक प्रकार की युद्ध स्थिति को अत्यंत महत्व के पेचीदा ऐतिहासिक तथ्य के रूप में और एक विस्तृत सामाजिक-ऐतिहासिक प्रसंग के रूप में विश्लेषन ना करके नकारात्मक रूप में लिया गया। इस प्रकार के निजी प्रस्ताव से, ऐतिहासिक घटना नीतिगत मुद्दा बन जाती है और उनका बरताव निश्चित कारणों से हमेशा विश्वास नहीं करती। अकबर की निरक्षरता का उदाहरण भी ऐसी ही एक घटना है। लेखक के अनुसार "उसके पूर्णतया निरीक्षण होने की बात पर ज्यादातर लोग विश्वास नहीं करते" (पृ. १८) और वह इस आरोपित कहानी के मुख्य raison detre से नकार देता है। "निरक्षरता की बात को चापलूसों ने उसके ईश्वर से सीधे प्रेरित होने का संकेत मानकर बढ़ावा दिया था" (पृ. २५) पैगंबर मोहम्मद के निरक्षर होने के विषय में भी यही कहा जा सकता है। समस्याएँ हैं कि समकालीन स्रोत अर्थात् उसका बेटा जहाँगीर और फादर मॉन्टसेरेट का अपमान वक्तव्य अकबर की निरक्षणता के साक्षी हैं और उनकी सच्चाई के लड़ने के लिए किसी को भी नए साक्ष्य प्रस्तुत करने होंगे। अकबर के इस्लाम के प्रति आलोचनात्मक रवैया के साथ, निजामी अकबर इस्लाम के प्रति अच्छे एवं स्थापित न्याय को बनाने की योग्यता को लेकर विवाद करते हैं। अकबर के ज्ञान को लेकर स्मिथ के Pajorative मत को स्वीकारते हुए।[५६] निजामी कहते हैं कि अकबर को कुरान या इस्लामिक मान्यताओं की पर्याप्त जानकारी नहीं थी। (पृ. २५) और भी, "दीन-ए-इलाही" की उसकी विचारधारा भी उसके परिपक्व धार्मिक विचार का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करती है। यह सब भोलापन और मनमौजी की तरह है। (पृ. २५). "वह धर्म के कुछ सिद्धांतों को जानता था पर उनकी वास्तविकता से वाकिफ नहीं था" (पृ. २६). यहाँ हम एक बार फिर अनिश्चित राह पर आ गए जिनका निर्णय महत्व पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यदि इन सारे आरोपों को सही मान लिया जाए, पैगंबर साहब या महान सुधारक लोग नियमानुसार धार्मिक इतिहासकार नहीं थे। अकबर ने किसी भी तरीके से दूसरे धर्म को मानने वालों पर अपना धार्मिक मत थोपने की कोशिश नहीं की, लेकिन इसके ठीक विपरीत उसने बिना कोई हानि पहुँचाए अपने मत को मानने की छूट थी। उसका धार्मिक ज्ञान, इबादतखाने में हुए विवाद से ही मुख्यतया शुरू हुआ और ये उसके किसी भी खास धर्म को बढ़ावा न देने के लिए काफी था।

अकबर की धार्मिक नीति के प्रति निजामी के रवैया के आधार पर, यह समझा जा सकता है पर स्वीकारा नहीं जा सकता, वह "दीने-इलाही" की आलोचना करते हैं[५७] कि वह अकबर के धर्मों को जानने की उत्सुकता[५८] को नकारते है और वह सलाहकारों पर दोषारोपण करते हैं कि "उलेमा-ए-सु" ने सम्राट को भ्रष्ट कर दिया (अकबर का असामान्य व्यवहार पूरी तरह से उसकी सभा से जुड़े 'उलेमा' की दुष्ट भूमिका के कारण था)।[५९] निजामी अबुल फजल के साथ-साथ उसके पिता एवं भाई के विषय में एक अन्यायपूर्ण वाक्य कहते हैं (पृ. ८२, ८८)[६०] आगे विस्तार में गए बिना, कोई भी यह स्वीकार कर सकता है कि अकबर के ऊपर निजामी के कार्य एक ऐसी पुस्तक है जिसके सारे सिद्धांत नितांत निजी लेख है।

इसी साल भारत में एस० एम० बर्क के द्वारा अकबर पर

एक और ग्रंथ प्रकाशित हुआ।[६१] यह अकबर के जीवन और कार्यों के बारे में एक विश्वसनीय मूल्यांकन है, जो वास्तविक या विवादित होने का ढोंग नहीं करती। बर्क पंजाब के एक गाँव में जन्मे थे[६२] और काफी जानकर होने के साथ ही भारत के प्रति उनकी सहानुभूति भी थी। वे विद्वान और यथार्थवादी इंसान हैं और भारतीय नागरिक सेवा में जज, मंत्री, पाकिस्तान में हाई कमिश्नर और मिन्नेसोटा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं सलाहकार भी रह चुके हैं। उनके कार्य परिज्ञान से भरपूर हैं और अनुभव पर आधारित बौद्धिक साक्ष्य का प्रमाण रखते हैं। अकबर के प्रति उनका रवैया पुस्तक में इनकी वाक्पटुता से स्पष्ट हो जाता है, और यह स्पष्ट है कि वह अकबर के मकसद एवं समर्पण को समझते थे।

बर्क के कार्य लॉरेन्स बिनयॉन की सहानुभूति अकबर से तुलना योग्य है, जो ३० के दशक में प्रकाशित हुई थी।[६३] एवं जो अकबर के व्यक्तित्व और उसके गहरे समर्पण को कलाकार के नजरिए से वर्णित करती है। बर्क की पुस्तक अकबर की जिंदगी के साथ-साथ उसके कार्यों के कुछ पक्षों पर गौर करती है, जैसे उसकी धार्मिक मान्यताएँ, सरकार और कलात्मकता। लेखक के स्रोत अंग्रेजी के अनुवादों के मुख्य भागों के लिए हैं, लेकिन कुछ समय बाद वे पुनः असली लेखों के आधार पर वे अनुवादों में हुई कुछ गलतियों का परीक्षण करते हैं। जहाँ तक पहले के शोधकार्यो का संबंध है, तो कुछ पूर्वाग्रहग्रसित एवं एकतरफा दृष्टिकोण पर कुछ निर्णय देते हैं, उदाहरण के लिए बी० ए० स्मिथ और आई० एच० कुरैशी और असांप्रदायिक भारतीय इतिहास के प्रथाओं की सुदृढ़ता। अकबर के धर्म के प्रति रवैया के प्रति उनका व्यवहार विशेषतः सहानुभूतिपूर्ण है हालांकि हम इसमें जहाँ-तहाँ कुछ अप्रमाणित कथन पाते हैं।[६४] बर्क के कार्य को मुगलकाल में रुचि रखने वाले हर विद्यार्थी के लिए अकबर और उसके व्यक्तित्व महत्वपूर्ण जरिया कहा जा सकता है वे हमारे समय से अकबर के संबंध को संक्षिप्त में यूँ बताते हैं :- "अकबर की सबसे सहनयोग्य उपलब्धि प्रशासन की एक ऐसी प्रणाली है जिसकी रूपरेखा उपमहाद्वीप में अभी भी चल रही है और उसकी सबसे प्रशंसनीय विशेषता है उसके विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों वाले साम्राज्य सब पूर्णरूपेण स्वतंत्र थे।"[६५]

१९८९ में डगलस आई० स्ट्रिउसैण्ड की लिखी एक पुस्तक "मुगल साम्राज्य का निर्माण" भी प्रकाश में आई।[६६] इस पुस्तक को भारत में कोई लोकप्रियता नहीं मिली जिसकी मुख्य वजह भारतीय इतिहासकारों के प्रति उसका अनुकंपित एवं गलत सूचना एवं इसके साथ स्रोतों का असंतोषजनक प्रयोग रही है।[६७] एम० अतहर अली के इस कार्य की आलोचना की वैधता को स्वीकारते हुए, हालांकि कोई इसके सकारात्मक पहलुओं को स्पष्ट कर सकता है, जबकि ये अबतक संतोषजनक सिद्ध नहीं हुए हैं, पर भविष्य में होने वाले शोधों के लिए इनको पर्याप्त प्रतिक्रियावादी माना जा सकता है।

मुगल साम्राज्य का ग्राम विस्तार एक महत्वपूर्ण मसला है जिसने प्रशासन की प्रणाली, कर तथा सेना के साथ-साथ आपसी सांस्कृतिक प्राप्ति को काफी स्थिरता प्रदान की। इस पर स्ट्रिउसैण्ड कुछ उपयोगी पर अल्पज्ञान युक्त, तुलना करते हैं, ऑटोमॉन एवं मुगल साम्राज्य के बीच।[६८] वे शस्त्र युक्त ग्रामीणों या जमींदार प्रथा के अस्तित्व की बात को भारतीय असलियत की विशेषता बताते हुए कहते हैं "कोई यह कह सकता है कि मुगल साम्राज्य का विस्तार भिन्न-भिन्न प्रकारों की लूटपाट एवं तात्कालिक राजनीतिक श्रेष्ठता के कारण हुआ था।"[६९] किसी भी साम्राज्य की अवधि काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि उनमें अपने साम्राज्य (शासन) के फैलाव की कितनी क्षमता है (उदाहरण के लिए, पारंपरिक इस्लाम की केंद्रीय भूमि के हेलेनाइजेशन, रोमनाइजेशन या सफल इस्लामीकरण के दूरगामी परिणाम) अकबर ने स्पष्ट तौर पर एकरूप एवं सुव्यवस्थित समाज के निर्माण के लिए एक सम्मिलित संस्कृति और संयुक्त "विश्व-अर्थव्यवस्था" के साथ महान कदम उठाए। उसके उत्तराधिकारी हालाँकि उसके प्रयासों को जारी रखने में असफल रहें और हिंदू-मुस्लिम संबंधों का विस्तार थक गया।

उपर्युक्त समस्या के विषय में लेखक मुगल सेना[७०] की बनावट का फिर से परीक्षण करते हैं और कथित तौर "गन पाउडर साम्राज्य" की धारणा जो पश्चिमी साहित्य[७१] में दूर तक फैली है, उसपर विश्वस्त तरीके से आपत्ति करते हैं लेकिन इरफान हबीब इस पर पहले ही विवाद कर चुके हैं[७२] और इस बात पर जोर देते हैं कि मुगल सेना की विशेषता पैदल सेना के साथ तोपखाने और घुड़सवार तीरंदाज थे। मुगल सेना के बारे में हमारी जानकारी के लिए ये वाकई में महत्वपूर्ण योगदान है, पर इसके लिए और सबूत चाहिए।

अगला महत्वपूर्ण मुद्दा जो गैरजरुरी नहीं है, वो है अकबर के द्वारा सृजित शासन एवं प्रशासन का सिद्धांत। स्ट्रिउसैण्ड के मुताबिक, इस सिद्धांत में प्रशासनिक सुधार के साथ सही प्रतिकात्मक स्वरूप सम्मिलित था और सामूहिक सर्वोच्चता का R;kx vkSj vius ¼Appanage) सिस्टम का तिमुरीद के निर्णयों के साथ संबंध विच्छेद था।[७३] इस महत्वपूर्ण सवाल के संतुष्टिदायक हल के लिए प्राकृतिक तौर पर एक विस्तृत

तुलनात्मक खोज की जरूरत है जिसमें विभिन्न शासन के सिद्धांत, पारंपरिक इस्लाम, दिल्ली सल्तनत और साफाविद शासन के साथ अहृटोमॉन तुर्कों के मध्य और इसके साथ ही मध्यकालीन हिंदू राज्यों पर विजय शामिल है।

अंत में, परंतु अल्प नहीं, हम निष्कर्ष अध्याय में एक रुचिकर सैद्धांतिक विवेचन पाते हैं जो "मुगल नीति के प्रकार" से संबंधित है और इसमें लेखक मुगल साम्राज्य पर आधारित सिद्धांतों की छानबीन करते हैं और के० विटफॉगेल के ''पूर्वी निरंकुश शासन", एस० एन० आइसिन्सटैड के ''दफ्तरशाही निरंकुश शासन", एस० ब्लैक के "पितृसत्तात्मक दफ्तरशाही निरंकुश शासन" के साथ-साथ कथित "गन पाउडर साम्राज्य" सिद्धांत को नकारते हैं और बर्टन के "खंडात्मक राज्य" के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं।[७४] इस प्रकार के सैद्धांतिक मौलिक तर्क निश्चित तौर पर हमें काफी दूर तक नहीं ले जाएंगे और उसकी परिभाषा घिसी-पिटी बात से ज्यादा नहीं है।

कोई भी मुगल साम्राज्य को इस्लाम के मिश्रण के रूप में केंद्र पर विस्तृत अर्थ में देख सकता है और भारत में स्वयत्ता समझा सकता है, कोई मुगल सरकार को खंडों की स्थानांतरित संरचना द्वारा प्रोत्साहित केंद्र-राज्य के रूप में वर्णन कर सकता है।[७५]

अंतिम कथन लगभग सभी साम्राज्यों की अच्छाई बताता है और ''पृथक्कीकृत राज्य" की धारणा को पूर्व-औपनिवेशि अफ्रीकन राज्यों के मामले में ज्यादा भली प्रकार से अपनाया जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि, इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से अकबर पर शोध, अपने सारे दोषों, असफलताओं और स्पष्टीकरण के बावजूद सफलता की ओर अग्रसर है एवं पहले ही कुछ सकारात्मक परिणाम दर्शा चुके हैं और भविष्य की धारणाओं के विश्वस्त दृष्टिकोण रखते हैं।

संदर्भ

१. एडीटोरियल नोट, सोशल साइंटिस्ट, Vol. XX, Nos 9-10 (Sep-Oct. 1992.), p.1 और 'अकबर एण्ड हिज ऐज : ए सिम्पोजिम', पूर्वोक्त, pp.61ff.

२. मार्शल जी० एस० हॉगसन, 'दि वेन्चर ऑफ इस्लाम, कनसाइस एण्ड हिस्ट्री इन ए वर्ल्ड सिविलाइजेशन, Vol. III दि गन पाउडर इम्पायर एण्ड मार्डन टाइम्स' दि यूर्निवसिटी ऑफ शिकागो प्रेस, १६७४, पृ०-६१

३. वही।

४. फर्नाड ब्रडेल, 'सिविलाइजेशन एण्ड कैपिटलिज्म', १५वी.१८वी सेनचुरी (थ्री भॉल्यूम में) Vol. III "दि पर्सपेक्टिव ऑफ द वर्ल्ड : ट्रांसलेशन फ्राम दी फ्रेंच वार्च एस० रेनॉल्डस", न्युयार्क, १६८४, पृ०-४६७.

५. वही

६. इरफान हबीब, 'दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया', १५५६-१७०७, बम्बई, १६६३ एम० अतहर अली, 'दी एपरेटस ऑफ एम्पायर : अवार्ड ऑफ रैंक, ऑफिसेस एण्ड टाइल्स टू दी मुगल नोवेल्टी', १५७३-१६५८ नई दिल्ली, १६८५, एवं शिरीन मूसवी, "दी इकोनोमिक ऑफ दी मुगल एम्पायर", सी १५६५, ए स्टेटिकल स्टडी, दिल्ली, १६८७

७. टी० राय चौधरी एण्ड इरफान हबीब (एडी०), 'दी कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' (सी १२००, सी १७५०), नई दिल्ली, १६८२

८. इरफान हबीब, 'इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मेडिएवल इंडिया', इन आर० एस० शर्मा (एडी०) "सर्वे ऑफ रिसर्च इन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडिया" दिल्ली, १६८६, पृ०-१०६-१४६. सतीश चन्द्र "राइटिंग्स ऑन सोशल हिस्ट्री ऑफ मेडिएवल इंडिया : ट्रेन्ड एण्ड प्रॉसपेक्ट", इन आर० एस० शर्मा (एडी०) आप-सिट, पृ०-१४७-१६८.

६. सोशल साइंटिस्ट, पूर्वोक्त, पृ. १

१०. इरफान हबीब, 'पोटेनसियेलिटिज ऑफ कैपटलिस्टिक डेपलेपमेंट इन द इकोनॉमी ऑफ मुगल इंडिया" जर्नल ऑफ इकोनोमिक हिस्ट्री, Vol. XXII No-1 (यू० एस० ए०, मार्च, १६६६), पृ०-३२-७०.

११. इक्तेदार आलम खान, 'दी नोवेलिटी अण्डर अकबर एण्ड दी डेवलपमेंट ऑफ हिज रीलिजियस पॉलिसीज, १५६०-१५८०', जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, १६६८, पृ०-२६-७६.

१२. एम० अतहरी अली, "अकबर एण्ड इस्लाम १५८१-१६०५", इन मिल्टन इसपाइरल एण्ड एन० के वागले (एडी०) 'इस्लामिक सोसाइटी एण्ड कल्चर', एसेज इन ऑनर ऑफ प्रो० अजीम अहमद, नई दिल्ली, १६८३, पृ०-१३०-१३३.

१३. सावित्री चन्द्र, 'अकबर्स कॉनसेप्ट ऑफ सुलह-कुल, तुलसीज कॉन्सेप्ट ऑफ मर्यादा एण्ड दादूज कॉसेप्ट ऑफ निपख : ए काम्प्रेटिव स्टडी', इन सोशल साइंटिक्ट, आप-सिट, पृ०-३१-३७.

१४. एम० अतहर अलीज पेपर, एडिटिड मिल्टन इजराइल एण्ड एन.के. बागले, 'इसलामिक सोसायटी एण्ड कल्चर : एसेज इन दि आनर ऑफ प्रोफेसर अजीज अहमद', नई दिल्ली, १६८३, पृ. ३८-४५ 'ट्रांसलेशन ऑफ संस्कृत वर्कस एट अकबर्स कोर्ट', पृ०-३८-४५.

१५. बी० एल० भंडारी, 'दी प्रोफाइल ऑफ अकबर इन कान्टेम्परेरी राजस्थानी लिटरेचर', पृ०-४६-५३. एण्ड शिरीन मेहता, 'अकबर एज रिफलेक्टेड इन दी कॉन्टेम्पटरी जैन लिटरेजन', पृ०-५४-६०.

१६. वीसेन्ट ए० स्मिथ, 'अकबर द ग्रेट मुगल १५४२-१६०५', ऑक्सफोर्ड यूर्निवसिटी, १६१७, पृ०-४१५.

१७. ई० मैकनल बर्न्स, पी० ली० राल्फ, आस० इ० लर्न, एण्ड एस० मैचम, 'वर्ल्ड सिविलाइजेशन' (मेवन्थ एडीशन, न्युयार्क एण्ड लंदन, १६८६), पृ. xii

१८. आर० एल० ग्रीज, आर० जालर, पी० एच० बी० कैनिसटारो एण्ड मूर्फेम 'सिविलाइजेशन ऑफ वर्ल्ड', न्युयार्क, १६६०, पृ. xxxviii

१६. वही, पृ०-४६८.

२०. इक्तेदार आलम खान (एडी०), 'अकबर एण्ड हिज ऐज' (आई० सी० एच० आर०, नई दिल्ली), इरफान हबीब (एडी०) 'अकबर एण्ड हिज इंडिया' ऑक्सफोर्ड युर्निवसिटी प्रेस दिल्ली, १६७७.

२१. शीरीन मूसवी, 'मेकिंग एण्ड रिकॉर्डिंग हिस्ट्री : अकबर एण्ड अकबरनामा' (पेपर प्रजेन्टेड टू दी सेमिनार ऑफ 'अकबर एण्ड हिज ऐज' आई० सी० एच० आर०, नई दिल्ली, अक्टूबर, १९९२
२२. जे० एफ० रिचार्ड, 'दी इम्पेरियल स्टेट फैशन्ड वाय अकबर' (पेपर प्रजेन्टेड टू दी सेमिनार ऑफ 'अकबर एण्ड हिज ऐज' आई० सी० एच० आर०, नई दिल्ली, अक्टूबर, १९९२
२३. इरफान हबीब, 'दी इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मेडिएवल इंडिया' इन आर० एस० शर्मा, (एडी०) पूर्वोक्त, पृ. ११.
२४. शीरीन मूसवी, 'दी इकोनॉमी ऑफ दी मुगल एम्पायर' पूर्वोक्त, पृ०-१२७ए १४१ए १४६ एण्ड ३१५
२५. के० ए० निजामी, 'अकबर एण्ड रीलिजन', इदारा-इ-अरबियात, दिल्ली, १९८९, पृ०-३४१.
२६. सुगाता बोस (एडी०), 'साउथ एशिया एण्ड वर्ल्ड कैपिटलिज्म', दिल्ली, १९९०.
२७. आइडेम, 'दी मार्डन वर्ल्ड सिस्टम' Vol.-I कैपिटलिस्ट एग्रीकल्चर एण्ड दी आरीजिन्स ऑफ दी यूरोपियन वर्ल्ड इकोनॉमी इन दी सिक्सटींथ सेनचुरी' (न्युयार्क, १९७४), पृ. ३२६ff
२८. आइडेम, 'इनकॉरपेरिशन ऑफ इंडियन सबकॉन्टीनेट इन टू दी कैपिटलिस्ट वर्ल्ड इकोनॉमी', दी इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, (EPW) Vol.-XX No. 4 (१९८५) पृ०-२८-३५.
२९. सी० ए० बाचर्ले, 'इण्डीजेनश सोशल फॉरमेशन एण्ड दी वर्ल्ड सिस्टम : नार्थ इंडिया सिन्स C.१७००', इन बोस (एडी०), पूर्वोक्त, पृ०-११२-१३९.
३०. डेविड लुडेन, 'वर्ल्ड इकोनॉमी एण्ड विलेज इंडिया', १६००-१९००, 'एक्सप्लोरिंग दी एग्रेरियन हिस्ट्री ऑफ कैपिटिलिज्म', बोस (एडी०), पूर्वोक्त, पृ०-१६६.
३१. वही
३२. पही
३३. ब्राडेल, Vol.-III, पूर्वोक्त, पृ०-४८४-५३५.
३४. आइडेम आपसिट Vol.-I, दी स्ट्रक्चर्स ऑफ एमरी डे लाइफ (न्युयार्क १९८१), पृ०-३३ ff
३५. वही
३६. वही, पृ०-२८.
३७. के पोलनी, दी ग्रेट ट्रांसफॉरमेशन (बोस्टन, १९५७).
३८. ब्रॉडेल, Vol.-I, पूर्वोक्त, पृ०-२४.
३९. 'World Economies' in Idem 'Main characteriscis world economy' Vol.-III, opcit pp. 20-88
४०. वही, पृ०-२०.
४१. वही, पृ०-७९.
४२. वही, पृ०-२२.
४३. वही, पृ०-४४१-४६६.
४४. वही, पृ०-४६७-४८४.
४५. वही, पृ०-४८४-५३५.
४६. वही, पृ०-५२२.
४७. वही, पृ०-५०२.
४८. ब्रॉडेल, Vol.-III, पूर्वोक्त, पृ०-५०६.
४९. वही, पृ०-५३२.
५०. वही, पृ०-४५५.
५१. वही, पृ०-५२२.
५२. के० ए० निजामी, अकबर एण्ड रिलिजल, पूर्वोक्त
५३. अहमद, 'लिटरेरी कान्ट्रीब्यूशन ऑफ प्रोफेसर के० ए० निजामी' दिल्ली, १९९०
५४. के० के० निजामी, 'सम ऑस्पेक्ट ऑफ रिलिजन एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया डयूरिंग दी थरटींथ सेन्चुरी' (फर्स्ट पब्लिस्ड अलीगढ़, १९६१, रिप्रिंट, इदाराह-द अदावियात-इ-दिल्ली, दिल्ली, १९७८.
५५. आइडेम, सपलीमेट टू इलियट एण्ड डाउसन्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया, Vol.-II ,.अकबर दि ग्रेट मुगल १५४२-१६०५, ऑक्सफोर्ड, १९१७ Vol.-III (इदाराह-इ-अदाबियात-ई-दिल्ली, दिल्ली, १९८९)
५६. स्मिथ, पूर्वोक्त, पृ०-३३७.
५७. के० ए० निजामी, 'अकबर एण्ड रिलिजन', पूर्वोक्त, पृ०-१३३.
५८. वही, पृ०-२१५.
५९. पूर्वोक्त, पृ०-९१.
६०. पूर्वोक्त, पृ०-८८.
६१. एस० एम० बर्क, 'अकबर दी ग्रेटेस्ट मोगुल' नई दिल्ली, १९८९, पृ०-२४९.
६२. वही, पृ०-२३३, Fn-85
६३. लॉरेन्स बिनयान, 'अकबर' (एडिनवर्ग, १९३२) पृ०-१६५.
६४. बर्क, पूर्वोक्त, पृ०-९९
६५. वही, पृ०-२१५.
६६. स्ट्रेसंड, पूर्वोक्त
६७. वही, Fn-8
६८. स्ट्रेसंड, 'दि फार्मेशन ऑफ मुगल इंपायर', १९८२, पृ०-६६
६९. वही, पृ०-८१.
७०. वही, पृ०-६५
७१. एम० जी० एस० हॉगसन, पूर्वोक्त, पृ०-५९-९८, डब्ल्यु० एच० मैकनेल, 'दी परसूट ऑफ पावर' शिकागो, १९८२), पृ०-६५-९८, जॉन एण्ड हॉल, पावर एण्ड लिवर्टीज, दी काउसेस एण्ड कन्सेक्वेंस ऑफ दी राइज ऑफ दी वेस्ट पेलिकन बुक्स, १९८६, पृ०-१०३-१०६.
७२. इरफान हबीब, 'एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया' पूर्वोक्त, पृ०-३१७.
७३. स्ट्रेसंड, पूर्वोक्त, पृ०-१५२.
७४. वही, पृ०-१८०७
७५. वही, पृ०-१८१

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कुमाऊँ हिमालय के तराई-भाबर क्षेत्र की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का एक भौगोलिक अध्ययन

❑ डॉ. देवकीनन्दन जोशी

प्रस्तुत अध्ययन हेतु सीमांकित क्षेत्र तराई भाबर के नाम से जाना जाता है जो वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के दक्षिणी भाग में स्थित है और अपनी धरातलीय विशिष्टता के कारण उल्लेखनीय है। नैनीताल जनपद की तलहटी एवं इससे लगे मैदानी भाग को सम्मिलित करने वाला यह क्षेत्र हिमालय श्रृंखलाओं के दक्षिणी ढालों में प्रवाहित होने वाले प्रवाह के निक्षेपण का परिणाम है। भौगोलिक एवं संरचनात्मक दृष्टि से भी यह कुमाऊँ से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी उत्पत्ति का इतिहास हिमालय की बाह्य श्रृंखलाओं से सम्बन्धित अनेकों भौगोलिक क्रियाओं से जुड़ा हुआ है। पर्वतीय भागों की संसाधन विहीनता एवं अभावग्रस्त सामान्य जीवन के समीप ही स्थित अतिरिक्त उत्पादन के इस क्षेत्र का इसीलिए विशेष महत्व रहा है। कुमाऊँ के पर्वत प्रधान एवं उत्तर भारत के मैदानी भागों के मध्य की भौगोलिक स्थिति के कारण ही इन भागों के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क एवं व्यापारिक आदान-प्रदान में इस क्षेत्र की विशेष भूमिका रही है। ग्रामीण क्षेत्रों के साथ-साथ तराई भाबर के कई नगर, उपनगर एवं व्यापारिक मंडियों का कार्यात्मक स्वरूप इस बात का प्रतीक है। निश्चित ही प्राचीन समय की भांति आज भी तलहटी पर स्थित इस क्षेत्र में हो रही मानवीय गतिविधियों, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के प्रभावों से कुमाऊँ का यह क्षेत्र अछूता नहीं रह सकता।

भौगोलिक परिचय : कुमाऊँ हिमालय के दक्षिणी जनपद नैनीताल के पर्वतीय उसम्भाग की तलहटियों से प्रारम्भ होने वाला मैदानी क्षेत्र भाबर व तराई के नाम से जाना जाता है। पूर्व-पश्चिम में विस्तृत यह क्षेत्र एक संकरी पट्टी के रूप में पर्वतों से लगा हुआ है जिसका क्षेत्रफल ३६६०.३ वर्ग किलोमीटर है। तराई भाबर क्षेत्र का उत्तर-दक्षिण विस्तार औसतन लगभग २५ किलोमीटर है। यह क्षेत्र २८°३७' से ८०° ४३' उत्तरी अक्षांश और ७८° ४८' से ८०° ७' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है।[१] इस भू-भाग की पूर्वी सीमा का निर्धारण काली नदी द्वारा है, जो इसे नेपाल से अलग करती है तथा इसकी पश्चिमी सीमा को फीका नदी निर्धारित करती है जो इसको बिजनौर व पौड़ी जनपदों से अलग करती है। इसके उत्तर में नैनीताल जनपद की नैनीताल तहसील दक्षिण में पीलीभीत, बरेली, मुरादाबाद जनपदों की सीमा रेखाऐं मिलती हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत नैनीताल जनपद के हल्द्वानी, रामनगर व कोटाबाग तथा जनपद उधमसिंह नगर के जसपुर, काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, सितारगंज तथा खटीमा विकासखण्ड सम्मिलित हैं जो तराई-भाबर क्षेत्र की प्रशासनिक सीमा को निर्धारित करते हैं। जनगणना वर्ष २०११ के अनुसार यहां की ग्रामीण जनसंख्या १४०८३६८ व्यक्ति है तथा जनसंख्या घनत्व ७०४ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है।

तराई-भाबर क्षेत्र पर्वतीय एवं मैदानी भागों के बीच स्थित पर्वत-पदीय पेटी है तथा अपनी भू-आकृतिक एवं अपवाह सम्बन्धी विशेषताओं के कारण मैदानी भागों से सर्वथा भिन्न है।

भाबर क्षेत्र भाबर पहाड़ों के पादुका स्थल से सटा हुआ देश का एक संकीर्ण भू-प्रदेश है साधारणतया वनाच्छादित एवं जलाशय रहित इस भू-भाग को भाबर के नाम से जाना है।[२] भाबर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हॉगसन ने कहा है कि समस्त भाबर क्षेत्र बाढ़ द्वारा लायी गयी विशाल अवसाद की मात्रा जो भूगर्भिक हलचलों के कारण पर्वतों से मैदानों की ओर फैंक दी गयी तथा अपने अवसादों की मात्रा एवं दिशा में अधिकांशतः सामुद्रिक और न्यूनतः सामान्य बाढ़ द्वारा लायी गयी है, के अवसाद से निर्मित है।[३] उत्तर की ओर इस क्षेत्र का धरातल असमान है, विशेष रूप से भाबर में जहाँ औसत ऊँचाई असमानता लिए हुए समुद्रतल से ३०० से ६०० मीटर के मध्य है वहीं तराई क्षेत्र सामान्यतः ३०० मीटर से भी कम ऊँचा है। तराई व भाबर की भू-आकृति एवं संरचना में भी स्पष्ट रूप से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। भाबर पथरीले कंकड़ों से निर्मित एवं पहाड़ों के पादुका स्थल से सटा हुआ एक संकीर्ण भू-भाग है, जबकि तराई कुछ नीचा समतल एवं उपजाऊ मैदानी क्षेत्र है। साधारणतया भाबर में वनाच्छादन एवं जलाभाव इस क्षेत्र की विशिष्ट रूप से दृष्टव्य विशेषताएं है, और जलाभाव के फलस्वरूप मानव बसाव एवं आर्थिक

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, पी.एन.जी. राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, रामनगर, (उत्तराखण्ड)

गतिविधियां केवल उन क्षेत्रों तक ही सीमित रही है जहां मानव उपयोग हेतु जल उपलब्ध है।[४]

'इवल्यूशन्स आफ दून्स' नामक एक लेख में दीक्षित[५] ने भी भाबर क्षेत्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि हिमालय की असंख्य नदियों तथा धाराओं द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में लाये गये कंकड़-पत्थरों से भाबर क्षेत्र का निर्माण हुआ है। पर्वतों की तीव्रवाहिनी नदियाँ जैसे-जैसे पर्वतों की तलहटी में स्थित मैदानों में प्रवेश करतीं हैं तब उनकी गति व ढाल में अचानक कमी होने से धीमी होने लगती है, परिणामस्वरूप उनकी परिवहन क्षमता में न्यूनता आ जाती है जिससे वह पर्वतों को बहाकर ले जाने में असमर्थ हो जाती है इस निरन्तर जमाव के कारण भाबर क्षेत्र की उत्पत्ति हुई है। भाबर क्षेत्र का पूर्वी भाग पश्चिमी भाग से संकरा है पूर्वी भाग में इसकी चौड़ाई लगभग ८ किलोमीटर तथा पश्चिमी भाग में अधिकतम चौड़ाई १२ किमी. से १६ किमी. तक पायी जाती है।[६]

तराई क्षेत्र कुमाऊँ मण्डल के जनपद नैनीताल का दक्षिणी भाग तराई भाग के नाम से जाना जाता है दक्षिण की ओर बढ़ने पर इसकी औसत चौड़ाई लगभग १० से २५ किलोमीटर के मध्य है परन्तु पश्चिमी भागों में कही भी ५ किलोमीटर से अधिक चौड़ी नही है।[७] मूलतः तराई क्षेत्र का मैदान लम्बे समय तक टैथिस सागर में अवसादीकरण तथा हिमालय की वलित पर्वत श्रृंखला की उत्पत्ति के साथ निर्मित हुआ है। प्राचीन रवेदार चट्टान इस क्षेत्र के आधार के रूप में पायी जाती है जिसमें भ्रंशो की स्थिति बताती है कि ये चट्टानी भ्रंश श्रृंखला की एक कड़ी है। हॉगसन ने स्वीकार किया है कि तराई में एक लम्बवत पेटी हिमालय के समानान्तर फैली हुई है जिसे इन्होंने इस मैदान को प्राकृतिक दवाब के कारण निर्मित माना है।[८]

तराई क्षेत्र को उत्थान तथा दवाब के परिणामस्वरूप उत्पन्न ऐसी पेटी के रूप में परिभाषित किया है जो उत्तर में पर्वतों और दक्षिण में मैदानों के बीच समानान्तर रूप में फैली है। भौतिक क्रियाओं के अभाव में इस सिद्धान्त को कोई समर्थन नहीं मिल पाया है। दूसरी ओर इस पेटी के लिए हिमालय के पर्वतीय भाग की नदियों द्वारा हुए अवसादीकरण के सिद्धान्त को अधिक समर्थन मिला है जिससे इस क्षेत्र को 'फोरडीप' का एक भाग कहा जाता है। तराई क्षेत्र में आदिकाल से ही जल की प्रचुरता क्षेत्र के आर्थिक विकास को दीर्घ समय तक अवरूद्ध रखने में निर्णायक रही है।

भाबर में कृषि सीमित क्षेत्रों से सम्बन्ध रखती है और अधिकांशतया यह क्षेत्र वनाच्छादित है जबकि तराई के अधिकांश भाग अब उपजाऊ भूमि एवं बढ़ती आर्थिक गतिविधियों के कारण कृषि सम्पन्न क्षेत्रों के रूप में विकसित होते जा रहे हैं। अतः निश्चित ही अपनी विशिष्ट प्राकृतिक दशाओं, धरातल विकास की सम्भावनाओं, आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिक समस्याओं के सन्दर्भ में यह समस्त क्षेत्र एक भौगोलिक इकाई के रूप में ही देखा जाता रहा है और इसे कुमाऊँ का तराई भाबर प्रदेश कहा जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में भाबर क्षेत्र के अन्तर्गत नैनीताल जनपद के हल्द्वानी रामनगर व कोटाबाग विकासखण्ड व तराई क्षेत्र के अन्तर्गत जनपद उधमसिंहनगर के समस्त विकासखण्ड-जसपुर, काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, खटीमा व सितारगंज आते है। कुमाऊँ के तराई-भाबर क्षेत्र के अन्तर्गत कुछ भाग टनकपुर तहसील (जनपद चम्पावत) का भी आता है इसलिए उस क्षेत्र को सम्मिलित नहीं किया गया है। कुमाऊँ हिमालय के तराई-भाबर क्षेत्र की अपवाह प्रणाली कुछ तथ्यों से विशिष्ट है। बहता जल भाबर क्षेत्र में वर्षा ऋतु के अतिरिक्त कभी भी देखने को नहीं मिलता है। जो महत्वपूर्ण धाराएं है वे भी बड़े-बड़े गोलाश्मों की परतों के नीचे विलीन हो जाती हैं। मात्र बड़ी नदियां वर्षा ऋतु के बाद पानी की अल्प मात्रा के साथ देखने को मिलती हैं। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में कोटा भाबर के सीतावनी के कुछ स्रोतों को छोड़कर पानी की मात्रा जमीन से ऊपर नहीं दिखाई देती है। इसके विपरीत तराई क्षेत्र में जल की अधिक मात्रा होने के कारण वहां दलदलीय परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। तराई क्षेत्र में कई छोटी-छोटी नदियां बड़ी नदियों में मिल जाती हैं जिस कारण इस क्षेत्र को नदियों की भूमि कहा गया है। तराई-भाबर क्षेत्र में कोसी, शारदा, गोला नन्धौर और दाबका प्रमुख हैं। अध्ययन क्षेत्र में कुछ स्थानीय छोटी नदियां भी हैं, जो बाह्य हिमालय से उत्पन्न होती हैं। कुछ छोटी नदियां वर्षा के जल के साथ ही जन्म लेती हैं तथा वर्षा समाप्ति पर उनका अन्त हो जाता है। अन्य नदियों में कैलाश, भाखड़ा, ढेला, सूखी, फीका, बेहगुल और स्यालदेह लोहिया आदि अनेक छोटी-छोटी नदियां भी हैं। यद्यपि तराई क्षेत्र में स्वयं कोई धाराएं नही हैं लेकिन अनेकों धाराएं उत्तरी भाबर के दलदल से प्रकट होती हैं।[९]

पर्यावरण के सभी कारकों में जलवायु सबसे महत्वपूर्ण कारक है। फ्रीमेन एण्ड रॉप[१०] ने जलवायु को प्रमुख भौगोलिक तत्व माना है जो मानवीय आर्थिक क्रियाकलापों को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त यह वनस्पति तथा जीव-जन्तुओं के वितरण में महत्वपूर्ण नियन्त्रण रखती है। फलतः यह उद्योग धन्धे मानव तथा उसमें कार्यकलापों और उस निश्चित प्रदेश में उत्पन्न होने वाले खाद्यान्नों, आवास व रहन-सहन हेतु प्राप्त

सामग्री को भी निर्धारित करती है। जोशी[११] ने तराई भाबर क्षेत्र की उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु का उल्लेख किया है जो ६०० मीटर से नीचे पाई जाती है। यहां अधिकतम औसत तापमान जून माह में होता है जो वर्ष का सबसे अधिक गर्म माह है। इस महीने में अधिकतम तापमान रामनगर में ३६° से.ग्रे., किच्छा में ४०.६° से.ग्रे., बाजपुर में ४०.३° से.ग्रे. रिकॉर्ड किया गया है। मानसून की अवधि मध्य जून से मध्य सितम्बर तक है कुछ वर्षा जनवरी से मार्च के मध्य में होती है। औसत वार्षिक वर्षा हल्द्वानी में १६७.६ सेमी., रामनगर १४७.३ सेमी., खटीमा में १४७.२ सेमी. होती है।

तराई भाबर क्षेत्र में साल, सेन, शीशम, हल्दू, तुन, सेमल, चीड़, सागौन, सिरस, सांदन, कंजू, गुटेल, झींगन, खैर, जामुन, यूकेलिप्टिस, बहेड़ा, अमलतास, बांकली, खरपट, गुलर, हरड़, आंवला, पॉपलर, आम, कुसुम, गेठी, बरगद, पीपल आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। तराई और भाबर के मध्य का क्षेत्र जो लायी हुई मिट्यिों व बड़े तथा छोटे पत्थरों के मध्य स्थित है। गहरी दोमट मिट्टी साधारणतः हल्द्वानी, उधमसिंहनगर और खटीमा में फैली है। तराई पानी रिसाव का क्षेत्र है। यहां आने वाली छोटी-छोटी नदियां रेत व महीन मिट्टी का जमाव करती हैं यह पट्टी के रूप में काशीपुर, जसपुर, बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर तथा सितारगंज में भाबर के नीचे फैली हुई है। यह अवसादी शैलों के मध्य कहीं-कहीं पर दलदली और वृक्षविहीन क्षेत्र के रूप में है। तराई और भाबर के मध्य कहीं-कहीं कोटाबाग, कालाढुंगी, खटीमा, रामनगर का पर्वतपदीय क्षेत्र जो भाबर के उत्तर में ढलान के रूप में लगभग २० किमी. की पट्टी में शारदा और रामगंगा की सहायक नदियों के रूप में फैला है वहां पर जलोढ़ मिट्टी पायी जाती है। भाबर तथा तराई क्षेत्र की मिट्टी की प्रमुख विशेषता जीवाणुयुक्त उवर्रक मिट्टी है जो प्रचुर मात्रा में जल तथा पर्वतपदीप रिसाव से नाइट्रोजन, पोटाश, कैल्शियम से युक्त है जिसमें प्रमुख रूप से स्थानीय विभिन्नताएं भी मिलती हैं।

ऐतिहासिक परिदृश्य : कुमाऊँ के तराई भाबर क्षेत्र को नेविल ने डिस्ट्रिक्ट गजेरियर में एक गर्वन्मेंट एस्टेट कहा है जिसमें उल्लेख किया कि उत्तर प्रदेश के पूर्वोत्तर जिला गोरखपुर से लेकर नेपाल की सीमा से सटा और पश्चिम में अफजलगढ़ (जिला-बिजनौर) तक का लगभग ३५० किमी. लम्बा और १५ से २० किमी. चौड़ा विस्तृत क्षेत्र 'तराई' नाम से जाना जाता था जो वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य के अन्तर्गत है। नैनीताल और गढ़वाल में शिवालिक पर्वतश्रेणियों के ठीक नीचे वाला भाग 'भाबर' के नाम से जाना जाता है। तराई का यह नामकरण ब्रिटिश राज्य के कुछ ही पहले हुआ। मुगल काल में और उससे पूर्व तथा बाद भी चन्द राजाओं के समय तराई-भाबर को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से जाना जाता था। भाबर मूलतः भाभर शब्द का अपभ्रंश है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है पर्वत घाटी का जंगल[१२] चार शताब्दी पूर्व तक शिवालिक पद-तालिकाये टीलों, चट्टानों और पठारों के रूप में भाबर क्षेत्र तक विस्तृत थी। तराई की भाँति भाबर क्षेत्र भी जंगलों से ढका था। यह १८३६ तक ब्रिटिश गढ़वाल कुमाऊँ के एक परगने के रूप में विद्यमान रहा। १८५८ में नैनीताल को कुमाऊँ मण्डल का मुख्यालय बनाया गया। १८५४ से १८६० तक कुमाऊँ में दो ही जिले रहे तथा १५ अक्टूबर १६६१ को नैनीताल, अल्मोड़ा और गढ़वाल तीन जनपद बन गये। १ अगस्त १६४६ को रियासत टिहरी के भारत संघ में विलीनीकरण के बाद कुमाऊँ मण्डल में चार जनपद हो गये। १६६० में तीन नये सीमान्त जिले उत्तरकाशी, चमोली, पिथौरागढ़ बनाये गये। १६६० से १६६८ तक कुमाऊँ मण्डल में तीन जिले रहे। १६६८ में पाँच जिलों को मिलाकर गढ़वाल और तीन जिलों का कुमाऊँ मण्डल बनाया गया।

१८६१ में इन दोनों एस्टेट्स को डिप्टी कमिश्नर नैनीताल के प्रशासनिक नियन्त्रण में कर लिया गया। १८६५ में तराई एवं भाबर के प्रशासनिक नियन्त्रण के लिए एक असिस्टेंट कमिश्नर की नियुक्ति की गई। यह अधिकारी सुपरिटेन्डेन्ट 'तराई एण्ड भाबर गवर्नमेन्ट एस्टेट' कहा गया अपनी पेंचीदी संरचना और भौगोलिक स्थिति के कारण तराई क्षेत्र अन्य जिलों की प्रशासनिक व्यवस्था से भिन्न रूप में शासित रहा। तराई एवं भाबर को मिलाकर एक गवर्नमेन्ट एस्टेट बना दिये जाने के बाद प्रशासनिक सुविधा के लिए पूरी एस्टेट को तहसील का दर्जा देकर परगनों में विभक्त कर दिया गया। भाबर की पट्टियों में (पहाड़ी क्षेत्रों के समान) पूर्व में चौब्यासी, बीच में भाबर छकाता, कोटा और चिल्किया पश्चिम में बनाए गए। ये पट्टियाँ तहसीलदार हल्द्वानी के कार्यक्षेत्र में रखी गयी। तहसीलदार हल्द्वानी की सहायता के लिए रामनगर में पेशकार कालाढुँगी में नायब तहसीलदार नियुक्त किये गये।

तराई क्षेत्र की एक अलग तहसील किच्छा गठित की गई पूरी तहसील को छः (०६) परगनों में विभक्त कर दिया गया। ये परगने बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, किलपुरी, नानकमत्ता और बिल्हेरी थे। इन परगनों को पाँच पेशकारी क्षेत्रों में बाँटा गया। एक पेशकारी का इन्चार्ज पेशकार होता था जो नायब तहसीलदार पद के समकक्ष होता था। नानकमत्ता और किलपुरी का तहसील मुख्यालय सितारगंज व बिल्हेरी का खटीमा और

रूद्रपुर को तहसीलदार किच्छा के क्षेत्रान्तर्गत ही रखा गया। पेशकार मुख्यालय गदरपुर का गदरपुर में तथा बाजपुर का बाजपुर में रखा गया। काशीपुर को एक सब डिवीजन के रूप में अलग रखा गया। १८६४ के एक शासनादेश के तहत तराई और भाबर की ४५०३२५ एकड़ भूमि जिसके अन्तर्गत तराई की किच्छा तहसील बाजपुर, खटीमा (परगना टनकपुर का कुछ भाग छोड़कर) और भाबर की रामनगर, हल्द्वानी तहसील और परगना टनकपुर के कुछ भाग को मिलाकर 'तराई एण्ड भाबर गवर्नमेन्ट एस्टेट' बना दिया गया, बोलचाल में इसे 'खाम एस्टेट' भी कहा जाता था। 'खाम' से तात्पर्य कच्ची जमीन से होता है, दूसरे शब्दों में भूमि का वह हिस्सा जिस पर iR{k:i lsfdlh O;fDr fo'ks"k dk LokfeRo u gksA[१३]

तराई में उस समय कुल ४७३ छोटे-बड़े गाँव थे। इनमें ३७३ गाँव एस्टेट के नियन्त्रण में थे, २१ गाँव जमींदारी के और ६१ मुस्तरजिरी गाँव थे व पाँच-पाँच रेवेन्यू फ्री थे। इनमें २ गाँव रूद्रपुर में एक-एक किलपुरी और नानकमत्ता में था। एस्टेट का कुल क्षेत्रफल ४६४४३३एकड़ अर्थात् ७७२.५ वर्ग मील था। मेनुअल के अनुसार एस्टेट का क्षेत्रफल ४५०३२५एकड़ है।[१४] नेविल ने नैनीताल गजेटियर में तराई एण्ड भाबर गवर्नमेन्ट एस्टेट के स्थान पर कई जगहों पर तराई शब्द का प्रयोग किया। तहसील को छः परगनों बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, किलपुरी, नानकमत्ता और बिल्हेरी में विभक्त किया गया था। 'तराई एण्ड भाबर गवर्नमेन्ट एस्टेट' के विषय में कहा जाता है कि इसे 'क्राउनलैण्ड' की श्रेणी में रखा गया था। क्राउनलैण्ड से तात्पर्य उस भूमि से था जो सीधे ब्रिटिश ताज के नियन्त्रण में होती थी। इस एस्टेट की सम्पूर्ण आय 'प्रिस ऑफ वेल्स' (ब्रिटिश ताज का उत्तराधिकारी) के व्यक्तिगत व्यय के लिए रखी जाती थी।[१५]

सम्पूर्ण तराई भाबर क्षेत्र में उस काल में लगभग तीन चौथाई भाग जंगल था। गाँवों के रूप में छितरी हुई बस्तियाँ थीं। पक्के मकान अपवाद स्वरूप कहीं-कहीं दिखाई देते थे। तराई के आज के नगर और कस्बे बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, किच्छा, सितारगंज, खटीमा, टनकपुर आदि सभी गाँवों के रूप में थे। सम्पूर्ण तराई और भाबर में थारू, बोक्सा व मुसलमानों ओर कम संख्या में हिन्दुओं के गाँव थे। वनगुजर भी घुमन्तु कबीला की शक्ल में यत्र-तत्र जंगलों में रहते थे। माध्यमिक शिक्षा का एक मात्र साधन हल्द्वानी का मोतीराम बाबूराम विद्यालय था जिसे एस्टेट के बजट से ग्रान्ट दी जाती थी।[१६] डेढ़ सौ वर्ष पहले की तराई चोरों, डकैतों और अपराधियों का अभ्यारण्य था। अंग्रेजों ने इसकी भूमि पर वन सम्पदा से खजाना भरा और इसे शिकारगाह बनाए रखा।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं : कुमाऊं का तराई-भाबर क्षेत्र निम्नलिखित सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं से समृद्ध है।

जनसंख्या : किसी भी क्षेत्र या स्थान विशेष के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप में वहां की जनसंख्या का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जनगणना वर्ष २०११ के अनुसार कुमाऊँ के तराई-भाबर क्षेत्र की कुल जनसंख्या १४०८३६८ व्यक्ति है जिसमें पुरूषों की संख्या ७२६०२४ तथा स्त्रियों की संख्या ६७६३४४ है।[१७] तराई-भाबर क्षेत्र की विकासखण्डवार जनसंख्या तालिका संख्या-१ में प्रदर्शित की गयी हैः-

तालिका संख्या-१

तराई भाबर क्षेत्र की विकासखण्डवार जनसंख्या २०११

विकासखण्ड	कुलव्यक्ति	प्रतिशत	पुरूष	स्त्री
जसपुर	१०७८५८	७.६६	५६६३४	५१२२४
काशीपुर	१४४२६७	१०.२४	७५४८६	६८८११
बाजपुर	१४१२५०	१०.०३	७३४४१	६७८०६
गदरपुर	१३४२३८	६.५३	६६५८२	६४६५६
रूद्रपुर	१६०४४८	११.४०	८४१६५	७६२५३
सितारगंज	१७६४४६	१२.५३	६१०७२	८५३७४
खटीमा	१७१६६२	१२.१६	८६८४८	८४८१४
रामनगर	६७६१६	६.६६	५००७२	४७८४४
कोटाबाग	४६६२४	३.३३	२३७५१	२३१७३
हल्द्वानी	२२७३२६	१६.१४	११७६४३	१०६३८६
योग	१४०४३६८	१००.००	७२६०२४	६७६३४४

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि तराई-भाबर क्षेत्र में कुल जनसंख्या १४०८३६८ व्यक्ति है जिसमें पुरूष ७२६०२४ है जो कुल जनसंख्या का ५१.७६ प्रतिशत है तथा स्त्रियों की संख्या ६७६३४४ है जो कुल जनंसख्या का ४८.२४ प्रतिशत है। हल्द्वानी विकासखण्ड में सबसे अधिक २२७३२६ व्यक्ति निवास करते है जो कुल जनंसख्या का १६.१४ प्रतिशत है। सबसे कम जनसंख्या की दृष्टि से कोटाबाग का स्थान आता है जहां कुल ४६६२४ व्यक्ति निवास करते हैं जो कुल जनसंख्या का ३.३३ प्रतिशत है। यहां जनसंख्या का घनत्व ७०४ व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. है।

अधिवास : मानव विभिन्न प्रकार तथा आकार की बस्तियों में रहता है निवास की मूलभूत इकाई घर है जो एक झोपड़ी से लेकर भव्य महल तक हो सकता है। सामान्यतः मानव बस्ती किसी भी प्रकार या आकार के घरों का समूह है जहां मानव निवास करता है। तराई-भाबर क्षेत्र में ग्रामीण तथा नगरीय

दोनो ही प्रकार के अधिवास पाये जाते है। तराई चूंकि मैदानी क्षेत्र है जहां सघन अधिवास पाये जाते हैं। भाबर-क्षेत्र के कोटाबाग विकासखण्ड में विकीर्ण अधिवास भी देखने को मिलते हैं। तराई-भाबर क्षेत्र के विकासखण्डों में कच्चे मकान न्यून मात्रा में ही देखने को मिलते हैं आज यहां अधिकतम पक्के मकान ही दिखाई देते हैं। वर्तमान में यहां कालोनियां बहुत विकसित हुई है जिसमें लेट, विला आदि की संकल्पना को बढ़ावा मिला है। आज तराई-भाबर क्षेत्र का ग्रामीण क्षेत्र भी नगरीय क्षेत्रों की भांति सुविधा सम्पन्न है।

साक्षरता : साक्षरता जनसंख्या विकास का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसी से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में स्तर को जाना जा सकता है किसी देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका न केवल महत्त्वपूर्ण होती है वरन एक निश्चयात्मक स्वरूप प्रदान करती है।[१८] तराई-भाबर क्षेत्र में साक्षरता को तालिका संख्या-२ से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका संख्या २

तराई भाबर क्षेत्र में साक्षर व्यक्ति तथा साक्षरता का प्रतिशत (१९९१-२०११)

वर्ष	कुल साक्षर जनसंख्या	साक्षरता प्रतिशत	पुरूष	साक्षरता प्रतिशत	स्त्री	साक्षरता प्रतिशत
१९९१	३५९९६८८	४९.९६	२४०४१६	६६.८४	११९२७२	३३.१६
२००१	६५९१६५	६४.८६	४०२३०८	६१.०१	२५६८५७	३८.९९
२०११	१०३७८३६	७३.६६	५९८५२५	५७.६८	४३९३१४	४२.३२

उपुर्यक्त तालिका[१९] से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में वर्ष १९९१ में कुल ३५९६४४ व्यक्ति साक्षर थे जिनमें पुरूषों की संख्या २४०४१६ व स्त्रियों की संख्या ११९२७२ थी। स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों का साक्षरता प्रतिशत ६६.८४ अधिक है। वर्ष २००१ की जनगणनानुसार अध्ययन क्षेत्र में कुल ६५९१६५ व्यक्ति साक्षर थे जिनमें पुरूष साक्षर ४०२३०८ तथा स्त्रियां २५६८५७ साक्षर थी, जिनका साक्षरता प्रतिशत क्रमशः ६१.०१ एवं ३८.९९ प्रतिशत रहा। १९९१ की अपेक्षा साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हुई। वर्ष २०११ की जनगणनानुसार यहां कुल साक्षर व्यक्ति १०३७८३६ हैं जिनमें ५९८५२५ व्यक्ति पुरूष साक्षर है तथा ४३९३१४ स्त्रियां साक्षर है। पुरूष साक्षरता प्रतिशत ५७.६८ प्रतिशत है तथा स्त्री साक्षरता प्रतिशत ४२.३२ रहा। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार कुल ७३.६६ व्यक्ति साक्षर हुए। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो अध्ययन क्षेत्र में १९९१ से लेकर २०११ तक निरन्तर साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हुई है। अध्ययन क्षेत्र में शैक्षिक विकास हेतु प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। उच्च शैक्षिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के सर्वांगीण विकास हेतु राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, इंजीनियरिंग कॉलेज, होम्योपैथिक कॉलेज, मेडिकल कॉलेज तथा व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न केन्द्र स्थापित किये जा चुके है। सरकार द्वारा सर्वशिक्षा अभियान, रमसा तथा रूसा आदि जैसे विभिन्न कार्यक्रम प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर चलाये जा रहे हैं जिससे सर्वागीण शैक्षिक विकास हो सके।

धर्म : मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में धर्म का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। धार्मिक दर्शन मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करता है। अध्ययन क्षेत्र में सभी धर्मों के लोग निवास करते हैं जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि सम्मिलित हैं। अध्ययन क्षेत्र में हिन्दू ६७.४० प्रतिशत, मुस्लिम २०.५६ प्रतिशत, ईसाई ०.३, सिक्ख ११.४५ प्रतिशत, बौद्ध ०.१२, जैन ०.०६ अन्य ०.०३ प्रतिशत तथा जिन्होंने धर्म नही बताया ऐसे ०.०४ प्रतिशत व्यक्ति निवास करते है।

भाषा एवं बोली : भाषा भी जनसंख्या का एक महत्पूर्ण सामाजिक तथ्य है। प्रत्येक प्राणी अपनी बाह्य इन्द्रियों से जो अनुभव (देखता, सुनता, सूंघता, स्पर्श आदि) करता है उनमें उसके भीतर कुछ मानसिक भाव पैदा होते है जो भाव ज्ञान, इच्छा, तथा कार्य के रूप में होते हैं। जब इन भावों को दूसरे प्राणियों तक जिन चिन्हों या संकेतों द्वारा पहुंचाया जाता है उन्हें भाषा या बोली की संज्ञा दी जाती है। ये संकेत चेष्टा द्वारा, वाणी द्वारा अथवा लिपि द्वारा दूसरे तक पहुंचाये जाते हैं। इनको चेष्टाओं की भाषा, वाणी की भाषा तथा लिपि की भाषा कहा जाता है। अतः भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी समाज के लोग परस्पर विचारों का आदान प्रदान करते है।[२०] तराई भाबर क्षेत्र में भी हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली तथा कुछ अन्य भाषायें बोली जाती है। २०११ की जनगणना के अनुसार क्षेत्र में हिन्दी ७५.८४ प्रतिशत, उर्दू १०.७२ प्रतिशत, पंजाबी ७.१० प्रतिशत, बंगाली ५.३७ प्रतिशत तथा अन्य

भाषाएं ०.६६ प्रतिशत बोली जाती हैं। सबसे अधिक हिन्दी भाषा बोली जाती है। तराई भाबर क्षेत्र को मिश्रित भाषा में विभाजित किया जा सकता है। क्षेत्रीय भाषाओं में यहां कुमाऊँनी, गढ़वाली, जौनसारी आदि भाषाएं भी बोली जाती है।[२१]

खानपान : तराई क्षेत्र कृषि प्रधान क्षेत्र है जहां चावल, गेहूँ आदि समस्त खाद्यान्न प्रमुख रूप से उगाये जाते है इसलिए यहां के लोग खान पान में दाल-चावल रोटी सब्जी तथा मांस आदि समस्त प्रकार के भोज्य पदार्थो का उपभोग करते हैं। जाड़ो में मडवे की रोटी, मक्के की रोटी प्रमुखता से खाई जाती है। किसी भी त्योहार या मांगलिक कार्यक्रमों में खीर, बड़े व पूरी अवश्य बनायी जाती है। भाबर-क्षेत्र के रामनगर, कोटाबाग, हल्द्वानी विकासखण्डों में जाड़ो में गर्म चीजों का प्रयोग किया जाता है। गहत की दाल एवं गडेरी, सूखी मूली की सब्जी एवं मांस प्रमुख रूप से खाया जाता है। काले भट्ट की पिसी दाल एवं भांग की चटनी का प्रयोग भी भाबर क्षेत्र में मुख्य रूप से होता है। दूध, दही, घी, मक्खन प्रचुर में उपलब्ध होने के कारण तराई क्षेत्र खान पान की दृष्टि से समृद्ध है।

वेशभूषा एवं आभूषण : तराई-भाबर क्षेत्र में वेश-भूषा उत्तराखण्ड राज्य के अन्य क्षेत्रों की भांति ही है। यहां सामान्यतया पुरूषों द्वारा पेंट शर्ट, कुर्ता पायजामा तथा धोती का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियां साड़ी, सूट-सलवार धारण करती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बुजुर्ग महिलाएं घाघरा तथा चोली व सिर में रूमाल धारण करती हैं। सामाजिक एवं मांगलिक कार्यों में विवाहित महिलाओं द्वारा रंगोली पिछौड़ा (अंगवस्त्र) पहनना शुभ माना जाता है।

आभूषणों में इस क्षेत्र के पुरूषों द्वारा हाथ में घड़ी एवं अंगूठी एवं गले में चैन का प्रयोग किया जाता है, युवा वर्ग द्वारा कानों में बाली भी पहनी जाती है। महिलाएं मुख्य रूप से सोने चाँदी के बने आभूषण पहनती हैं जिनमें मंगलसूत्र, कर्णफूल, चूड़ियाँ, पायल तथा बिछुए का प्रयोग करती हैं। शादी विवाह एवं धार्मिक कार्यो में नथ, मांग टीका व पौंची का प्रयोग किया जाता है।[२२] ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएं चांदी का सूता एवं ग्लोबन्द व हाथ में धागुले का प्रयोग करती हैं किन्तु वर्तमान में चांदी का प्रयोग केवल बिछुये व पायल के लिए ही किया जाने लगा है।

लोकगीत, नृत्य एवं वाद्ययंत्र : किसी भी क्षेत्र के सांस्कृतिक तत्वों में लोकगीतों का विशेष महत्व होता है। लोकगीत ही अपने क्षेत्र विशेष की संस्कृति को बताने का माध्यम होते हैं। यहां मुख्य रूप से जन्म, छठी, नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह आदि में अनुभवी बुजुर्ग महिलाओं द्वारा मंगल व संस्कार गीत गाये जाते है जिन्हें शकुनाक्षर (शकुनाखर) कहा जाता है। धार्मिक गीतों में देवी देवताओं को मनाने के लिए जागर लगायी जाती है। होली पर्व में रात्रि को चन्द्रमा के प्रकाश में पुरूष एवं महिलाओं द्वारा झोड़ा गीत गाया जाता है जो यहां का प्रमुख लोकगीत है। लोक नृत्यों में छोलिया नृत्य, भगनौल लोकनृत्य तथा जागर नृत्य जो स्थानीय देवी देवताओं की वीर गाथाओं पर आधारित नृत्य है किये जाते हैं। प्रमुख वाद्य यंत्रों में यहां ढोल, नगाड़ा, चिमटा, ढोलक, घंटा, मसकबीन, कांसे की थाली, हुड़का, तबला, ढपली, आदि है।[२३]

त्यौहार एवं मेले : यहां के त्यौहार अपने आप में विशेष महत्व रखते हैं यहां के प्रमुख पर्वो में हरेला, घुघतिया त्यार (मकर संक्रान्ति), बसन्त पंचमी, फूलदेई, खतड़वा, बैसी व जागरण, आठूं, ओगलिया (घी त्यार), बल्दिया त्यार (बैलों का त्यौहार), दीपावली, होली, रक्षाबंधन, ईद, मुहर्रम, श्री गंगा दशहरा, शिवरात्रि आदि मनाये जाते हैं।[२४] यहां पूर्णागिरी मेला (टनकपुर) चैतीमेला (काशीपुर) उत्तरायणी मेला (हल्द्वानी) तथा रामनगर में बसन्त पंचमी का मेला प्रमुख है।

औद्योगिक स्वरूप : वर्तमान समय में तराई भाबर क्षेत्र औद्योगिक विकास की दृष्टि से कुमाऊँ में विशिष्ट स्थान रखता है यहां कृषि आधारित उद्योगो में राइसमिल, आटामिल, खाद्य तेल मिल, गन्ने पैरने के क्रेसर, चीनी मिलें, बिस्कुट उत्पादन इकाइयां, फल संरक्षण, जेम जेली, मुरब्बा, सॉस आदि उद्योग, मसाला उद्योग विभिन्न खाद्य पदार्थ उत्पादन इकाई, सोयबीन एवं वनस्पति उद्योग, डिस्टलरी यूनिट, दुग्ध उद्योग, आलू चिप्स उद्योग आदि ने सराहनीय प्रगति की है जो इस क्षेत्र की मुख्य विशेषता है।

वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र में वनों पर आधारित अनेक उद्योग स्थापित हो चुके है जिनमें कागज उद्योग, चिराई मशीनें, फर्नीचर, प्लाईवुड, स्ट्राबोर्ड, पेन्सिल, स्लेट, पाइनस्ट्रा, रबर, प्रोफाइल, पेकिंगकेस, दियासलाई, चटाई व टोकरी, बीड़ी व बान- रस्सी उद्योग आदि प्रगति की दौड़ में प्रयासरत हैं जिनसे करोड़ो रूपयो का उत्पादन एवं अध्ययन क्षेत्र के कुशल/अकुशल लोगो को रोजगार प्राप्त हो रहा है। खनिज आधारित उद्योगो में चूना निर्माण, ईंट, पत्थर पूर्ण (स्टोन पाउडर) टिकली कोयला आदि है। इलैक्ट्रानिक्स, इंजीनियरिंग यान्त्रिकी व रसायन उद्योगों में टी.वी. निर्माण, इलैक्ट्रानिक्स उद्योग, ट्यूब बल्ब निर्माण, मोटर इंदिन निर्माण, ट्रैक्टर एसेम्बलिंग, हैवी इंजीनियरिंग उपकरण पोर्टेबल जैनसेट आदि मुख्य हैं।

तराई एवं भाबर की सम्पूर्ण पट्टी जो कृषि कार्यो में

अद्वितीय स्थान रखती थी वह औद्योगिक पट्टी के रूप में विकसित हो चुकी है। रूद्रपुर में पंतनगर-सितारगंज मार्ग पर सरकार द्वारा सिडकुल की स्थापना से अनेक उद्योगों की स्थापना हो चुकी है जिसमें प्रतिष्ठित बहुराष्ट्रीय औद्योगिक कम्पनियों द्वारा क्षेत्र के विकास से योगदान किया जा रहा है जिनमें टाटामोटर्स, मारूति सुजुकी, सेमसंग, नेस्ले, एल.जी, माइक्रोमेक्स आदि मुख्य हैं, रूद्रपुर में अशोका लीलेन्ड, एच. एम.टी. फैक्ट्री रानीबाग, सेन्चुरी पेपर मिल लालकुआँ, चीमा पेपर मिल काशीपुर, इण्डिया ग्लाइकोल्स लि. काशीपुर, तथा सितारगंज व जसपुर में भी औद्योगिक आस्थान कार्यरत है[२५] जो उत्तराखण्ड राज्य के औद्योगिक स्वरूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

धार्मिक स्थल एवं पर्यटन : तराई भाबर क्षेत्र में गिरिजा देवी मन्दिर एक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है यहां प्रतिवर्ष लाखों श्रृद्धालु आते हैं। यह रामनगर से १५ किमी. दूर रामनगर-रानीखेत मार्ग पर स्थित है। अन्य धार्मिक स्थलों में पूर्णागिरि धाम टनकपुर में, नानकमत्ता गुरूद्वारा (नानकमत्ता), बालसुन्दरी मन्दिर काशीपुर प्रसिद्ध है। काशीपुर में ऐतिहासिक गोविषाण टीला भी स्थित है जो पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है तथा पर्यटकों का ध्यान आकर्षित करने वाला पर्यटन स्थल है। काशीपुर में द्रोणसागर पांडवों की धर्नुविद्या के शिक्षास्थल के रूप में जाना जाता है।[२६] तराई भाबर क्षेत्र में जिम कार्बेट नेशनल पार्क विश्व प्रसिद्ध है जहां देशी-विदेशी पर्यटक वर्ष भर आते रहते है। अन्य पर्यटन स्थलों में धनगढ़ी म्यूज़ियम रामनगर, कार्बेट फॉल कालाढुंगी दर्शनीय है। पर्यटकों के लिए यहां पर्यटक आवास गृह तथा समस्त सुविधा सम्पन्न होटल, रिसॉर्ट उपलब्ध हैं।

जनजाति : कुमाऊँ के तराई भाबर क्षेत्र में बोक्सा एवं थारू जनजाति निवास करती है। बोक्सा जनजाति के लोग रामनगर, काशीपुर में निवास करते हैं तथा कुछ संख्या बाजपुर में भी पाई जाती है। थारू (थाड़ू) तराई क्षेत्र के मूल निवासी है इनकी संख्या कुमाऊँ की समस्त जनजातियों में सर्वाधिक है यह जनजाति किच्छा, खटीमा, सितारगंज में निवास करती है।[२७] खेती एवं पशुपालन इनका प्रमुख व्यवसाय है।

सन्दर्भ

1- Joshi S.C., Joshi D.R. Dani, D.D., 'Kumaun Himalaya-A Geographic Perspective on Resource Development' Gyanodaya Prakashan Nainital, 1983, P.2.
2- Nevil, H.R.,'Nainital A Gazetteer' Government Branch Lucknow, 1922, P.4
3- Arya, V.D., 'Trends of Urbanization in Tarai Bhabar Region of UP since 1957' Unpublished research Report, Nainital, 1980, P.3.
4- Nevil H.R., op. cit.
5- Dixit, 'The Glacier of India' Country & People vol-1, 1959 P-152
6- Atkinson E.T., 'The Himalayan Districts of the North Western Provinces of India' Vol. 1 Allahabad, 1882, P-124
7- Joshi S.C, Joshi D.R., Dani D.D., op.cit. p. 17
8- Nevil H.R., op.cit.
9- Ibid p. 175
10- Freeman O.W & Rope H.P., 'Intetial of Geography London', 1949, P-1
11- जोशी एस.सी. व अन्य, पूर्वोक्त, १९८३, पृ. ४२
12- सकलानी, शक्तिप्रसाद, 'तराई रूद्रपुर का इतिहास एवं विकास', गौरव प्रकाशन, दिल्ली, २०००, पृ. ८४
13- वही, पृ. ८७
14- मैनूअल ऑफ द रूल्स एण्ड आर्डर्स रिलोटिंग टू द मेनेजमेन्ट ऑफ गवर्नमेन्ट एस्टेट नैनीताल, पृ. १२०
१५. सकलानी, शक्तिप्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. सं. ८७
१६. वही, पृ. ८६-६०
१७. सांख्यिकीय पत्रिका, अर्थ एवं संख्या विभाग, जनपद उधमसिंहनगर एवं नैनीताल, २०१६-१७, पृ. १८, १६
18- Singh R.L.,'India - A Regional Geography', Silver Zublie Publication National Geographical Society of India Varanasi, 1971, P. 458
19- सांख्यिकी पत्रिका, पूर्वोक्त, २०१६-१७, पृ. २३
२०. त्रिपाठी, रामदेव 'जनसंख्या भूगोल', वसुन्धराप्रकाशन गोरखपुर, २००५, पृ. ३६७
२१. मैठाणी डी.डी., प्रसाद गायत्री, 'उत्तराखण्ड का भूगोल' शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, २०१५, पृ. २१५
२२. बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, 'उत्तराखण्ड', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी देहरादून, २००८, पृ. ३३०-३३५
२३. बलुनी, दिनेश चन्द्र, 'उत्तरांचल संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एवं पुरातत्व' प्रकाश बुक डिपो बरेली, २००१, पृ. ७३-८५
२४. वही, पूर्वोक्त, पृ. ६४-७१
२५. बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. ३८४-३८५
२६. नौटियाल, शिवानन्द, 'कुमाऊँ में पर्यटन' श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, द माल अल्मोड़ा, पृ. २४
२७. बलुनी, दिनेश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५८-५६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पर्वतीय ग्रामीण उत्तराखण्ड के विकास में मीडिया की भूमिका

❑ डॉ. अमित कुमार

मीडिया शब्द का तात्पर्य जनसंचार माध्यमों जैसे-समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा, विज्ञापन, कम्प्यूटर, पत्र-पत्रिकाओं तथा इन्टरनेट आदि से है। विकास में मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पर्वतीय क्षेत्रों की आय के दो महत्वपूर्ण स्त्रोत पर्यटन व कृषि हैं किन्तु जहाँ प्राकृतिक आपदायें पर्यटन को विकसित नहीं होने देतीं, वहीं कृषि उपज के वितरण के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि उत्पादन मण्डी समितियों की स्थापना तक नहीं की गई है। इससे उत्तराखण्ड में असंतुलित क्षेत्रीय विकास पनप रहा है। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है राज्य में ग्राम्य विकास एवं पलायन आयोग की स्थापना करना। पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों को और अन्य राज्यों को पलायन निरन्तर गतिमान है। इसका कारण पर्वतीय क्षेत्रों की खस्ता हालत ही है। ऐसे में पर्वतीय उत्तराखण्ड के निवासियों को मीडिया में उम्मीद की झलक दिखाई देती है। लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ मीडिया सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में अपनी बदलती हुई भूमिका और राजनैतिक दवाब के बीच भी अपने सामाजिक सरोकारों के प्रति पूर्णतः निष्पक्ष है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी तथ्य को उजागर करने का एक प्रयास है।

मीडिया शब्द का तात्पर्य जनसंचार माध्यमों जैसे-समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा, विज्ञापन, कम्प्यूटर, पत्र-पत्रिकाओं तथा इन्टरनेट आदि से है। विकास में मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मीडिया का प्रभाव समाज में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में दिखाई देता है। मीडिया पर प्रसारित कार्यक्रमों के द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। मीडिया संचार का वह सशक्त माध्यम है जो व्यक्ति को सही समय पर सही निर्णय लेने हेतु सहायता करता है। आज सम्पूर्ण विश्व में व्यक्तियों के विचारों और भावनाओं तथा किसी भी क्षेत्र की समस्याओं को सामने लाने में मीडिया की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। मीडिया के निष्पक्ष सामाजिक सरोकारों को स्पष्ट करते हुए ग्रीम बर्टन का कहना है कि मीडिया और समाज के मध्य संबंध के मामले में यह अवलोकन अलग अलग दृष्टिकोणों और वैचारिक पदों के प्रति कुछ प्रश्न उठाता है। एक ओर जनतंत्र और चयन की स्वतंत्रता पर पश्चिमी देशों का विश्वास मुक्त बाजार और मीडिया की बहुलता के सपनों के विचारों को समर्थन देता है, वहीं दूसरी ओर संस्थानों की स्वतंत्रता जिससे वो अपनी इच्छा से कुछ भी उत्पादित कर सकें। यह वैचारिक अनिवार्यता के लिए सही नहीं है, जैसे कि सामाजिक नैतिकता की एक विशेष प्रणाली को समर्थन देना और कुछ विशेष सामाजिक समूहों को बचाना आदि।[1]

एक समय ऐसा था, जब केवल समाचार पत्रों, पोस्टरों व टेलीविजन के माध्यम से ही हम सूचनाएं प्राप्त करते थे, परन्तु वर्तमान समय में मीडिया के इन साधनों का आधुनिकीकरण हो चुका है और हम देख रहे हैं कि आज उपरोक्त साधनों के अलावा कम्प्यूटर, ई-मेल, वेब साइट और ई लिंक के माध्यम से मीडिया सम्पूर्ण भारतीय समाज को प्रभावित कर रहा है। सोशल मीडिया तो लोगों के जीवन का एक अनिवार्य अंग ही बन चुका है। युवाओं पर मीडिया के प्रभावों का उल्लेख करते हुए शर्मा का मत है कि मीडिया युवाओं की भावनाओं, विचारों को अधिक प्रभावित करता है। वह पुराने मूल्यों एवं मनोवृत्तियों के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृत्तियों को स्थापित djrkgS लोकतांत्रिक समाजों में लोगों की आवाज को सामने लाने मे मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। इस सम्बन्ध में रवीन्द्र नाथ मिश्र लिखते हैं कि लोकतन्त्र और मीडिया अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कुछ मायनों में बड़ी कुशलता से कर रहा है, जिसके कारण जनता में जागरूकता बढ़ी है, जनता अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग और सतर्क हुई है। नारी और दलित वर्ग अपनी अस्मिता को लेकर सतर्क हुआ है। आर्थिक दृष्टि से भी हम सम्पन्न हुए हैं। आज प्रगति के चरण चारों तरफ दिखाई दे रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में हमें पहले की तुलना में एक नया विकसित और प्रगतिशील भारत दिखाई दे रहा है। इसका श्रेय हमारे लोकतंत्र और मीडिया को जाता है।[3] सामाजिक परिवर्तन में इलेक्ट्रानिक मीडिया के महत्व को इंगित करते हुए रत्नेश्वर कुमार सिंह ने कहा है इलेक्ट्रानिक मीडिया ने एक तरह से मनुष्य की कर्मगति को अत्यधिक तेज कर दिया है। अब किसी चीज के लिए बारह घंटे या चौबीस घंटे इन्तजार करने का समय भी समाप्त हो

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, एम. बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

गया है। मनुष्य हर क्षेत्र से चौबीस घंटे प्रगति करने की चाहत के लिए इस इलेक्ट्रानिक युग में दौड़ रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया का यह सामाचारिक पक्ष उसे इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता के रूप में एक अलग पहचान देता है। इस समय दुनिया में इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता मीडिया का सबसे महतवपूर्ण अंग बन गया है, इसलिए अपभृंश में मीडिया का तात्पर्य पत्रकारिता से भी लगाया जाने लगा है अर्थात मीडिया पत्रकारिता का पूरक ही नहीं पर्यायवाची सा हो गया है।[४] इसी बात को आगे बढ़ाते हुए पी. सी. जोशी कहते हैं कि टेलीविजन संचार के अन्य साधनों की अपेक्षा व्यक्ति के विचारों और भावनाओं को अधिक प्रभावित करता है। यह पुराने मूल्यों एवं मनोवृत्तियों के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृत्तियों को स्थापित करता है।[५] इसके अतिरिक्त सुधीश पचौरी,[६] वीरबाला अग्रवाल,[७] रतन कुमार पाण्डेय,[८] आलोक मेहता,[९] और मुकेश कुमार[१०] ने भी अपने विश्लेषणों में मीडिया और समाज के अन्तर्सम्बन्धों को उजागर किया है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वर्तमान समय में मीडिया तकनीकी रूप से ही नही, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व शैक्षणिक रूप से मनुष्य की दिनचर्या का एक अनिवार्य अंग बन चुका है, और यह कहा जा सकता है कि मीडिया वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। यह भी कहा जा सकता है कि किसी भी क्षेत्र के विकास में मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है। यही कारण है कि मीडिया की भूमिका समाजशास्त्रीय शोध का विषय बन जाती है।

जहाँ तक पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड का प्रश्न है, यह राज्य दिनांक ०९ नवम्बर, सन् २००० को अस्तित्व में आया। राज्य स्थापना का मूल उद्देश्य यही था कि इस राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों का विकास किस प्रकार किया जाये, क्योंकि उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य से जुड़े रहकर यहाँ के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्र विकास की दौड़ में सम्मिलित नही हो पा रहे थे। चूँकि पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण विकास की मैदानी नीतियों के आधार पर पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों का विकास सम्भव नही था, इसीलिए उत्तराखण्ड राज्य का गठन किया गया। परन्तु देखने में यह आ रहा है कि उत्तराखण्ड में जो कुछ विकास हो भी रहा है वह केवल मैदानी क्षेत्रों में ही हो रहा है, पर्वतीय ग्रामीण उत्तराखण्ड में विकास की गति अत्यन्त धीमी है और इसका बड़ा कारण है–इस क्षेत्र का विषम भौगोलिक क्षेत्र के रूप में स्थापित होना। नगरों और महानगरों के जीवन और संस्कृति से इस क्षेत्र की दूरी इसे सामाजिक परिवर्तन और विकास से वंचित रखती है। ऐसे में, मीडिया एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जो पर्वतीय उत्तराखण्ड में और विशेषकर यहाँ की ग्रामीण जनसंख्या में न केवल सामाजिक परिवर्तन का कारण बन सकता है, बल्कि इसे विकास के पथ पर भी अग्रसर कर सकता है क्योंकि मीडिया की पहुँच उत्तराखण्ड के दुर्गम और अति दुर्गम इलाकों के साथ-साथ वहाँ के घर-घर और जन-जन में है। उपरोक्त परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए ही पर्वतीय उत्तराखण्ड के विकास में मीडिया की भूमिका का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

साहित्य पुनरावलोकन : महिलाओं पर मीडिया के प्रभावों की विवेचना करते हुए ज्योति बारोट ने निष्कर्ष दिया है कि वर्तमान समय में नारी आत्मत्याग के साथ-साथ आत्म संतुष्टि भी चाहती है और अपने जीवन साथी के चुनाव में पारिवारिक निर्णय के साथ स्वयं का भी निर्णय चाहती है और अपने हितों को ध्यान में रखते हुए अन्तर्जातीय-अन्तर्प्रान्तीय, तलाकशुदा स्त्रियों के विवाह, विधवा विवाह आदि के संदर्भ में उनके विचारों में परिवर्तन दिखाई देते हैं।[११]

जोशी का मत है कि मीडिया का प्रभाव समाज में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रुपों में दिखाई देता है। मीडिया पर प्रसारित कार्यक्रमों के द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं।[१२]

युवाओं पर मीडिया के प्रभावों का उल्लेख करते हुए शर्मा का मत है कि मीडिया युवाओं की भावनाओं, विचारों को अधिक प्रभावित करता है। वह पुराने मूल्यों एवं मनोवृत्तियों के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृत्तियों को स्थापित करता है।[१३]

सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार के साधनों (मीडिया) की भूमिका को स्पष्ट करते हुए भाष्कर तथा राघवन का निष्कर्ष है कि जनसंचार साधनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका इस रुप में है कि वह समाज में जागरुकता पैदा करके व चेतना का प्रसार करके सामाजिक सम्बन्धों को संगठित करते हैं। अतः व्यक्तियों में स्वस्थ मूल्यों का सम्प्रेषण करने में, सामाजिक नियन्त्रण में तथा सामाजिक परिवर्तन को अपेक्षित दिशा प्रदान करने में जनसंचार माध्यमों की सकारात्मक भूमिका अपेक्षित है। संचार क्रान्ति आज सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन गयी है, जिसने जनमत को प्रभावित करके समूचे विश्व को नये सामाजिक सन्दर्भ प्रदान किये हैं।[१४]

सामाजिक विकास में मीडिया के साधनों की भूमिका को स्पष्ट करते हुए रत्तू कृष्ण कुमार का निष्कर्ष है कि सामाजिक विकास में नई दिशा बोध का उदय तो इन माध्यमों के प्रसारण के द्वारा हुआ ही है, साथ ही नई तकनीक द्वारा नये दरवाजे

भी खुले हैं। इससे ज्ञान, शिक्षा व चिन्तन के नये आयाम स्थापित किये गये हैं। नयी अपेक्षाएं जन्म ले रही हैं और नई दिशाएं बन रही हैं। व्यक्ति पहले से अधिक चेतन और आधुनिक परिवेश से जुड़ गया है। अतः संचार प्रौद्यौगिकी का प्रयोग गरीबी उन्मूलन, परिवार कल्याण को बढ़ावा देने तथा लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की दिशा में किया जा सकता है।[१५]

लक्ष्मेन्द्र चोपड़ा ने समाज पर मीडिया के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही प्रभावों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह सही है कि इन संचार माध्यमों की क्रान्ति ने पूरे विश्व में मानवीय संवेदना के नये सरोकार स्थापित किये हैं तथा पूरे विश्व को एक बन्धुत्व में बांधने का सार्थक प्रयास किया है, परन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि पिछले दो दशकों से जिस तरह से दृश्य व श्रव्य माध्यमों का आकाशीय हमला हमारे समाज पर हो रहा है, उसने हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक नींव तथा हमारे परम्परागत मूल्यों को हिलाकर रख दिया है। हमारे समाज के गठबन्धन, सामाजिक रिश्तों तथा परिवार को विखण्डन का सामना करना पड़ रहा है।[१६]

हुडेकर ने भारतीय समाज पर मीडिया के प्रभाव के अन्तर्गत सम्प्रेषण के साधनों-रेडियो, समाचार पत्र, पोस्टर, पत्रिका तथा अन्तर्वैयक्तिक साधनों की भूमिका का अध्ययन किया है। इन्होंने पाया है कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिये तथा परम्परा से प्रगति की ओर मोड़ने के लिये नवीन मूल्यों, प्रगतिशील विचारों, साहित्य व उचित लेखन प्रदर्शन को आगे किया गया है और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव नारी समुदाय पर दृष्टिगोचर हो रहा है।[१७]

नानक चन्द का कहना है कि मीडिया निरन्तर समाज को त्याग कर उचित जीवन मूल्यों को अपनाने का आग्रह करता है।[१८] टेलीविजन सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का शक्तिशाली माध्यम है। यह समाज की उन्नति के सबसे महत्वपूर्ण सार्थक तकनीकी विकासों में से एक है। शर्मा का मत है कि दूरदर्शन पर जारी सरकारी विज्ञापनों, फिल्मों तथा समाज के बदलाव को कुछ कुछ समझते हुए कई जगहों पर अभिभावक लड़कियों को स्कूल भेजने लगे हैं।[१९]

अध्ययन के उद्देश्य :

१. पर्वतीय ग्रामीण उत्तराखण्ड में मीडिया के प्रचलित विभिन्न स्वरूपों की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन करना।
२. मीडिया और समाज के अन्तर्सम्बन्ध को सामने लाना।
३. पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में मीडिया की भूमिका को समझना।

अध्ययन की उपकल्पनायें :

१. सामाजिक परिवर्तन के प्रति मीडिया की भूमिका को लेकर समाज में जागरूकता का अभाव है।
२. पर्वतीय क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन के प्रति मीडिया की भूमिका को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक और निदानात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। प्राथमिक तथ्य साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची और अवलोकन के द्वारा एकत्र किये गये हैं। द्वितीयक तथ्य प्रकाशित व अप्रकाशित शोध प्रबन्धों, जनगणना प्रतिवेदनों, सम्बन्धित कार्यालयों के प्रलेखों व प्रतिवेदनों, समाचार पत्रों व इन्टरनेट आदि से प्राप्त किये गये हैं। समग्र व निदर्शन : अल्मोड़ा जनपद में कुल ग्यारह विकासखण्ड हैं। चूँकि द्वाराहाट विकासखण्ड पूर्ण रुप से ग्रामीण जनसंख्या के रुप में स्थापित है, अतः उद्देश्यपूर्ण निदर्शन का प्रयोग करते हुए अध्ययन हेतु द्वाराहाट विकासखण्ड का चयन किया गया है। द्वाराहाट विकासखण्ड में कुल ग्रामों की संख्या २०३ है। इनमें से ०५ ग्रामों-कुवांली, महतगांव, धनखोली, दिगोटी व डडगलिया का चयन पुनः उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया और इन गांवों में से १०-१० लोगों अर्थात कुल ५० लोगों का चयन अध्ययन हेतु दैव निदर्शन की लाटरी पद्धति द्वारा उत्तरदाताओं के रूप में किया गया है।

अध्ययन की उपलब्धियाँ :

१. २० प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित, २२ प्रतिशत उत्तरदाता साक्षर, ४८ प्रतिशत प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षित व शेष १० प्रतिशत उत्तरदाता उच्च शिक्षित पाये गये।
२. सभी १०० प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास मीडिया का कोई न कोई साधन उपलब्ध है।
३. ८८ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास टेलीविजन है।
४. ०८ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास रेडियो उपलब्ध है।
५. ०४ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास टेलीविजन और रेडियो दोनों उपलब्ध हैं।
६. ७४ प्रतिशत उत्तरदाता नियमित रूप से हिन्दी समाचार पत्र व ०४ प्रतिशत अंग्रेजी समाचार पत्र पढ़ते हैं। शेष २२ प्रतिशत उत्तरदाता समाचार पत्र नहीं पढ़ते हैं।
७. ६० प्रतिशत उत्तरदाता नियमित रूप से टेलीविजन पर स्थानीय समाचार देखते हैं।
८. ७२ प्रतिशत उत्तरदाता नियमित रूप से समाचार पत्र में स्थानीय समाचार पढ़ते हैं।
९. ४२ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास स्मार्ट फोन है।

१०. ७२ प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया, जैसे कि फेसबुक व व्हाट्स एप आदि का प्रयोग करते हैं।

११. ६२ प्रतिशत उत्तरदाता नियमित रूप से सोशल मीडिया पर स्थानीय घटनाओं से सम्बन्धित सरोकारों का लेनदेन करते हैं।

१२. कुल ६२ प्रतिशत उत्तरदाता उत्तराखण्ड की समस्याओं से सम्बन्धित समाचारों में प्रथम रूचि प्रदर्शित करते हैं, २० प्रतिशत राजनीतिक घटनाओं में, ०८ प्रतिशत धार्मिक घटनाओं में व शेष १० प्रतिशत अन्य समाचारों में प्रथम रूचि प्रदर्शित करते हैं।

१३. ६२ प्रतिशत उत्तरदाता ज्ञानवर्द्धन के लिए मीडिया के साधनों का प्रयोग करते हैं, शेष ०८ प्रतिशत मनोरंजन के दृष्टिकोण से मीडिया के साधनों का उपयोग करते हैं।

१४. ८८ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि मीडिया प्रभावशाली तरीके से स्थानीय सरोकारों को सामने लाता है।

१५. १२ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि मीडिया केवल सनसनी फैलाने का कार्य करता है।

१६. ७२ प्रतिशत उत्तरदाता प्रिंट मीडिया को अधिक भरोसेमंद मानते हैं।

१७. २८ प्रतिशत उत्तरदाता इलेक्ट्रोनिक मीडिया को अधिक प्रभावशाली मानते हैं।

१८. मात्र २२ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि राज्य गठन के पश्चात उत्तराखण्ड की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं में कमी आयी है।

१६. ७८ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि राज्य गठन के पश्चात उत्तराखण्ड की समस्याओं में वृद्धि ही हुई है।

२०. वरीयता क्रम में उत्तराखण्ड की प्रमुख ०३ सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के बारे में पूछने पर ज्ञात हुआ कि बेरोजगारी व पलायन प्रथम, उदासीन राजनैतिक नेतृत्व द्वितीय व मद्यपान तृतीय वरीयता प्राप्त समस्याऐं हैं।

२१. ६२ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार राज्य गठन का लाभ उत्तराखण्ड के केवल मैदानी क्षेत्रों को ही मिला है। इससे असंतुलित क्षेत्रीय विकास को बल मिला है।

२२. ६८ प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उत्तराखण्ड राज्य गठन के समय इसमें केवल पर्वतीय क्षेत्रों को ही सम्मिलित करना चाहिए था।

२३. वरीयता क्रम में पर्वतीय उत्तराखण्ड के पिछड़ेपन के कारणों के बारे में ज्ञात हुआ कि भौगोलिक विषमता प्रथम, राजनैतिक नेतृत्व की उदासीनता द्वितीय व पलायन तृतीय कारक है।

२४. ८२ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उत्तराखण्ड की समस्याओं व सरोकारों को सामने लाने में मीडिया की भूमिका सकारात्मक है।

२५. इस सन्दर्भ में ७२ प्रतिशत उत्तरदाता प्रिंट मीडिया विशेषकर समाचार पत्रों की भूमिका को अधिक प्रभावशाली मानते हैं।

२६. सभी उत्तरदाता मानते हैं कि मीडिया जगत चुनौतीपूर्ण एवं जोखिमयुक्त कार्यदशाओं में कार्य करता है।

२७. ६२ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि मीडिया जगत के लोगों को पर्याप्त सुरक्षा-सुविधाऐं दी जानी चाहिए।

२८. ८२ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि सरकारी योजनाओं का प्रचार-प्रसार करने में मीडिया की भूमिका संतोषजनक है।

२६. ८८ प्रतिशत उत्तरदाता पर्वतीय उत्तराखण्ड के विकास में मीडिया की भूमिका को संतोषजनक मानते हैं।

३०. सभी १०० प्रतिशत उत्तरदाता मीडिया की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव : उत्तराखण्ड राज्य एक पर्वतीय राज्य के रूप में अस्तित्व में आया किन्तु जनदबाव-जनविरोध के मध्य हरिद्वार व ऊधमसिंह नगर जैसे ०२ पूर्णतः मैदानी जिलों को भी इस राज्य में सम्मिलित कर लिया गया, जबकि इस राज्य के गठन की मूल परिकल्पना ही पूर्णतः पर्वतीय राज्य की थी। आज हम सभी देख रहे हैं कि इस राज्य का विकास इन्हीं दोनों मैदानी जिलों तक सीमित होकर रह गया है। औद्योगिक विकास की बात हो, शिक्षा व स्वास्थ्य संस्थाओं की बात हो या फिर बड़े बड़े व्यावसायिक उपक्रमों की स्थापना की बात हो, विकास कार्यक्रम इन्हीं दो जिलों तक सिमटकर रह गये हैं। पर्वतीय क्षेत्रों की आय के दो महत्वपूर्ण स्त्रोत पर्यटन व कृषि हैं किन्तु जहाँ प्राकृतिक आपदायें पर्यटन को विकसित नहीं होने देतीं, वहीं कृषि उपज के वितरण के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि उत्पादन मण्डी समितियों की स्थापना तक नहीं की गई है। इससे उत्तराखण्ड में असंतुलित क्षेत्रीय विकास पनप रहा है। राजनैतिक नेतृत्व प्रयासरत है किन्तु फिलहाल सकारात्मक परिणाम सामने आते दिखाई नहीं दे रहे हैं।

अधिकाँश लोग मीडिया अर्थात जनसंचार के साधनों जैसे कि टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्रों व स्मार्ट फोन के माध्यम से सोशल मीडिया का भलीभांति प्रयोग करते हैं, इन साधनों के द्वारा अधिकाँश लोग अपने आस पास के समाज के सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक सरोकारों व समस्याओं से

अवगत होते रहते हैं और अपने साथियों-समाज को भी अवगत कराते रहते हैं। अधिकाँश लोग इलेक्ट्रानिक मीडिया की तुलना में प्रिंट मीडिया को अधिक विश्वसनीय मानते हैं, क्षेत्रीय घटनाओं को जानने में अधिक रूचि रखते हैं और अन्य कार्यक्रमों की तुलना में समाचारों को अधिक समय व महत्व देते हैं। इससे अनिता सिंह[20] के इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि ग्रामीण समाजों में सामाजिक परिवर्तन में मीडिया की भूमिका और अधिक सशक्त होती जा रही है। अधिकाँश लोगों का मत है कि गठन के समय उत्तराखण्ड में मैदानी जिलों को सम्मिलित ही नहीं करना चाहिए था क्योंकि इस राज्य के गठन की मूल परिकल्पना ही पूर्ण पर्वतीय राज्य की थी। लोग स्पष्ट रूप से मानते हैं कि राज्य गठन का अधिक लाभ मैदानी क्षेत्रों को ही मिला है। राज्य गठन के पश्चात से पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन, बेरोजगारी व धूम्रपान और नशे की समस्यायें बढ़ी हैं। लोगों का मत है कि राज्य का राजनैतिक नेतृत्व इस स्थिति को लेकर उदासीन है। मीडिया इन सरोकारों को लेकर गम्भीर है। मीडिया निरन्तर इन समस्याओं को समाज के सामने लाने का प्रयास कर रहा है परन्तु मीडिया के लोग जोखिमपूर्ण कार्यदशाओं में कार्य करते हैं, उन्हें अधिक सुविधाऐं दिये जाने की आवश्यकता है। साथ ही मीडिया की स्वतंत्रता को बनाये रखने की भी आवश्यकता है। इससे अध्ययन की इस उपकल्पना की पुष्टि होती है कि विकास में मीडिया की भूमिका को और अधिक सशक्त बनाया जा सकता है। स्पष्ट है कि पर्वतीय उत्तराखण्ड के विकास में मीडिया की भूमिका सकारात्मक व प्रभावशाली है।

सन्दर्भ

१. Burton, Graeme, 'Media and Society : Critical Perspective', Rawat Publications, Jaipur, 2009, p. 07.
२. Sharma, R.K, "The Role of Media in society", Aman Publication, Sagar, 2003, p.93.
३. मिश्र, रवीन्द्र नाथ, 'मीडिया और लोकतंत्र', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ. १०
४. सिंह, रत्नेश्वर कुमार, मीडिया लाईव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, २०१३, पृ. ०४
५. Joshi, P.C, "Television, Culture & Communication", Mainstream, June 4, 1983, P.20.
६. पचौरी सुधीश, 'मीडियाः समकालीन सांस्कृतिक विमर्श', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०११, पृ. ११२
७. अग्रवाल, बीरवाला व गुप्ता, वी.एस., 'राष्ट्रीय संकट में मीडिया की भूमिका', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, १९९६, पृ. १५
८. पाण्डेय, रतन कुमार, 'मीडिया का यथार्थ', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८, पृ. १२६
९. मेहता, आलोक, 'भारत में पत्रकारिता', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, २०१५, पृ. ५१
१०. कुमार, मुकेश, 'कसौटी पर मीडिया', राजकमल प्रकाशन २०१४, दिल्ली, पृ. ४१
११. बारोट ज्योति, 'माडर्न ट्रेन्ड्स इन मैरिटल रिलेशन्स' : इन 'द इन्डियन फैमिली इन द चेंज एण्ड चेलेन्ज आफ द सेवेन्टीज', स्टर्लिंग, नई दिल्ली, १९७२, पृ. ३४
१२. जोशी एस.आर., 'सोशल एण्ड कल्चरल इम्पेक्ट अहृव केबल एण्ड सेटेलाइट, टेलीविजन डेवलपमेन्ट एण्ड एजुकेशन कम्युनिकेशन यूनिट', इसरो, अहमदाबाद, १९९३, पृ. ३४
१३. शर्मा आर.के., 'द रोल अहृव मीडिया इन सोसायटी', अमन पब्लिकेशन, सागर, २००३, पृ. ३४
१४. भास्कर एवं राघवन, जी. एन. एस., 'सोशल इफेक्ट्स ऑफ मास मीडिया इन इन्डिया', ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. ३५
१५. रत्तू, कृष्ण कुमार, 'संचार क्रान्ति और बदलता सामाजिक सौन्दर्यबोध', पाइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, १९९८, पृ. ३५
१६. चोपड़ा, लक्ष्मेन्द्र, जनसंचार का समाजशास्त्र, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, २००२, पृ. ३५
१७. हुडेकर, 'नॉट ए थिंग ऑफ पास्ट : फंक्शनल एंड कल्चरल स्टेट्स ऑफ ट्रेडीशनल मीडिया इन इन्डिया', पृ. ३५
१८. चन्द, नानक, 'सामाजिक जीवन मूल्य एवं जनसंचार माध्यम', केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली, १९९४, पृ. ३५
१९. शर्मा, एस. के., 'रोल ऑफ टेलीविजन इन प्रोमोटिंग फैमिली प्लानिंग इन आस्पेक्ट्स अहृव पहृपुलेशन पहृलिसी इन इन्डिया', काउन्सिल ऑफ सोशल डेवलेपमेन्ट, नई दिल्ली
२०. सिंह, अनिता, 'ग्रामीण समाज में जनसंचार साधनों का बढ़ता उपयोग', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १९, अंक १, २०१७, पृ. ९४-९७

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

मनरेगा कार्यक्रम : उपलब्धियों एवं बाधाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ० सनी कुमार सुमन

गरीबी को समाप्त करने एवं ग्रामीण लोगों को रोजगार प्राप्त कराने हेतु भारत एवं राज्य सरकारों की ओर से समय-समय पर विभिन्न योजनायें चलायी गईं ताकि ग्रामीण क्षेत्र से लोगों का पलायन शहरों की तरफ न हो एवं लोगों को अपने गाँवों में ही रोजगार प्राप्त हो जाये और बेराजगारी एवं इससे उत्पन्न गरीबी को समाप्त किया जा सके। किन्तु इस दिशा में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा), जिसे अब महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम (मनरेगा) के नाम से जाना जाता है, एक अधिकार आधारित, माँग समर्थित और स्वयं चयन योजना है जो रोजगार पैदा करने की दिशा में भारत के प्रयासों में होने वाले महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत बिहार राज्य के कटिहार जनपद में मनरेगा योजना के फलस्वरूप ग्रामीणों की स्थिति में परिवर्तन तथा योजना के सफल क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

भारत एक विशाल जनसंख्या और वर्ग क्षेत्रफल वाला देश है।[१] जहाँ व्यापक रूप से बेकारी की समस्या व्याप्त है। २०११ की जनगणना के अनुसार देश में ५,९७,६०८ बसे हुए गाँवों की संख्या है।[२] देश की कुल आबादी का ६८.६४ प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है।[३] इस जनसंख्या के बहुत सारे लोग गरीबी, बेकारी और भूखमरी की समस्या को निरंतर झेल रहे है। बिहार भारत का पिछड़ा राज्य है जहाँ की ८९.५४ प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है। बाढ़ और सुखाड़ के भीषण संकट से यह प्रतिवर्ष जूझता रहता है। इसके परिणामस्वरूप गरीबी एवं बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती रहती है। जैसे-जैसे बेरोजगारी बढ़ेगी, गरीबी भी उसी प्रकार बढ़ती जायेगी। ग्रामीण क्षेत्र में बदहाल गरीबी का मुख्य कारण रोजगार का न मिलना है। बेरोजगारी का तात्पर्य उस अवस्था से है जिसमें कार्य करने के योग्य व्यक्ति को कार्य करने की इच्छा के होते हुए भी कोई रोजगार नहीं मिलता, जिससे कि उसे आय प्राप्त हो सके।[४] बेरोजगारी और इससे उत्पन्न गरीबी ने कई सामाजिक-आर्थिक दुष्परिणाम उभर कर सामने आते हैं। जैसे-पारिवारिक विघटन, नक्सली समस्या अपराधिक प्रवृत्ति, नशाखोरी, महिलाओं का शोषण, यौन-उत्पीड़न एवं असामयिक मृत्यु।[५]

गरीबी को समाप्त करने एवं ग्रामीण लोगों को ग्रामीण क्षेत्र में ही रोजगार प्राप्त कराने हेतु भारत एवं राज्य सरकारों की ओर से समय-समय पर विभिन्न योजनायें चलायी गईं ताकि ग्रामीण क्षेत्र से लोगों का पलायन शहरों की तरफ न हो एवं लोगों को अपने गाँवों में ही रोजगार प्राप्त हो जाये और बेराजगारी एवं इससे उत्पन्न गरीबी को समाप्त किया जा सके। बेरोजगारी और गरीबी उन्मूलन हेतु अनेकों योजनाओं का संचालन भारत सरकार द्वारा समय-समय पर किया गया जैसे- सामुदायिक विकास कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, स्वयं सहायता समूह, स्वर्ण जयंती ग्रामीण रोजगार योजना इत्यादि।[६]

केन्द्रीय सहायता से तथा राज्य सरकारों द्वारा क्रियान्वित उक्त मजदूरी रोजगार कार्यक्रम अपने स्वरूप में स्वलक्षित थे, लेकिन सरकारी तंत्र के लालफीताशाही एवं इस महकमें में फैले भ्रष्टाचार, साथ ही आम लोगों में जागरूकता की कमी के कारण इसका वास्तविक लाभ ज्यादातर गरीबों और बेरोजगार को नहीं मिला। ग्रामीणों का पलायन रोकने के लिए और उन्हें गाँव में ही रोजगार मुहैया कराने के लिए चुनौती को स्वीकार किया और गाँव में ही रोजगार गारंटी योजना लागू की गई ताकि ग्रामीण क्षेत्र में प्रत्येक परिवार के कम-से-कम एक सदस्य को वर्ष में १०० दिन का शारीरिक श्रमयुक्त रोजगार दिया जा सकें।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा), जिसे अब महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम (मनरेगा) के नाम से जाना जाता है, एक अधिकार आधारित, माँग समर्थित और स्वयं चयन योजना है जो रोजगार पैदा करने की दिशा में भारत के प्रयासों में होने वाले महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक है। इसे ७ सितम्बर २००५ को अधिसूचित किया गया। २ फरवरी २००६ का आन्ध्रप्रदेश के अनंतपुर जिले में

❑ पी.डी.एफ. समाजशास्त्र विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

बादलापल्ली ग्राम पंचायत से इसका शुभारंभ तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के द्वारा किया गया। प्रारंभ में इस कानून को २०० जिलों में उपलब्ध कराया गया २००७-०८ में इस कानून का विस्तार १३० अतिरिक्त जिलों में किया गया जबकि बाकी देश के सभी जिलों को इसमें शामिल करने की अधिसूचन। अप्रैल २००८ को जारी की गई।[७]

मनरेगा के अन्तर्गत यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि "अगर किसी परिवार में कोई व्यस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है तो एक वित्त वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम १०० दिन का गारंटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा। रोजगार के साथ ही इस कानून के माध्यम से ग्रामीण जनता उत्पादक सम्पादओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, कृषि के क्षेत्र में सुधार करने, ग्रामीण औरतों का सशक्तीकरण, गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन पर अंकुश लगाने, आर्थिक और सामाजिक समानता सुनिश्चित करने में सहायता करने में सहायता मिलेगी।[८]

मनरेगा योजना ग्रामीण गरीबों के एक बड़े भाग के लिए आय के स्रोत बढ़ाने और परिसंपत्तियों के निर्माण हेतु लागू की गई थी, जो सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की दृष्टिकोण से जरूरी है।

मनरेगा योजना का मुख्य उद्देश्य हर हाथ को काम और काम को पूरा दाम दो की अवधारणा पर आधारित है। इसलिए यह कानून लोगों को रोजगार के अपने संवैधानिक अधिकार के बुनियादी पहलुओं के वारे में सरकार के दावे करने के योग्य बनाता है।[९]

कोई भी इच्छुक व्यक्ति ग्राम पंचायत में जाकर अपना जॉब कार्ड बनवा सकता है और १०० दिन का रोजगार पा सकता है। आवेदक को १५ दिन के अन्दर काम नहीं दिया जाता है तो उसे दैनिक मजदूरी के हिसाब से बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है।[१०] महिलाओं के लिए ३३ प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं। कार्य आवेदक के निवास स्थान से ५ किलोमीटर की परिधि में किया जाता है।

योजना के प्रभावी क्रियान्वयन और भ्रष्टचार से मुक्त रखने के लिए योजना में जन-जागरूकता, सामाजिक अंकेक्षण तथा सूचना के अधिकार के अन्तर्गत निर्माण कार्य के संदर्भ में समस्त जानकारी लेते रहने का प्रावधान है।[११]

अध्ययन उद्देश्य :

(१) वर्त्तमान अध्ययन का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में मनरेगा योजना के प्रभाव से ग्रामीणों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों को जानना।

(२) मनरेगा के सफल क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को ज्ञात करना।

शोध-प्रारूप : प्रस्तुत अनुभाश्रित अध्ययन "मनरेगा : उपलब्धियों एवं बाधाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" के लिए बिहार राज्य के कटिहार जिला के बरारी प्रखंड को चयन किया गया है। वैसे मजदूर जिसने मनरेगा के अन्तर्गत रोजगार प्राप्त किया है, समग्र का निर्माण करते है। समग्र से ३०० मजदूरों का चयन निर्दश के रूप में सुविधाजनक निदर्शन प्रणाली से किया गया लेकिन निदर्श की इकाइयों के चुनाव में इस बात पर यथेष्ट रूप से ध्यान रखा गया है कि ये प्रतिनिधित्वपूर्ण हों। इकाइयों से तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार-अनुसूची का निर्माण एवं प्रयोग किया गया। तथ्यों के संकलन के पश्चात् अध्ययन उद्देश्य के अनुरूप उनका वर्गीकरण एवं विश्लेषण कर विवेकपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये।

उपलब्धियाँ :

तालिका संख्या-१ में जाति एवं एक वर्ष में मिले काम के दिनों के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें सबसे अधिक १६० (५३.३३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को एक वर्ष में ५० दिन से ७५ दिनों के बीच में काम मिला है। इसके बाद क्रमशः ५५(१८.३३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को मनरेगा में एक वर्ष में १०० दिन से अधिक दिनों का काम मिला है, ४६(१५.३३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को साल में ७५ से १०० दिनों के बीच काम मिला है तथा सबसे कम ३९ (१३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं को मनरेगा में एक वर्ष में २५ दिनों से कम काम नहीं मिला है।

तालिका संख्या-२ में जाति और परिवार की मनरेगा के कारण आर्थिक स्थिति में होने वाले परिवर्त्तनों के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें सबसे अधिक १४३ (४७.६७ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने ने बताया कि मनरेगा योजना के बाद भी परिवार की स्थिति यथावत है, ९७(३२.३३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने जानकारी दी है कि हमारे परिवार की आर्थिक स्थिति से पहले से बेहतर है तथा सबसे कम ६०(२०.०० प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने कहा कि हमारे परिवार की आर्थिक स्थिति पहले से बदतर हो गई है।

तालिका संख्या-१
जाति एवं एक वर्ष में मजदूरों को मिले काम के दिनों का विवरण

वर्ष में मिले कार्य	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनूसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल प्रतिशत
२५ दिन से कम	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)
२५ दिन से ५०	०८ (२०.५२)	०६ (२३.०७)	०६ (१५.३६)	०७ (१७.६५)	०६ (२३.०७)	३६ (१३)
५० दिन से ७५ दिन	०७ (४.३७)	११ (६.८८)	१७ (१०.६२)	६१ (५६.८८)	३४ (२१.२५)	१६० (५३.३३)
७५ दिन से १०० दिन	०५ (१०.८७)	०५ (१०.८७)	११ (२३.६२)	१० (२१.७४)	१५ (३२.६०)	४६ (१५.३३)
१०० दिन से अधिक	०३ (५.४५)	०७ (१२.७३)	०६ (१६.३६)	२३ (४१.८२)	१३ (२३.६४)	५५ (१८.३३)
कुल	२३	३२	४३	१३१	७१	३००

तालिका संख्या-२
जाति और परिवार की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन

आर्थिक स्थिति में परिवर्तन	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनूसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल प्रतिशत
पहले से बेहतर	०४ (४.१२)	१२ (१२.३८)	१३ (१३.४०)	४७ (४८.४५)	२१ (२१.६५)	९७ (३२.३३)
पहले से बदतर	०० (००.००)	११ (१८.३३)	०९ (१५.१०)	३१ (५१.६७)	०९ (१५.००)	६० (२०.००)
यथावत	१९ (१३.२८)	०९ (६.२९)	२१ (१४.६९)	५३ (३७.०६)	४१ (२८.६८)	१४३ (४७.६७)
कुल	२३	३२	४३	१३१	७१	३००

तालिका संख्या-३
जाति एवं मनरेगा से बेरोजगारी दूर होने की जानकारी

बेरोजगारी दूर होने की जानकारी	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनूसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल प्रतिशत
हाँ	०९ (४.७७)	१९ (१०.०५)	१७ (८.९९)	९५ (५०.२६)	४९ (२५.९३)	१८९ (६३)
नहीं	१४ (१२.६१)	१३ (११.७२)	२६ (२३.४२)	३६ (३२.४३)	२२ (१९.८२)	१११ (३७)
कुल	२३	३२	४३	१३१	७१	३००

तालिका संख्या-३ में जाति एवं मनरेगा से बेरोजगारी दूर होने के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें १८६(६३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि मनरेगा से लोगों को रोजगार मिल रहा है जिससे बेरोजगारी दूर हो रही है तथा १११(३७प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि मनरेगा से बेरोजगारी दूर नहीं हो रही है।

तालिका संख्या-४

पेशा एवं मनरेगा लागू होने के पश्चात कार्य के लिए राज्य से बाहर जाने की जानकारी

मनरेगा के बाद भी बाहर कार्य हेतु जाने का विवरण	कृषि	कृषि मजदूर	गैर कृषि मजदूर	पशुपालन	कुल
हाँ	१६ (१४.८५)	६२ (४८.४३)	४७ (३६.७२)	०० (००.००)	१२८ (४२.६७)
नहीं	१८ (१०.४७)	१०१ (५८.७३)	३२ (१८.६०)	२१ (१२.२०)	१७२ (५७.३३)
योग	३७	१६३	७६	२१	३००

तालिका संख्या-४ में पेशा और मनरेगा योजना के लागू होने के बाद भी रोजगार के लिए राज्य से बाहर जाने के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें सर्वाधिक १७२(५७.३३ प्रतिशत) उत्तरदाता रोजगार के लिए राज्य से बाहर नहीं जाते हैं, लेकिन अपेक्षाकृत कम १२८ (४२.६७ प्रतिशत) उत्तरदाता अब भी रोजगार के राज्य से बाहर जाते हैं।

तालिका संख्या-५

आयु और ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मजबूत होने की जानकारी

जानकारी	निम्न आयु समूह (१८ से ३४ वर्ष)	मध्य आयु समूह (३५ से ४५ वर्ष)	उच्च आयु समूह (४६ वर्ष एवं इससे अधिक)	कुल
हाँ	४१ (२५.१६)	६६ (४२.३३)	५३ (३२.५१)	१६३ (५४.३३)
नहीं	५७ (४१.६१)	४८ (३५.०३)	३२ (२३.३६)	१३८ (४५.६७)
योग	६४	११७	८५	३००

उपर्युक्त तालिका संख्या-५ में आयु और ग्रामीणों की सामाजिक आर्थिक स्थिति मजबूत होने की जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें १६३ (५४.३३ प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया कि मनरेगा से ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है। लेकिन १३७ (४५.६७ प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि मनरेगा योजना से ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार की मजबूती नहीं मिली है।

तालिका संख्या-६

जाति एवं भ्रष्टाचार एक बाधा के विषय में जानकारी

भ्रष्टाचार एक बाधा के रूप में	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनूसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल प्रतिशत
हाँ	२३ (७.६६)	३२ (१०.६७)	४३ (१४.३३)	१३१ (४३.६७)	७१ (२३.६७)	३०० (१००)
नहीं	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)	०० (००.००)
योग	२३	३२	४३	१३१	६६	३००

भ्रष्टाचार किसी भी योजना के सफल क्रियान्वयन में बाधक होती है। तालिका संख्या-६ में उल्लेखित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सभी ३०० (१००) उत्तरदाताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि भ्रष्टाचार मनरेगा के सफल क्रियान्वयन में एक बड़ी बाधा है।

तालिका संख्या-७
जाति एवं गलत नाम पर जॉब कार्ड तथा भुगतान के विषय में जानकारी

गलत नाम पर जॉब कार्ड एवं भुगतान	उच्च जाति	पिछड़ी जाति	अत्यंत पिछड़ी जाति	अनूसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	कुल प्रतिशत
हाँ	१८ (७.५०)	२९ (१२.०८)	३१ (१२.९२)	१०६ (४४.१७)	५६ (२३.३३)	२४० (८०)
नहीं	०५ (८.३३)	०३ (५.००)	१२ (२०.००)	२५ (४१.६७)	१५ (२५.००)	६० (२०.००)
योग	२३	३२	४३	१३१	६६	३००

तालिका संख्या-७ में जाति एवं गलत नाम पर जॉब कार्ड जारी करना और भुगतान करने के विषय में जानकारी को दर्शाया गया है। जिसमें सर्वाधिक ८० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि गलत नाम पर जॉब कार्ड बनाया जाता है और भुगतान भी किया जाता है सिर्फ २० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस तथ्य को लेकर अनभिज्ञता प्रकट की।

तालिका संख्या-८
सार्वजनिक कार्यों के चुनाव में कठिनाइयाँ

कठिनाई	संख्या	प्रतिशत
अल्प प्राथमिकता वाले या अनावश्यक कामों का चुनाव	८१	२७
ऐसे कामों का चुनाव कर लेना जिससे किसी को निजी फायदा होने वाला हो	१२३	४१.००
उस काम के लिए जनता की सहायता/समर्थन का अभाव	००	००.००
गलत कार्यस्थल का चुनाव	९६	३२
कुल	३००	१००

तालिका संख्या-८ में मजदूरों को सार्वजनिक कार्यों के चुनाव में हुए कठिनाइयों को दर्शाया गया है जिनमें सर्वाधिक ४४ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि ऐसे कामों का चुनाव कर लिया जाता है जिसमें किसी को निजी फायदा होता है। इसके बाद ३२ प्रतिशत का कहना है कि गलत कार्य स्थल का चुनाव कर लिया जाता है तथा सबसे कम २७ प्रतिशत उत्तरदाता का मानना है कि अल्प प्राथमिकता वाले या अनावश्यक कार्यों का चुनाव होता है।

तालिका संख्या-९
क्रियान्वयन एवं देख-रेख में कमियाँ

क्रियान्वयन में कठिनाई	संख्या	प्रतिशत
गैर मजदूरों के नाम दर्ज करना	७३	२४.३३
जाली (फर्जी) कामों को दर्ज करना	४३	१४.३३
काम तय मानकों के अनुरूप न होना	९५	३१.६७
स्वीकृति कम या घटिया सामान की आपूर्त्ति	३२	१०.६७
बिचौलिों की अधिक भूमिका	५७	१९.००
कुल	३००	१००

तालिका संख्या-९ से यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं नें कामों के क्रियान्वयन एवं देखरेख में कई कमियों को देखा है, जिनमें सर्वाधिक ३१.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह पाया कि काम का तय मानकों या शर्तो के अनुरूप न होना, २४.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने फर्जी मजदूरों का नाम दर्ज, १९ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संवेदक एवं बिचोलियों की अधिक भूमिका, १४.३३ प्रतिशत ने फर्जी कामों को दर्ज करना देखा है तथा सबसे कम १०.६७ प्रतिशत उत्तरदाता घटिया समान की आपूर्त्ति को महत्वपूर्ण कमियाँ मानते हैं।

तालिका संख्या-१०
वेतन मिलने में हुई कठिनाइयाँ

वेतन में कठिनाईयाँ	संख्या	प्रतिशत
वेतन भुगतान न होना	००	००
विलंब से भुगतान वेतन	९७	३२.३३
कम वेतन का भुगतान	२०३	६७.६७
कुल	३००	१००

तालिका संख्या-१० के अवलोकन से पता चलता है कि सर्वाधिक ६७.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं को कम वेतन भुगतान हुआ है तथा ३२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं विलंब से भुगतान से हुआ है। ऐसा कोई भी उत्तरदाता नहीं मिला जिसे भुगतान नहीं हुआ हो।

तालिका संख्या-११
मनरेगा के अन्तर्गत होने वाले कामों का मूल्यांकन कराने में हुई कठिनाईयाँ

कामों का मूल्यांकन में कठिनाई	संख्या	प्रतिशत
कामों की गलत माप	११३	३७.६७

कार्मों के बारे में उपलब्ध जानकारियों को एक जगह इकट्ठा न करना	३८	१२.६७
कार्मों का निर्धारित मानकों के अनुसार न होना	१३२	४४
जानकारियों को भ्रामक या जटिल ढंग से दर्ज करना	१७	५.६६
कुल	३००	१००

तालिका संख्या-११ में मनरेगा के अन्तर्गत होने वाले कामों का मूल्यांकन कराने में हुई कठिनाइयों के बारे में दर्शाया गया है, जिसमें सर्वाधिक ४४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि काम निर्धारित मानकों के अनुसार नहीं होता है, ३७.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि कामों की गलत माप होती है, १२.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि कामों के बारे में उपलब्ध जानकारी को एक जगह इकट्ठा नहीं किया जाता है तथा सबसे कम ५.६६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि जानकारी को भ्रामक या जटिल ढंग से दर्ज किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मनरेगा के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार व्याप्त है।

निष्कर्षः प्रस्तुत शोध में मनरेगा कार्यक्रम की उपलब्धियों एवं बाधाओं के विषय में प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं-

ज्यादातर लोगों को ५० दिनों से ७५ दिनों का काम मिला है लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है मात्र ३२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह मानना है कि उनकी आर्थिक स्थिति पहले से बेहतर हुई है। एक बड़ी संख्या (५८ प्रतिशत) मजदूरों का अपने राज्य से बाहर पलायन रूक गया है। ६३ प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि मनरेगा से बेरोजगारी दूर हुई है ज्यादातर उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि इस कार्यक्रम से गरीबी दूर होने में सहायता मिली है। मनरेगा के सफल क्रियान्वयन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार है। इस बात की पुष्टि सभी (१०० प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने की है।

अधिकांश उत्तरदाताओं का यह मानना है कि ग्राम पंचायत स्तर पर सार्वजनिक कार्यों के चुनाव में सबसे अधिक कठिनाई यह है कि ऐसे कार्यों का चुनाव होता है जिनसे किसी को निजी फायदा होने वाला है। ४५ प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि अल्प प्राथमिकता वाले या अनावश्यक कामों का चुनाव होता है तथा जिस काम का चुनाव होता है उसको जनता की सहायता एवं समर्थन का अभाव पाया जाता है।

क्रियान्वयन एवं देख-रेख में, कमियों में काम का तय मानकों एवं शर्तों के अनुरूप न होना, फर्जी मजदूरों का नाम दर्ज करना, फर्जी कामों को दर्ज करवाना, कम एवं घटिया समान की आपूर्त्ति तथा झूठे परिपूर्णता पत्र जारी करवाना आदि प्रमुख हैं। साथ ही साथ क्रियान्वयन में संवेदक या बिचौलियों की संदेहास्पद भूमिका है। कम वेतन का भुगतान एवं देर से भुगतान की समस्या सभी उत्तरदाताओं द्वारा स्पष्ट की गयी है।

सुभाव : मनरेगा कार्यक्रम की सफलता हेतु यह सुझाव दिया जा सकता है कि सर्वप्रथम मजदूरों को मनरेगा योजना की समुचित जानकारी दी जाए। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में योजना का व्यापक प्रचार-प्रसार एवं जागरूकता फैलाने की जरूरत है। शिक्षा का प्रसार भी अतिआवश्यक है ताकि लोग अपने अधिकारों को भली-भाँति जान एवं समझ सकें।

संदर्भ

१. सिन्हा, विकास कुमार, 'रोजगार नहीं होना पलायन का मुख्य कारण', कुरूक्षेत्र, वर्ष-११ सितम्बर २०१४, अंक-११, पृ. २२
२. प्रभात खबर, भागलपुर, शुक्रवार ४ जुलाई २०१४, पृ. २२
३. चौधरी, पदम सिंह, 'कैसे रोके गाँव से पलायन', कुरूक्षेत्र, वर्ष-४ फरवरी २०१३, अंक-५६, पृ. ०६
४. सिंह, एस० के० एवं शशिवाला, 'ग्रामीण बेरोजगारी एक सामाजिक समस्या', कुरूक्षेत्र,वर्ष-०७मई२००५,अंक-५१, पृ. २५
५. मोदी, के० एस०, 'भारत निर्माण विकास का आधार', कुरूक्षेत्र, वर्ष-१२ अक्टूबर २०१२, अंक-१२, पृ. ३१
६. कुमार श्याम, 'महिला सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका, एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधाकमल मुखर्जी, चिंतन परंपरा, वर्ष-१८ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१६, पृ. १४५
७. सिंह, रघुवंश प्रसाद, 'राष्ट्रीय गारंटी कानून के दो साल', योजना, अगस्त २००८, पृ. ०७
८. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, बिहार, दो साल, योजना, अगस्त २००८, पृ. ०७
९. सिंह, बिक्रम, 'भारत में ग्रामीण विकास में मनरेगा का योगदान एवं चुनौतियों', राधाकमल मुखर्जी, चिंतन परंपरा, वर्ष १६ अंक १ जनवरी-जून २०१४, पृ. १६७-१७०
१०. हिन्दुस्तान, 'कटिहार' २१ अप्रैल २०१२, शनिवार, पृ. ०२
११. योजना अगस्त २०१०, पृ. ६५

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

अवकाश प्राप्ति के बाद पारिवारिक समायोजन

❑ डॉ० राजीव कुमार

वास्तव में समाजशास्त्र की एक नई शाखा 'अवकाश प्राप्ति का समाजशास्त्र' के नाम से अस्तित्व में आयी है। इस क्षेत्र में j kcVZ h v pyS का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने अवकाश प्राप्ति की अवधारणा को सामाजिक संस्था के रूप में देखा है। उनके अनुसार अवकाश प्राप्ति एक सामाजिक आविष्कार है और अवधारणात्मक रूप से इसको एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है जिसमें एक व्यक्ति अपने कामकाजी जीवन से मुक्त हो जाता है। अवकाश प्राप्ति व वृद्धावस्था सहसम्बन्धित अवधारणाएँ हैं। सामान्यतः अवकाश प्राप्ति व वृद्धावस्था का प्रयोग समान अर्थों में किया जाता है। अवकाश प्राप्ति का सामान्य अर्थ वृद्धावस्था के आगमन से ही लगाया जाता है। शर्मा व दक[२] तो अवकाश प्राप्ति को ही वृद्धावस्था के रूप में देखते हैं। वृद्धावस्था को यदि समाजशास्त्रीय भाषा में वर्णित किया जाए तो यह उस अवस्था के रूप में जानी जाती है जिसमें व्यक्ति की सामाजिक भूमिका मे परिवर्तन आता है और इस प्रकार यह जैविक से अधिक सामाजिक व्यवस्था द्वारा प्रभावित होता है।

> समाजशास्त्र की एक नई शाखा अवकाश प्राप्ति का समाजशास्त्र अथवा वृद्धावस्था का समाजशास्त्र के नाम से अस्तित्व में आई है। सांप्रत भारत में संयुक्त परिवारों के विघटन नगरीकरण, औद्योगीकरण, पाश्चात्यीकरण, भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी संस्कृति के प्रसार आदि के फलस्वरूप अवकाश प्राप्ति के पश्चात अर्थात वृद्धावस्था एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। प्रस्तुत अध्ययन अवकाश प्राप्ति के बाद पारिवारिक समायोजन की समस्या का विश्लेषण करने का एक प्रयास रहा है।

संयुक्त परिवार व्यवस्था अब परिवर्तन के दौर में है तथा वृद्धों की समस्त आवश्क्ताओं को पूरा करने में अक्षम साबित हो रही है। परिवार, पड़ोस तथा नातेदारी द्वारा आपस में बांधकर रखने वाले सामाजिक बंधनों में शिथिलता आयी है, जिसके कारण परिवार में वृद्धों की स्थिति संतोषजनक नहीं रह गयी है। सिंह[३] ने वाराणसी शहर के सेवानिवृत्त वृद्धों का अध्ययन किया। प्राप्त निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि एक तिहाई वृद्धों के उनके पारिवारिक सदस्यो ंके साथ सम्बन्ध पूर्ववत नहीं रह गये हैं। १८.३३ प्रतिशत वृद्धों से उनकी संताने किसी न किसी क्षेत्र में सलाह ले रही थीं। ६१.४४ प्रतिशत वृद्धों को यह महसूस होने लगा कि कार्यशील समय की अपेक्षा वर्तमान समय में उनकी प्रस्थिति में ह्रास होता जा रहा है।

इकर्डेट[४] ने बताया कि व्यक्तिगत स्तर पर अवकाश प्राप्ति आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन, कामकाजी जीवन से वापसी तथा एक भूमिका से दूसरी भूमिका में संक्रमण है जो कि अनुकूलन की प्रक्रिया को आसान बनाता है। अवकाश प्राप्ति अचानक आती है जिसके लिए अधिकांश कामकाजी लोग न तो मानसिक रूप से और न ही आर्थिक रूप से बाद के जीवन की घटनाओं, समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार हो पाते हैं।

अवकाश प्राप्ति को संक्रमण और समायोजन के रूप में देखा जाता है जहाँ व्यक्ति को अवकाश प्राप्ति के समय विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कॉक्स[५] ने बताया कि उनमें से कुछ समस्याएँ हैं निम्न आय, प्रस्थिति, सम्मान और शक्ति में कमी जो एक व्यक्ति के जीवन के व्यावसायिक संस्तरण से सम्बन्धित हैं। समय के साथ नयी पहचान की तलाश, जीवन का अर्थ और एक व्यक्ति के जीवन मूल्य बदल जाते हैं। स्पष्ट रूप से व्यक्ति के जीवन में अवकाश प्राप्ति के समय बदलाव उन लोगों के लिए समायोजन के स्रोत होते हैं जो कि परिवर्तनों से समझौता कर लेते हैं। कोवन[६] ने बताया कि अधिकांशतः कुछ अवस्थाएं संक्रमणशील जीवन और उच्च चर सामाजिक प्रसंगों की विविधता और वैयक्तिक कारकों पर निर्भर करती हैं। विजय, कुमार[७] ने अपने अध्ययन में पाया कि वृद्ध सेवानिवृत्ति के पश्चात परिवार में सामन्जस्य बनाने की कोशिश करते हैं। अधिकांशतः वृद्ध एकल परिवार की अपेक्षा संयक्त परिवार में रहना अधिक पसंद करते हैं।

ब्रेथबेट और गिबसन[८] ने अपने अध्ययन में पाया गया कि अवकाश प्राप्ति के बाद समायोजन में लगभग ३३ प्रतिशत लोगों को समस्या आती है। दुर्बल स्वास्थ्य, अपर्याप्त आय और अवकाश प्राप्ति के पूर्व की नकारात्मक मनोवृत्ति के चलते

❑ पूर्व शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

समायोजन भी दुर्बल होता है। सिंह[९] के अनुसार वर्तमान में छोटे परिवारों की स्वीकृति होने, व्यक्तिवादिता बढ़ने, वृद्धों में कोई रुचि न होने के कारण वृद्ध स्वयं के अस्तित्व में कमी महसूस करते है या फिर स्वयं को अत्यधिक उपेक्षित व्यक्ति मानते हैं। फाल्सम[१०] ने बताया कि अच्छा स्वास्थ्य, उत्तरदायित्वों से छुटकारा, मित्रों और परिवारिक सदस्यों के साथ सौहार्दपूर्ण सामाजिक एवं आत्मीय सम्बन्ध, इच्छानुसार कार्य, अपने घर में आत्मनिर्भर जीवन अच्छे समायोजन से सकारात्मक रूप से सम्बन्धित है। लॉंडिस[११] ने पाया कि आर्थिक स्वतन्त्रता, उच्च शिक्षा, समय पर विवाह, छोटा परिवार, निम्न शिशु मृत्यु दर, स्वाभाविक रोग प्रतिरोधक क्षमता, अच्छा स्वास्थ्य, रोजगार, रुचि, चर्च और मित्रों के यहां भ्रमण तथा बच्चों के साथ रहने की प्राथमिकता सकारात्मक रूप से अच्छे समायोजन से सम्बन्धित है।

आमतौर पर अवकाश प्राप्ति के बाद व्यक्ति अपने आपको विभिन्न प्रकार की गतिविधियों तथा किसी शौक को पूरा करने, कोई दूसरा कार्य करने, कोई व्यवसाय करने, पूजा-पाठ एवं धार्मिक कार्यों में व्यस्त रहने आदि के माध्यम से व्यस्त रहने का प्रयास करता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को मानसिक भटकाव और अकेलेपन से मुक्ति मिल सकती है लेकिन अक्सर ऐसा सम्भव नहीं होता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सेवानिवृत्त के पश्चात उसके साथ अपने ही पारिवारिक सदस्यों द्वारा मनोवांछित व्यवहार नहीं किया जाता है। वापुली[१२] ने अपने लेख में बताया कि परिवार की आधारभूत व्यवस्था विशेषकर वृद्धों की भूमिका में निश्चित तौर पर परिवर्तन हो रहे हैं। वृद्ध व्यक्तियों को अब परिवार के मुखिया या उपयोगी व्यक्ति के रूप में नहीं देखा जाता जिसके कारण उनके साथ दुर्व्यवहार की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। बच्चों में बढ़ रही स्वायत्तता की भावना के परिणामस्वरूप माता-पिता व बच्चों के सम्बन्ध शिथिल हो रहे हैं। परिणामस्वरूप वृद्धों की समस्याएं भी बढ़ती जा रही हैं। वाल्टेस[१३] ने बताया कि वृद्ध व अन्य पारिवारिक सदस्यों के मध्य दो प्रकार की अन्तःक्रिया होती है। आश्रित तथा सहयोगी व्यवहार और स्वतन्त्र तथा उपेक्षित व्यवहार जिसमें प्रथम व्यवहार आश्रित तथा सहयोगी में व्यावहारिक स्तर पर सहयोग, भरण-पोषण एवं देखभाल की प्रकृति का विकास होता है, जबकि स्वतन्त्र तथा उपेक्षित व्यवहार में या तो उपेक्षा होती है या हतोत्साहित किया जाता है।

निरन्तर वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या इस बात को प्रमाणित करती है कि इन परिस्थितियों में न चाहते हुए भी व्यक्ति स्वयं को अकेला और तनाव के साये में घिरा हुआ पाता है। जोसेफ[१४] के अनुसार घर में रहने वाले वृद्ध किसी अन्य संस्था में रहने वाले वृद्धों की तुलना में अधिक स्वस्थ होते हैं तथा उनमें मानसिक, वैयक्तिक, धार्मिक एवं व्यावहारिक समस्याएँ कम हैं। अपने घर में रहने वाले वृद्धों में ईश्वर, धर्म तथा चरित्र में विश्वास अन्य संस्थाओं में रहने वाले वृद्धों की तुलना में अधिक पाया गया।

पचौरी, जे. पी. एवं अन्य[१५] ने उत्तराखण्ड जनपद के पौड़ी में स्थित श्रीनगर शहर के वृद्धजनों को अध्ययन में पाया गया कि १६ प्रतिशत वृद्ध पारिवारिक समस्याओं से ग्रस्त हैं, जबकि १२ प्रतिशत वृद्धजनों की आर्थिक स्थिति कमजोर है। सबसे अधिक ४५ प्रतिशत वृद्धजन अपनी व्यक्तिगत स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से ग्रसित हैं जिनमें शारीरिक स्वास्थ्य की समस्याएँ प्रमुख रूप से आती हैं।

उद्देश्य :

१. अवकाश प्राप्त कर्मियों की दिनचर्या, खाली समय का उपयोग, रुचि तथा जागरुकता का पता लगाना।
२. अवकाश प्राप्त कर्मियों के परिवार के सदस्यों के साथ अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों का पता लगाना।
३. अवकाश प्राप्त कर्मियों का पारिवारिक समायोजन ज्ञात करना।

उपकल्पना :

१. अवकाश प्राप्ति के बाद वृद्धों को खाली समय व्यतीत करने की समस्या होती है।
२. अवकाश प्राप्ति के पश्चात वृद्धों का पारिवारिक सदस्यों के साथ अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों में तनाव बढ़ता है।
३. अवकाश प्राप्ति के पश्चात वृद्धों के पारिवारिक समायोजन में शिथिलता आती है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा डीजल रेल इंजन कारखाना, वाराणसी के अवकाश प्राप्त कर्मियों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है। अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप का चयन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं के निवास स्थान के पते की सूची न मिल पाने के कारण गैर सम्भावना प्रतिदर्शन के अन्तर्गत सौद्देश्य प्रतिदर्शन व शनैः-शनैः बढ़ने वाला प्रतिदर्शन तकनीक का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन के प्रयास में कुल २८० उत्तरदाता ही मिल सके उन सभी को न्यादर्श के अन्तर्गत शामिल किया गया है। जिसमें से १२० ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय'' व १६० ''डीजल रेल इंजन कारखाना'' के हैं।

इन अवकाश प्राप्त कर्मचारियों से पारिवारिक समायोजन से सम्बन्धित कुल २५ प्रश्न पूछे गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु, 'समशाद-जसवीर ओल्ड-एज एडजस्टमेंट इन्वेन्टरी (१९९५)[१६] का प्रयोग किया गया है।

सारणी

पारिवारिक समायोजन के विविध आयामों के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण।

पारिवारिक समायोजन के विविध आयाम	हाँ		नहीं		कह नहीं सकते	
	सं०	%	सं०	%	सं०	%
प्र०-१ क्या आप स्वयं को अपने घर में उसी आदर-सम्मान के साथ महसूस करते हैं जैसा पहले करते थे ?	२३१	८२.५	४९	१७.५	–	–
प्र०-२ क्या आपके बच्चे आपसे पहले जैसा सम्बन्ध रखते हैं ?	१७८	६३.६	१०२	३६.४	–	–
प्र०-३ क्या आपकी नौकरी समाप्त हो जाने पर घर के लोग आपको बोझ समझते हैं ?	४६	१६.४	२३२	८२.९	२	०.७
प्र०-४ क्या बच्चे आपके धन की उम्मीद में आपकी सेवा करते हैं?	६७	२३.९	२१३	७६.१	–	–
प्र०-५ क्या आप घर में किसी काम में सहायता देने को तैयार रहते हैं परन्तु घर के लोग आपका सहयोग नहीं चाहते ?	१४४	५१.४	१३६	४८.६	–	–
प्र०-६ अगर आपके पास पर्याप्त धन और सम्पत्ति है तो आप बच्चों को उस धन का उपयोग करने देते हैं ?	२०६	७३.६	७४	२६.४	–	–
प्र०-७ क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि घर के लोगों को आपकी आवश्यकता है ?	२०२	७२.१	७८	२७.९	–	–
प्र०-८ क्या आप चाहते हैं कि आपके बच्चे हमेशा आज्ञाकारी बनें रहें, और इसी बात पर चिन्तित रहते हैं ?	९६	३४.३	१८४	६५.७	–	–
प्र०-९ क्या आप बच्चों को स्वतन्त्रता से उनकी जिम्मेदारियों निभाने की छूट देते हैं ?	२६१	९३.२	१९	६.८	–	–
प्र०-१० क्या आप महसूस करते हैं कि अगर आपकी मृत्यु हो जायेगी तो आपकी पत्नी का जीवन बच्चों के हाथ सुरक्षित रहेगा?	२३०	८२.१	५०	१७.९	–	–
प्र०-११ क्या आप घर के वातावरण को आनन्दमय बनाने में सहयोग देते हैं ?	२३०	८२.१	५०	१७.९	–	–
प्र०-१२ क्या आप बीमार पड़ने से इसलिए डरते हैं कि लोग आपकी सेवा नहीं करेगें?	१०५	३७.५	१७५	६२.५	–	–
प्र०-१३ क्या घर में आपको अपनी रुचि और स्वाद के अनुकूल भोजन उपलब्ध है ?	२२७	८१.९	५३	१८.१	–	–
प्र०-१४ क्या घर के लोग दूसरों के सामने आपकी उपस्थिति पसन्द करते हैं ?	१९९	७१.१	५४	१९.३	२७	९.६
प्र०-१५ क्या घर के लोगों के साथ रेडियों सुनना, टी.वी. देखना ज्यादा पसन्द करते हैं ?	२०८	७४.३	७२	२५.७	–	–
प्र०-१६ किसी भी पारिवारिक समस्या को सुलझाने में क्या आप अपना सुझाव देना पसन्द करते हैं ?	२५५	९१.५	२५	८.९	–	–

प्र०-१७ क्या आप अपने व्यक्तिगत अनुभवों को घर के लोगों के साथ बांटते हैं ?	१६८	६०.०	११२	४०.०	–	–
प्र०-१८ क्या आप अपनी व्यक्तिगत समस्या को घर के लोगों से कहने में संकोच करते हैं ?	१३५	४८.२	१४५	५१.८	–	–
प्र०-१९ क्या आपको घर में किसी विशेष व्यक्ति के प्रति लगाव है ?	२३१	८२.५	४९	१७.५	–	–
प्र०-२० क्या घर में लोग आपके विचारों की प्रशंसा करते हैं ?	१५२	५४.३	११६	४१.४	१२	४.३
प्र०-२१ क्या आप घर के किसी भी सदस्य की समस्या को सुनना पसन्द करते हैं ?	२५७	९१.८	२३	८.२	–	–
प्र०-२२ क्या आपको ऐसा लगता है कि घर के लोग आपसे इसलिए अलग रहते है क्योंकि आप बहुत चिड़चिड़े हो गये हैं ?	५२	१८.६	२२८	८१.४	–	–
प्र०-२३ क्या आप घर में अपना समय खुशहाली में बिताने में समर्थ हैं ?	२३४	८३.६	३६	१२.६	१०	३.५
प्र०-२४ क्या आप परिवार के प्रति जिम्मेदारी पूरी करने के बाद भी कभी-कभी अकारण चिन्तित हो जाते हैं ?	१२९	४६.१	१५१	५३.९	–	–
प्र०-२५ क्या आप यह महसूस करते हैं कि आपका घर हर तरह से सम्पन्न और खुशहाल है ?	२३९	८५.४	४१	१४.६	–	–

सारणी के माध्यम से अवकाश प्राप्त व्यक्तियों के पारिवारिक समायोजन के विभिन्न कारकों का विश्लेषण दर्शाया गया है जिससे विदित होता है कि तीन चौथाई से अधिक (८२.५ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने स्वीकार किया कि अवकाश के बाद अपने घर में उसी आदर सम्मान की अनुभूति करते हैं जैसा कि अपने कार्य के दौरान करते थे। जबकि शेष १७.५ प्रतिशत व्यक्तियों ने आदर एवं सम्मान पाने की सम्भावना को अस्वीकार किया है। सर्वाधिक ६३.६ प्रतिशत अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने बताया कि उनके अपने बच्चों से पहले जैसे सम्बन्ध हैं जबकि ३६.४ प्रतिशत व्यक्तियों के अपने बच्चों से पहले जैसे सम्बन्ध नहीं थे। अधिकांश (८२.९ प्रतिशत) व्यक्तियों ने बताया कि पारिवारिक सदस्य उनको बोझ नहीं समझते हैं जबकि १६.४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि बच्चे उनको बोझ समझते हैं। इसी प्रकार २३.९ प्रतिशत सेवानिवृत्त व्यक्तियों का यह मत है कि उनके बच्चे धन की उम्मीद में उनकी सेवा करते हैं। जबकि शेष (७६. १ प्रतिशत) व्यक्तियों ने अपने बच्चों की इस प्रकार की सोच के प्रति असहमति को व्यक्त किया है। लगभग आधे से कुछ अधिक (५१.४ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने स्वीकार किया है कि घर में किसी भी कार्य में सहायता देने के प्रति इच्छुक रहने के बावजूद भी घर के सदस्य सहयोग लेना पसन्द नहीं करते हैं जबकि शेष (४८.६ प्रतिशत) व्यक्तियों ने स्वीकार किया है कि पारिवारिक सदस्यों द्वारा उनसे घरेलू मामलों में सहायता ली जाती है।

सर्वाधिक (७३.६ प्रतिशत) व्यक्तियों ने स्वीकार किया है कि धन और सम्पत्ति का उपयोग अपने बच्चों और पारिवारिक सदस्यों द्वारा करने की छूट देते हैं ठीक इसके विपरीत एक चौथाई (२६.४ प्रतिशत) से अधिक व्यक्तियों ने बतलाया है कि अपने पास पर्याप्त धन और सम्पत्ति होने के बावजूद अपने बच्चों को इस धन का उपयोग करने की स्वतन्त्रता से वंचित करते हैं। ७२.१ प्रतिशत अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने अपना मत व्यक्त किया है कि घर में पारिवारिक सदस्यों को हमारी बहुत ही आवश्यकता है। जबकि शेष (२७.९ प्रतिशत) ने अपने परिवार के लिए आवश्यकता के प्रति नकारात्मक विचार व्यक्त किया है। लगभग एक तिहाई से अधिक (३४.६ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने हमेशा चिन्तित रहने की बात स्वीकार की है कि पारिवारिक बच्चे सदैव ही सदाचारी एवं आज्ञाकारी बने रहें तथा ठीक उसके विपरीत सर्वाधिक (६५.७ प्रतिशत) व्यक्तियों ने विचार व्यक्त किया है कि हमे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है कि बच्चे सदैव ही अनुशासित रह रहे हैं कि नहीं। सर्वाधिक (९३.२ प्रतिशत) सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने बतलाया है कि अपने बच्चों को स्वतन्त्र रूप से जिम्मेदारी का निर्वहन करने में सदैव ही छूट देते हैं जबकि शेष केवल ६.८ प्रतिशत व्यक्तियों ने उक्त तथ्य के

प्रति नकारात्मक मत व्यक्त किया है। पारिवारिक समायोजन के अन्तर्गत अवकाश प्राप्त व्यक्तियों से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि आपकी मृत्योपरान्त आपकी जीवनसाथी का जीवन बच्चों के हाथ सुरक्षित रहेगा कि नहीं। उक्त विषय पर सर्वाधिक (८२.१ प्रतिशत) व्यक्तियों ने अपनी सहमति को व्यक्त किया है जबकि शेष (१७.६ प्रतिशत) व्यक्तियों ने बताया है कि मृत्योपरान्त पत्नी का जीवनयापन बच्चों के साथ बहुत ही कठिन दौर से गुजर सकता है एवं वह सुरक्षित नहीं महसूस कर पायेंगी।

सारणी के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश (८२.१ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने घर के वातावरण को आनन्दमय एवं सुखमय बनाने में सहयोग देने की प्रवृत्ति को स्वीकार किया है तथा शेष १७.६ प्रतिशत सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने वातावरण को सुखमय बनाने के लिए अपनी सहयोगिता से इन्कार किया है। एक तिहाई से अधिक (३७.५ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों ने स्वीकार किया है कि वृद्धावस्था में बीमारियों से इसलिए डर लगता है कि पारिवारिक सदस्य समुचित देखभाल नहीं कर पायेंगे जबकि ६२.५ प्रतिशत व्यक्तियों ने मत व्यक्त किया है कि किसी भी अवस्था में बीमारी में किसी प्रकार का डर नहीं सताता है कि पारिवारिक सदस्य या बच्चे हमारी सेवा या देखभाल नहीं करेंगे। सर्वाधिक (८१.६ प्रतिशत) सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने अपनी सहमति व्यक्त की है कि परिवार के अन्तर्गत अपनी रुचि और स्वाद के अनुकूल ही भोजन की उपलब्धता होती है तथा शेष १८.१ प्रतिशत व्यक्तियों ने अपनी रुचि और स्वाद के अनुसार परिवार में भोजन की उपलब्धता के प्रति असहमति व्यक्त की है। सर्वाधिक (७१.१ प्रतिशत) सेवानिवृत्त कर्मियों ने बताया है कि घर के पारिवारिक सदस्य आगन्तुकों के समक्ष स्वयं की उपस्थिति को पसन्द करतें है और आवश्यक भी समझते हैं जबकि ठीक इसके विपरीत केवल १६.३ प्रतिशत व्यक्ति आगन्तुकों के सामने उनकी उपस्थिति को पसन्द नहीं करते हैं। केवल २७ (६.६ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त कर्मियों ने अपने को मेहमानों के समक्ष उपस्थिति को पारिवारिक सदस्यों द्वारा पसन्द करने या न करने के प्रति कोई भी मत व्यक्त नहीं किया गया है। अधिकतर (७४.३ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को अपने घर के पारिवारिक सदस्यों के साथ रेडियो सुनने या टी.वी. देखने को ज्यादा पसन्द करते हुए पाया गया है तथा शेष एक चौथाई (२५.४ प्रतिशत) व्यक्तियों ने विचार व्यक्त किया है कि बहतु अधिक समय तक पारिवारिक सदस्यों के साथ रेडियो सुनना या टी.वी. देखना पसन्द नहीं करते हैं।

सर्वाधिक (६१.५ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त वृद्धों ने किसी भी तरह की पारिवारिक समस्या को सुलझाने के प्रति अपना सुझाव देने की बात को स्वीकार किया है जबकि केवल ८.५ प्रतिशत व्यक्ति पारिवारिक समस्यायों से निवृत्ति पाने के लिए किसी प्रकार का सुझाव नहीं देते हैं। अधिकतर (६० प्रतिशत) सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने अपने व्यक्तित्व व कार्य अनुभवों को घर के लोगों के साथ मिलकर बांटनें के प्रति सहमति व्यक्त की है। जबकि ठीक इसके विपरीत ४० प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने बच्चों या सदस्यों के साथ मिलजुलकर अपने व्यक्तिगत अनुभवों को साझा नहीं करने का विचार व्यक्त किया है। जब सेवानिवृत्त कर्मियों के व्यक्तिगत सोच एवं समस्या के निवारण हेतु पारिवारिक सदस्यों को सूचित करने के प्रति विचार पूछा गया तो आधे से अधिक (५१.८ प्रतिशत) व्यक्तियों ने अपनी व्यक्तिगत समस्या को पारिवारिक सदस्यों को सूचित करने में किसी भी प्रकार का संकोच न करने की बात बतलायी है। जबकि शेष ४८.२ प्रतिशत ने संकोच करने के प्रति अपनी सहमति को व्यक्त किया है। सर्वाधिक (८२.५ प्रतिशत) सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने परिवार के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति विशेश के प्रति अधिक लगाव होने की बात को स्वीकार किया है जबकि १७.५ प्रतिशत व्यक्तियों ने परिवार के सभी सदस्यों को समान प्रेम व्यवहार एवं लगाव की बात बतलायी है। कुल सम्बन्धित अवकाश प्राप्त कर्मियों मे से आधे से कुछ अधिक (५४.३ प्रतिशत) व्यक्तियों ने मत व्यक्त किया है कि घर के पारिवारिक सदस्य उनके विचारों की प्रसंशा करते हैं जबकि शेष ४१.४ प्रतिशत व्यक्तियों ने पारिवारिक सदस्यों द्वारा उनके विचारों को महत्व या प्रसंशा करने की बात को स्वीकार नहीं किया है। केवल ४.३ प्रतिशत ने अपनी अनभिज्ञता जाहिर की है कि पारिवारिक सदस्य हमारे विचारों की प्रशंसा करते हैं कि नहीं, हमे नहीं मालूम।

सर्वाधिक (६१.८ प्रतिशत) अवकाश प्राप्त व्यक्ति पारिवार के किसी भी सदस्य की समस्या को शांत एवं ध्यानपूर्वक सुनते हैं ठीक इसके विपरीत केवल ८.२ प्रतिशत व्यक्ति परिवार के किसी भी सदस्य की समस्या को बहुत ध्यानपूर्वक नहीं सुनते हैं। केवल १८.६ प्रतिशत सेवानिवृत्त व्यक्तियों ने अपने को चिड़चिड़ा होने के चलते परिवार के सदस्यों से अलग रहने की बात को स्वीकार किया है जबकि शेष (८१.४ प्रतिशत) व्यक्तियों ने अपने आपको चिड़चिड़ापन की आदत न होने की बात को स्वीकारा है। ८३.६ प्रतिशत व्यक्ति अपने खाली समय को प्रसन्नचित्त एवं खुशहालीपूर्वक बिताते हैं जबकि १२.६ प्रतिशत व्यक्तियों ने इसके विपरीत विचार को प्रकट किया

है तथा शेष ३.५ प्रतिशत व्यक्तियों ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया है। ४६.१ प्रतिशत व्यक्तियों ने अपना विचार व्यक्त किया है कि परिवार के प्रति जिम्मेदारी पूरी करने के पश्चात भी कभी-कभी अकारण चिन्ता सताने लगती है तथा शेष ५३.६ प्रतिशत व्यक्तियों ने पूर्ण रूप से जिम्मेदारी का निर्वहन करने के बावजूद भी अकारण चिन्तित रहने की बात को स्वीकार नहीं किया है। सर्वाधिक (८५.४ प्रतिशत) व्यक्तियों ने सदैव यह महसूस करने की बात कही है कि हमारा घर हर तरह से सम्पन्न और खुशहाल है जबकि शेष १४.६ प्रतिशत व्यक्तियों ने अपने परिवार की पूर्णतः खुशहाली एवं सम्पन्नता के प्रति असहमति को व्यक्त किया है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि अध्ययन के अंतर्गत अधिकांश सूचनादाता अपने परिवार में पूर्व की भांति ही आदर सम्मान प्राप्त करते हैं, उनके अपने बच्चों के साथ पहले जैसे ही संबंध हैं, उन्हें उनकी रूचि एवं स्वाद के अनुसार भोजन प्राप्त होता है, परिवार में आगन्तुकों के समक्ष उनकी उपस्थिति को पसन्द करते हैं, परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर रेडियो सुनते एवं टी.वी. देखते हैं, पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने में उनसे परामर्श किया जाता है। वे अपने खाली समय को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करत हैं तथा उनका घर हर तरह से सम्पन्न एवं खुशहाल है। निष्कर्षतः अवकाश प्राप्ति के बाद वृद्ध अपने परिवार से सुसमायोजित हैं।

References

1. Atchley, R. C. 'The Sociology of Retirement. Cambridge, M. A. Schenkman, 1976, pp.13-17.
2. Sharma, M., & Dak, T. M. (Eds). 'Aging in India : Challenges for the Society', Ajanta Publications, Delhi, 1987, pp.122-125.
3. Singh, U. K. 'Pattern of Social Adjustment and Interaction in Old Age: (A Sociological study based on the retired employces)' Ph.D. Thesis of Sociology Deptt. B.H.U. Varanasi,1999, pp.246-248.
4. Ekerdt, D. J. 'Retirement. In. G. L. Maddox (Ed.). The Encyclopedia of Aging IInd ed'. New York: Springer Publishing Compony, 1995, pp.819-823.
5. Cox, H. 'Later Life: The Reality of Aging', New Jersy: Prentice Hall, 1984, pp.75-79.
6. Cowan, P. C. 'Individual and Family Life Transition : A Proposal For a New Definition'. In.P. Cowan & E.M. Hathirington (Eds.) Advance in Family Rseach (Vol-2) Hillsdale, N.J. : Erlbaum, 1991, pp.45-48.
7. Kumar,Vijay. 'Pre–Retirement Plansand Post Retirement Adjustment, Research and Development Journal', 3, 2, Feb, 1997, pp.12-22.
8. Braithwaite,V. A., Gibson, M. D. 'Adjustment to Retirement: What We Know and What We Need to Know'. Aging & Society Journal, 7,3, 1987 pp.1-18.
9. Singh, V. K. 'Pattern of social Adjustment and Intercetion in Old Age: (A Sociological study based on the retired employces)' Ph.D. thesis of Sociology Deptt. B.H.U. Varanasi 1999.
10. Folsom, J. K., & Morgan, M. C. 'The Social Adjustment of 318 Recipient of Old Age allowances. American Soeiological Review', April 1973, pp.223-229.
11. Landis, J. T. 'Social Psychological Factors of Aging'. Social Forces Journal, 1942 pp.468-470.
12. बापुली, अनुराधा, 'परिवार में वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार : एक अर्न्तनिहित अपराध', अनुशीलन जर्नल, वाराणसी, मानवी सेवा समिति प्रकाशन, अंक XXXII, २०११, पृ- 151-156.
13. Baltes, M. M., Wahl, H. 'Patterns of Communication in Old Age: The Dependency-Support and Independence- Ignore Sript'. Health Communication Journal, 8,3, 1996, pp.217-231.
14. Joseph, James. 'Aging in India. Allahabad', Chugh Publications, 1991 pp.35-41.
15. पचौरी जे.पी., जे.पी. भट्ट एवं सुषमा नयाल, 'वृद्धावस्था एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष ११ अंक १, जनवरी-जून २००६, पृ. १-५
16. Shamshad Jasbir 'Old Age Adjustment Inventory. Agra, National Psychological Corporation, 1995 p.13.

अनुसूचित जातियाँ और परम्परागत व्यवसाय

❑ डॉ० शंकर बिष्ट

उत्तराखण्ड में शिल्पकला के जनक यहां के शिल्पकार हैं जिन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखा जाता है। शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए सर्वर्णों, विशेषकर राजपूतों पर निर्भर रहना पड़ता था। यद्यपि शिल्पकार पूरी तरह भूमिहीन नहीं है, परन्तु निजी भूमि भी इतनी पर्याप्त नहीं होती है कि वे वर्ष भर अपने परिवार का भरण पोषण कर सकें। इस कारण उन्हें राजपूतों तथा ब्राह्मणों के यहां मेहनत मजदूरी कर, किसी तरह अपना भरण पोषण करना पड़ता था, हालांकि उनकी अपनी बस्तियाँ होती थी। जमींदारों के कृषि कार्यों में हाथ बँटाना, उनके खेतों में हल जोतना, गुड़ाई, निराई, फसल की कटाई, अनाज की मड़ाई, घास कटाई आदि से लेकर तमाम घरेलू कार्यों को उनके द्वारा संपन्न किया जाता था।[1]

> उत्तराखण्ड में शिल्पकला के जनक यहां के शिल्पकार हैं जिन्हें अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखा जाता है। शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण उन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ रहा है। उत्तराखण्ड के प्राचीन मंदिर, इमारतें, भव्य नौले यहां के शिल्पियों के शिल्प की जीती जागती मिसाल हैं। एक समय अपने शिल्प के आधार पर पहचान बनाने वाले परम्परागत व्यवसायी वर्तमान में पहचान के संकट के गुजर रहे हैं। ऐसे कई कारण हैं जिन्होंने परम्परागत व्यवसायों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। परम्परागत व्यवसायी स्वंय भी परम्परागत व्यवसायों को दयनीय हालात में पहुंचाने के लिए कम जिम्मेदार नहीं हैं। परम्परागत व्यवसायी स्वंय को परिवर्तन के अनुरूप ढाल नहीं पाये और विकास की दौड़ में पिछड़ते चले गये। परम्परागत व्यवसायियों की नई पीढ़ी में पैतृक व्यवसाय के प्रति कोई खास रूचि नहीं है, उनका मानना है कि महंगाई के इस दौर में पैतृक व्यवसाय से आजीविका चलाना काफी मुश्किल है। ज्यादातर नई पीढ़ी के लोग भले ही अल्प आय में महानगरों में कार्य कर लेंगे, लेकिन उन्हें परम्परागत व्यवसाय करने में शर्म महसूस होती है। अगर व्यक्तिगत और सरकारी स्तर से परम्परागत व्यवसायों के संरक्षण के प्रयास नहीं किये गये तो परम्परागत व्यवसाय अतीत के किस्से व दादी–नानी के किस्सों में रह जायेंगे।

उत्तराखण्ड के प्राचीन मंदिर, इमारतें, भव्य नौले यहां के शिल्पियों के शिल्प की जीती जागती मिसाल हैं। आज भी ग्रामीण आंचल के पुराने भवनों की लकड़ी में की गई नक्काशी अद्भुत आर्कषण पैदा करती है। प्राचीन मंदिर व नौलों में पत्थर पर उकेरा गया शिल्प जीवन्त प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए अल्मोड़ा के नन्दादेवी में बाहरी दिवारों पर की गई शिल्पकला खजुराहो मंदिरों के समकक्ष है। प्राचीन नौलों में पानी के स्रोत पर ऐसा निर्माण कि पानी अविरल आता रहे। इसी प्रकार लौह शिल्प, ताम्र शिल्प कला के बर्तन, वाद्य यंत्र यहां के शिल्पकारों के अद्भुत कौशल की कथा कहते हैं। चंद राजाओं की तलवारें जो यहां के शिल्पकारों ने बनाई आज भी उनमें जंग नहीं लगा है। प्राचीन काल में समय निर्धारण के लिए तांबें की घड़ी बनती थी जिसमें एक कटोरानुमा तांबे के पात्र में बीच में एक छिद्र बनाया जाता था और वह घड़ी पानी के बर्तन में ऊपर से रखते थे तो वह निश्चित समय में डूबती थी वह छिद्र इतने वैज्ञानिक तरीके से बनता था कि एक निश्चित समय में उसमें पानी भरता था और वह बर्तन डूब जाता था। ज्योतिष उसी से समय की गणना घड़ी से करते थे। इसी प्रकार अनाज नापने का तांबे का पात्र माणा कहलाता था जिससे उस युग में अनाज की मात्रा नापी जाती थी। आज नई पीढ़ी उस माणा नामक पात्र से सम्भवतः अनभिज्ञ है। कृषि से संबंधित हल, फल व लोहे का तवा, कढ़ाई, डाढू पन्या आदि यहां के शिल्पकार जमीन से लोहा खनिज निकाल कर उसे शोधित कर पीटकर लोहे के विविध सामान बनाते थे। लोहाघाट के आसपास इस प्रकार की खानें हैं जो अब बंद पड़ी हैं, इसी प्रकार बागेश्वर अल्मोड़ा के मध्य खरही पट्टी में तांबे को जमीन से निकालकर शोधित कर पीटकर तांबे के विभिन्न प्रकार के बर्तन वाद्य यंत्र, पूजा का सामान आदि बनाये जाते थे। इसी प्रकार बांस, रिंगाल के डलिया, मोस्टे, फीणे, टोकरी यहां के शिल्पकार बनाते थे और आज भी बना रहे हैं।[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से अब अनुसूचित जातियों के

❑ सहायक अध्यापक, सल्ट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

अनेक सदस्यों ने शिक्षित होकर इस देश में उपलब्ध प्रायः सभी पेशों को अपना लिया है। सरकार नौकरियों में उनके लिए जो आरक्षण की व्यवस्था है उससे लाभ उठाकर अनुसूचित जातियों के अनेक सदस्य विभिन्न सरकारी नौकरियों में लग गये हैं और राष्ट्र के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। देश के उद्योग-धन्धों के विकास में भी अनुसूचित जातियों के योगदान को आज नकारा नहीं जा सकता। आज इन जातियों के लोगों ने सांसद के रूप में विधान मंडलों के सदस्य के रूप में, मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों के रूप में, यहां तक कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के रूप में भी राष्ट्रीय जीवन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

''परम्परागत रूप से, प्रत्येक जाति का एक व्यवसाय होता था। ग्रामीण भारत में जजमानी प्रथा पाई जाती थी। जजमानी प्रथा के कारण, प्रत्येक जाति का अपने वंशानुगत व्यवसाय पर लगभग एकाधिकार था। प्रत्येक जाति उसके व्यवसाय की धार्मिक छुआछूत के आधार पर ऊपर या नीचे संस्तारित होती Fkh[३]

आनुवांशिक रूप से व्यवसाय भारतीय जातीय व्यवस्था में पृथक्करण का एक मुख्य आधार रहे हैं। जातीय स्तरण में चार वर्णों का मुख्य आधार व्यवसाय ही हैं।[४] परम्परागत जाति आधारित समाज में भिन्न जातियों के व्यवसाय बँटे हुए हैं।[५] नियमानुसार व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे वह व्यवसाय ही करना है जो उसकी जाति के लिए निर्धारित है। व्यक्ति को व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता नहीं है। जाति और जाति व्यवस्था के लिए व्यवसायों को ही जिम्मेदार माना जाता है। मुख्यतः जाति, व्यवसाय से ही चिन्हित होती है।[६] मेयर के अनुसार क्योंकि जाति का व्यवसाय से सम्बन्ध होता है, व्यवसाय न केवल परम्परागत बल्कि धार्मिक आधार पर जाति से सम्बन्धित होते हैं।[७] भारतीय समाज में परम्परागत व्यवसायिक संरचना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।[८]

नृत्य, संगीत में भी शिल्पकारों की कुछ जातियां जन्मजात प्रवीण हैं प्राचीन लोकगाथाओं को जीवित रखने का श्रेय भी इन्हीं शिल्पकारों को है। यदि इन्हें उचित प्रोत्साहन मिलता तो ये जन्मजात गायक, वादक, संगीतज्ञ शिल्पकार यहां की संस्कृति को लोक गाथाओं को ऊँचाईयों तक पहुंचा सकते थे। प्राचीन समय में शिल्पकारों की लौह कला, काष्ठकला, पत्थर शिल्प, ताम्र शिल्प व गायन वादक कला को यहां के कला के कद्रदान संपन्न लोगों ने संरक्षण दिया जिससे उनकी कला में निखार आया। देवभूमि की संस्कृति व जन जीवन से जुड़ी पारंपरिक वस्तुएं अब संग्रहालयों या फिर सीमांत क्षेत्रों में ही सिमट कर रह गई हैं।[९] यहां के शिल्पकारों की सोच वैज्ञानिक थी, पुराने पुल, घराट, मंदिर, नौलों व पुरानी इमारतों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक हथिया नौला, पाटिया के नौलखिया भवन, जागेश्वर मंदिर, कसार देवी का एक चट्टान में बना मंदिर यहां के अद्भुत कला कौशल के जनक शिल्पकारों के शिल्प की मिशाल हैं। किन्तु आज शिल्पकार व शिल्पकला बदहाली का शिकार हैं। समय बदला, लकड़ी, पत्थर का भवन निर्माण में उपयोग कम होने लगा। लकड़ी काटने, पत्थर निकालने पर प्रतिबंध होने से पहाड़ में सीमेंट, ईंट, लोहा की निर्माण कार्यों में प्रमुखता हो गई। इस कला से यहां का शिल्पकार पूरी तरह कुशल नहीं था। भवन निर्माण में बाहर के लोग आने लगे। आज उत्तराखण्ड के समस्त निर्माण कार्य बाहर से आए मजदूर मिस्त्री बढ़ई कर रहे हैं। यहां शिल्पकार लोहार, मिस्त्री, बढ़ई आर्थिक रूप से निरन्तर पतन की ओर हैं और तो और गांवों में बनने वाले सरकारी स्कूल, रास्ते भी बाहर के मजदूर बना रहे हैं। यहां के शिल्पकार निरन्तर गरीबी की ओर बढ़ रहे हैं। उनकी शिल्पकला पतन की ओर अग्रसर है।[१०] स्वतंत्रोपरांत अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं उनके विकास हेतु संविधान में आरक्षण व्यवस्था के प्रावधान के साथ-साथ अन्य अनेक योजनाएं एवं कार्यक्रम संचालित किए गए हैं। अनुसूचित जातीय कल्याणकारी योजनाओं के फलस्वरूप उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में अवश्यमेव परिवर्तन हुआ है।[११] लेकिन इस परिवर्तन का असर अनुसूचित जाति की सीमित जनसंख्या पर ही दृष्टिगोचर होता है।

उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य वर्तमान में परम्परागत व्यवसाय और परम्परागत व्यवसायियों की स्थिति का अध्ययन करना है।

शोध प्रारूपः- प्रस्तुत शोध कार्य हेतु उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा जिले के ताड़ीखेत ब्लॉक के विभिन्न ग्रामों के १०० परम्परागत व्यवसायियों को अध्ययन हेतु चयनित किया गया। इसमें सोद्देश्य निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। शोध में आकड़ों के संग्रहण हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

तालिका संख्याः-१
परम्परागत व्यवसायों के प्रति दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	बारम्बारता	प्रतिशत
करना चाहते हैं	२१	२१.०
नहीं करना चाहते हैं	२४	२४.०
परम्परागत व्यवसाय के साथ कोई अन्य कार्य	४८	४८.०
कोई उत्तर नहीं	७	७.०
योग	१००	१००.०

परम्परागत व्यवसायों के प्रति सूचनादाताओं का दृष्टिकोण मिला जुला है। सर्वाधिक ४८ प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि महंगाई के इस युग परम्परागत व्यवसाय से ही आजीविका चलाना काफी मुश्किल है, इसलिए परम्परागत व्यवसाय के साथ-साथ कोई और व्यवसाय हो ताकि जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आमदनी होती रहे। २४ प्रतिशत सूचनादाता परम्परागत व्यवसायों को नहीं करना चाहते हैं। उनका कहना है कि परम्परागत व्यवसाय में काम अधिक और आय कम है। २१ प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना हैं कि वो परम्परागत व्यवसाय करना चाहेंगे। ७ प्रतिशत सूचनादाताओं ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

तालिका संख्याः-२
परम्परागत व्यवसायों की स्थिति

स्थिति	बारम्बारता	प्रतिशत
ठीक-ठाक(सन्तोषजनक)	१२	१२.०
अच्छी	०४	४.०
बहुत अच्छी	-	-
खराब	४०	४०.०
बहुत खराब	४४	४४.०
योग	१००	१००.०

सूचनादाताओं से परम्परागत व्यवसायों की स्थिति जानने के लिए प्रश्न करने पर सर्वाधिक ४४ प्रतिशत सूचनादाताओं का मत था कि परम्परागत व्यवसायों की स्थिति काफी खराब व दयनीय है। तत्पश्चात ४० प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि स्थिति खराब, १२ प्रतिशत सूचनादाता सन्तोषजनक व मात्र ०४ प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि परम्परागत व्यवसायों की स्थिति अच्छी है। किसी भी सूचनादाता ने यह नहीं माना कि परम्परागत व्यवसायों की स्थिति बहुत अच्छी है।

तालिका संख्याः-३
व्यवसायिक सन्तुष्टता का स्तर

सन्तुष्टि का स्तर	बारम्बारता	प्रतिशत
पूर्णतया सन्तुष्ट	०६	६.०
आंशिक सन्तुष्ट	२१	२१.०
असन्तुष्ट	६७	६७.०
कोई उत्तर नहीं	०६	६.०
योग	१००	१००.०

व्यवसायिक सन्तुष्टिकरण से सम्बन्धित प्रश्न करने पर सर्वाधिक ६७ प्रतिशत सूचनादाता का कहना था कि वो अपने व्यवसाय से असन्तुष्ट हैं। इसका कारण जानने पर अधिकतर का कहना था कि एक तो इससे पर्याप्त आय नहीं हो पाती, दूसरा इसमें श्रम के अनुसार आय बहुत कम है। ०६ प्रतिशत सूचनादाता पूर्णतया सन्तुष्ट, २१ प्रतिशत सूचनादाता आंशिक सन्तुष्ट व ०६ प्रतिशत सूचनादाताओं ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

सूचनादाताओं से ये प्रश्न करने पर कि अगर आपसे स्वंय व बच्चों के लिए व्यवसाय चुनने के लिए कहा जाये तो आप कौन सा व्यवसाय स्वंय के लिए और कौन सा अपने बच्चों के लिए चुनेंगे, तो सूचनादाताओं की सूचना अनुसार निम्नलिखित परिणाम सामने आयेः-

तालिका संख्याः-४
व्यवसाय में वरीयता

व्यवसाय	स्वंय के लिए	बच्चों के लिए
कृषि	११(११.०)	०५(५.०)
परम्परागत व्यवसाय	१६(१६.०)	०४(४.०)
गैर कृषि	०६(६.०)	०३(३.०)
स्वंय का व्यवसाय	३६(३६.०)	२१(२१.०)
नौकरी	२३(२३.०)	६५(६५.०)
अन्य	०५(५.०)	२(२.०)
कुल	१००(१००.०)	१००(१००.०)

सर्वाधिक सूचनादाताओं (३६ प्रतिशत) ने स्वयं का व्यवसाय चुना इसका कारण पूछने पर सूचनादाताओं का कहना था एक तो अब उनकी नौकरी में जाने की उम्र नहीं है, दूसरा ये भी सम्भव नहीं है कि इस उम्र में कोई नया कार्य सीखा जाये, इससे बेहतर है कि स्वंय का व्यवसाय कर उसमें ही खूब मेहनत की जाये। तत्पश्चात ११ प्रतिशत ने कृषि, १६ प्रतिशत ने परम्परागत व्यवसाय, ६ प्रतिशत ने गैर कृषि, २३ प्रतिशत ने नौकरी व ५ प्रतिशत ने स्वंय के लिए अन्य व्यवसाय को वरीयत दी।

बच्चों के व्यवसाय से सम्बन्धित प्रश्न करने पर सर्वाधिक ६५ प्रतिशत सूचनादाता नौकरी के पक्ष में थे इसका कारण जानने पर अच्छी आय, सम्मान व आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर मिलना इसका कारण बताया। तत्पश्चात ०५ प्रतिशत सूचनादाता कृषि, ०४ प्रतिशत सूचनादाता परम्परागत व्यवसाय, ०३ प्रतिशत सूचनादाता गैर कृषि, २१ प्रतिशत सूचनादाता स्वंय का व्यवसाय व ०२ प्रतिशत सूचनादाताओं ने अपने बच्चों के लिए अन्य व्यवसाय का चुनाव किया।

तालिका संख्याः-५

मासिक आमदनी

सभी स्रोतों से आय	बारम्बारता	प्रतिशत
४००० तक	१७	१७.०
४००० से ६०००	३२	३२.०
६००० से ८०००	३०	३०.०
८००० से १००००	१३	१३.०
१०००० से ऊपर	०८	८.०
योग	१००	१००.०

परम्परागत व्यवसाय करने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है, सभी स्रोतों से मासिक आमदनी से सम्बन्धित प्रश्न करने पर जो परिणाम सामने आया उसमें से अधिकतर ७६ प्रतिशत सूचनादाता ८००० तक मासिक आय के अन्तर्गत आते हैं। सूचनादाताओं का कहना था कि इतनी कम आय से महंगाई के इस युग में जीविका चलाना काफी मुश्किल है। १३ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिनकी सभी स्रोत से मासिक आय ८००० से ऊपर लेकिन १०००० से कम है। केवल ०८ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जिनकी सभी स्रोतों से मासिक आय १०००० से ऊपर है।

अनुसूचित जातियों के लोग भी व्यवसाय में अब पारम्परिक व्यवसायों की अपेक्षा अन्य व्यवसायों या नौकरी को अधिक महत्व देने लगे हैं। प्रश्नावली के आधार पर पूछे गये प्रश्नों के आधार पर अधिकतर अनुसूचित जाति के लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं। शिक्षा देने के स्तर पर लड़के और लड़की में भेद के प्रश्न पर उनका कहना था कि वर्तमान समय के अनुसार दोनों का शिक्षित होना बहुत जरूरी है। किस स्तर तक बच्चों को शिक्षा देना चाहंगे? पूछने पर अधिकतर का कहना था कि वो चाहते हैं कि उनके बच्चे अधिक से अधिक शिक्षा प्राप्त करें। सूचनादाताओं का कहना था कि उचित व पर्याप्त शिक्षा ग्रहण कर बच्चे प्रतियोगिता के इस युग में स्वंय को ढाल पायेंगे। एक अच्छा व जिम्मेदार इन्सान बन स्वंय के लिए अच्छा व्यवसाय भी चुन सकेंगे।

निष्कर्ष एवं सुझाव : प्रस्तुत शोध और आंकडों से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में परम्परागत व्यवसाय और उसको करने वाले परम्परागत व्यवसायी कठिन दौर से गुजर रहे हैं। व्यक्तिगत और सरकारी स्तर पर यह प्रयास होने चाहिए कि परम्परागत व्यवसाय व उनको करने वाले व्यवसायियों का पुराना गौरव वापस दिलाया जा सके। परम्परागत व्यवसाय को विद्यालयी शिक्षा, संस्कृति व परम्परा से जोड़ इसके संरक्षण के प्रयास होने चाहिए।

सन्दर्भ

१. बिष्ट,शेर सिंह, 'कुमाऊँ हिमालय समाज एवं संस्कृति', अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी,२०११, पृ. २३
२. टम्टा, एम.पी.,समता (समाचार पत्र), अल्मोड़ा, 'शिल्पकारों के आर्थिक विकास की नीति बने', २१ सितम्बर २००५, १-२
३. इग्नू , भारत में समाज, १६६०, पृ. ८
४. Cox, O.C., 'Caste class and race', Monthly Review press, Nework, 1968, pp 60-61
५. Lal, S.K., 'Occupational aspirations of scheduled caste students in Social Change', Journal of the council for social development, New Delhi, vol.5 March-june, 196, p. 26
६. Mukherje, R.K., 'Ancient India', Indian press, Allahabad, 1956, pp. 92-93
७. Mayor, A.C., 'Caste and kinship in central India', University of Callifornia press Angels, 1965, pp. 61-63
८. Paneru, M., 'Changing status of backward communities in rural kumaon', (Unpub.Res.), Kumaon University Nainital, 2004, p. 157
६. बिष्ट, सी., दैनिक जागरण (अल्मोड़ा), ०८/०५/२००६, पृ. १३
१०. टम्टा, एम.पी., पूर्वोक्त, पृ. १-२
११. उईके रामसिंग, 'आरक्षण के लाभार्थी परिवारों की परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण', राधा कमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष-१६, अंक-१, जनवरी-जून, २०१७, पृ. १७५

जनपद-फिरोजाबादः जनसंख्या घनत्व का एक भौगोलिक विश्लेषण

❑ डॉ० नेत्रपाल सिंह
❖ डॉ० संजीव कुमार

जनसंख्या वर्तमान समय में किसी भी प्रदेश अथवा देश के लिए वरदान है या अभिशाप यह प्रथम विचारणीय है। वस्तुतः वर्तमान में ये दोनों ही हैं। किसी देश अथवा प्रदेश में संपूर्ण उपलब्ध संसाधन एवं तकनीकी ज्ञान के सम्मुख विशेषतः उत्तरोत्तर वृद्धिशील जनसंख्या एवं वृहद् व बहुसंदर्शी विषय प्रस्तुत करती है तथा वृद्धिजन्य स्थिति के समाधान के लिए चुनौती प्रस्तुत करती है। जनसंख्या भूगोलवेत्ताओं सहित विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक अन्तरविषयक अध्ययन विद्या रही है। प्रारंभिक काल से ही जनसंख्या वितरण व घनत्व का अध्ययन विभिन्न प्रदेशों के परिप्रेक्ष्य में आकर्षण का विषय रहा है। जनसंख्या घनत्व मानव एवं भूमि के अनुपात को प्रस्तुत करने की एक परिष्कृत विधि है। इस प्रकार घनत्व जनसंख्या के भूमि संसाधनता के संदर्भ में अनुपात को वर्णित करता है जो किसी भी क्षेत्र के ऐतिहासिक तथा सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में फिरोजाबाद जनपद (उ.प्र.) के जनसंख्या घनत्व प्रतिरूपों का भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

जनसंख्या वितरण मानवीय सभ्यता एवं सांस्कृतिक विकास का प्रतिफल रहा है, जिसके कारण सांस्कृतिक विकास में क्षेत्रीय विषमताओं के अनुरूप ही जनसंख्या वितरण में भी अनेक क्षेत्रीय विषमतायें मिलती हैं, जिनके भौतिक एवं सांस्कृतिक कारक अत्यधिक जटिल रहे हैं। जनसंख्या वितरण पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक प्रभाव भूमि एवं जल संसाधन की उपलब्धता सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रभाव महत्वपूर्ण रहे हैं जो वस्तुतः वर्तमान में भी इनके वितरण को प्रभावित कर रहे हैं। वर्तमान समय में प्रायः वे जनबाहुल्य के क्षेत्र हैं, जो मानवीय बसाव तथा सभ्यता के प्राचीन केन्द्र रहे हैं। प्राचीन सभ्यता के केन्द्र नदी घाटियाँ एवं बेसिन प्राचीन काल से ही सघन जनसंख्या के क्षेत्र रहे हैं। अतः जनसंख्या वितरण से मनुष्य के विभिन्न क्षेत्रों में परिस्थितिकीय प्रभाव का बोध होता है। जनसंख्या समस्या विश्व की विकटतम समस्याओं में है जिसका मूलभूत कारण जनसंख्या वितरण में व्यापक असमानता है।[1] इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है, कि जनसंख्या का प्रादेशिक वितरण सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का स्पष्ट प्रतिफल है।[2]

अध्ययन क्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमिः अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद उत्तर प्रदेश राज्य के आगरा मण्डल के अन्तर्गत गंगा, यमुना-दोआब में अवस्थित है, यह आगरा मण्डल का एक नव सृजित जनपद है, जो ५ फरवरी १९८९ को अस्तित्व में आया। जनपद-फिरोजाबाद अकबर महान के शासन काल में आसफाबाद नाम के एक ग्राम के रूप में जाना जाता था। वर्ष-१५६६ में अकबर के नौ रत्नों में से एक राजा टोडरमल देशाटन करते हुऐ इस ग्राम में रात्रि विश्राम करने हेतु रूके थे। ग्राम वासियों द्वारा यथा योग्य सम्मान न प्रदान करने के कारण, सम्राट अकबर ने क्रोधित होकर अपने दरवारी फिरोज ख्वाजा नाम के किन्नर को इस ग्राम को उजाड़कर नवीन गॉव स्थापित करने का हुक्म दिया। अकबर के हुक्म से फिरोज ख्वाजा नाम के किन्नर ने एक नवीन गॉव बसाया। फिरोज ख्वाजा के नाम पर ही पूर्ववर्ती आसफाबाद का नाम फिरोजाबाद पड़ा।

जनपद-फिरोजाबाद २६°५३' उत्तरी अक्षांक्ष से २७°३१' उत्तरी अक्षांश तक, तथा ७८°११' पूर्वी देशान्तर से ७८°५०' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल २३६२ वर्ग किमी० है, जनपद की उत्तरी सीमा का परिसीमन एटा जनपद द्वारा, दक्षिणी तथा पूर्वी सीमा जनपद मैनपुरी द्वारा परिसीमित है। जनपद-फिरोजाबाद की दक्षिणी-पूर्वी सीमा का परिसीमन जनपद-इटावा द्वारा निर्धारित होता है। अध्ययन क्षेत्र का उत्तर से दक्षिणी विस्तार ५८ किमी० तथा पूर्व से पश्चिम का विस्तार ५३ किमी० है। **जनपद-फिरोजाबाद** प्रशासनिक दृष्टि से पॉच तहसीलों फिरोजाबाद, टूण्डला, शिकोहाबाद, जसराना तथा सिरसागंज (वर्ष-२०१५) में स्थित है। जनपद में नौ विकास खण्डों क्रमशः नारखी, फिरोजाबाद, टूण्डला, शिकोहाबाद, अरॉव, मदनपुर,

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल विभाग, जे०एस० विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (उ०प्र०)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल विभाग, ए०के० (पी०जी०) कालेज, शिकोहाबाद (उ०प्र०)

एका, खैरगढ़ एवं जसराना में, आठ नगरीय क्षेत्रों क्रमशः शिकोहाबाद, सिरसागंज, जसराना, फरिहा, टूण्डला, टूण्डला रेलवे स्टेशन, टूण्डला खास तथा फिरोजाबाद नगर निगम; ८० न्याय पंचायतों व ५१० ग्राम पंचायतों ८०६ राजस्व ग्रामों, जिनमें ७६० अधिवासित तथा १६ अनाधिवासित ग्रामों में संगठित किया गया है। वर्ष-२०११ की जनगणना के अनुसार जनपद फिरोजाबाद की कुल जनसंख्या २५००५०३ है, जिनमें १३३३३२४ पुरूष एवं ११६७१७६ स्त्रियाँ हैं। जनपद में १६६७३३४ ग्रामीण क्षेत्र में व ८३३१६६ नगरीय क्षेत्र में जनसंख्या निवास करती है।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन हेतु विभिन्न स्तर की शोध विधियों तथा तकनीकों का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार के ऑकड़े एवं सूचनाओं को आधार बनाया गया है। आधारभूत आंकड़ें भारतीय जनगणना, जनपदीय जनगणना हस्तिपुस्तिका १९८१, १९९१, २००१ एवं २०११ से संकलित किये गये हैं। इसके अलावा जनगणना सीरीज जैसे-आर्थिक तालिका, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पत्रिकायें, जिला सामाजिक-आर्थिक समीक्षा, जनपद गजेटियर, फसलीय एवं खसरा, अभिलेख ग्राम पंचायतों, न्याय पंचायतों, विकास खण्डों, तहसील एवं जिला विकास कार्यालयों के विभिन्न इकाईयों से संकलित किये गये हैं। प्राथमिक आँकडों के लिये सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का निजी विशद सर्वेक्षण किया गया है। जिसके अन्तर्गत न्याय पंचायतों व ग्राम प्रधानों, परिवारों के मुखिया, ग्राम विकास अधिकारियों, स्कूलीय अध्यापकों व अन्य संसाधनों से तैयार की गयी, व्यक्तिगत अनुसूची के माध्यम से शोध अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सूचनाएँ संग्रहित की गयी हैं। शोध अध्ययन् क्षेत्र का आधार मानचित्र सर्वे ऑफ इण्डिया द्वारा स्वीकृति पत्रक के आधार पर तैयार किया गया है।

जनंसख्या घनत्वः जनसंख्या के घनत्व का सामान्य अर्थ, पृथ्वी तल की प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिवासित व्यक्तियों से होता है।[३] दूसरे शब्दों में जनंसख्या घनत्व भूमि और मानव के सामान्य स्थानिक वितरण की अपेक्षा किसी प्रदेश में जनसंख्या की प्रादेशिक विशेषताओं एवं वहाँ के वातावरण से उसके सम्बन्ध को स्पष्ट करने में अधिक सक्षम होता हैं वस्तुतः सभी प्रकार का घनत्व किसी भी क्षेत्र में मानव वितरण की विविधता के ज्ञान में सहायक होता है।[४] जनंसख्या घनत्व किसी भी सम्भावनाओं में तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से जनसंख्या सापेक्ष होता है। यदि किसी सम्भावनाओं के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयों में वृद्धि स्वरूप है तो उस इकाई में घनत्व भी समानुपातिक रूप में वृद्धिशील होगा किन्तु जनंसख्या वृद्धि की असमानता रूप में वृद्धिशील होगा किन्तु जनसंख्या वृद्धि की असमानता विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न घनत्व प्रतिरूपों को परिवर्तित करती है, जो संख्या पुनर्वितरण उभरते प्रतिरूपों की द्योतक है।[५]

इस उद्देश्य की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद में जनसंख्या के गणितीय घनत्व, कायिक घनत्व, ग्रामीण घनत्व, नगरीय घनत्व, कृषि घनत्व तथा पोषण घनत्व का परिकलन किया गया है। किसी क्षेत्र के सम्पूर्ण भू-भाग तथा वहाँ की सम्पूर्ण जनसंख्या के सम्बन्ध प्रति इकाई क्षेत्रफल में निवास करने वाले व्यक्तियों को गणितीय घनत्व कहते हैं। अध्ययन क्षेत्र जनपद फिरोजाबाद का वर्ष-१९७१ में जनसंख्या घनत्व ४३० व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर था, जो वर्ष-१९८१ के दशक में बढकर ५५४ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हो गया। **इस प्रकार वर्ष-१९७१ व १९८१** के दशक में २.४१ प्रतिशत की दर से जनसंख्या घनत्व में वृद्धि अंकित की गयी। वर्ष-१९९१ में अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद का जनसंख्या घनत्व ६४६.०५ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हो गया। इस प्रकार वर्ष-१९८१ और १९९१ के दशक में अध्ययन क्षेत्र के जनंसख्या घनत्व में ३.५१ प्रतिशत की वृद्धि घटित हुई। इस जनसंख्या घनत्व की वृद्धि का प्रमुख कारण अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद में तीव्र औद्योगिक विकास एवं रोजगार के अधिक अवसरों की उपलब्धता के परिणामस्वरूप आस-पास के ग्रामों से जनसंख्या का स्थानान्तरण एवं नगरीय आकर्षण मुख्य रूप से उत्तरदायी कारण रहे हैं। वर्ष-२००१ की जनगणना के अनुसार, अध्ययन क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व ८८१.३५ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष-१९८१ से बढ़ते जनसंख्या घनत्व हेतु अध्ययन क्षेत्र में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के कार्यक्रमों एवं नवाचारों के प्रति ग्रामीण जनसंख्या में जागरूकता का अभाव रूढिवादिता व अन्य सामाजिक, आर्थिक कारक जैसे धर्म, जाति संरचना, भूमि का वितरण, गरीबी, मनोरंजन सुविधाओं का अभाव आदि कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं।

जनपद-फिरोजाबाद मे विकास खण्ड बार जनसंख्या में विषमता ही अवलोकित होती है। वर्ष-१९९१ की जनगणना के अनुसार सर्वाधिक जनंसख्या घनत्व विकास खण्ड फिरोजाबाद का ९८२ व्यक्ति तथा सबसे कम ३७६ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर जसराना विकास खण्ड में पारिलक्षित होता है जबकि वर्ष-२००१ में जनपद-फिरोजाबाद के विकास खण्ड का

घनत्व बढकर ६३६ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हो गया तथा विकास खण्ड के न्याय पंचायत वार जनसंख्या घनत्व में भी प्रादेशिक असमानता ही देखने को मिलती है। वर्ष-२०११ के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व फिरोजाबाद विकास खण्ड की न्याय पंचायत दीदामई में २०५० व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर तथा सबसे कम जनसंख्या घनत्व विकास खण्ड खैरगढ़ की न्याय पंचायत केशपुरा में ३३६.०७ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर देखने को मिलता है। अध्ययन क्षेत्र की न्याय पंचायत दीदामई जनसंख्या घनत्व सर्वाधिक होने का कारण नगरीय क्षेत्र से समीपता मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक है। इसके विपरीत अध्ययन क्षेत्र की न्याय पंचायत केशपुरा में जनसंख्या घनत्व कम होने का कारण भूड मिट्टी के क्षेत्र में अवस्थिति मुख्य रूप से उत्तरदायी है। किसी क्षेत्र विशेष में घनत्व के दो महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। जिनके अनुपात का अध्ययन आधारभूत होता है।

जी०टी० टिवार्था ने जनसंख्या घनत्व के तीन प्रकार प्रस्तुत किये हैं- आंकिक, कायिक, कृषि घनत्व/विभिन्न अध्ययनों के दृष्टिगत जनसंख्या घनत्व के प्रकार एवं जनपद में उनके प्रतिरूप निम्नवत् उल्लेखित किये गये हैं-

आंकिक या गणितीय घनत्वः किसी भी क्षेत्र की कुल जनंसख्या को क्षेत्रफल से विभाजित करने प्रति इकाई घनत्व की गणना निम्नवत की जाती है-

$$\text{आंकिक घनत्व (Da)} = \frac{\text{कुल जनंसख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

तालिका-१

जनपद-फिरोजाबाद में आंकिक घनत्व प्रतिरूप वर्ष-२०११

घनत्व वर्ग	न्याय पंचायतों की संख्या	प्रतिशत
३०० से कम	११	१३.७५
३०० - ४००	२१	२६.२५
४०० - ५००	२३	२८.७५
५०० - ६००	१६	२३.७५
६०० से अधिक	०६	७.५०
कुल जनपद योग	८०	१००.००

स्रोतः-जनपद-सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद-फिरोजाबाद वर्ष-२०११ एवं निजी आंकलन वर्ष-२०१४-१५.

अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद में आंकिक घनत्व की गणना जनपद की कुल ८० न्याय पंचायत इकाईयों के लिए की गयी हैं तथा प्रत्येक घनत्व वर्ग के अन्तर्गत न्याय पंचायत (नगर क्षेत्र सहित) की संख्या का प्रतिशत तालिका-१ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। जनपद की भौगोलिक अवस्थिति से अवगत है कि यमुना नदी व सिरसा नदी का निकटवर्ती सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र उच्च जनसंख्या घनत्व का क्षेत्र है जिसका प्रमुख कारण कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता एवं उर्वरता है। उसके अतिरिक्त जनपद-फिरोजाबाद में नगर निगम फिरोजाबाद व शिकोहाबाद, सिरसागंज, अरॉव, खैरगढ़ व टूण्डला शहरी क्षेत्रों के आस-पास एवं दक्षिण पूर्व में व दक्षिण-पश्चिम की न्याय पालिकाएँ भी उच्च घनत्व प्रतिरूप प्रस्तुत करती हैं, जबकि ऊसर व बीहड़ प्रभावित क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व कम है जो जनपद के पश्चिमी तथा दक्षिणी दोनों क्षेत्र हैं जो तालिका-१ द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

कायिक घनत्वः कायिक घनत्व से तात्पर्य, किसी प्रदेश की कुल जनंसख्या तथा उस प्रदेश के कृषि के अन्तर्गत क्षेत्रफल के मध्य अनुपात से होता है। किसी प्रदेश की जनसंख्या द्वारा भूमि पर बढ़ते जनसंख्या दबाव का ही अभिज्ञान नहीं होता, अपितु विविध घनत्वों जैसे गणितीय घनत्व इत्यादि की तुलना में कायिक घनत्व द्वारा जनसंख्या दबाव के कारणों की अच्छी-अभिव्यक्ति होती है। जनपद में कायिक घनत्व की गणना निम्न सूत्र से की गयी है-

$$\text{कायिक घनत्व (DP)} = \frac{P}{Ca}$$

P = कुल जनंसख्या

Ca= कुल कृषित क्षेत्रफल

इसके आधार पर जनपद-फिरोजाबाद की विकास खण्डवार घनत्व प्रतिरूपों को तालिका २ के द्वारा दर्शाया गया है।

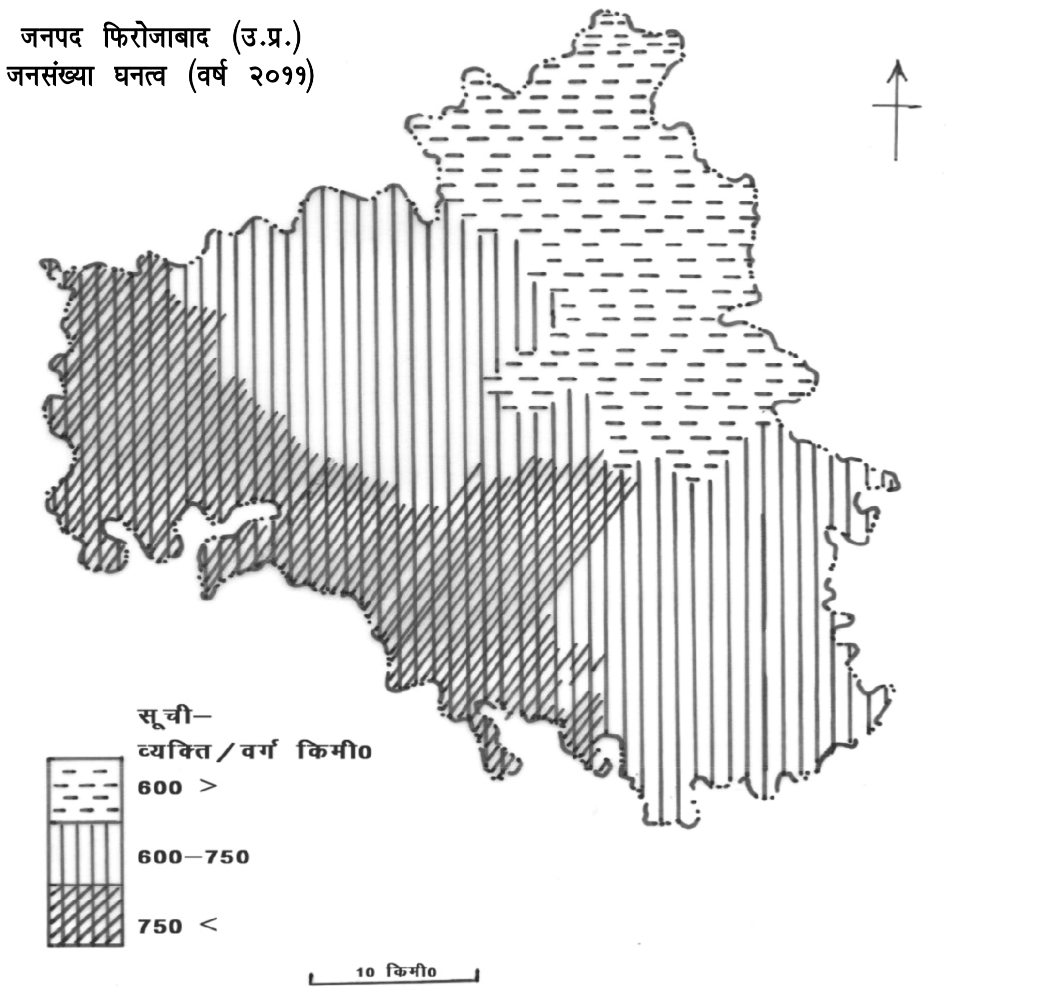

तालिका-२

जनपद-फिरोजाबाद में विकास खण्डवार घनत्व प्रतिरूप वर्ष-२०११

विकास खण्ड	आंकिक घनत्व	कायिक घनत्व	कृषि घनत्व	ग्रामीण घनत्व	नगरीय घनत्व	पोषक घनत्व
नारखी	७६४	८२६	२१६	५७६	-	६८८
फिरोजाबाद	८४५	१२१६	३६६	७४५	१४०५४	६६४
टूण्डला	७३५	७६८	२३६	६४६	५३६३	६३०
एका	५६०	६३६	२०४	५७४	-	५२६
हाथवन्त	६६२	७२८	२०८	५२८	-	५०८
जसराना	५६२	६७६	१७३	५०१	१०७८	४६२
शिकोहाबाद	७८१	८३६	२२३	५७८	१०५२६	६६५
अरॉव	७१७	७५६	१८३	५५८	-	६१६
मदनपुर	६४७	६८६	२३२	६०६	-	६४८
कुल जनपद	६६५	७६५०	२०७५	७१०	१७६८	५७१३

स्रोतः जनपद-फिरोजाबाद, जनगणना अभिलेख वर्श-२०११ एवं निजी आंकलन वर्ष-२०१४-१५।

कृषि घनत्वः कृषि घनत्व से तात्पर्य, अध्ययन क्षेत्र के कृषि के अन्तर्गत क्षेत्रफल तथा कृषि कार्य में संलग्न जनसंख्या के मध्य अनुपात से होता है। अध्ययन क्षेत्र के कृषि घनत्व की गणना निम्न सूत्र की सहायता से की गयी है-

कृषि घनत्व $(Da)=\frac{AP}{AC}$

Ap = कृषिगत जनसंख्या (Agricultural Population)

Ac = कृषि क्षेत्र (Cultivated Area)

जनपद-फिरोजाबाद जैसे कृषि प्रधान क्षेत्र के लिए इस प्रकार के घनत्व का आंकलन महत्वपूर्ण होता है जो तालिका-१.२ के द्वारा स्पष्ट है।

ग्रामीण घनत्वः कुल ग्रामीण जनसंख्या एवं कुल ग्रामीण भौगोलिक क्षेत्रफल के अनुपात को ग्रामीण घनत्व कहते हैं, इस घनत्व का आंकलन ग्रामीण जनसंख्या के ग्रामीण क्षेत्र के अनुपात के रूप में किया जाता है-

ग्रामीण घनत्व $(Dr)=\frac{RP}{RA}$

Rp = ग्रामीण जनसंख्या (Rural Population)

Ra = ग्रामीण क्षेत्र (Rural Area)

अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्डवार क्षेत्रीय प्रतिरूपों को तालिका २ के द्वारा परिलक्षित किया गया है।

नगरीय घनत्वः नगरीय क्षेत्रफल एवं नगरों में अधिवासित जनसंख्या के मध्य अन्तर सम्बन्ध को जनंसख्या का नगरीय घनत्व कहते हैं।[६]

नगरीय घनत्व $(Dp)=\frac{UP}{UA}$

Up = नगरीय जनसंख्या (Urban Population)

Ua = नगरीय क्षेत्रफल (Urban Area)

जनपद के नगरीय घनत्व प्रतिरूपों को विकास खण्डवार तालिका- २ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

पोषण घनत्वः पोषण घनत्व से न केवल किसी प्रदेश की भूमि भार वहन क्षमता का अभिज्ञान होता है, अपितु पोषण घनत्व से प्रति इकाई भूमि से कितनी ग्रामीण जनसंख्या का भरण पोषण सुनिश्चित होता है, का भी ज्ञान होता है। इस प्रकार किसी प्रदेश की कृषि भूमि की प्रति इकाई से आहार प्राप्त करने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के अनुपात को पोषण घनत्व कहते हैं। पोषण घनत्व का परिकलन निम्नसूत्र की सहायता से किया गया है-

पोषण घनत्व $(Dn)=\frac{P}{Afc}$

P = कृषिगत जनसंख्या (Agricultural Population)

Afc = खाद्यान्न (Area Under Food Crops)

जनपद-फिरोजाबाद की विकास खण्डवार विभिन्न घनत्व (व्यक्ति/किमी^{2}) प्रतिरूपों की स्थिति तालिका २ के द्वारा दर्शायी गयी है।

सन्दर्भ

१. त्रिपाठी आर०डी०, 'जनांककीय एवं जनसंख्या अध्ययन'-वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, १९९९, पृ०-३२

२. Verma, B.C., 'Demographice Imbalances on the Bundelkhand Region', N.G.J.I. pt.-3-4, Varansi, p.-263, 1979.

३. दुबे के०के० एण्ड सिंह एम०वी०, 'जनसंख्या भूगोल', रावत पब्लिकेशन, जयपुर,१९९४, पृ०-७६-७७

४. Clark, J.I., Population Geography oxford, New yourk, 1973, p.-29

५. चॉदना आर०सी०, जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९९९, पृ०-८०

६. गोयल एम०पी० एवं डॉ० सक्सैना आर०के० 'जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल', जयश्री प्रकाशन, मुजफ्फर नगर, १९९३, पृ०-९९

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

ग्रामीण विकास एवं कृषि आधुनिकीकरण

❑ डॉ. उदयवीर सिंह
❖ डॉ. बन्दना वर्मा

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। कृषि, गांवों का प्रधान व्यवसाय है। कृषि के विकास के बिना ग्रामीण विकास असम्भव है। ग्रामीण विकास एवं आधुनिकीकरण दोनों ही विकासोन्मुख परिवर्तन की सामरजिक प्रक्रियाएँ हैं, इसलिए ग्रामीण विकास के लिए ये आवश्यक है कि कृषि का आधुनिकीकरण किया जाए। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास में कृषि आधुनिकीकरण के योगदान का आँकलन करना है। इस अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वय ने उ.प्र. के जनपद-इटावा के बढ़पुरा विकास खण्ड के १० ग्रामों के १०० किसानों का सौद्देश्य निदर्शन पद्धति से चयन किया है। तत्पश्चात् अवलोकन करते हुए सभी सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष साक्षात्कार सम्पन्न करते हुए प्राथमिक तथ्य संकलित किए गए हैं तत्पश्चात् सांख्यिकी पद्धति अपनाते हुए तथ्यों के विश्लेषण करते हुए तार्किक निष्कर्ष प्राप्त किए हैं।

भारत गांवों में बसता है इसलिए जब तक गांवों का विकास नहीं होगा तब तक सशक्त एवं समृद्ध भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। ये सब तभी सम्भव है जब भारतीय ग्रामीणों द्वारा कृषि के तरीकों में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग हो। भारतीय समाज में कृषि लम्बे अरसे तक परम्परागत रही है। परम्परा और आधुनिकीकरण दोनों विरोधी अवधारणायें हैं। कृषि के सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि कृषि सभी संस्कृतियों की संस्कृति है अर्थात् कृषि के विकास के बगैर ग्रामीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती और ग्रामीण विकास तथा आधुनिकीकरण दोनों ही विकासोन्मुखी परिवर्तन की प्रक्रियायें हैं इसलिए ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि का आधुनिकीकरण किया जाय। यह प्रक्रिया मानसिक दृष्टिकोण परिवर्तन से वांछित तकनीक की ओर अग्रसर होने का संकेत करती है।

प्रश्न उठता है कि कौन-से परिवर्तन होने, कौन-सी स्थिति पैदा होने या कौन-सी प्रक्रिया प्रारम्भ होने पर उसे हम आधुनिकीकरण कहेंगे। साधारणतः आधुनिकीकरण के आदर्श पाश्चात्य देश एवं उनमें होने वाले परिवर्तन ही रहे हैं। जैसा कि विभिन्न विद्वानों ने आधुनिकीकरण के विभिन्न सूचक बताये हैं जो इस प्रकार हैं- डेनियल लर्नर[१] के अनुसार तदनुभूति, गतिशीलता, साक्षरता और संचार सम्बद्धता आदि को आधुनिकीकरण का सूचक बताया है। एलमण्ड और कौलमैन[२] ने राजनीतिक दृष्टिकोण से आधुनिक समाज के लिए रुचि संधियोजन, रुचि एकत्रीकरण, संस्थागत राजनीति व्यवस्था आदि को बताया है। डेविड मैक्लीलैण्ड[३] ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आधुनिक व्यक्ति के लिये 'स्व-आस्था' और उपलब्धि उन्मेष प्रमुख गुणों से युक्त होना बताया है। अन्य विद्वानों में कृषि भूगोलविद् सिंह जसवीर[४], तिवारी आर. सी.[५] हुसैन माजिद[६] के आनुभविक अध यन महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय कृषि; परम्परा व आधुनिकता के दो ध्रुवों के बीच खड़ी है : एक ओर अतीत का आकर्षण तो दूसरी ओर प्रगति की अनिवार्यता। परन्तु आज का किसान आधुनिकता से दूर नहीं है। कृषि क्षेत्र में नई-नई तकनीकी का भरपूर प्रयोग हो रहा है। कृषि आधुनिकता के क्षेत्र में संचार क्रान्ति ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्ययन के उद्देश्य यों तो प्रत्येक शोध का कोई न कोई मौलिक उद्देश्य अवश्य होता है। मेरे शोध का मौलिक उद्देश्य ग्रामीण विकास में कृषित आधुनिकीकरण के योगदान का आँकलन करना है सम्प्रति कुछ अन्य पूरक उद्देश्य निम्नांकित हैं-

१. सूचनादाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि ज्ञात करना।
२. उन सूचकों की जानकारी करना जो कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आधुनिकीकरण के रूप में प्रभावी हैं।
३. 'आधुनिकीकरण की प्रक्रिया' के प्रति सूचनादाताओं की प्रतिक्रिया (मनोवृत्तियाँ) जानना।
४. सुझाव प्रस्तुत करना ताकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को और अधिक क्रियाशील बनाया जा सके।

परीक्षणार्थ परिकल्पनाएँ : प्रस्तावित शोध हेतु निम्नांकित परिकल्पनाएँ परीक्षणार्थ निर्मित की गयी हैं-

❑ एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष-समाजशास्त्र विभाग, के.के.पी.जी. कालेज, इटावा (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, एस.एस. मेमोरियल महाविद्यालय, ताखा, इटावा (उ.प्र.)

१. 'ग्रामीण विकास' कृषि विकास पर निर्भर है।
२. अध्ययन क्षेत्र के गांवों में कृषि की परम्परागत तकनीक परिवर्तित हुई है।
३. कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आधुनिकीकरण हुआ है।
४. कृषि तकनीक के सन्दर्भ में किसानों के दृष्टिकोण परिवर्तित हुए हैं।

विधि तन्त्र : ग्रामीण विकास एवं कृषित आधुनिकीकरण का अध्ययन करने के लिए उत्तर-प्रदेश के इटावा जनपद के बढ़पुरा विकास खण्ड से चयनित १० ग्रामों के १०० किसानों (प्रत्येक गाँव से १०-१० किसानों का चयन) उद्देश्यपरक निदर्शन पद्धति से करके यह जानने का प्रयास किया है कि क्या अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि विकास 'आधुनिकीकरण की देन' है तथा ग्रामीण विकास में आधुनिकीकरण की भूमिका का स्वरूप क्या है? वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परीक्षण कर निष्कर्ष स्थापित किये गये हैं जिसके लिए एक पूर्व परीक्षित साक्षात्कार अनुसूची निर्मित की गयी और इसका परीक्षण 'पायलट सर्वे' द्वारा किया गया है। तत्पश्चात् प्राथमिक तथ्य चयनित सूचनादाताओं से आमने-सामने की प्रत्यक्ष स्थिति में व्यक्तिगत साक्षात्कार सम्पन्न कर अवलोकन पद्धति अपनाते हुए प्राथमिक/क्षेत्रीय तथ्य संकलित कर तथ्य विश्लेषण में सांख्यिकीय पद्धति अपनायी गयी है।

तथ्य संकलन : विश्लेषण तथा तत्सम्बन्धित निर्वचन-

तालिका नम्बर-१
निदर्शितों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

जाति	सवर्ण ३४ (३४.००)	पिछड़ी ४६ (४६.००)	अन्य १७ (१७.००)	योग १०० (१००.००)
आयु वर्ग	२० से कम १७ (१७.००)	२०-३५ ३४ (३४.००)	३५ से ऊपर ४६ (४६.००)	योग १०० (१००.००)
शैक्षिक स्तर	निरक्षर २७ (२७.००)	साक्षर २५ (२५.००)	शिक्षित ४८ (४८.००)	योग १०० (१००.००)
व्यवसाय	किसान ४४ (४४.००)	श्रमिक ३२ (३२.००)	नौकरीपेशा २४ (२४.००)	योग १०० (१००.००)
आय वर्ग	निम्न २६ (२६.००)	मध्य ३५ (३५.००)	उच्च ३६ (३६.००)	योग १०० (१००.००)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सूचनादाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में विभिन्न कारकों को लिया है जिसमें जातिगत आधार पर विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि चयनित सूचनादाताओं में ३४ (३४ प्रतिशत) सवर्ण, ४६ (४६ प्रतिशत) पिछड़ी जाति, १७ (१७ प्रतिशत) अनुसूचित जाति वर्ग के किसानों से साक्षात्कार किया। आयु वर्ग के आधार पर १०० किसानों में २० वर्ष से कम १७ (१७ प्रतिशत) सूचनादाता, २० से ३५ वर्ष के ३४ (३४ प्रतिशत) तथा ३५ वर्ष से अधिक ४६ (४६ प्रतिशत) सूचनादाताओं से जानकारी प्राप्त की। शैक्षिक स्तर में २७ (२७ प्रतिशत) निरक्षर, २५ (२५ प्रतिशत) साक्षर, ४८ (४८ प्रतिशत) शिक्षित व्यक्तियों से सम्पर्क किया। व्यवसायिक संरचना के आधार पर ४४ (४४ प्रतिशत) किसान, ३२ (३२ प्रतिशत) श्रमिक, २४ (२४ प्रतिशत) नौकरीपेशा आदि तथा आय वर्ग के आधार पर २६ (२६ प्रतिशत) निम्न वर्ग, ३५ (३५ प्रतिशत) मध्यम वर्ग तथा ३६ (३६ प्रतिशत) उच्च वर्ग के सूचनादाताओं से साक्षात्कार किया गया।

तालिका नम्बर-२
कृषि आधुनिकीकरण के सूचकों के प्रति स्वीकारोक्तियाँ

कृषि आधुनिकीकरण के सूचक	सूचकों के प्रति स्वीकारोक्तियाँ				
	हाँ	उदासीन	नहीं	अनुत्तरित	योग
बढ़ती साक्षरता/शिक्षा	९५(९५.००)	५(५.००)	--	--	१००(१००.००)
यंत्रीकरण व बदलती तकनीक	८८(८८.००)	१०(१०.००)	--	२(२.००)	१००(१००.००)
उत्पादन में वृद्धि व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि	८९(८९.००)	११(११.००)	--	--	१००(१००.००)
संचार साधनों में वृद्धि	८०(८०.००)	११(११.००)	६(६.००)	३(३.००)	१००(१००.००)
कृषि तकनीक के प्रति बदलता दृष्टिकोण	८८(८८.००)	७(७.००)	५(५.००)	--	१००(१००.००)
कार्यबचाव एवं जोखिम उठाने की क्षमता में वृद्धि	७६(७६.००)	१५(१५.००)	९(९.००)	--	१००(१००.००)
धन के प्रति नवीन दृष्टिकोण	९३(९३.००)	४(४.००)	२(२.००)	१(१.००)	१००(१००.००)

प्राप्त तथ्यों के सूचकों के प्रति स्वीकारोक्तियों का विश्लेषण : कृषि आधुनिकीकरण की दशा ज्ञात करने के लिए उपरोक्त सूचकों के प्रति स्वीकारोक्तियों का आंकलन किया गया है। बढ़ती साक्षरता एवं शिक्षा के प्रति सूचनादाताओं ने ९५ प्रतिशत सहमति प्रदान की है कि शिक्षा का प्रचार प्रसार तीव्रगति से बढ़ रहा है जिससे आधुनिकीकरण में परिवर्तन हो रहा है। यंत्रीकरण के प्रयोग में ८८ प्रतिशत लोगों ने सहमति प्रदान की है। उत्पादन में वृद्धि व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए ८९ प्रतिशत सूचनादाताओं ने हाँ तथा शेष ने उदासीन अथवा नहीं में उत्तर दिया। आधुनिकीकरण से संचार साधनों में भी वृद्धि हुई है इसके लिए भी ८० प्रतिशत लोगों ने हाँ में उत्तर दिया है। दृष्टिकोण परिवर्तन के लिए भी १०० सूचनादाताओं में से ८८ (८८ प्रतिशत) सूचनादाताओं ने सकारात्मक जबाब दिया है। मानव की कार्य शैली तथा जोखिम लेने की क्षमता में वृद्धि हुई है इसके लिए भी ७६ (७६ प्रतिशत) सूचनादाताओं ने सहमति दर्शायी है। इसके अतिरिक्त धन के प्रति भी मानव का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है, जिसमें ९३ (९३ प्रतिशत) सूचनादाता सहमत हुए हैं। उक्त तालिका से परिकल्पना नम्बर-५ सत्य एवं सार्थक सिद्ध हुई है।

तालिका नम्बर-३
विभिन्न निर्दिष्ट संदर्भों के प्रति सूचनादाताओं के दृष्टिकोण (अभिमत)

विवरण	सूचनादाताओं की मनोवृत्तियाँ			योग
	पक्ष में	उदासीन	विपक्ष में	
ग्रामीण विकास कृषि पर निर्भर है।	७७ (७७.००)	१३ (१३.००)	१० (१०.००)	१०० (१००.००)
गाँवों में कृषि की परम्परागत तकनीक बदली है।	९० (९०.००)	०७ (०७.००)	०३ (०३.००)	१०० (१००.००)
कृषि में आधुनिकीकरण हुआ है।	९१ (९१.००)	०७ (०७.००)	०२ (०२.००)	१०० (१००.००)
आधुनिकीकरण विकास की कुँजी है।	८० (८०.००)	०७ (०७.००)	१३ (१३.००)	१०० (१००.००)
कृषि तकनीक के सम्बन्ध में किसानों के दृष्टिकोण बदले हैं।	९२ (९२.००)	०५ (०५.००)	०३ (०३.००)	१०० (१००.००)

उपर्युक्त तालिका नम्बर-३ के आँकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि सूचनादाताओं की मनोवृत्तियाँ- 'ग्रामीण विकास कृषि पर निर्भर है।' के पक्ष में ७७ (७७.००), उदासीन १३ (१३.००) तथा विपक्ष में १० (१०.००) है। 'गाँवों में कृषि की परम्परागत तकनीक बदली है।' इसके पक्ष में ९० (९०.००), उदासीन ०७ (०७.००) तथा विपक्ष में ०३ (०३.००) सूचनादाता हैं। 'कृषि में आधुनिकीकरण हुआ है।' इस मत के पक्ष में ९१ (९१.००), उदासीन ०७ (०७.००) तथा मात्र ०२ (०२.००) सूचनादाताओं ने विपक्ष में विचार प्रकट किया है। 'आधुनिकीकरण विकास की कुँजी है।' इस मत के पक्ष में ८० (८०.००), उदासीन ०७ (०७.००) तथा १३ (१३.००) सूचनादाताओं ने विपक्ष में राय प्रदान की है। 'कृषि तकनीक के सम्बन्ध में किसानों के दृष्टिकोण बदले हैं।' इस सम्बन्ध में ९२ (९२.००) पक्ष में, ०५ (०५.००) उदासीन तथा केवल ०३ (०३.००) ने विपक्ष में राय व्यक्त की है। उक्त तालिका के आँकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि परिकल्पना नम्बर-१, २, ३, ४ एवं ५ सत्य एवं सार्थक सिद्ध हुई हैं।

शोधार्थी ने सभी १०० सूचनादाताओं से प्राप्त तथ्यों से असंगत/आकस्मिकता गुणांक (Q) की गणना की भी है ताकि यह जाना जा सके कि आधुनिकीकरण तथा ग्रामीण विकास परस्पर घनिष्ठ रूप से निबद्ध तथा विकासोन्मुखी प्रक्रियाएँ हैं अथवा नहीं हैं?

सामाजिक प्रक्रियाएँ	सूचनादाताओं की आवृत्तियाँ		योग
	सहमत	असहमत	
आधुनिकीकरण	९१	०९	१००.००
ग्रामीण विकास	८०	२०	१००.००
	१७१	२९	--

असंगत/आकस्मिकता गुणांक $(Q) = \frac{AD - BC}{AD + BC} = \frac{91x20 - 9x80}{91x20 + 9x80} = \frac{1820 - 720}{1820 + 720} = \frac{1100}{2540} = 0.43$

चूंकि Q का गणनात्मक मान ±1 के मध्य तथा धनात्मक प्राप्त हुआ है अतः स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण तथा ग्रामीण विकास घनिष्ठ रूप से निबद्ध प्रक्रियाएँ हैं। सुस्पष्ट है कि कृषित आधुनिकीकरण से ग्रामीण विकास हो रहा है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : शोध अध्येता ने अध्ययन के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त किए हैं-

१. 'ग्रामीण विकास' कृषि विकास पर निर्भर है।
२. अध्ययनार्थ चुने गांवों में कृषि की परम्परागत तकनीक आधुनिकता की ओर परिवर्तित हुई है।
३. कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत आधुनिकीकरण हुआ है।
४. 'आधुनिकीकरण' विकास की कुंजी है।
५. कृषि तकनीक के सन्दर्भ में किसानों के दृष्टिकोण परिवर्तित हुए हैं।

ग्रामीण विकास हेतु कृषि का आधुनिकीकरण आवश्यक है, अतः कृषि के आधुनिकीकरण हेतु निम्नलिखित सुझाव समीचीन है-

१. कृषि को आधुनिकीकृत करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रान्तर्गत प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाए।
२. कृषि वैज्ञानिकों द्वारा जैविक कृषि एवं प्रमाणित बीजों आधुनिक तकनीक, उर्वरकों, कीटनाशक पैस्टीसाइड्स आदि के प्रयोग पर कार्यशालाएँ प्रायोजित की जायें।
३. ग्रामीणों के दृष्टिकोण परिवर्तित करने के लिए कृषि क्षेत्रान्तर्गत यँात्रिक उपयोग, रासायनिक खादों, कीटनाशकों के प्रयोग कर 'मॉडल कृषि' आदि करने को प्रोत्साहित किया जाए।
४. किसानों की मनोवृत्तियाँ बदलने के लिए किसान गोष्ठियाँ, चौपाल व कृषि दर्शन कार्यक्रम, किसान मेला एवं कृषि प्रदर्शनियों आदि का आयोजन किया जाए।

सन्दर्भ

१. डेनियल लर्नर; मॉडर्नाइजेशन : सोशल आसपेक्टस इन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क। उद्धृत : एम.एस. गोरे, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली, १९६७, पृ. ३४
२. जी.एल. एलमण्ड एवं जे.एस. कॉलमैन- दी पालिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरियाज- प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन, न्यूजर्सी, १९६०, पृ. ८७-८८
३. डेविड मैक्लीलैण्ड- दी एचीविंग सोसाइटी, वान मास्ट्रैन्ड कम्पनी प्रिंसटन, न्यूजर्सी, १९६१, पृ. १०७
४. सिंह जसवीर, एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, टाटा, मैक ग्रा कम्पनी, न्यू दिल्ली, २००४, पृ. २२५
५. तिवारी आर.सी., कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, २००४, पृ. ७६
६. हुसैन माजिद, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, २०००, पृ. १८१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

तीन तलाक पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय महाविद्यालयी युवतियों के विचार

❑ डॉ. रन्जू राठौर

प्रस्तुत शोध पत्र में मुस्लिम समाज में प्रचलित तलाक के विभिन्न तरीकों विशेषकर तलाक-ए-बिद्दत (तीन तलाक) तथा सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित कर देने से मुस्लिम महिलाओं और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में महाविद्यालय स्तर पर शिक्षा प्राप्त कर रही मुस्लिम युवतियों के विचार जानने का प्रयास किया गया है। इस दूरगामी प्रभाव वाले फैसले का न केवल मुस्लिम समाज पर सीधा असर पड़ेगा अपितु यह फैसला मुस्लिम समाज के साथ-साथ अन्य समाजों को भी सुधारों के लिए अग्रसर करेगा।

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा मुस्लिम समाज में १४०० वर्षों से प्रचलित एक बार में तीन तलाक यानि 'तलाक-ए-बिद्दत' के चलन को असंवैधानिक घोषित किया गया है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार तलाक-ए-बिद्दत इस्लाम का अभिन्न हिस्सा नहीं है, इसलिए इसे सविधान के अनुच्छेद २५ के अनुसार दी गयी धार्मिक आजादी मे संरक्षण नहीं मिल सकता।[1] तलाक देने के अन्य स्वरूप मुस्लिम समाज मे यथावत विद्यमान रहेंगे जिसमें तलाक-ए-एहसन एवं तलाक -ए-हसन आते है जिसमें नियमित अंतराल पर तीन बार तलाक कहकर पति अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है तलाक की यह विधि कानूनन वैध एवं मान्य है। इस दूरगामी प्रभाव वाले फैसले का न केवल मुस्लिम समाज पर सीधा असर पड़ेगा अपितु यह फैसला मुस्लिम समाज के साथ-साथ अन्य समाजों को भी सुधारों के लिए अग्रसर करेगा। देश में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। लिंग अनुपात में असंतुलन से लेकर महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों से महिलाओं की स्थिति को समझा जा सकता है। तीन तालक के विरोध में सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला मुस्लिम महिलाओं के साथ हो रहे अन्याय के सिलसिले को रोकने के साथ ही समाज को गति देने का मार्ग प्रशस्त करता है।

तीन तलाक की प्रथा को समाप्त करने वाला भारत पहला देश नहीं है विश्व के अन्य देशों विशेषकर इस्लाम धर्म को मानने वाले देशों ने बहुत समय पहले ही तीन तलाक पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। पकिस्तान दुनिया का दूसरा सबसे अधिक मुस्लिम आबादी वाला देश है। पाकिस्तान ने एक साथ तीन तालक पर १९६१ में ही प्रतिबन्ध लगा दिया था। श्रीलंका मे तलाक देने के समय के मध्य पति-पत्नी के बीच समझौते के लिए समयदेने का प्रावधान है। मिस्र तीन तलाक पर प्रतिबंध लगाने वाला दुनिया का पहला देश बना। १९२९ में मिस्र में अदालत ने घोषणा की कि तीन तलाक कहने पर भी उसे एक बार कहना ही माना जायेगा। सर्वाधिक मुस्लिम जनसंख्या वाले देश इंडोनेशिया में तलाक केवल कोर्ट के माध्यम से ही दिया जा सकता है। ईरान में शिया कानून के अंतर्गत तीन तलाक को मान्यता प्राप्त नहीं है। सूडान, तुर्की, ट्यूनीशिया, सऊदी अरब, जार्डन, सीरिया, लीविया आदि देशो में तीन तलाक की प्रथा प्रतिबंधित है जबकि अल्जीरिया, साइप्रस, इराक, मलेशिया आदि देशों में तलाक अदालत के माध्यम से ही दिया जा सकता है।[2]

प्रस्तुत शोध पत्र में मुस्लिम समाज में प्रचलित तलाक के विभिन्न तरीकों विशेषकर तलाक-ए-बिद्दत (तीन तलाक) तथा सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित कर देने से मुस्लिम महिलाओं और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में मुस्लिम शिक्षित युवतियों के विचार जानने का प्रयास किया गया है।

शोधपत्र में वीरांगना रानी अवन्तीबाई लोधी राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली में स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रायें उत्तरदाता हैं। महाविद्यालय एक परास्नातक महिला महाविद्यालय है जिसमें २६३४ छात्राएं अध्ययनरत हैं। छात्राए ग्रामीण एवं नगरीय दोनों ही परिवेशों से आती हैं। छात्राएं महाविद्यालय में कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय से जुड़े विषयो का अध्ययन कर रही है। महाविद्यालय में मुस्लिम छात्राओं की संख्या लगभग ३३३ है। समस्त मुस्लिम छात्राओं को समग्र रूप से मानकर सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के द्वारा ५० छात्राओं का चयन किया गया है। अनुसंधान प्रविधि के रूप में साक्षात्कार अनुसूची तथा सूचना के स्रोत के रूप में प्राथमिक

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, वी.आर.ए.एल. राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

एवं द्वितीयक दोनों ही स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

शोध पत्र में उत्तरदाता छात्राओं में से १६ (३२ प्रतिशत) छात्राएं ग्रामीण परिवेश से आती हैं जबकि ३४ (६८प्रतिशत) छात्राएं नगरीय परिवेश से हैं। १२ (२४ प्रतिशत) छात्राएं विज्ञान संकाय से ३० (६०प्रतिशत) छात्राएं कला संकाय से तथा ८ (१६प्रतिशत) छात्राएं वाणिज्य संकाय में अध्ययनरत हैं।

परम्परागत रूप से इस्लामिक नियमों के अनुसार पुरूष अपनी मर्जी से विवाह के समझौते को समाप्त कर सकता है अर्थात् पुरूष अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है। एक पुरूष अपनी पत्नी को तीन तरीकों से तलाक दे सकता है जिसमें तलाक-ए-हसन, तलाक-ए-एहसन तथा तलाक-उल-बिद्दत शामिल है। तलाक के इन तीन प्रकारों के अतिरिक्त शरीयत एक्ट १९३७ के अनुसार एक मुस्लिम पुरूष तीन अन्य तरीकों से भी अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है जिसमें इला, जिहर तथा लियान आते हैं।[३]

ऐसे में छात्राओं से सर्वप्रथम यह पूछा गया कि इस्लामी शरीयत के अनुसार पुरूष अपनी पत्नी को कितने तरीकों से तलाक दे सकता है? ९ (१८ प्रतिशत) छात्राओं ने बताया कि पुरूष १ तरीके से तलाक दे सकता है जबकि ३ (६प्रतिशत) छात्राओं के अनुसार पुरूष दो तरीकों से तलाक दे सकता है। २ (४ प्रतिशत) ने ५ तरीकों से तलाक तथा १९ (३८ प्रतिशत) छात्राओं ने पुरूषों द्वारा तीन तरीकों से तलाक देने की बात का समर्थन किया। १७ (३४ प्रतिशत) छात्राएं नहीं जानतीं कि शरीयत के अनुसार मुस्लिम पुरूष कितने तरीकों से तलाक दे सकता है अर्थात् उत्तरदाताओं से यह पूछने पर कि इस्लाम द्वारा मान्य पुरूषों द्वारा दिये जाने वाले तलाक के तरीकों में क्या तीन तलाक की प्रथा उनमें से एक है छात्राओं द्वारा दिये गये उत्तर सारिणी संख्या १ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या १

इस्लाम धर्म में पुरूषों द्वारा दिये जाने वाले तलाक में से तीन तलाक की प्रथा एक है।

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२५	५०
नहीं	१५	३०
पता नहीं	१०	२०
योग	५०	१००

सारणी से प्रदर्शित है कि ५० प्रतिशत उत्तरदाता तीन तलाक की प्रथा को इस्लामी शरीयत द्वारा बताये गये तलाक के तरीकों में से एक मानती हैं जबकि ३० प्रशित छात्राए मानती हैं कि तीन तलाक उनमें से एक नहीं है। २० प्रतिशत छात्राएं अपने मत को लेकर स्पष्ट नहीं हैं इसलिए उन्होंने पता नहीं का विकल्प चुना है।

छात्राओं से यह पूछे जाने पर कि क्या तीन तलाक की प्रथा शरीयत के अनुसार है? छात्राओं द्वारा दिये गये उत्तर सारणी संख्या २ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या २

तीन तलाक की प्रथा शरीयत के अनुसार

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३५	७०
नहीं	१०	२०
पता नहीं	५	१०
योग	५०	१००

सारिणी से प्रदर्शित होता है कि अधिकांश छात्राएं (७० प्रतिशत) तीन तलाक की प्रथा को शरीयत के अनुसार मानती हैं। २० प्रतिशत छात्राएं इसे शरीयत के नियमों के अनुसार नही मानती हैं। १०प्रतिशत छात्राएं अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित करती है।

छात्राओं से यह पूछे जाने पर कि क्या मुस्लिम महिलाओं को भी तीन तलाक देने का अधिकार है? छात्राओं के उत्तर सारणी संख्या ३ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या ३

मुस्लिम महिलाओं की तीन तलाक देने का अधिकार

विकल्प	संख्या	प्रशित
हाँ	२४	४८
नहीं	२०	४०
पता नहीं	६	१२
योग	५०	१००

सारणी से प्रदर्शित है कि लगभग आधी छात्राओं (४८ प्रतिशत) के अनुसार महिलाओं को भी तीन तलाक देने का अधिकार है। ४० प्रतिशत छात्राओं के अनुसार महिलाओं को तीन तलाक देने का अधिकार नहीं है जबकि १२ प्रतिशत छात्राओं ने पता नही का विकल्प चुना।

छात्राओं से यह पूछे जाने पर कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक को गैर कानूनी घोषित करने के बाद क्या यह प्रथा जायज है? छात्राओं के उत्तर सारणी संख्या ४ में प्रदर्शित है।

सारणी संख्या ४
सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक को गैर कानूनी बताने के बाद तीन तलाक की प्रथा जायज

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१६	३२
नहीं	२२	४४
पता नहीं	१२	२४
योग	५०	१००

सारणी संख्या ४ से प्रदर्शित होता है कि ३२ प्रतिशत छात्राएं सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाद आज भी तीन तलाक को जायज मानती हैं। जबकि ४४ प्रतिशत छात्राए इसे जायज नही मानती जबकि २४ प्रतिशत छात्राए किसी भी निर्णय की स्थिति में नहीं हैं।

१४०० साल पुरानी तीन तलाक की प्रथा को सुप्रीम कोर्ट द्वारा असवैधानिक घोषित किये जाने पर मुस्लिम समाज में युवतियाँ तीन तलाक के विषय में क्या विचार रखती हैं कि तीन तलाक की प्रथा समाप्त हो जाये या उसमें कुछ परिवर्तन हो। इसके उत्तर सारणी संख्या ५ में प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या ५
तीन तलाक की प्रथा में परिवर्तन

तीन तलाक की प्रथा	संख्या	प्रशित
समाप्त होनी चाहिए	१७	३४
स्वरूप में परिवर्तन होना चाहिए	१०	२०
महिलाओं को भी तीन तलाक का हक मिले	२३	४६
योग	५०	१००

सर्वाधिक ४६ प्रतिशत महिलाएं भी तीन तलाक देने का अधिकार चाहती हैं। जबकि ३४ प्रतिशत छात्राओं के अनुसार तीन तलाक की प्रथा समाप्त होनी चाहिए। २० प्रतिशत छात्राओं के अनुसार तीन तलाक समाप्त भले ही नहीं हो परन्तु उसके स्वरूप में परिवर्तन अवश्य होना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित करने के पश्चात इस प्रथा को पूर्णतया समाप्त करने हेतु क्या कानून बनाया जाना चाहिए जिसमें तीन तलाक देने वाले पुरूष के खिलाफ दण्ड का प्रावधान हो।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व के २२ देशों जिनमें पाकिस्तान एवं बांग्लादेश भी सम्मिलित है, में तीन तलाक प्रतिबंधित है। ऐसे में छात्राओं से यह प्रश्न करना आवश्यक है कि क्या हमारे देश में तीन तलाक की प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाया जाना चाहिए छात्राओं के उत्तर सारणी संख्या ६ में प्रदर्शित है।

सारणी संख्या ६
तीन तलाक की प्रथा समाप्त करने के लिए कानून निर्माण

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३४	६८
नहीं	१०	२०
पता नहीं	६	१२
योग	५०	१००

अधिकतर छात्राएं (६८ प्रतिशत) तीन तलाक को समाप्त करने के लिए इसके खिलाफ कानून बनाये जाने का समर्थन करती है। २० प्रतिशत छात्राए कानून बनाने जाने की आवश्यकता महसूस नहीं करती है। १२ प्रतिशत छात्राओं ने पता नहीं का विकल्प चुना यानि वे असमंजस की स्थिति में है।

छात्राओं से यह पूछे जाने पर कि तीन तलाक शरीयत से जुड़ा मुद्दा है या महिला अधिकार से क्योंकि पति द्वारा तीन बार तलाक बोले जाने पर इसमें दोनों परिवार के दो मध्यस्थों द्वारा पति पत्नी के बीच सुलह कराने की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। इसलिए एक साथ तीन तलाक तत्काल और खत्म न किया जाने वाला तलाक होता है। इस प्रकार पति स्वेच्छा चारिता से कभी भी शादी के बंधन को तोड़ सकता है। इसलिए तलाक का यह तरीका संविधान के अनुच्छेद-१४ में मिले बराबरी के हक का उल्लंघन है।[४] छात्राओं के उत्तर सारणी सख्या ७ में प्रदर्शित है।

सारणी सख्या ७
तलाक शरीयत/महिला अधिकार से जुड़ा मुद्दा है

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३५	७०
नहीं	१५	३०
योग	५०	१००

अधिकतर छात्राएं (७० प्रतिशत) तीन तलाक के मुद्दे को शरीयत से जुड़ा बताती हैं जबकि ३० प्रतिशत छात्राएं इसे महिला अधिकारो से जुड़ा मानती हैं कि तीन तलाक महिलाओं के समान अधिकारों का हनन है।

आधुनिक युग में जब स्त्री पुरूष समानता के लिए लोकतांत्रिक सरकारें प्रयास कर रही हैं ऐसे में तीन तलाक के असंवैधानिक घोषित होने एवं इसके खिलाफ कानून पारित होने से क्या महिलाएं सश्क्त होंगी? इसके उत्तर सारणी संख्या ८ द्वारा प्रदर्शित हैं।

सारणी संख्या ८

तलाक के विरूद्ध कानून बनने से महिलाओं का सशक्तीकरण

विकल्प	संख्या	प्रशित
हाँ	३४	७८
नहीं	१०	२०
पता नही	६	१२
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से प्रदर्शित होता है कि अधिकतर (७८ प्रतिशत) छात्राओं का मानना है कि तीन तलाक के खिलाफ कानून पारित होगा तो महिलाएं सशक्त होंगी जबकि २० प्रतिशत छात्राएं पता नहीं का विकल्प चुनती हैं १२ प्रतिशत छात्राओं को लगता है कि महिलाओं की स्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं होगा।

तीन तलाक की प्रथा के असंवैधानिक घोषित होने से केवल इस्लाम धर्म का पालन करने वाले लोगों की स्थिति में ही परिवर्तन नहीं आयेगा बल्कि समाज में रहने वाले अन्य लोगों के जीवन भी परिवर्तित होंगे। साथ ही क्या पुरूष प्रधान सोच वाले समाज में परिवर्तन होगा

छात्राओं से यह पूछे जाने पर कि तीन तलाक की प्रथा समाप्त होने से समाज में क्या कोई परिवर्तन आयेगा? छात्राओं के प्रत्युत्तर सारणी संख्या द्वारा प्रदर्शित है।

सारणी संख्या ९

तीन तलाक की समाप्ति से समाज में परिवर्तन

विकल्प	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३६	७८
नहीं	५	१०
पता नहीं	६	१२
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी से प्रदर्शित है कि अधिकतर (७८ प्रतिशत) छात्राए मानती हैं कि तीन तलाक की प्रथा समाप्त होने से समाज में परिवर्तन होगा जबकि १० प्रतिशत छात्राएं ऐसा नहीं मानती अर्थात् समाज में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा २२ प्रतिशत छात्राएं पता नहीं का विकल्प चुनकर असमंजस की स्थिति में है।

निष्कर्षः सम्पूर्ण शोध पत्र के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राओं के शिक्षित होने के बाद भी शरीयत कानूनों की पूर्ण व सही जानकारी नहीं है जो जानकारी है वह सुनी सुनाई बातों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म में विवाह एवं तलाक के जो भी तरीके उपलब्ध हैं उनके विषय में छात्राओं के ज्ञान का स्तर भी निम्न है। इसलिए छात्राओं ने तलाक के विभिन्न विकल्पों में अलग-अलग विकल्प चुने हैं। महिलाएं तीन तलाक की प्रथा से मुक्ति चाहती हैं परन्तु यदि अवसर मिले तो स्वयं भी पति को तीन तलाक देने का अधिकार चाहती हैं। अधिकतर छात्राएं तीन तलाक की प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाने की बात का समर्थन करती हैं। अधिकतर छात्राएं मानती हैं कि तीन तलाक की प्रथा शरीयत से जुड़ी है। महिला अधिकारों एवं महिला सशक्तीकरण से जुड़े मुद्दों में छात्राएं भेद करने में असमर्थ हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि तीन तलाक प्रथा समाप्त होने से छात्राएँ आशावान भी हैं कि वे उनका सशक्तीकरण भी होगा तथा समाज में परिवर्तन भी आयेगा तथा महिलाओं की स्थिति भी बदलेगी अततः कहा जा सकता है कि तार्किक एवं वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राए इस वैज्ञानिक युग में परम्परावादी सोच रखती हैं। परन्तु उन्हें समाज में परिवर्तन की उम्मीद भी है।

सन्दर्भ

१. दैनिक जागरण, बरेली, २३ अगस्त, २०१७, पृ. १

२. हिन्दुस्तान बरेली, २३ अगस्त २०१७, पृ. २

३. आहूजा राम, 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था', रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. १५३-१५५

४. दैनिक जागरण बरेली, २३ अगस्त, २०१७, पृ. १

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

नगरीय महिलाओं में स्वास्थ्य-शिक्षा एवं उपचार सम्बन्धी संचेतना : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ रेनू गुप्ता

हमारे समाज में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षाकृत निम्न दर्जा प्राप्त है, इसी प्रकार उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण व देखरेख जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रखा जाता है। इसका विपरीत प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। महिलाओं के स्वास्थ्य के बारे में जानने की कोशिश करें तो उनके लिए सेहत तभी एक मुद्दा बनती है, जब वह गर्भवती होती हैं या बच्चों को जन्म देती हैं। इसी कारण से महिलाओं के स्वास्थ्य को समझने के लिए स्वास्थ्य-शिक्षा पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। स्वास्थ्य-शिक्षा से आशय लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरुक करना है, जिससे उनके लिए क्या स्वास्थ्यप्रद व क्या हानिकारक है तथा वे स्वस्थ जीवन जीने के लिए क्या उपाय करें? इसलिए प्रस्तुत आलेख में नगरीय महिलाओं में स्वास्थ्य-शिक्षा एवं उपचार सम्बन्धी संचेतना के बारे में जानने का प्रयास किया गया है।

समाजरूपी संरचना में नारी और पुरुष दो वर्ग हैं। भारत एक पुरुष प्रधान समाज है। यहाँ नारी हमेशा से ही उपेक्षा का शिकार रही है, खासतौर से अपने स्वास्थ्य के प्रति। जब एक महिला स्वस्थ होती है तो उसकी स्वास्थ्य स्थिति का सीधा प्रभाव उसके परिवार के सदस्यों पर पड़ता है। यदि घर की महिला स्वस्थ है तो उसके बच्चे भी स्वस्थ होंगे और परिवार के अन्य सदस्यों पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

एक स्वस्थ महिला ही अपने परिवार की देखभाल, पोषण, जरुरतों की पूर्ति अच्छे ढंग से कर सकती है। अच्छा स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। इससे व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से भी स्वयं को अच्छा महसूस करता है। फिर भी महिला स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि महिलाओं पर पत्नी, माँ, बहन, बेटी के रूप में जीवन में अनेक जिम्मेदारियों के निर्वाहन का दायित्व होता है। स्वस्थ महिला, स्वस्थ संतान को जन्म देकर स्वस्थ व खुशहाल भावी-पीढ़ी का निर्माण करती है।

स्वास्थ्य और शिक्षा जीवन स्तर की गुणवत्ता के दो ऐसे सुदृढ़ आधार स्तम्भ हैं, जो व्यक्ति को अपनी पहचान के साथ-साथ स्वस्थ जीवन जीने की कला सिखाते हैं, ताकि एक स्वस्थ एवं सुगठित सामाजिक संरचना का गठन हो सके। लोगों को स्वास्थ्य के सभी पहलुओं के बारे में शिक्षित करना स्वास्थ्य-शिक्षा कहलाती है।

स्वास्थ्य-शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह ऐसा बर्ताव करता है जो स्वास्थ्य की उन्नति, रखरखाव और पुनर्प्राप्ति में सहायक हो।[१] स्वास्थ्य-शिक्षा के द्वारा जनसाधारण को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि उसके लिए क्या स्वास्थ्यप्रद है और क्या हानिप्रद। स्वास्थ्य शिक्षक ही व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर स्वास्थ्य-शिक्षा द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यक नियमों का उन्हें ज्ञान कराता है।

सम्पूर्ण विश्व में स्वास्थ्य के प्रति सजगता और जागृति के उद्देश्य से हर साल ७ अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' मनाया जाता है, परन्तु स्वास्थ्य दिवस मनाने की सार्थकता तभी है, जब समाज की केन्द्रीय इकाई नारी और बच्चे स्वस्थ हों।[२] क्योंकि गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीने वाले लोगों में बहुत बड़ी संख्या बच्चों एवं महिलाओं की है। यहाँ अभी भी पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में कुपोषण की संख्या करोड़ों में है और लगभग एक लाख बच्चे कुपोषण के कारण प्रतिमाह मौत का शिकार हो जाते हैं। इस दिशा में सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों के बावजूद स्वास्थ्य-शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के आधारभूत ढांचे को देशव्यापी स्तर पर मूर्त रूप देना अभी अधूरा सपना प्रतीत होता है।

भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा का लोकव्यापीकरण एक चुनौती भरा, किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है, क्योंकि भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी सेवाओं का जो ढांचा उपलब्ध है वह गुणवत्ता की शर्त पर खरा नहीं उतरता। आजादी के इतने साल बीत जाने के बाद भी भारत में निरक्षरता व घटता लिंगानुपात एवं मौजूदा स्वास्थ्य परिदृश्य एक बड़ी चिन्ताजनक स्थिति की ओर संकेत करता है।

सम्पूर्ण भारत की यदि तस्वीर देखें तो भारत में घटता लिंगानुपात भी चिन्ता का विषय है। हमारे समाज में लैंगिक

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

भेदभाव के कारण महिलाओं में सबसे बाद में खाने की परम्परा सदियों से चली आ रही है, इसका प्रभाव यह पड़ता है कि प्रजनन आयु की ८० प्रतिशत महिलाएँ विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त हो जाती हैं। लैंगिक भेदभाव से महिला का शारीरिक स्वास्थ्य तो प्रभावित होता ही है, इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। लैंगिक भेदभाव समाज में महिलाओं के प्रति बढ़ते अत्याचार का द्योतक है। भारत में आजादी के बाद की प्रथम जनगणना में १९५१ में प्रति हजार पुरुषों में स्त्रियों की संख्या ९७२ थी, वहीं २००१ में यह घटकर ९३३ हो गई। फिर २०११ में कुछ बढ़ोत्तरी देखने को मिली, जिसमें स्त्रियों की संख्या प्रति हजार पुरुषों पर ९४३ हो गई।[३]

हमारे समाज में आज भी अनेकों महिलाएँ अपनी सेहत को लेकर उपेक्षा की शिकार हैं। स्वास्थ्य केन्द्रों का उपलब्ध न होना या महिला डाक्टर का न होना भी सेहत के लिए प्रतिकूल परिस्थिति पैदा करता है। अधिकांश घर-परिवार में मिलने वाले संस्कारों में भी महिला को बर्दाश्त करने की शिक्षा दी जाती है। अतएव कभी-कभी महिलाएँ डाक्टर के पास तभी जाती हैं, जब स्थिति बर्दाश्त से बाहर हो जाती है।[४]

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-३ की रिपोर्ट के अनुसार ''भारत में सिर्फ ५० प्रतिशत महिलाओं से ही उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी फैसलों में राय ली जाती है।''[५] महिलाएँ अपने स्वास्थ्य को लेकर हमेशा लापरवाही करती हैं, इस कारण उनमें खून की कमी भी एक गम्भीर समस्या बनकर उभरी है। खून की कमी या रक्ताल्पता महिलाओं की उन चंद बीमारियों में से है जिनकी वजह से उनकी कार्यक्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। महिलाओं में यह बीमारी खतरनाक तरीके से बढ़ रही है।

यह तथ्य पूर्णरूप से सत्य है कि महिलाएँ ही पूरे परिवार तथा समाज का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ हैं। अतः उसे पूरी तरह से स्वस्थ रखना समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

प्रमुख अध्ययन- हमारे देश में महिलाओं के स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक अध्ययन हुए हैं, परन्तु महिलाओं में स्वास्थ्य-शिक्षा से सम्बन्धित शोध कार्यों की न्यूनता है। सम्बन्धित विषय पर कुछ प्रमुख अध्ययन निम्न हैं-

राकेश्वरी प्रसाद[६] ने अपने अध्ययन में यह पाया कि किसी भी देश की सामाजिक स्वास्थ्य की स्थिति इसमें निवास करने वाले महिला/पुरुष के लिंगानुपात, शिशु-मृत्युदर, मातृ-मृत्युदर तथा जीवन प्रत्याशा से जानी जा सकती है।

शुभंकर बनर्जी[७] ने अपने अध्ययन में महिला कुपोषण के बारे में स्पष्ट किया है कि तमाम सामाजिक विकास के बावजूद भारत में ऐसी करोड़ों महिलाएँ हैं, जिन्हें अपनी सामाजिक, आर्थिक असमर्थताओं से उपजी निर्धनता के कारण मजबूर होकर कुपोषित रह जाना पड़ता है।

श्रीमती किरन बाला[८] ने अपने अध्ययन में बताया कि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी अत्यधिक समस्याएँ हैं तथा वे स्वयं के प्रति भी जागरूक नहीं हैं। स्वास्थ्य की देखभाल के सम्बन्ध में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है।

आशा शर्मा[९] ने अपने अध्ययन में यह बताया कि मानव जीवन को यदि सहज, सरल, सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण बनाना है तो सूचना तकनीक के इस क्रान्तिकारी युग में सबके लिए स्वास्थ्य और शिक्षा की संकल्पना को मूर्त रूप देने के सार्थक प्रयास करने होंगे।

मीरा मिश्र[१०] ने अपने अध्ययन में बताया है कि भारत की अधिकतर महिलाओं की लम्बाई और वजन कम होता है और उनमें खून की कमी होती है। परिणामतः वे कमजोर बच्चों को जन्म देती हैं और स्वयं भी कुपोषण का शिकार हो जाती हैं।

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन के कुछ सामान्य उद्देश्य निरूपित किए गये हैं जो निम्नवत् हैं :-

१. महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरुकता का अध्ययन करना।
२. महिलाओं में विभिन्न रोगों के प्रति जागरुकता का अध्ययन करना।
३. स्वास्थ्य से सम्बन्धित आधुनिक एवं परम्परागत उपचारों में सामंजस्य का अध्ययन करना।
४. महिलाओं में रोगों के प्रति हो रहे भेदभाव की जानकारी प्राप्त करना।
५. महिलाओं में रोगों के प्रति उपचारात्मक दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
६. एड्स रोग के सम्बन्ध में महिलाओं का दृष्टिकोण जानना।

शोध प्रारूप- प्रस्तुत अध्ययन का संदर्भित क्षेत्र चित्रकूटधाम मण्डल के बाँदा जिले की 'नगर पालिका परिषद' है। बाँदा नगर पालिका २८ वार्डों में विभक्त है। अध्ययन के लिए प्रत्येक वार्ड से १० उत्तरदात्रियों का चयन 'सुविधापूर्ण निदर्शन' पद्धति के द्वारा किया गया है। अध्ययन में अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना को अपनाया गया है। इस प्रकार कुल २८० इकाइयाँ तथ्य संकलन का आधार बनीं। अध्ययन में साक्षात्कार अनुसूची व अवलोकन के माध्यम से प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया गया है एवं द्वितीयक तथ्यों हेतु शासकीय प्रतिवेदन, इन्टरनेट, पत्र-पत्रिकाओं आदि का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ– अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नानुसार हैं

सारणी संख्या-०१

उत्तरदात्रियों में स्वास्थ्य के प्रति संचेतना

स्वास्थ्य के प्रति संचेतना	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१८२	६५
नहीं	९८	३५
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी स्पष्ट करती है ६५ प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने कहा कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहती हैं एवं ३५ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ अपने स्वास्थ्य के प्रति ध्यान नहीं देती हैं। अतः तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि नगरीय महिलाएँ अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहती हैं।

सारणी संख्या-०२

बीमार पड़ने की दशा में किए गये उपाय

उपाय	आवृत्ति	प्रतिशत
अस्पताल जाती हैं।	११७	४१.७६
घर पर ही दवा मंगा लेती हैं।	८३	२९.६४
घरेलू उपचार करते हैं।	४४	१५.७१
अन्य उपाय	३६	१२.८६
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ४१.७६ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ बीमार पड़ने पर अस्पताल जाती हैं २९.६४ प्रतिशत घर पर ही दवा मंगा लेती हैं १५.७१ प्रतिशत घरेलू उपचार की कोशिश करती हैं एवं १२.८६ प्रतिशत अन्य उपाय अपनाती हैं। अतः तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक महिलाएँ बीमार होने पर अस्पताल जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता बढ़ रही है।

सारणी संख्या-०३

उत्तरदात्रियों का चिकित्सा पद्धति में विश्वास

चिकित्सा पद्धति में विश्वास	आवृत्ति	प्रतिशत
एलोपैथी	१०४	३७.१४
आयुर्वेद	७८	२७.८६
होम्योपैथी	२६	०९.२९
झाडफूंक	४९	१७.५१
उपर्युक्त सभी	२३	०८.२१
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ३७.१४ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ एलोपैथी पर विश्वास करती हैं, २७.८६ प्रतिशत आयुर्वेद पर, ९.२९ प्रतिशत होम्योपैथी में, १७.५१ प्रतिशत झाडफूंक पर विश्वास करती हैं एवं ८.२१ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ उपर्युक्त सभी पद्धतियों पर विश्वास करती हैं। अतः तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सबसे अधिक उत्तरदात्रियाँ एलोपैथ चिकित्सा पद्धति पर विश्वास करती हैं।

सारणी संख्या-०४

उत्तरदात्रियों में हाथ, पैर, कमर में दर्द के कारण

दर्द के कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
काम की अधिकता	९६	३४.२८
शारीरिक कमजोरी	७१	२५.३६
खान-पान में असन्तुलन	४७	१६.७९
कैल्शियम की कमी	४३	१५.३६
अन्य कारण	२३	०८.२१
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ३४.२८ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ काम की अधिकता को, २५.३६ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ शारीरिक कमजोरी को, १६.७९ प्रतिशत खान-पान में असन्तुलन को, १५.३६ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ कैल्शियम की कमी को एवं ८.२१ प्रतिशत अन्य कारणों को हाथ, पैर, कमर दर्द का कारण मानती हैं। स्पष्ट है कि हाथ, पैर व कमर में दर्द का कारण काम की अधिकता मानने वाली उत्तरदात्रियों का प्रतिशत सबसे अधिक है।

सारणी संख्या-०५

हाथ, पैर, कमर दर्द के इलाज का विवरण

इलाज कराने का विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
अस्पताल जाती हैं।	८९	३१.७९
घर पर ही दवा मंगाती हैं।	२९	१०.३६
खान-पान में सन्तुलन बनाती हैं।	१२	०४.२९
बच्चों से हाथ, पैर व कमर दबवाती हैं	७१	२५.३६
सिकाई करती हैं।	३२	११.४३
कैल्शियम की गोलियाँ लेती हैं।	२६	०९.२९
अन्य उपाय	२१	०७.५०
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हाथ, पैर, कमर दर्द के इलाज के लिये ३१.७९ प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ अस्पताल जाती हैं, १०.३६ प्रतिशत घर पर ही दवा मंगाती हैं, ४.२९ प्रतिशत खान-पान में सन्तुलन बनाती हैं, २५.३६ प्रतिशत बच्चों से हाथ, पैर व कमर दबवाती हैं, ९.२९ प्रतिशत कैल्शियम की गोलियाँ लेती हैं एवं ७.५० प्रतिशत अन्य उपाय करती हैं। स्पष्ट है कि हाथ, पैर, कमर दर्द के इलाज के लिए अस्पताल जाने वाली उत्तरदात्रियों का प्रतिशत सबसे अधिक है।

सारणी संख्या-०६

मासिक-धर्म के बारे में लड़कियों से चर्चा

मासिक धर्म की चर्चा	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१३३	४७.५०
नहीं	१४७	५२.५०
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ४७.५० प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि वे मासिक धर्म के सम्बन्ध में लड़कियों से चर्चा करती है, जबकि ५२.५० प्रतिशत ने माना कि वे इस सम्बन्ध में चर्चा नहीं करती हैं। स्पष्ट है कि मासिक धर्म के बारे में लड़कियों से चर्चा न करने वाली उत्तरदात्रियों का प्रतिशत अधिक है, क्योंकि अभी भी हमारे समाज में मासिक धर्म के बारे में बात करना अच्छा नहीं माना जाता है।

सारणी संख्या-०७

उत्तरदात्रियों में एड्स रोग के बारे में जानकारी

एड्स रोग की जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२७०	९६.४३
नहीं	१०	०३.५७
योग	२८०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ९६.४३ प्रतिशत उत्तरदात्रियों को एड्स के बारे में जानकारी है, जबकि ३.५७ प्रतिशत उत्तरदात्रियों को इसके बारे में जानकारी नहीं है। अतः स्पष्ट है कि एड्स के बारे में जानकारी होने वाली उत्तरदात्रियों का प्रतिशत अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाएँ अब एड्स रोग के सम्बन्ध में जागरुक हो रही हैं।

सारणी संख्या-०८

एड्स फैलने के माध्यम की जानकारी

एड्स फैलने का माध्यम	आवृत्ति	प्रतिशत
असुरक्षित यौन सम्बन्ध से	२७	१०.००
संक्रमित रक्त संक्रमण से	२४	०८.८९
संक्रमित माता से शिशुओं में संक्रमण	१२	०४.४४
संक्रमित सीरिंज का उपयोग करने से	२६	०९.६३
उपर्युक्त सभी	१८१	६७.०४
योग	२७०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि १० प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने कहा कि एड्स फैलने का कारण असुरक्षित यौन सम्बन्ध है ८.८९ प्रतिशत संक्रमित रक्त संक्रमण से, ४.४४ प्रतिशत का कहना है कि संक्रमित माता से शिशुओं में संक्रमण फैलता है, जबकि ९.६३ प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि संक्रमित सीरिंज के उपयोग करने से एड्स फैलता है। ६७.०४ प्रतिशत ने माना कि उपर्युक्त सभी कारणों से एड्स फैलता है। अतः तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ऐसी उत्तरदात्रियों का प्रतिशत सबसे अधिक है, जिन्होंने एड्स फैलने का माध्यम उपर्युक्त सभी कारणों को बताया है।

निष्कर्ष : निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बाँदा नगर की महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता बढ़ी है। वे अपने स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण तथा देखभाल आदि के मामले में काफी सजग रहने लगी हैं। महिलाएं अब स्वास्थ्य-शिक्षा के विषय में भी जागरुक हो रही हैं। स्वास्थ्य और शिक्षा एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित है। शिक्षा के स्तर में धीरे-धीरे बढ़ोत्तरी हुई है। अब महिलाएं रूढ़िवादी परम्पराओं और अन्धविश्वासों को छोड़कर अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग हो रही हैं।

अध्ययन के दौरान यह तथ्य सामने आये कि महिलाएं उपचार के लिए एलोपैथ चिकित्सा पद्धति में अधिक विश्वास करती हैं तथा बीमार पड़ने पर अस्पताल जाती हैं। वे अब रोग व रोगों के कारणों को भी जानने लगी हैं। महिलाओं में स्त्रीजनित रोगों के बारे में जागरुकता बढ़ रही है। लेकिन मासिक-धर्म जैसे विषय पर अभी भी बात करना अच्छा नहीं समझती हैं। महिलाओं में एड्स रोग एवं उसके कारणों की पर्याप्त जानकारी देखने को मिली है। अतः कहा जा सकता है कि नगरीय महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति संचेतना बढ़ी है, जो एक बेहतर समाज के लिए अच्छा संकेत है।

संदर्भ

१. https://him.wikipedia.org/wiki./ स्वास्थ्य-शिक्षा

२. विश्व स्वास्थ्य संगठन 'द वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट' २०१६ जिनेवा, डब्ल्यू०एच०ओ० २०१६

३. सेन्सस इण्डिया, २०११

४. दैनिक आज, कानपुर संस्करण, २० जून, २००४, पृ० ८

५. 'राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-३, २००५-०६' की रिपोर्ट

६. प्रसाद, राकेश्वरी, 'नारी के स्वास्थ्य पर मंडराता खतरा', कुरुक्षेत्र, वर्ष-५४ अंक-१२, अक्टूबर, २००८, पृ० ३६-३८

७. बनर्जी, शुभंकर, 'महिला कुपोषण : एक राष्ट्रीय समस्या', कुरुक्षेत्र, वर्ष-५१, अंक-२ दिसम्बर २००५, पृ० ३६-३८

८. बाला, किरन, 'ग्रामीण महिलाओं का स्वास्थ्य' राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष-१६ अंक-१, जनवरी-जून, २०१४, पृ० १५७-१६०

९. शर्मा, आशा, 'बेहतर जीवन का आधार स्वास्थ्य और शिक्षा', कुरुक्षेत्र, फरवरी २००३, नई दिल्ली, पृ० २४-२७

१०. मिश्र, मीरा, 'कुपोषण की रोकथाम : महिला स्वास्थ्य की भूमिका', योजना, वर्ष-६० अंक-२, फरवरी, २०१६, नई दिल्ली, पृ० ४०-४२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

प्रधानमन्त्री रोजगार योजनाओं से प्रदत्त ऋणों के सापेक्ष होने वाले लाभों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ० राकेश कुमार यादव

देश में ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगारी के उन्मूलन हेतु स्वतंत्रोपरांत अनेकानेक योजनाएं लागू की गई हैं। भारत सरकार द्वारा १५ अगस्त १९९३ को तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा युवाओं को रोजगार प्रदान करने के लिए ''प्रधानमंत्री रोजगार योजना'' नाम से एक नई योजना की घोषणा की गई। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी शिक्षित बेरोजगारों को लघु उद्योगों की स्थापना हेतु ऋण और अनुदान देकर स्थायी रोजगार प्रदान किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश के जनपद फिरोजाबाद के अंतर्गत इस योजना की स्थिति, योगदान एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

यह निर्विवाद सत्य है कि आज के समय में योजना चाहे कोई भी क्यों न हो (वित्तीय तथा प्रशिक्षण संस्था) सभी में दोष अवश्य होते हैं। जिसके कारण योजनान्तर्गत लाभान्वित बेरोजगार युवकों को भी रोजगार प्रष्ठिान (इकाई) के आगत-निर्गत के विश्लेषण के पश्चात् मूल्य एवं आगम के आधार पर उस इकाई की लाभ की सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। लाभ की यह सीमा स्थायी घटक जैसे-लागत, मूल्य, माँग व पूर्ति एवं मितव्ययिता तथा अन्य अस्थायी घटक जैसे-प्रतियोगिता विक्रय लागत एवं प्रतिसार मूल्य दशा आदि पर आधारित होती है। लाभ की यह मात्रा पूर्णतया स्थिति सापेक्ष होती है क्योंकि प्रत्येक इकाई को समय-समय पर अनेक प्रकार की परिवर्तनशील परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तथा इन परिवर्तनशील दशाओं में उपर्युक्त घटकों तथा प्रभावी स्तर तक परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रसंग में प्रोफेसर हॉवे का कथन उल्लेखनीय है कि ''किसी भी रोजगार प्रतिष्ठान इकाई के लाभ की मात्रा अथवा उत्पत्ति का अवशेष जो कि भूमि, श्रम तथा पूँजी के प्रतिफल के भुगतान करने के उपरान्त अवशिष्ट रहता है, प्रबन्ध अथवा एकीकरण का प्रतिफलन होकर उस जोखिम और उत्तरदायित्व का प्रतिफल होता है, जिसे कि इकाई संचालक वहन करता है।''[1] लाभ की सीमा के प्रसंग में सर्वश्री नाइट द्वारा सर्वप्रथम यह विचार प्रस्तुत किया गया कि ''उपर्युक्त घटक सापेक्ष परिवर्तन, जो कि लाभ के कारण हैं, यदि इनका पूर्वानुमान लगाया जा सके तो लाभ के उत्पन्न होने की सम्भावना समाप्त हो जाएगी। अतः उपर्युक्त परिवर्तन आगामी समय में लाभ की मात्रा को प्रभावित कर सकगें।[2] सैद्धान्तिक विवेचन के आधार पर प्रोफेसर नाइट द्वारा प्रस्तुत लाभ की सीमा-निर्धारण सम्बन्धी व्याख्या इस तथ्य की पुष्टि करती है कि लाभ, प्रतिष्ठान के साहसी को उसके अनिश्चितता प्रधान जोखिम उठाने का पुरस्कार है। अतः लाभ का निर्धारण उस स्थान पर होता है जहाँ अनिश्चितता उठाने की माँग, कीमत तथा पूर्ति की कीमत समान हो। इस दृष्टिकोण से सर्वेक्षित इकाईयों के अनुभवगम्य अध्ययन के आधार पर आगामी तालिकाओं में विभिन्न लाभ-निष्कर्षों को विश्लेषित किया गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन हेतु सुहागनगरी के रूप में प्रसिद्ध उ.प्र. के फीरोजाबाद जनपद का चयन किया गया है। अध्ययन शिक्षित बेरोजगारी उन्मूलन तथा शिक्षित बेरोजगारी की सामाजिक, आर्थिक दशाओं पर प्रधानमंत्री रोजगार योजना से होने वाले लाभों की भूमिका पर आधारित है। क्योंकि प्रार्थना पत्रों के प्रेषण, लाभार्थियों के चयन की प्रक्रिया तथा उन्हें प्रशिक्षण देना जिला उद्योग केन्द्रों का होता है। अतः सार्थकता का प्रारंभिक स्तर पर लाभार्थी का चयन व्यापक प्रचार-प्रसार, आवेदन पत्र प्राप्त कर महाप्रबंधक जिला उद्योग केन्द्र की अध्यक्षता में गठित टास्क फोर्स समिति द्वारा विभिन्न जातियों की शैक्षिक योग्यता अर्थात् साक्षरता के आधार पर २८५ व्यक्तियों का चयन किया गया है। प्रधानमंत्री रोजगार योजना के संकल्पनात्मक स्वरूप तथा क्रियात्मकता के अंतर्गत प्रस्तुत अध्ययन में इस कार्यक्रम की सार्थकता का मापन योजना के निमित लाभों के लिए लाभांवित जातियों को सापेक्ष मासिक लाभ, शैक्षिक स्तर पर मासिक लाभ, इकाइयों के सापेक्ष मासिक लाभों की सीमायें, बचत एवं परिकलन तथा कठिनाइयाँ शीर्षकों पर आधारित है।

मासिक लाभ की सीमा एवं जाति : रोजगार प्रतिष्ठानों द्वारा लाभान्वितों को प्राप्त होने वाली लाभ की सीमा लाभान्वितों

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, ए०के० (पी०जी०) कालेज शिकोहाबाद फिरोजाबाद (उ.प्र.)

के जाति स्तर से भी प्रभावित होती है, क्योंकि अनुसूचित जाति के लाभान्वितों की तुलना में उच्च जाति के लाभान्वितों द्वारा कच्चा माल तथा प्रतिष्ठान में प्रयुक्त उपकरणों को आसानी से सुलभ कराया जा सकता है, क्योंकि उसके कार्यालय एवं बाजारू सम्बन्ध अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ट होते हैं। इस विश्लेषण का आंकिक विवेचन तालिका-१ में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-१ः लाभान्वितों की जाति सापेक्ष मासिक लाभ की सीमा (रूपयों में)

लाभान्वित की जाति	लाभान्वितों को होने वाले मासिक लाभ की सीमा (रूपया में) संख्या (प्रतिशत)					
	५०० रू० से कम	५००-१०००	१०००-१५००	१५००-२०००	२००० से अधिक	कुल योग
अनुसूचित जाति	३०(३२.६१) (४७.६२)	२३(२५.००) (३४.८५)	२६(३१.५२) (४०.२८)	१०(१०.८७) (१६.६५)	-(००.००) (००.००)	६२(१००.००) (३२.२८)
पिछ़डी जाति	१६(१७.६८) (२५.४०)	३०(३३.७१) (४५.४५)	२८(३१.४६) (३८.८६)	१४(१५.७३) (२३.७३)	०१(०१.१२) (०४.००)	८६(१००.००) (३१.२३)
सवर्ण जाति	११(११.६६) (१७.४६)	१०(१०.८६) (१५.१५)	१२(०३.०४) (१६.६७)	३५(३८.०४) (५६.३२)	२४(२६.१०) (६६.००)	६२(१००.००) (३२.२८)
मुस्लिम जाति	०६(५०.००) (०६.५२)	०३(२५.००) (०४.५५)	०३(२५.००) (०४.१६)	..(००.००) (००.००)	..(००.००) (००.००)	१२(१००.००) (०४.२१)
योग	६३(२२.१०) (१००.००)	६६(२३.१६) (१००.००)	७२(२५.२६) (१००.००)	५६(२०.७०) (१००.००)	२५(०८.७७) (१००.००)	२८५(१००.००) (१००.००)

प्रसंगाधीन प्रस्तुत तालिका-१ में लाभान्वितों को रोजगार प्रतिष्ठानों से होने वाले मासिक लाभ का जाति सापेक्ष विश्लेषण किया गया है। कुल २८५ लाभान्वितों के अध्ययन में ५०० रू० मासिक से कम लाभ अर्जित करने वाले ६३(२३.१६ प्रतिशत) लाभान्वित हैं, ५०० से १००० रू० मासिक लाभ लेने वाले ६६(२२.१० प्रतिशत) लाभान्वित पाए गए हैं, १००० से १५०० रू० मासिक लाभ लेने वाले ७२ (२५.२६ प्रतिशत) लाभान्वित हैं, १५००-२००० रू० मासिक लाभ लेने वाले ५६(२०.७१ प्रतिशत) लाभान्वित हैं, २००० से अधिक मासिक लाभ लेने वाले २५(८.७७ प्रतिशत) लाभान्वित पाए गए हैं। लाभान्वितों का जाति सापेक्ष विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति के ६२ लाभान्वितों में सर्वाधिक ३०(३२.६१ प्रतिशत) लाभान्वित हैं जो ५०० रू० से कम लाभ अर्जित कर रहे हैं, पिछड़ी जाति के ८६ लाभान्वितों में सर्वाधिक ३०(३३.७१ प्रतिशत) लाभार्थी हैं जो ५०० से १००० रू० मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं, सवर्ण जाति के ६२ लाभान्वितों में सर्वाधिक ३५(३८.०४ प्रतिशत) लाभान्वित १५०० से २००० रू० मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं जबकि १२ मुस्लिम लाभान्वितों में सर्वाधिक ६(५० प्रतिशत) लाभान्वित ऐसे हैं जो ५०० रू० से कम मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं। आंकड़े के ऊर्ध्वाधर विश्लेषण से स्पष्ट है कि ५०० रू० से कम मासिक लाभ कमाने वाले सर्वाधिक लाभान्वित ३०(३२.६१ प्रतिशत) अनुसूचित जाति के हैं, ५०० से १००० रू० मासिक लाभ कमाने वाले सर्वाधिक ३०(३३.७१ प्रतिशत) पिछड़ी जाति के हैं, १००० रू० से १५०० रू० मासिक लाभ कमाने वाले सर्वाधिक २८(३१.४६ प्रतिशत) भी पिछड़ी जाति के हैं तथा १५०० से २००० रू० और २००० रू० से ऊपर मासिक लाभ कमाने वाले लाभान्वित भी सवर्ण जाति के हैं। इन आनुभविक तथ्यों के प्रकाश में स्पष्ट है कि-

१. प्रधान मंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत स्थापित रोजगारों के विभिन्न संसाधन शिक्षित बेरोजगारी उन्मूलन में सहायक ही नहीं हैं अपितु लाभान्वित अच्छा मासिक लाभ भी अर्जित कर रहे हैं।
२. लाभान्वितों के घरों में नवीन रोजगारों के सृजन हो जाने से लाभान्वित परिवार लगभग ६०० रू० मासिक औसतन लाभ अर्जित कर रहे हैं।
३. नवीन रोजगारों के सृजन से होने वाला मासिक लाभ यह स्पष्ट करता है कि लाभान्वितों के परिवारों की सामाजिक-आर्थिक दशाएं सुधरनी चाहिये और ऐसा हो भी रहा है।

तालिका-२ में प्रधान मंत्री रोजगार योजना के अध्ययनार्थ चयनित व सर्वेक्षित कुल २८५ लाभान्वितों के शैक्षिक स्तरों के सापेक्ष प्रधान मंत्री रोजगार योजनान्तर्गत रोजगार प्रतिष्ठान सृजित हो जाने से होने वाले मासिक लाभ की सीमा (रू० में) पर लाभान्वितों के शैक्षिक स्तरों के सापेक्ष संक्षिप्त प्रकाश डालती है-

तालिका-२ः लाभान्वितों के शैक्षिक स्तरों के सापेक्ष मासिक लाभ की सीमा (रूपयों में)

लाभान्वित का शिक्षा का स्तर	लाभान्वितों को होने वाले मासिक लाभ की सीमा (रूपया में) संख्या (प्रतिशत)					
	५०० रू० से कम	५००-१०००	१०००-१५००	१५००-२०००	२००० से अधिक	कुल योग
हाईस्कूल	१५(३२.६१) (२३.८१)	१५(३२.६१) (२२.७३)	१६(३४.७८) (२२.२२)	०(००.००) (००.००)	०(००.००) (००.००)	४६(१००.००) (१६.१४)
इण्टरमीडिएट	१८(१३.८५) (२८.५७)	३६(२७.६९) (५४.५५)	४६(३५.३८) (६३.८९)	२६(२०.००) (४४.०७)	०४(०३.०८) (१६.००)	१३०(१००.००) (४५.६१)
स्नातक	३०(४२.८६) (४७.६२)	१०(१४.२९) (१५.१५)	०४(०५.७१) (०५.५६)	२०(२८.५७) (३३.८९)	०६(०८.५७) (२४.००)	७०(१००.००) (२४.५६)
स्नातकोत्तर	०(००.००) (००.००)	०(००.००) (००.००)	०(००.००) (००.००)	१०(४५.४५) (१६.९६)	१२(५४.५५) (४८.००)	२२(१००.००) (०७.७३)
तकनीकी योग्यता	०(००.००) (००.००)	०५(२९.४१) (०७.५८)	०६(३५.२९) (०८.३३)	०३(१७.६५) (०५.०८)	०३(१७.६५) (१२.००)	१७(१००.००) (०५.९६)
योग	६३(२२.१०) (१००.००)	६६(२३.१६) (१००.००)	७२(२५.२६) (१००.००)	५९(२०.७१) (१००.००)	२५(०८.७७) (१००.००)	२८५(१००.००) (१००.००)

प्रस्तुत तालिका-२ के अध्ययन से यह उल्लेखनीय तथ्य तथा प्राप्त निष्कर्ष यह है कि-

१. ५००रू० मासिक से कम लाभ अर्जित करने वाले सभी लाभान्वित हाईस्कूल से स्नातक स्तर तक शिक्षित हैं अर्थात् कम शिक्षितों की तुलना में अधिक शिक्षित अधिक लाभ अर्जित कर रहे हैं।
२. कम शिक्षित (हाईस्कूल) एक भी लाभान्वित ऐसा नहीं पाया गया है जो प्रधान मंत्री रोजगार योजनान्तर्गत स्थापित रोजगार प्रतिष्ठान से १५०० रू० से अधिक मासिक लाभ अर्जित कर रहा हो।
३. उच्च शिक्षित (स्नातकोत्तर) एक भी लाभान्वित ऐसा नहीं पाया गया है जो स्थापित किए रोजगार प्रतिष्ठान से १५०० रू० से कम मासिक लाभ अर्जित कर रहा हो।
४. तकनीकी योग्यता प्राप्त लाभान्वित अन्य शिक्षित लाभान्वितों की तुलना में, अच्छा मासिक लाभ (रूपए २००० से भी अधिक) अर्जित कर रहे हैं।
५. प्रस्तुत आनुभविक अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के अध्ययन से स्पष्ट है कि लाभान्वितों के शैक्षिक स्तर तथा मासिक लाभ सीमा परस्पर समानुपाती हैं।
६. अध्ययन मे 'शिक्षा के स्तर तथा अर्जित मासिक लाभ' सकारात्मक रूप से सह संबन्धित हैं।

निम्न तालिका प्रधान मंत्री रोजगार योजनान्तर्गत अध्ययनार्थ चयनित कुल २८५ लाभान्वितों द्वारा रोजगार प्रष्ठिानों से होने वाले मासिक लाभ की सीमा (रू० में) उनके क्षेत्र सापेक्ष प्रकाश डालती है-

तालिका-३ः लाभान्वितों की रोजगार इकाइयों के क्षेत्र के सापेक्ष मासिक लाभ की सीमा (रूपयों में)

लाभान्वितों के रोजगार क्षेत्र	लाभान्वितों को होने वाले मासिक लाभ की सीमा (रूपया में) संख्या (प्रतिशत)					
	५०० रू० से कम	५००-१०००	१०००-१५००	१५००-२०००	२००० से अधिक	कुल योग
प्राथमिक	(००.००) (००.००)	१५(२९.४१) (२२.७३)	१२(२३.५३) (१६.६७)	१६(३१.३७) (२७.२१)	०८(१५.६९) (३२.००)	५१(१००.००) (१७.८९)
द्वितीयक क्षेत्र	२०(१८.०२) (३१.७५)	२५(२२.५२) (३७.८८)	२८(२५.२३) (३८.८९)	३३(२९.७३) (५५.९३)	०५(०४.५०) (२०.००)	१११(१००.००) (३८.९५)
तृतीयक क्षेत्र	४३(३४.९६) (६८.२५)	२६(२१.४१) (३९.३९)	३२(२६.०३) (४४.४४)	१०(०८.०१) (१६.९५)	१२(०६.७६) (४८.००)	१२३(१००.००) (४३.१६)
योग	६३(२२.१०) (१००.००)	६६(२३.१६) (१००.००)	७२(२५.२६) (१००.००)	५९(२०.७१) (१००.००)	२५(०८.७७) (१००.००)	२८५(१००.००) (१००.००)

प्रसंगाधीन प्रस्तुत तालिका प्रधान मंत्री रोजगार योजना के लाभान्वितों की रोजगार इकाईयों के क्षेत्रों के सापेक्ष कुल २८६ लाभान्वितों द्वारा मासिक लाभार्जन की सीमा (रू० में) पर प्रकाश डालती है। अध्ययनार्थ चयनित कुल २८५ लाभान्वितो में से ५०० रू० से कम मासिक लाभ अर्जित करने वाले ६३ लाभार्थियों में २० (३१.७५ प्रतिशत) द्वितीयक क्षेत्र के, ४३ (६८.२५ प्रतिशत) तृतीयक क्षेत्र के लाभान्वित हैं, ५०० से १००० रू० तक मासिक लाभ अर्जित करने वाले ६६ लाभान्वितों में १५(२२.७३ प्रतिशत) प्राथमिक क्षेत्र के, २५(३७.८८ प्रतिशत) द्वितीयक क्षेत्र, २६(३९.३९ प्रतिशत) तृतीयक क्षेत्र के, रोजगारों वाले हैं, १००० से १५०० रू० तक मासिक लाभ अर्जित करने वाले ७२ लाभान्वितों में १२(१६.६७ प्रतिशत) प्राथमिक क्षेत्र के, २८(३८.८९ प्रतिशत), द्वितीयक क्षेत्र के, ३२(४४.४४ प्रतिशत), तृतीयक क्षेत्र के, रोजगारों वाले हैं, १५०० से २००० मासिक लाभ अर्जित करने वाले ५९ लाभान्वितों में १६(२७.१२ प्रतिशत) प्राथमिक क्षेत्र, ३३(५५.९३ प्रतिशत) द्वितीयक क्षेत्र तथा १०(१६. ९५ प्रतिशत) तृतीयक क्षेत्र के रोजगारों वाले हैं एवं २००० रू० से अधिक मासिक लाभ अर्जित करने वाले २५ लाभान्वितों में ८(३२ प्रतिशत) प्राथमिक क्षेत्र ५(२० प्रतिशत) द्वितीयक क्षेत्र व १२(४८ प्रतिशत) लाभान्वित तृतीयक क्षेत्र के रोजगारों वाले पाये गये हैं। आंकड़ों का विश्लेषण क्षैतिजतः करने पर प्राथमिक क्षेत्र के ५१ लाभान्वित में १५०० से २००० रू० तक मासिक लाभ अर्जित करने वाले सर्वाधिक १६ (३१.३७ प्रतिशत) लाभान्वित, द्वितीयक क्षेत्र के १११ लाभान्वितों में ५०० रू० से लेकर २००० रू० तथा इससे भी अधिक मासिक लाभ अर्जित करने वाले पाए गए हैं जिसमें ३३ (२९.७३ प्रतिशत) लाभान्वित (सर्वाधिक) १५०० से २००० रू० मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं, तृतीयक क्षेत्र के रोजगार स्थापित करने वाले १२३ लाभान्वितों में सर्वाधिक मासिक लाभ कमाने वाले ३२ (२६.०३ प्रतिशत) लाभान्वित १००० से १५०० रू० मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं। उक्त प्राथमिक तथ्यों के विश्लेषण के प्रकाश में उल्लेखनीय है कि-

१. ५०० रू० मासिक से कम लाभ अर्जित करने वाला एक भी लाभान्वित प्राथमिक क्षेत्रान्तर्गत रोजगार प्रतिष्ठान स्थापित करने वाला नहीं पाया गया है।
२. द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रान्तर्गत रोजगारों के प्रतिष्ठान संसाधन सृजित करने वाले शत प्रतिशत लाभान्वित ५०० से २००० रू० से भी अधिक मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं।
३. प्राथमिक क्षेत्र के रोजगार सृजन करने वाले लाभान्वितय द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रान्तर्गत रोजगार सृजन करने वाले लाभान्वितों से तुलनात्मक अधिक मासिक लाभ अर्जित कर रहे हैं।

इन समस्त तथ्यों के प्रकाश में निष्कर्ष यह है कि प्रधान मंत्री रोजगार योजना के तहत स्थापित रोजगारों के संसाधन शिक्षित बेरोजगारों के हित में हैं लेकिन कच्चे माल की अनुपलब्धता तथा उत्पादित माल के विक्रय की समस्या प्रायः बनी ही रहती है। शासन को इसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

तालिका-४ः

सामाजिक जाति सापेक्ष स्थापित रोजगार संसाधनों से होने वाली नकद (मौद्रिक) बचत का परिकलन (प्रतिशत में)

लाभान्वितों की जातियाँ	लाभान्वितों को रोजगारों से होने वाली मौद्रिक बचत प्रतिशत में (संख्या/प्रतिशत)				
	०.२५ प्रतिशत	२५.५० प्रतिशत	५०.७५ प्रतिशत	७५.१०० प्रतिशत	कुल योग
अनुसूचित जाति	१०(१०.८७) (३४.४८)	४४(४७.८२) (४०.७४)	३८(४१.३१) (२६.७६)	०(००.००) (००.००)	९२(१००.००) (३२.२८)
पिछ़डी जाति	१०(११.२४) (३४.४८)	४०(४४.९४) (३७.०४)	३९(४३.८२) (२७.४६)	०(००.००) (००.००)	८९(१००.००) (३१.२३)
सवर्ण जाति	०६(०६.५२) (२०.६९)	२०(२१.७४) (१८.५२)	६०(६५.२२) (४२.२८)	०६(०६.५२) (१००.००)	९२(१००.००) (३२.२८)
मुस्लिम	०३(२५.००) (१०.३५)	०४(३३.३३) (०३.७०)	०५(४१.६७) (०३.५३)	०(००.००) (००.००)	१२(१००.००) (०४.२१)
योग	२९(१०.१८) (१००.००)	१०८(३७.८९) (१००.००)	१४२(४९.८२) (१००.००)	०६(०२.११) (१००.००)	२८५(१००.००) (१००.००)

उपर्युक्त तालिकाओं १ से ४ तक के प्राथमिक आँकड़ों के विश्लेषणों व सम्बन्धित विवेचनों से स्पष्ट होता है कि प्रधान मंत्री रोजगार योजनान्तर्गत सुलभ रोजगार संसाधनों से लाभान्वित मासिक लाभ, परिसम्पत्ति के रूप में विशुद्ध लाभ होते हुए नकद (मौद्रिक) बचतें करने में सफल हो रहे हैं, भले ही बचत सीमाएं कम हैं। परन्तु वे अपनी अनिवार्य जरूरतों की पूर्ति कर रहे हैं।

इससे यह अनुमान लगाया जा रहा है कि निश्चित तौर पर लाभार्थी पूर्व की तुलना में बेहतर अनुभूति कर जीवनयापन कर रहे हैं। सर्वेक्षण के दौरान चक्षु अवलोकन से विदित हुआ है कि नए रोजगारों के सृजन हो जाने से उनकी सामाजिक-आर्थिक दशाएं सुधरी हैं।

तालिका-५: रोजगार के क्षेत्रों के सापेक्ष विशुद्ध लाभ का आर्थिक उपयोग

उपयोग	प्राथमिक क्षेत्र	द्वितीयक क्षेत्र	तृतीयक क्षेत्र	कुल लाभान्वित
क	१२(२२.६४) (२३.५३)	३५(६६.०४) (३१.४३)	०६(११.३२) (०४.८८)	५३(१००.००) (१८.५६)
ख	०६(०८.११) (१७.६५)	१६(१४.४१) (१४.४१)	८६(७७.४८) (६६.१२)	१११(१००.००) (३८.६५)
ग	०१(०१.२५) (०१.६६)	५०(६२.५०) (४५.०६)	२६(३६.२५) (२३.५८)	८०(१००.००) (२८.०७)
(क+ख)	१५(७५.००) (२६.४१)	०५(२५.००) (०४.५०)	०(००.००) (००.००)	२०(१००.००) (०७.५२)
(ख+ग)	०६(५०.००) (११.७६)	०४(३३.३३) (०३.६०)	०२(१६.६७) (०१.६५)	१२(१००.००) (०४.२१)
(ग+क)	०५(८३.३३) (०६.८०)	०१(१६.६७) (००.६०)	०(००.००) (००.००)	०६(१००.००) (०२.११)
(क+ख+ग)	०३(१००.००) (०५.८८)	०(००.००) (००.००)	०(००.००) (००.००)	०३(१००.००) (०१.०५)
कुल योग (प्रतिशत)	५१(१७.८६) (१००.००)	१११(३८.६५) (१००.००)	१२३(४३.१६) (१००.००)	२८५(१००.००) (१००.००)

संकेताक्षर :

(क) परिसम्पत्ति क्रय (ख) मौद्रिक बचत

(ग) पुनर्वित्त विनियोजन

(क+ख) परिसम्पत्ति क्रय + मौद्रिक बचत

(ख+ग) मौद्रिक बचत + पुनर्वित्त विनियोजन

(ग+क) पुनर्वित्त विनियोजन + परिसम्पत्ति क्रय

(क+ख+ग) परिसम्पत्ति क्रय + मौद्रिक बचत + पुनर्वित्त **विनियोजन** : प्रसंगाधीन प्रस्तुत तालिका-५ प्रधानामंत्री रोजगार योजनान्तर्गत सभी २८५ लाभान्वितों के रोजगार प्रतिष्ठानों से होने वाले विशुद्ध लाभ (सापेक्ष व निरपेक्ष) के आर्थिक उपयोग के प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों के सापेक्ष विश्लेषण व विवेचन से स्पष्ट है कि कुल २८५ लाभान्वितों में से ५१(१७.८६ प्रतिशत) लाभान्वित प्राथमिक क्षेत्र के, १११(३८.६५ प्रतिशत) लाभान्वित द्वितीयक क्षेत्र के तथा १२३ (४३.१६ प्रतिशत) लाभान्वित तृतीयक क्षेत्र के रोजगारों के प्रतिष्ठानों को स्थापित करने वाले पाए गए हैं। क्षैतिजतः विश्लेषण करने पर कुल २८५ लाभान्वितों में से ५३(१८.५६ प्रतिशत) परिसम्पत्ति क्रय, १११ (३८.६५ प्रतिशत) मौद्रिक बचत, ८० (२८.०७ प्रतिशत) पुनर्वित्त विनियोजन, २० (०७.५२ प्रतिशत) परिसम्पत्ति क्रय तथा मौद्रिक बचत १२ (४.२१ प्रतिशत) मौद्रिक बचत तथा पुनर्वित्त विनियोजन, ६ (२.११ प्रतिशत) पुनर्वित्त विनियोजन तथा परिसम्पत्ति क्रय तथा मात्र ३ (१.०५ प्रतिशत) परिसम्पत्ति क्रय, मौद्रिक बचत तथा पुनर्वित्त विनियोजन कर रहे हैं। अतः तीनों ही श्रेणी के उद्यमी सन्तुष्ट पाए गए हैं क्योंकि वे सन्तोषजनक प्रतिशत में परिसम्पत्ति क्रय, मौद्रिक (नकद) बचतें तथा पुनर्वित्त विनियोजन कर पा रहे हैं। सुस्पष्ट है कि प्रधान मंत्री रोजगार योजना की भूमिका शिक्षित बेरोजगारी उन्मूलन तथा बेरोजगारों के आर्थिक विकास में सहायक हैं।

सन्दर्भ

1. Hawby F.B.; Enterprise and Product Process; (See Dixit A.K. Self Employment Scheme, Sahitya Pub., Allahabad, 1993) 1991, p. 172.
2. Knight F.H. & Mary P.S.; Risk, Uncertainity & Profit, 1980, p. 180. [Quoted from A.K. Dixit, Self Employment Scheme, Sahitya Pub. Allahabad, 1993]

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

मैंनपुरी नगर की आन्तरिक संरचना एवं आकारिकी का भौगोलिक विश्लेषण

❑ डॉ० राजकुमार सिंह चौहान

भारतवर्ष में विभिन्न पुरातन नगरों का अध्ययन वेद पुराण, महाभारत, रामायण ग्रंथों में मिलता है। इनमें सबसे पुरातन जीवित नगर के रूप में वाराणसी के अतिरिक्त हस्तिनापुर, कुरूक्षेत्र, पुरूषपुर, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, तक्षशिला आदि के वर्णन नगरीय सभ्यता, कला एवं अन्य विशिष्ट पक्षों के रूप में विभिन्न समकालीन ग्रन्थों में मिलते हैं। भारत में ही नहीं अपितु विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया सर्वत्र समरूप नहीं है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में चाहे वह मैदानी हो अथवा पर्वतीय, नगरीय हो अथवा ग्रामीण, निर्वाहक कृषिगत हो अथवा समुन्नत तकनीक आधारित औद्योगिक क्षेत्र सर्वत्र सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रीय विषमताएं उत्पन्न होती हैं। संभवतः जीवन की अनुकूलता एवं उत्कृष्ट गुणवत्ता को प्राप्त करने के लिए अपनी समस्याओं के अनुरूप मानवीय दक्षता से संपन्न क्षेत्रों की ओर पलायन की प्रक्रिया विभिन्न नगर केन्द्रों में निरंतर विकास एवं प्रसार का कारण बनती है अपितु नगर मानवीय सभ्यता जितनी पुरानी है फिर भी इसका व्युत्पत्तिमूल समगुण एक ऐसे सत्य को प्रकट करता है जिसका सुस्पष्ट ज्ञान अत्यंत दुरूह है। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद के मैनपुरी नगर की अन्तरिक संरचना एवं आकारिकी के विभिन्न प्रतिरूपों के विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है।

भारत ही नहीं अपितु विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में तकनीकी एवं वैज्ञानिक ज्ञान के परिणाम स्वरूप जहॉ एक ओर मानवीय जीवन का कायाकल्प हुआ है वहीं दूसरी ओर नगरीय क्षेत्रों से विभिन्न जन-सेवाओं एवं अभिसंरचनात्मक सुविधाओं के प्रसार स्वरूप सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ - साथ मानवीय जीवन निरन्तर संरक्षित होता जा रहा है। परिणाम स्वरूप बीसवीं सदी के अन्तर्गत जहॉ एक ओर नगर केन्द्र तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण आकार एवं संख्या में तेजी से बढ़े हैं वहीं दूसरी ओर ये केन्द्र सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं के सक्रिय केन्द्र भी बने हैं।[1] अधिवासीय विकास की प्रक्रिया स्वयं में घरों के समूह के रूप में धरातल पर उभरने वाला वह भूदृश्य है जो मानवीय ज्ञान की विशिष्टता की चरम परिणति को चाहे वह भवन निर्माण कला हो या नगरीय आकारिकी अथवा विशिष्ट सामाजिक एवं आर्थिक क्रियायें तथा उद्योग-धन्धे, वैज्ञानिक एवं तकनीक आधारित क्रियायें एवं प्रबन्धक आदि, धारण करता है जो एक भौगोलिक अवस्थिति एवं स्थिति के दृष्टिगत क्षेत्रीय महत्वा का प्रतिफल है।

किसी भी क्षेत्र में नगर वह अधिवास होता है जिसका उद्भव एकाएक न होकर एक सतत् प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ नियत कार्यों की सेवाओं की आपूर्ति हेतु होता है केवल जनसंख्या का आकार ही नगर निर्माण में सहायक नहीं होता बल्कि कला, संस्कृति, राजनैतिक उद्देश्य ही किसी अधिवास को नगर बनाने में सहायक होते हैं।[2] वस्तुतः यह एक जटिल और प्रघटना का प्रतिफल होता है जिसमें नगर के निवासी और आस-पास के क्षेत्र में होने वाली अन्तर प्रक्रियाओं के विभिन्न पक्ष समाहित होते हैं। वस्तुतः नगर सामाजिक संगठन युक्त वह वृहद केन्द्र होता है जो अन्य निकटवर्ती अधिवासों से उच्च्व केन्द्रीयता के स्तर का प्रतिनिधित्व करता है।[3] अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न प्रतिरूपों तथा नगरीय भूगोल के बहुआयामी अध्ययन को वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध आधार प्रदान करने में सहायक हुये हैं तथा शोध अध्ययन को समग्र सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने हेतु ग्रहण किये गये हैं।

भौगोलिक स्थितिः मैंनपुरी जनपद (उ०प्र०) का मैंनपुरी नगर दीर्घकाल से ही मयन च्यवन एवं मारकण्डे ऋषियों की तपोभूमि का मुख्य केन्द्र बिन्दु है जो पुरातन महाभारत एवं बुद्धकालीन अधिवासों को समाहित करने वाली वर्तमान में कृषि एवं उद्योग की दृष्टि से पिछड़ी अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाली पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा मण्डल की दक्षिणी-पूर्वी सीमा पर स्थिति एक सुगठित भौगोलिक इकाई है। मैंनपुरी नगर की निरपेक्ष अवस्थिति इसकी २७°१४' उत्तरी तथा ७९°०२' देशान्तर पर इसकी स्थिति से नियत होती है जो मानचित १ के द्वारा स्पष्ट है।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल विभाग, एन०के० कालेज, नगला बलू (जागीर) मैंनपुरी (उ०प्र०)

मैंनपुरी नगर
स्थिति एवं अवस्थिति

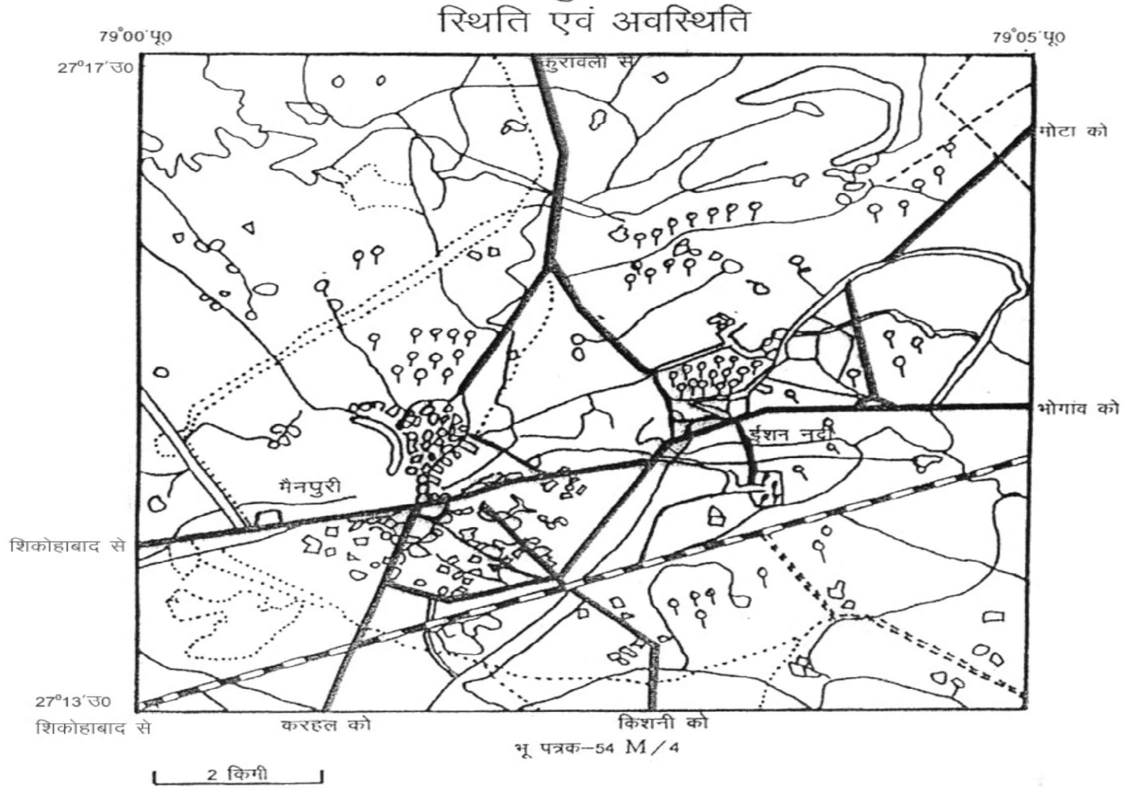

मैंनपुरी नगर केन्द्र का बसाव स्थल मूलतः ईशन नदी के दाहिने किनारे पर एक उच्च स्थल पर पुरानी मैंनपुरी के रूप में उदभूत है तथा वर्तमान में यह २४ वर्गकिमी० क्षेत्र को घेरे हुए है तथा इसके चारों ओर की सीमाओं का निर्धारण धारऊ, ललूपुरा, खरपरी तथा संसारपुर गॉवों के द्वारा निर्धारित होता है। ईशन नदी असतत् वाही जल धारा के रूप में प्रवाहित होती है। कभी-कभी वर्षा काल में इस नदी में जलधारा के उफान के परिणाम स्परूप नगर क्षेत्र में बाढ आ जाती हैं। नगर क्षेत्र पुरानी मैंनपुरी शेष नगर क्षेत्र तथा सिविल लाइन के मध्य से ईशन नदी प्रवाहित होती है। मैंनपुरी नगर केन्द्र का नगरीय स्थल मैंनपुरी-करहल, मैंनपुरी-शिकोहाबाद, मैंनपुरी-कुसमरा मैंनपुरी-किशनी, मैंनपुरी-भोगॉव, मैंनपुरी-कुरावली, मैंनपुरी-ज्योंती मार्गें के मध्य विकसित हुआ है। वर्ष-२०११ के अनुसार मैंनपुरी नगर में कुल २५ वार्ड हैं जिन में कुल जनंसख्या १३६५५७ है जिसमें ७१२७४ पुरूष तथा ६५२८३ स्त्रियॉ निवास करती हैं।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न स्तर की शोध विधियों तथा तकनीकों का प्रयोग किया गया है साथ ही शोध अध्ययन को पूर्ण करने के लिये प्राथमिक व द्वितीयक दोनों ही प्रकार के ऑकड़ें एवं सूचनाओं को आधार बनाया गया है। नगर पालिका परिषद् अभिलेख एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न सूचनायें संकलित की गयी हैं। इसके अलावा जनगणना, सीरीज, तालिकायें, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पत्रिकायें, जनपदीय औद्योगिक निर्देशिका, जनपदीय भू-आकृतिक मानचित्र जिला सामाजिक-आर्थिक समीक्षा, जल निगम व जिला विकास कार्यालय की विभिन्न ईकाइयों से संकलित किये गये हैं। नगर क्षेत्र में उपलब्ध सूचनाओं के विश्लेषण के लिये विभिन्न प्रकार की गणितीय वैज्ञानिक एवं साख्यिकीय विधियों तथा माध्य, माध्य विचलन, मानकीकरण के अतिरिक्त शस्य संकेन्द्रण, वैविध्य, विशेषीकरण एवं कोटि गुणांक आदि से सम्बन्धित सूचकांकों की गणना उपर्युक्त गणितीय सूत्रों से की गयी है। तदोपरान्त विभिन्न रैखिक तथा मानचित्रात्मक विधियों से सामयिक एवं नगरीय क्षेत्र प्रतिरूपण निष्कर्षित किये गये हैं। साथ ही शोध अध्ययन क्षेत्र का आधार मानचित्र सर्वे ऑफ इण्डियॉ द्वारा स्थालाकृतिक भू-पत्रक के आधार पर तैयार किया गया है।

नगर केन्द्रों की आन्तरिक संरचना उसके ऐतिहासिक विकास क्रम की प्रक्रिया का प्रतिफल है जो भौतिक एवं सांस्कृतिक कारकों के देशकालानुसार प्रभाव के द्वारा निर्धारित होती है। किसी भी नगर की आन्तरिक संरचना वसाव स्थल, क्षेत्रीय संसाधनता एवं नगर निवासियों की जीवन पद्धति, सांस्कृतिक एवं सभ्यता के विकास की अवस्था में निहित होती है। वस्तुतः आन्तरिक संरचना किसी भी नगर की बनावट अथवा आकारिकी एवं गठन से सम्बन्धित होती है। किसी बस्ती के धरातलीय आधार को उसका स्थल कहते हैं। अधिक स्पष्ट शब्दों में नगर या अन्य कोई बस्ती जिस भूमि पर निर्मित है, या पृथ्वी पर जिस स्थान या क्षेत्र घेरे हुये है वही उसका स्थल है। स्थल ही नगर का वह नीव अथवा भौतिक आधार है जिसपर इसका पूरा भावी ढांचा खड़ा होता है।[४] वस्तुतः नगर स्वयं पैदा नहीं होते बल्कि समीपवर्ती ग्रामीण प्रदेश उन्हें कुछ ऐसे कार्यों के सम्पादन के लिए तैयार करते हैं जो केन्द्र स्थलों में ही होने चाहिए।[५]

मैंनपुरी नगर केन्द्र जनपद-मैनपुरी (उ०प्र०) का प्रमुख नगरीय अधिवास है, जो एक पुरातन एवं नूतन नगरीय अधिवास का सम्मिलित रूप प्रस्तुत करता है तथा यह नगर केन्द्र वर्तमान में २४ वर्ग किमी० क्षेत्र को आवृत किये हुए हैं तथा इसके विभिन्न नगरीय कार्यों का सम्पादन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में मानचित्र-१.२ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

मानचित्र-१.२

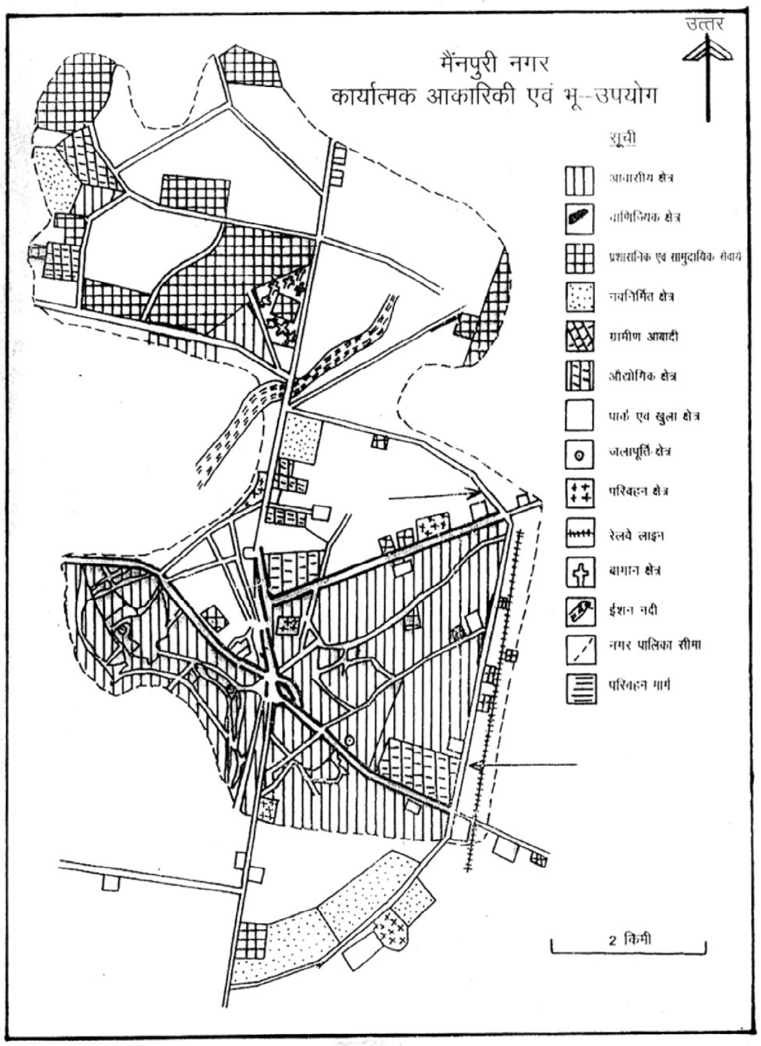

नगर के आवासीय क्षेत्रः आवास जो मानवीय जीवन की आधारभूत एवं प्राथमिक आवश्यकता है किसी भी अधिवास का सबसे महत्वपूर्ण भू-उपयोग माना जाता है। मैंनपुरी नगर केन्द्र में आवासीय भू-उपयोग के अन्तर्गत मुख्यतः तीन आवासीय पुंज मिलते हैं।

पुरातन अनियोजित आवासीय क्षेत्रः इसके अन्तर्गत मैंनपुरी किले के चारों ओर बसे हुए अनियोजित पुरातन मुहल्ले मिलते हैं जिनमें नगरीय भवन पुराने प्रारूप में बने हुए हैं तथा आवासीय दशा उत्तम नहीं है इन क्षेत्रों में बागवान, मिश्राना, पुरोहिताना, ताल दरवाजा तथा चौबियाना, भरतवाल एवं कटरा मोहल्ले सम्मिलित होते हैं जबकि दूसरी ओर पुरातन अनियोजित आवासीय क्षेत्रों में लोहाई, अग्रवाल, गाड़ीवान, दरीबा, सरावग्यान, छपट्टी तथा देवपुरा का कुछ भाग आते हैं।

नवीन अर्द्ध-नियोजित क्षेत्रः इसके अन्तर्गत विशेषतया वंशीगोहरा, करहल अड्डा, बस स्टैण्ड के निकटवर्ती क्षेत्र, भदावर हाउस के निकटवर्ती क्षेत्र तथा देवपुरा देहात के क्षेत्र समाहित होते हैं।

नियोजित नव-निर्मित आवासीय क्षेत्रः इन क्षेत्रों के अन्तर्गत मैंनपुरी नगर केन्द्र के नवीन नियोजित नगर केन्द्र यथा अवध नगर, नवीन खरगजीत नगर, आवास विकास कालौनी, हरिदर्शन नगर, डी०एन० नगर, राजा का बाग, पचौरी कम्पाउन्ड, मिशन कम्पाउन्ड, सिविल लाइन्स आदि उल्लेखनीय हैं।

मैंनपुरी नगर केन्द्र पर विभिन्न आवासीय वार्डों के ग्रहों की संख्या तथा प्रति आवास निवास करने वाले व्यक्तियों के संकेन्द्रण सूचकांक जो निम्न सूत्र के द्वारा निकाला गया है, के द्वारा दर्शाया गया है-

$$\text{आवासीय संकेन्द्रण सूचकांक} : \frac{\text{आवासीय वार्ड का गुणांक}}{\text{संपूर्ण क्षेत्र में सभी वार्डों का औसत गुणांक}} \times 100$$

उपयुक्त सूत्र के आधार पर मैंनपुरी नगर केन्द्र के विभिन्न वार्डों में आवासीय ग्रहों तथा प्रतिव्यक्ति ग्रहों के संकेन्द्रणांक को क्रमशः तालिका १ एवं २ के द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका-१ एवं २ के तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट है कि मैंनपुरी नगर में आवासीय घनत्व में विभिन्न वार्डों में आवासीय सकेन्द्रणांक औसत के निकट मिलता है जबकि प्रति वार्ड भवन संख्या संकेन्द्रणांक औसत से पर्याप्त विचलन मिलता है।

तालिका-१

मैंनपुरी नगर केन्द्र में प्रति ग्रह निवासियों का संकेन्द्रण प्रतिरूप, वर्ष-२०११

आवासीय घनत्व	संख्या	प्रतिशत	वार्डों की संख्या
६५ से कम	६	२४	१,४,१२, २२,२३,२५
६५ - १०५	११	४४	२,३,५,६ ९,१०,१३,१५ १८,२०,२१
१०५ से अधिक	८	३२	७,८,११,१४, १६,१७,१९,२४

स्रोतः-नगर पालिका परिषद् मैंनपुरी वर्ष-२०११-१२ एवं शोधार्थी द्वारा निजी आंकलन व सारणीयन वर्ष-२०१३.

तालिका-२

मैंनपुरी नगर में वार्ड अनुसार भवन संकेन्द्रणांक वर्ष-२०११.

भवन संकेन्द्रणांक	संख्या	प्रतिशत	वार्डों की संख्या
६५ से कम	१४	५६	२,३,५,७ ८,९,१०,११, १३,१४,१६, २२, २३, २४
६५ - १०५	३	१२	१७,१९,२०
१०५ से अधिक	८	३२	१,४,६,१२ १५,१८,२१,२५

स्रोतः-तदैव।

वाणिज्यक क्षेत्रः मैंनपुरी नगर जनपद का सबसे बड़ा व्यापार केन्द्र है जिसके वाणिज्यिक क्षेत्रों का विवरण तालिका-३ के द्वारा प्रस्तुत किया गया है तथा इसके वाणिज्यिक क्षेत्रों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है जिसे मानचित्र-२ के द्वारा दर्शाया गया है।

मुख्य वाणिज्यिक क्षेत्रः यह मैंनपुरी नगर में डाकघर चौराहे से लेकर तहसील रोड, घण्टाघर चौराहा, बजाजा बाजार, सन्ता-बसन्ता चौराहा को समाहित करता है। यहॉ विविध श्रेणी की व्यावसायिक क्रियायें उच्च्व घनत्व के साथ मिलती हैं। दिन के समय कुछ घण्टों में तो इन क्षेत्रों में नगरीय परिसंचलन स्थिर जैसा प्रतीत होता है।

तालिका ३

मैंनपुरी नगर केन्द्र-वाणिज्यिक क्षेत्रों का विवरण वर्ष-२०११

मार्गों के नाम	संख्या	प्रतिशत
फर्रूखाबाद-आगरा रोड (नवीन अस्पताल से मण्डी तक)	१०६८	३३.८५
करहल रोड (बड़ा चौराहा से बाईपास तक)	४४५	१४.१०
रायजादा रोड (बड़ा चौराहा से कृष्णा टाकीज, नगर पालिका तक)	१३५	४.२८
स्टेशन रोड (भॉवत चौराहा तक)	३८५	१२.२०
विसात खाना	६५	३.०१
तहसील रोड (लेनगंज)	२८८	६.१३
बजाजा बाजार, सीताराम तथा यादव मार्केट (नगर पालिका चौराहे से ईशन नदी पुल तक)	२५६	११.३८
राधारमण रोड (भॉवत चौराहे से ईशन नदी पुल तक)	७५	२.३८
नगर पालिका से देवी रोड चुंगी तक	१५१	४.७६
सब्जी मण्डी	४६	१.५५
नई मण्डी	१०५	३.३३
योग नगर	३१५५	१००.००

स्रोतः-नगर पालिका परिषद् अभिलेख एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण वर्ष-२०११ से वर्ष-२०१३.

थोक व्यापारिक क्षेत्रः मैंनपुरी नगर में घी तथा सब्जी का थोक बाजार पुरानी तहसील मार्ग पर अनाज का थोक बाजार कृषि मण्डी समिति तथा पुरानी तहसील रोड पर ही पुरानी मण्डी आदि है। मशीनी एवं हार्डवेयर का थोक बाजार स्टेशन रोड पर है।

फुटकर बाजारः इसके अन्तर्गत नगर की विभिन्न भागों पर श्रंखलाबद्ध रूप से मिलने वाली छोटी-छोटी दुकानें जिनमें विविध प्रकार के विपणन की सुविधा है, सम्मिलित होती हैं जिनमें करहल रोड, आगरा रोड, देवी रोड, तहसील रोड, स्टेशन रोड, राधारमण रोड, कटरा रोड, मदार दरबाजा, बस स्टैण्ड आदि उल्लेखनीय हैं।

फुटकर दुकानेंः विभिन्न आवासीय क्षेत्रों में गली के नुक्कड़ पर दो या दो से अधिक गलियों के मिलन स्थल पर छुटपुट रूप से मिठाई, परचून, कपड़े, सिलाई, सब्जी, पंसारी आदि की दुकानें मुख्य रूप से खुली हुई हैं। इनमें पंजाबी नगर आश्रम तिराहा, भांवत चौराहा, रेलवे स्टेशन, खानकाह मस्जिद के पास, गोपीनाथ अड्डा के पास, ज्योंती तिराहा, करहल बस अड्डा, किले के सम्मुख बजरिया आदि उल्लेखनीय हैं।

मैंनपुरी नगर केन्द्र पर विविध प्रकार की वाणिज्यिक आस्थानों की स्थिति को तालिका-१.४ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

तालिका ४

मैंनपुरी नगर में विविध वाणिज्यिक आस्थानों की स्थिति एवं कार्यरत कर्मकर वर्ष-२०११.

दुकानों के प्रकार	कुल दुकानें		कार्यरत कर्मकर	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
खाद्यान्न	४११	१२.८५	१०३४	१७.२२
कपड़ा तथा हौजरी	३२१	१०.०४	५६७	६.४४
प्रोवीजन एवं दवाएं	२२५	७.०४	३३२	५.५२
पेट्रोलियम रसायन एवं दवाएं	२०३	६.३५	३४०	५.५६
धातु के बर्तन तथा क्राकरी	३३	१.०३	६४	१.०६
मशीनरी ऑटो पार्ट्स कृषियन्त्र	१८७	५.८५	३६६	६.५६
मॉस, सब्जी, मॉस, अण्डे	१७२	५.३८	१६१	३.१८
मिठाई, पान, तम्बाकू, रेस्त्रां, ढाबे	३४६	१०.८२	५४४	६.०६
स्टेशनरी, फोटोग्राफी, किताबें,	७२	२.२५	१२६	२.१५
सार्वशौच, रेडियोटेलर ड्राईक्लीनर, फोटोफ्रेमिंग	३६२	११.३३	८४१	१४.००
बिल्डिंग मैटेरियल, हार्डवयेर पेन्ट्स	१०२	३.१६	२०६	३.४८
विद्युत टी०वी०, रेडियो	१३२	४.१३	२१३	३.५५
लकड़ी फर्नीचर, लोहे का फर्नीचर	१४२	४.४४	७६३	१३.२०
विविध	४८५	१५.१७	३२२	५.३६

स्रोतः तदैव।

औद्योगिक क्षेत्रः नगर का आर्थिक विकास उस नगर के औद्योगिक विकास तथा औद्योगिक उत्पादन की निर्यात क्षमता पर निर्भर करता है। मैंनपुरी में औद्योगिक प्रसार अत्यधिक कम है। नगरीय क्षेत्र में ८ शीतगृह तथा ५ ईंट भट्टे हैं। नगर की औद्योगिक इकाइयॉ मुख्यतः कृषि पर आधारित हैं। इनके

अतिरिक्त चावल, दाल, तेल आदि पर आधारित इकाइयाँ मिलती हैं। नगर के औद्योगिक क्षेत्र अत्यन्त अनियोजित मिलते हैं। औद्योगिक इकाइयाँ जो आवासीय क्षेत्र में यत्र-तत्र मिलती है। बड़े आकार वाली इकाइयाँ जो आवासीय क्षेत्र के बाहर थीं, अब आवासीय क्षेत्र के विस्तार से नगरीय क्षेत्र के अन्तर्गत आ गयी हैं। नगर का औद्योगिक विकास मैंनपुरी शिकोहाबाद, मैंनपुरी बाईपास रोड, राधारमण रोड, रेलवे लाइन के निकटवर्ती क्षेत्र आदि में विशेषतया उल्लेखनीय है। मैंनपुरी नगर में विभिन्न प्रकार के उद्योगो के अन्तर्गत क्षेत्रफल को तालिका ५ में दर्शाया गया है।

तालिका ५ मैंनपुरी नगर में विभिन्न प्रकार के उद्योगों के अन्तर्गत भू-उपयोग वर्ष-२०११

उद्योगों के प्रकार	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	प्रतिशत
दाल मिल	१.६	१.७२
ऑयल मिल	१०.४	११.२१
धान मिल	७४.४	८०.१७
स्ट्रॉबोर्ड	६.०	६.६६
अन्य	६.४	६.६०
कुल योग	६२.८	१००.००

स्रोतः तदैव।

मैंनपुरी नगर में सामुदायिक सुविधायें नागरिक जीवन की उन सभी आवश्यकताओं के लिए कार्यरत एवं विकसित हुई है जिनके बिना शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि की व्यवस्था सम्भव नहीं है। शिक्षा सेवाओं के अन्तर्गत मैंनपुरी नगर रोड पर स्थित ५० प्राइमरी स्कूल, २२ जू०हा० स्कूल ११ इण्टर कॉलेज, ४ डिग्री कॉलेज, १ पॉलीटैक्निक, १ औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र नगर के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए हैं। ये शिक्षा सेवायें नगर के विभिन्न आवासीय क्षेत्रों में फैली हुइ हैं किन्तु तहसील रोड पर खुले क्षेत्र में राधारमण रोड, इटावा रोड, आगरा रोड तथा देवी रोड जैसे वृहद भागों में वृहद शिक्षण सेवायें कार्यरत हैं। मैंनपुरी नगर में विभिन्न क्षेत्रों में निजी चिकित्सालय, क्लीनिक के अतिरिक्त रेलवे चिकित्सालय, महाराजा तेजसिंह चिकित्सालय, महिला चिकित्सालय विशेषतया उल्लेखनीय है। इनमें अधिकांश स्वास्थ्य सेवायें तहसील रोड पर, राधारमण रोड पर, आगरा रोड तथा देवी रोड पर फैली हुई हैं। व्यक्तिगत चिकित्सक नगर के विभिन्न आवासीय क्षेत्रों में कार्यरत हैं। मैंनपुरी नगर केन्द्र पर पार्क एवं क्रीड़ा क्षेत्रों में आगरा रोड पर जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम, इटावा रोड पर चित्रगुप्त महाविद्यालय क्रीडा स्थल, के अतिरिक्त अन्य विद्यालयों में क्रीड़ा स्थल, रेलवे स्टेशन पार्क, लोहिया पार्क, वन चेतना केन्द्र, कम्पनी बाग, नुमाइश ग्राउण्ड आदि मनोरंजन एवं क्रीड़ा स्थल के रूप में उल्लेखनीय हैं। जनपद में कृष्णा, ज्योती कमला एवं शंकर सिनेमाघर उल्लेखनीय है।

यातायात मार्ग एवं क्षेत्रः मैंनपुरी नगर की यातायात संरचना को तीन प्रमुख भागों में विभाजित कर निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है-

अन्तर नगरीय यातायातः इसके अन्तर्गत मैंनपुरी नगर केन्द्र को अन्य क्षेत्रों से सम्बद्ध करने वाले प्रमुख मार्ग जिनकी चौड़ाई अन्य मार्गों की तुलना में पर्याप्त मिलती है, उल्लेखनीय है। इनकी चौड़ाई १२ मी० से ३० मी० तक है। इसमें मैंनपुरी बाईपास रोड से होते हुए मैंनपुरी फर्रूखाबाद, शिकोहाबाद, इटावा, कुरावली, अकबरपुर ओंछा मार्ग एवं बीलों मार्ग विशेषतया संकरे मार्ग हैं। शेष सभी मार्ग सीधे तथा पर्याप्त चौड़ाई लिए हुए हैं।

अन्तः नगरीय मार्गः इनके अन्तर्गत नगर के आंतरिक यातायात को संचालित करने वाले प्रमुख मार्ग यथा देवी रोड, स्टेशन रोड, करहल रोड, नगर पालिका रोड, कृष्णा टाकीज रोड, किला रोड, आश्रम रोड, वंशीगोहरा रोड मुख्यतया उल्लेखनीय हैं।

स्थानीय मार्गः इन मार्गो की चौडाई जैसा कि मानचित्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। प्रायः ६ मी० से कम मिलती है। ये नगर क्षेत्र के पुरातन बस्तियों में टेढ़े-मेढ़े संकरे तथा अर्द्ध-नियोजित एवं नियोजित बस्तियों में सीधे तथा पर्याप्त विस्तार लिये हुए हैं।

यातायात सेवायेंः यातायात सेवाओं के अन्तर्गत नगर का पर्याप्त क्षेत्र इसके बस अड्डों यथा राजकीय बस अड्डा, करहल बस अड्डा, गोपीनाथ बस अड्डा, किशनी अड्डा आदि के उपयोग में है। इनके अतिरिक्त स्टेशन रोड तथा बाईपास रोड के अतिरिक्त पुरानी मण्डी में विभिन्न यातायात एजेन्सियों के अन्तर्गत नगरीय भू-उपयोग मिलता है। आगरा रोड पर वृहद यातायात नगर का निर्माण भी हुआ है।

प्रशासनिक सेवा क्षेत्रः मैंनपुरी नगर जनपद का प्रशासनिक मुख्यालय है। यहाँ पर विभिन्न विभागों के कार्यालय स्थापित हैं इनके अन्तर्गत सिविल लाइन्स में कलेक्ट्रेट, पुलिस मुख्यालय, गोलाबाजार में पुलिस लाइन, के अतिरिक्त मैंनपुरी कचहरी, कृषि प्रसार प्रशिक्षण एवं मैंनपुरी विकास खण्ड आदि के अतिरिक्त पुलिस स्टेशन बैंक, जिला विद्यालय निरीक्षण कृषि एवं भूमि सुधार कार्यालय, जल-कल विभाग, जल विद्युत वितरण विभाग तथा नगर पालिका कार्यालायों के अन्तर्गत नगरीय भूमि को उपयोग उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त

संचार, अग्निशमन, रेलवे आदि सेवायें आदि भी उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त मैंनपुरी नगर की वर्णित महायोजना उपरलिखित प्रक्षेपणों को आधार स्वरूप ग्रहण करते हुए नगर केन्द्रों की विविध क्षेत्रीय समस्याओं को ध्यान में रखकर इस कार्य में लगे हुए सार्वजनिक, राजकीय एवं अर्द्ध राजकीय संस्थाओं के द्वारा नियोजन कार्य पूर्ण करने के लिए वर्तमान अध्ययन के परिणाम दिग्दर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

References:

1. Nautiyal, K.D. 'Urbanisation in India: Growth, Problems and Prospects', The Indian National Geographer, Vol. 1, part I & II 1986, pp. 90-91
2. Munford, L., 'The Culture of Cities', London, 1944, p. 66
3. Blache, Vidal de la, 'Princeples of Human Geography', New your, 1926.
4. सिंह ओमप्रकाश, 'नगरीय भूगोल', तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १६७६, पृ. ६०
5. Singh, O.P., 'Settlement Morphology and spatial Functional organization of Gaddipar village' (Jaipur District), National Geographer, June 1976, pp. 57-61

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा　　　　वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955　　　　ISSN 0974-0074

लैंगिक-समानता, प्रगति एवं सामाजिक न्यायः एक अर्थशास्त्रीय अध्ययन

❑ ज्ञानेन्द्र सिंह

सृष्टि की पालनहार पुरूष की सहयोगी एवं समाज की प्रमुख आधारशिला 'स्त्री' ही है बल्कि पुरूष और प्रकृति, शिव और शक्ति तथा अर्द्धनारीश्वर स्वरूप ही लैंगिक समानता प्रगति की पुष्टि करता है। जैसा कि नारीवादी नेत्री के रूप में प्रतिष्ठित ''मेरी वोल्सन क्राफ्ट'' ने लगभग २२७ वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक दि विन्डीकेशन आफ वुमन में सर्वप्रथम लिंगीय समानताएं तथा सामाजिक प्रगति के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा था कि मानव समाज में स्त्रियों को अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप स्थान तो मिलना ही चाहिए। उस काल में अंकुरित इस विचार ने आज एक सशक्त वृक्ष का रूप से लिया है जिससे संपूर्ण संसार में स्त्रियों की स्थिति में निरंतर सुधार के अभूतपूर्व प्रयास किए जा रहे हैं जिसके परिणाम जीवन के विविध क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णित लैंगिक समानता प्रगति एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा के विकास की आवश्यकता, उसके आधार, लिंगीय विषमता की स्थिति से लिंगीय समानता के विकास की दिशा में शासन द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयासों के आधार पर वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

लैंगिक-समानता, प्रगति एवं सामाजिक न्याय का तात्पर्य विभिन्न क्षेत्रों जैसे- आर्थिक भागीदारी, आर्थिक अवसर, राजनीतिक सशक्तीकरण, शिक्षा तथा जनन सम्बन्धी स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच आदि में महिलाओं और पुरूषों के बीच अंतर से है। विश्व के ५८ देशों के किए गये लिंग अन्तर सम्बन्धी अपने पहले अध्ययन में विश्व आर्थिक फोरम ने भारत को ५३ वें स्थान पर रखा है। इस रिपोर्ट में पॉच महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाओं और पुरूषों के बीच अन्तर को मापा गया है। ये क्षेत्र है - आर्थिक भागीदारी, आर्थिक अवसर, राजनीतिक सशक्तीकरण, शिक्षा तथा जनन सम्बन्धी स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुॅच। केवल पॉच देश कोटिया, जॉर्डन, पाकिस्तान, तुर्की एवं मिश्र को इस रिपोर्ट में भारत के नीचे रखा गया है। भारत के अलावा दक्षिण एशियाई देशों से इस सूची में केवल बांग्लादेश को शामिल किया गया है जिसे भारत से काफी ऊपर ३९ वॉ स्थान प्राप्त हुआ है।

बांग्लादेश के ठीक ऊपर ३८ वें स्थान पर जापान तथा ठीक नीचे ४० वें स्थान पर मलेशिया है। अध्ययन के अनुसार स्वीडन, नार्वे, आइसलैण्ड, डेनमार्क तथा फिनलैण्ड में सबसे कम अन्तर पाया गया इसलिए इन पॉचों को सूची में शीर्ष पर रखा गया है। रिपोर्ट के अनुसार प्रतिबंधित मातृत्व अधिकार एवं खराब राजकीय बाल कल्याण प्रणाली के कारण अमेरिका को शीर्ष १० महिला मित्र देशों में भी स्थान नहीं मिल पाया है। ब्रिटेन हालांकि शीर्ष १० देशों में शामिल है लेकिन वह कई मानकों पर गम्भीर रूप से पीछे हैं। आर्थिक अवसर के मामले में तो वह भारत से भी पीछे हैं।

राजनीतिक सशक्तीकरण के मामले में भारत की स्थिति बेहतर है और उसे २४ वे स्थान पर रखा गया है। फोरम के अनुसार यह एक सकारात्मक प्रगति है। आर्थिक भागीदारी के मामले में भारत ५४ वें स्थान पर, आर्थिक पारिश्रमिक के मामले में ३५ वें स्थान पर शिक्षा के मामले में ५७ वें स्थान पर तथा स्वास्थ्य के मामले में ३४ वें स्थान पर है।[1]

भारत में लिंग अनुपात की प्रवृत्तियाँ १९०१ से २०११ तक[2]

वर्ष	स्त्री-पुरूष अनुपात
१९०१	९७२
१९११	९६४
१९२१	९५५
१९३१	९५०
१९४१	९४५
१९५१	९४६
१९६१	९४१
१९७१	९३०
१९८१	९३४
१९९१	९२७
२००१	९३३
२०११	९४०

Source: Sensus of India, 2011.

सभी क्षेत्रों में प्रगति सुनिश्चित करने के लिए लिंग की समानता और महिलाओं को अधिकार प्रदान करने के सिद्धान्त को विश्व भर में एक महत्वपूर्ण पहलू स्वीकार किया गया है। यह सहस्त्रावदी विकास के उन आठ लक्ष्यों में से एक है, जिन पर न्यूयार्क में २००० से सहस्त्रावदी शिखर सम्मेलन में सहमति बनी थी। १९४५ में हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र चार्टर पहला अन्तर्राष्ट्रीय समझौता था, जिसमें लिंग की समानता को

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर-अर्थशास्त्र विभाग, ए०के० (पी०जी०) कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

मूल-भूत अधिकार घोषित किया गया था।[3] उसके बाद से मानव मात्र को मानवाधिकार प्रदान करने में सहायता के लिए अनेक समझौते, कार्यक्रम और लक्ष्य सामने आये जो ''सार्वभौम'', अविभाज्य, परस्पर-निर्भर और परस्पर संबद्ध थे।''

महिलाओं के विकास और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने १८ दिसम्बर १६७६ को महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेद-भाव समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव (कन्वेंशन) पारित किया, जो ३ सितम्बर, १६८१ से प्रभावी हुआ। प्रस्ताव में ग्रामीण महिलाओं की विशेष समस्याओं और अपने परिवारों का अस्तित्व बनाए रखने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को भी रेखांकित किया गया। अतः समझौते से संबद्ध सभी सदस्य राष्ट्रों ने ग्रामीण महिलाओं के लिए समुचित उपाय करने पर सहमति जतायी, ताकि वे ग्रामीण विकास में भागीदारी कर सकें और उसका लाभ उठा सके। अनेक समझौतों और समयबद्ध लक्ष्यों के बावजूद दुनियाभर से प्राप्त ऑकडों से पता चलता है कि आज भी महिलाओं की स्थिति दयनीय है, जो चिन्ता की बात है।

१. प्रौढ निरक्षरों में दो-तिहाई महिलाएँ हैं।
२. विश्व के निर्धनों में ७० प्रतिशत महिलाएँ हैं। भारत में भी अनेक क्षेत्र हैं जहाँ संगठित प्रयासों की आवश्यकता है।
३. किशोर-अपचार में लिंग अनुपात में तेजी से गिरावट आई है।
४. मातृ मृत्यु-दर और शिशु मृत्यु दर अत्यंत ऊँची है।
५. साक्षरता में सभी स्तरों पर लिंग सम्बन्धी अंतराल बहुत गहरा है।
६. बालिकाओं में स्कूली शिक्षा बीच में ही छोड़ने की दर अधिक ऊँची है।
७. महिलाओं के खिलाफ अपराध की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं।

महिलाएँ किसी भी देश की आबादी का आधा हिस्सा हैं और उनकी अनदेखी करके वास्तविक विकास को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने महिलाओं को संविधान में प्रदत्त समानता का दर्जा देने के लिये विभिन्न प्रकार के लिंग सम्बन्धी भेद-भाव को दूर करने की दिशा में प्रयास शुरू किए।

महिला उन्मुखी महत्वपूर्ण नीतियाँः सभी योजना दस्तावेज में महिला-उन्मुखी और महिला सम्बन्धित नीतियाँ घोषित की गई। पांचवी पंचवर्षी योजना (१६७४-७८) से महिला कल्याण सम्बन्धी मुद्दों को लेकर वातावरण भी बना है, जिसमें महिलाओं से सम्बन्धित चिन्ताओं को रेखांकित किया जा रहा है। महिलाओं के लिये १६७६ में तैयार की गयी राष्ट्रीय कार्ययोजना महिलाओं के लिये एक मार्गदर्शक दस्तावेज बन गया है। महिलाओं के विकास के लिये एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर बल देने के लिये महिलाओं के एक राष्ट्रीय संदर्श योजना (१६८८-२०००) तैयार की गयी महिलाओं को अधिकार प्रदान के लिये राष्ट्रीय पोषण नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में उनके लिये विशेष प्रावधान किये गए। इनमें से कुछ नीतियाँ इस प्रकार हैं-

१. विधायिका में महिलाओं के लिये संसद और राज्य विधान सभाओं में कम से कम एक तिहाई सीटें आरक्षित करने के प्रयासों में तेजी लाना, ताकि निर्णय करने की प्रक्रिया में महिलाओं को समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जा सके।
२. महिला-उन्मुखी और महिला सम्बन्धित, दोनों ही क्षेत्रों में मौजूदा सेवाओं, संसाधनों बुनियादी सुविधाओं और जनशक्ति के प्रभावकारी अभिसरण के जरिये महिलाओं का अधिकार प्रदान करने के मामले में एक समांकित दृष्टिकोण अपनाना।
३. ''महिला घटना योजना'' की विशेष नीति अपनाना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अन्य सभी विकासात्मक क्षेत्रों से तीस प्रतिशत धन लाभ महिलाओं को मिल सके।
४. महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करना और इस तरह महिलाओं को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया की शुरूआत करना।
५. महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा के आसान और समान अवसर सुनिश्चित करना।
६. महिलाओं को आधुनिक व्यवसायों का अनिवार्य कौशल प्रदान करना, जिससे वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।
७. लघु उधोग क्षेत्र में महिला उद्यमियों के लिये विकास बैंक की स्थापना करके ऋण तक उनकी पहुँच बढ़ाना।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष-२००१ को महिला अधिकारिता वर्ष के रूप में मनाया गया उसी वर्ष महिलाओं को अधिकार प्रदान करने के बारे में राष्ट्रीय नीति विकसित की गई। इस नीति में स्वीकार किया गया है कि लिंग सम्बन्धी असमानता के कारण सामाजिक और आर्थिक ढांचे से सम्बद्ध है। नीति में इस बात की आवश्यकता रेखांकित की गयी है कि विकास प्रक्रिया में लिंग के परिप्रेक्ष्य को मुख्य धारा में लाया जाये। महिला अधिकारिता के बारे में राष्ट्रीय नीति के लक्ष्य इस

प्रकार हैं-

१. महिलाओं के पूर्ण विकास के लिये रचनात्मक और सामाजिक नीतियों के माध्यम से एक ऐसा वातावरण बनाना, जिसमें वे अपनी पूर्ण क्षमता हासिल कर सकें।
२. महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कानूनी और वास्तविक रूप में सभी मानवाधिकार होसिल हों।
३. राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में निर्णय लेने की प्रक्रिया में निर्णय लेने की महिलाओं की समान भागीदारी हो।
४. महिलाओं को स्वास्थ्य देखभाल, सभी स्थलों पर गुणवत्तायुक्त शिक्षा, व्यवसाय और व्यवसायिक मार्गदर्शन रोजगार तथा समान परिश्रमिक सुनिश्चित करना।
५. विधि व्यवस्था को मजबूत बनाना ताकि महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त किये जा सकें।
६. पुरूषों और महिलाओं दोनों की सक्रिय भागीदारी और सहयोग से समाज के नजरिये में परिवर्तन लाना और सामुदायिक प्रथाओं को बदलना।
७. विकास प्रक्रिया में लिंग-परिप्रेक्ष्य को मुख्य धारा में लाना।
८. महिलाओं और बालिकाओं के विरूद्ध सभी प्रकार की हिंसा समाप्त करना।
९. सभ्य समाज विशेष कर महिला संगठनों का निर्माण और उनकी भागीदारी को बढ़ावा देना।

यह लक्ष्य रखा गया था कि महिलाओं के लिये उच्च विधायिकाओं में सीटों के कोटा सहित आरक्षण जैसे रचनात्मक कदमों पर समयबद्ध आधार पर विचार किया जाएगा। विकास प्रक्रिया में महिलाओं की कारगर भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिये महिलाओं के अनुकूल कार्मिक नीतियाँ तैयार की जायेगी।

आर्थिक और सामाजिक अधिकारिता महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में हिस्सेदार बनाने के अलावा नीति के अन्तर्गत महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक अधिकारिता के साधनों को भी रेखांकित किया गया है। अक्सर यह देखा गया है कि महिलाओं को घोर गरीबी की स्थितियों का सामना करना पड़ता है जो पारिवारिक और सामाजिक भेद-भाव के कारण और भी बदतर हो जाती है। इसलिये यह जरूरी है कि वृहद् आर्थिक नीतियों और गरीबी उन्मूलन का ऐसी महिलाओं की जरूरतों और समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाये। पहले से चलाये जा रहे महिला उन्मुखी कार्यक्रमों के कार्यन्वयन में भी सुधार लाया जायेगा। उपभोग और उत्पादन के लिए ऋण तक महिलाओं की पहुँच बढाने के लिए नए लघु ऋण तंत्र और लघु वित्त-संस्थाओं की स्थापना की जायेगी तथा ऐसे मौजूदा संस्थानो को सुदृढ किया जाएगा। हालांकि कृषि और अनुषंगी क्षेत्रो मे महिलाएँ प्रमुख भूमिका अदा करती है, किन्तु उनके योगदान को मान्यता नही दी जाती। यह सुनिश्चित करने के संगठित प्रयास किए जाएँगे कि प्रशिक्षण, विस्तार और विभिन्न कार्यक्रमों का लाभ महिलाओं तक पहुँचे ताकि वे अपने कार्य क्षेत्र मे अधिक प्रभावकारी ढंग से काम कर संके। महिलाओं को मृदा संरक्षण सामाजिक वानिकी, डेयरी विकास और कृषि से सम्बन्ध अन्य व्यवसायों, जैसे- बागवानी, पशुपालन सहित मवेशी पोल्ट्री और मछली पालन जैसे उद्योगो मे प्रशिक्षण देने के कार्यक्रमों का विस्तार किया जाएगा।

महिलाओं को प्रगति हेतु सेवाएँः विश्व विकास रिपार्ट २०१२ लैंगिक समता एवं विकास पर प्रकाशित की गयी है। इसमें कहा गया है कि विकास परिणामों और नीति निर्णयन के लिये लैंगिक समानता की दृष्टि से प्रयास पर लगातार ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि लैंगिक समानता विकास का केन्द्रीय उद्देश्य है और लैंगिक समानता एक चुस्त अर्थशास्त्र (Smart Economics) भी है।[४] क्यों इसमें उत्पादकता बढ़ती है और अन्य विकास परिणामों में सुधार होता है, जिसमे भावी पीढ़ी का कल्याण भी शामिल है। अतः महिलाओं की प्रगति हेतु निम्नलिखित सेवाओं का विस्तार किया जाए।

१. बच्चों की देखभाल की सुविधाओं, जिनमें कार्यस्थल पर शिशु गृहों और शिक्षा संस्थानों की व्यवस्था शामिल है, वृद्ध एवं विकलांग के लिए आश्रम जैसी सहायता सेवाओं का महिलाओं के लिए विस्तार किया जाएगां। इससे ऐसा सक्षम वातावरण बनाने में मदद मिलेगी, जिसमे महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी भागीदारी अदा कर सकें।
२. जहाँ तक महिलाओं की सामाजिक अधिकारता का प्रश्न हैं, इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य पोषण, पेयजल, स्वच्छता आवास और पर्यावरण ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर ध्यान दिया जायेगा। महिलाओं के खिलाफ हिंसा की रोकथाम और बालिकाओं के अधिकरों की रक्षा को भी नीति योजना के केन्द्र मे रखा गया है।
३. महिलाओं के स्वास्थ्य मे बारे में एक समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाएगा। शिशु मृत्यु दर में कमी लाने को वरीयता दी जाएगी। महिलाओं की पहुँच एक व्यापक कम लागत वाली और गुणवत्ता युक्त स्वास्थ्य देखभाल सेवा तक होनी चाहिए।

४. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार की हिंसा-चाहे वह शारीरिक हो या घरेलू और सामाजिक स्तर पर, के साथ सख्ती से निबटा जायेगा। बालिका के साथ सभी प्रकार के भेद- भाव और उनके अधिकारों का उल्लंघन रोकने के हर संभव प्रयास किए जाएँगे और इनमें परिवार के भीतर और बाहर निवारक एवं दंडात्मक दोनों तरह के उपाय शामिल होंगे।

५. ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थान महिला अधिकारता की दिशा मे पहले से कार्यरत है। जहाँ तीनो स्तरों पर सदस्यों और अध्यक्षों के कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के विभिन्न कार्यक्रम तैयार करने और उन्हें लागू करने का दायित्व पंचायतों को सौंपा गया है।

६. आज विश्व के हर कोने मे महिलाओं के समुचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है। इसी आधार पर लोग २१वीं सदी को महिलाओ की सदी की संज्ञा से भी विभूषित करने लगें है। अब महिलाएँ हर क्षेत्र मे पुरूषों के साथ कदम से कदम मिलाकर अपनी अंतर्निहित क्षमता के बल पर आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरूष प्रधान समाज मे अपने अस्तित्व का एहसास दिलाने का प्रयास कर रही है।

चाहे विकसित देशों के उदाहरण लें या विकासशील देशों के, इस तथ्य को आज सभी को स्वीकार करना होगा कि महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को सुदृण बनाने के लिए आज कुछ-कुछ प्रयास हर जगह और हर स्तर पर किए जा रहे हैं। भारत ने भी संयुक्त राष्ट्र समझौते पर हस्ताक्षकारी के नाते कानून बनाने सहित अनेक कदम उठाए हैं ताकि महिलाओं का पूर्ण विकास और प्रगति सुनिश्चित करते हुए उन्हें पुरूषों के समान मानव अधिकार ओर मौलिक स्वतंत्रताएँ प्रदान करने की गारंटी दी जा सके। महिलाओं को अधिकार प्रदान करने मे महिला-उन्मुखी कार्यक्रमों के रचनात्मक नतीजे सामने आए है, फिर भी अभी बहुत कुछ करना है और वायदे निभाने हैं क्योंकि हम कुल आबादी का आधा भाग जो महिलाओं का है, उसकी उपेक्षा कर विकास का कोई सपना नहीं सजा सकते।[५] अतः लैंगिक समानता प्रगति एवं सामाजिक नाम का वास्तविक तात्पर्य यह है कि ऐसे निर्णयों में अनिवार्यतः महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं को प्रभावित करते हैं। साथ ही यहॉ आर्थिक स्वतन्त्रता भी अनिवार्य है क्योंकि आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता के बिना अन्य प्रकार के आदर्श स्वतः ही धूमिल हो जाते हैं लेकिन यह सब कुछ पुरूषों और महिलाओं के परस्पर प्रेम और सहयोग से ही सम्भव है।[६] अतः नारी-पुरूष का सम्बन्ध द्वन्दात्मक न होकर योगात्मक बने, आखिर यह आदम की पसली का नहीं बल्कि पुरूष और प्रकृति, शिव और शक्ति व अर्द्ध नारीश्वर का देश है।

सन्दर्भ

१. विश्व आर्थिक फोरम रिपोर्ट- २००५।

२. सेन्सस ऑफ इण्डियॉ २०११ एण्ड इंडिया मंथली इकॉनोमिक डाईजेस्ट, इण्डियॉ रेजीडेंट मिशन, नई दिल्ली, पृ०-११, ए०डी०बी०, अप्रैल-२०१२।

३. योजना, २००४ पृ०-२५

४. रूद्र दत्त एवं के०पी०एम० सुन्दरम्, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', पृ० सं०-६५-७५

६. भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ) २००७, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ० सं०-४६६-५०७

६. ई० चन्द्रन, 'इंण्डियन इकॉनोमी', Cosmo Booking Pvt. Ltd, Ring Road, Naraian, New Delhi, पृ० सं०-B58-B68, 2007-08.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

आगरा सूबे का ग्रामीण समुदाय–17वीं शताब्दी एक अध्ययन

❑ शीतल देवी

मानव सभ्यता और चेतना के विकास के साथ इतिहास का क्षितिज भी लगातार फैलता जा रहा है और इस फैलते हुए क्षितिज में नये–नये आयाम इतिहास की विषयवस्तु बन रहे हैं जिनके कारण इतिहास लेखन में चुनौतियां भी निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। देश में २०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्षेत्रीय अध्ययन को प्रमुखता मिली थी और तब से बहुत से आधुनिक इतिहासकारों ने ग्रामीण समुदाय के इतिहास को लेकर अपनी लेखनी चलाई। मुगलकालीन ग्रामीण समुदाय को इरफान हबीब, डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड, के० के० त्रिवेदी जैसे आधुनिक इतिहासकारों ने अपने शोध का केन्द्र बिन्दु बनाया है। प्रस्तुत आलेख १७वीं शताब्दी में आगरा सूबा के एक ग्रामीण समुदाय के अध्ययन पर आधारित है।

मानव सभ्यता और चेतना के विकास के साथ इतिहास का क्षितिज भी लगातार फैलता जा रहा है और इस फैलते हुए क्षितिज में नये–नये आयाम इतिहास की विषय वस्तु बन रहे हैं जिनके कारण इतिहास लेखन में चुनौतियां भी निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। देश में २०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में क्षेत्रीय अध्ययन को प्रमुखता मिली थी और तब से बहुत से आधुनिक इतिहासकारों ने ग्रामीण समुदाय के इतिहास को लेकर अपनी लेखनी चलाई।

मुगलकाल में क्षेत्रीय इतिहास लेखन के कोई साक्ष्य नहीं मिलते। मुगलकालीन इतिहास लेखन का मुख्य आकर्षण दरबारी इतिहासकारों द्वारा इतिहास लेखन की परम्परा थी। औरंगजेब के शासनकाल तक सभी मुगल बादशाहों ने इन इतिहासकारों को नियुक्त किया। ये इतिहासकार शासकों व अमीरों के शौक और उनकी विलासिता की तरफ ज्यादा आकर्षित होते थे जिसके कारण क्षेत्रीय अध्ययन उनसे कोसों दूर था।

मुगलकालीन ग्रामीण समुदाय को इरफान हबीब, डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड, के० के० त्रिवेदी जैसे आधुनिक इतिहासकारों ने अपने शोध का केन्द्र बिन्दु बनाया है। १७वीं शताब्दी में आगरा के गांवों में अनेक जातियां मौजूद थीं जिनमें हिन्दू व मुस्लिम दोंनों शामिल थे। यह ग्राम समुदाय कृषक व गैर–कृषक वर्ग से मिलकर बना था और इस समाज में उच्च से लेकर निम्न जाति तक के लोग शामिल थे। समाज में सबसे ऊँचा स्थान ब्राह्मणों का होता था और इसके बाद बनिया, बंजारा, जाट, राजपूत, लुहार, कुम्हार व अन्य जातियां आती थीं।

ब्राह्मणः ब्राह्मणों को समाज में सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त था। यह जाति सबसे श्रेष्ठ मानी जाती थी। ये लोग मन्दिरों में रहते थे और विवाह सम्पन्न कराते थे।[१] इनका कार्य शिक्षा देना व धार्मिक कर्मकाण्ड करना था। ये माथे पर तिलक धारण करते थे और पिसा हुआ पीले रंग का पाऊडर एक बक्से में डालकर अपने साथ रखते। जब भी वे गलियों से गुजरते तो रास्ते में मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के माथे पर इस पीले पाऊडर का तिलक लगा देते थे।[२] फ्रांसिस्को पेल्सर्ट आगरा के ब्राहणों का वर्णन करते हुए कहता है कि आगरा के कुछ ब्राह्मण निष्कपटी थे। ये ब्राह्मण खगोलशास्त्र व अन्य कार्यो में दक्ष होते थे। गरीब लोग उनमें ज्यादा विश्वास करते थे। उनके हाथ में एक किताब रहती थी व जब वे गलियों से गुजरते तो उनके आस–पास लोगों की भीड़ जमा हो जाती थी।[३] ब्राह्मण अपने माथे पर तिलक धारण करते हैं व सुनहरे किनारे की धोती व बहुमूल्य धातु की खूंटी वाली पादुकाएं पहनते है।[४] थॉम्स बावरे भी ब्राह्मणों द्वारा तिलक धारण करने की बात स्वीकारता है व कहता है कि ये ब्राह्मण मूर्ख व आज्ञानी होते है जो धर्म के प्रति स्वयं को न्यौछावर कर देते है। उनका मानना है कि भगवान एक है, आत्मा अजर–अमर है और यह पुनर्जन्म लेती रहती है।[५] मुगल बादशाह जहांगीर अपनी आत्मकथा तुजुक–ए–जहांगीरी में बताते हैं कि जब ब्राह्मण के घर लड़का पैदा होता था तो ७ साल तक उसे ब्राह्मण नहीं कह सकते थे। जब वह ८ साल का होता तब ब्राह्मणों की सभा बुलाई जाती जिसमें कुछ संस्कार किए जाते। मूंज की घास का जिसे 'मुंजी' कहते थे, धागा उच्चारण करके तैयार किया जाता था। यह पतला बटा हुआ धागा होता था जिसे बालक के दाहिने कन्धे पर डाला जाता था। वेदों का उच्चारण होता व अन्य क्रियाएं की जातीं तब जाकर उस बालक को ब्राह्मण की संज्ञा दी जाती थी। ये ब्राह्मण ३–४ गज का एक सूती वस्त्र अपने शरीर से लपेटते

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

थे जिसे साधारणतः लुंगी कहा जाता था। यह कमर के पीछे l sykdj igukt krk FkkA[6] डी लॉयट बताते हैं कि उनकी सिर्फ एक पत्नी होती है। पहली पत्नी के मरने के बाद वे दूसरा विवाह नहीं कर सकते थे जबकि पति की मृत्यु होने पर विधवा स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी।[7]

राजपूत : आगरा के निकट प्रत्येक गांव में भदौरिया नामक राजपूत जाति रहती थी। ये किसान होते थे और अकबराबाद के नजदीक के इलाकों के जमींदार भी। डी लॉयट राजपूत जाति के बारे में बताते हैं कि ये मूर्तिपूजक व बहुत ताकतवर होते हैं। इनका प्रत्येक गांव में एक किला होता था। ये लोग जमींदारों को बिना लड़े राजस्व नहीं देते थे। वे जब खेतों में हल चलाते तो उनके कन्धों पर बन्दूक रहती थी। ऐसा माना जाता है कि जिनके पास बन्दुक होती थी वे उच्च वर्ग के किसान होते थे क्योंकि तलवार भी एक हद तक सम्पन्नता का प्रतीक मानी जाती थीं।[8] राजपूत जाति ख्याति प्राप्त और युद्धप्रिय थी। इनके पास खुद के घोड़े होते थे।[9] आइने-अकबरी से भी हमें भदौरिया नामक राजपूत जाति के प्रमाण मिलते हैं जो हर समय दंगे-फसाद करती रहती थी।[10]

जाट : जाट का अभिप्रायः पंजाबी भाषा में 'ग्रामीण' (गंवार) होता हैं।[11] मनूची ने जाटों का वर्णन करते हुए उन्हें ग्रामीण कहा हैं।[12] दिल्ली व आगरा के बीच (अकबराबाद) के गांवों में खेतिहर किसान जाट जाति के ही थे।[13] मुगल शासन के साथ टकराने वाला सबसे पहला समूह जाटों का ही था जो आगरा व दिल्ली क्षेत्र के थे। इंसाफ व भाईचारे की भावना से ओत-प्रोत इन जाटों ने सरकार से टक्कर ली और अपने दुर्गम क्षेत्रों का लाभ उठाकर विद्रोह भी किए थे।[14]

बनिया : थेवनॉट आगरा में बनिया नामक जाति का उल्लेख करते हुए बताता है कि हिन्दू, मुस्लिम व ईसाई ये तीनों ही बनिया होते थे और ये बहुत अच्छी किस्म की चीजें रखते थे।[15] बर्नियर आगरा के बनियों को छोटे व्यापारी की संज्ञा देता है।[16] आगरा में इनकी ५-६ दुकानें होती थीं। ये अपनी छोटी-छोटी दुकानों में चावल, मक्खन, व सब्जियां बेचते थे। कुछ बनिया लोग सर्राफ या बैंकर का भी काम करते थे।[17] बनिया की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी अपना सिर मुंडवा लेती थी और जब तक वह जीवित रहती तब तक आभूषण नहीं पहनती थी।[18]

बंजारा : बंजारा शब्द संस्कृत के बनिज शब्द से निकला है जिसका अर्थ है एक व्यापारी या सौदागर। आमतौर पर बंजारा हिन्दू व मुस्लिम दोनों होते थे व अपने परिवार व सामान के साथ घूमते रहते थे। बंजारों के इस समूह को 'टाण्डा' कहा जाता था।[19] प्रत्येक टाण्डा का एक प्रधान होता था। यह जाति बरसात के मौसम में व्यापार नहीं करती थी।[20] बंजारे शहरी व ग्रामीण व्यापार की महत्त्वपूर्ण कड़ी होते थे। वे वस्तुओं को सस्ते भाव में खरीदते व मंहगे भाव में बेचकर लाभ कमाते थे। इससे गांव वालों को भी अपनी आवश्यकता की वस्तुएं आराम से मिल जाती थीं। जहांगीर अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि बंजारों के पास एक हजार या इससे भी अधिक बैल होते हैं। ये अलग-अलग शहरों से सामान लाकर बेचते हैं।[21]

कुम्हार : किसी भी यात्री या इतिहासकार ने साधारण प्रजा के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले बर्तनों में धातु के बर्तनों का उल्लेख नहीं किया। इसी कारण लोग मिट्टी के बर्तनों का बड़े पैमाने में प्रयोग करते थे। इन बर्तनों को बनाने का काम कुम्हार नामक जाति करती थी। प्रत्येक गांव में कुम्हार नामक जाति होती थी। ये बर्तन बनाने के लिए प्रशियन व्हील का प्रयोग करते थे लेकिन फिर भी ये बर्तन अपरिष्कृत ढ़ंग के ही होते थे।[22] कुम्हारों द्वारा बनाए जाने वाले ये मिट्टी के बर्तन शीशे से ज्यादा बारीक व कागज से भी ज्यादा हल्के होते थे।

सुनार, लुहार : हमें सुनार व लुहार का काम एक ही व्यक्ति द्वारा किए जाने के प्रमाण मिलते हैं लेकिन ये दोनों अलग-अलग जातियां होती थीं और इनके कार्य भी बंटे होते थे। लुहार लोहे से सम्बन्धित व सुनार सोने, चांदी, कौड़ियों व सिक्कों से सम्बन्धित कार्य करता था। लुहार औजार बनाता व उनकी मरम्मत करता था। सुनार जाति का मुख्य कार्य आभूषण बनाने का था। इन्हें प्राचीन काल में स्वर्णकार (हिरण्यकार) कहते थे। सिक्के बदलने व सिक्कों और कौडियों के बदले चाँदी का लेन-देन करने के लिए किसान अपने स्थानीय सुनार की सहायता लेता था।[23] पेल्सर्ट भी आगरा में सुनार व लुहार नामक जाति के होने का प्रमाण देता है।[24] शायद सुनार का आभूषण बनाने का काम बहुत कम होता होगा क्योंकि गांव में साधारण महिलाएं सोने-चाँदी के आभूषणों का प्रयोग नहीं करती थीं लेकिन साहूकार या उच्च घरानों की महिलाएं इन धातुओं के आभूषणों को प्रयोग में लाती होंगी।

तेली : तेल अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में निकाला जाता था। इरफान हबीब आगरा के गांवों में तेल निकालने वाली जाति 'तेली' का वर्णन करता हैं। हबीब बताता है कि ये लोग बैलों की सहायता से तेल निकालते थे।[25] तेल निकलने के बाद बचा हुआ उत्पाद जिसे 'खल्ली' कहते थे उसे जानवरों को खिला दिया जाता था।

चमार : चमार गांव की सबसे नीच व दास-नौकर जाति समझी जाती थी। वह मरे हुए जानवर की खाल निकालता व

उनसे रस्सियां व चड़स बनाता। खेतों में खाद ले जाने के अतिरिक्त वह अन्य प्रकार के कार्य भी करता था परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि प्रत्येक क्षेत्र में चमार के कार्य एक समान हों। क्षेत्रीय विभिन्नता व आवश्यकता के अनुसार उसके कार्यों में फेर-बदल हो सकता था।[२६]

धोबी, नाई : गांव में धोबी का कार्य कपड़े धोना व नाई का कार्य बाल काटने का होता था। स्थानीय नाई या विशेष संदेशवाहक द्वारा सम्बन्धियों व मित्रों को विवाह के समय निमन्त्रण भी भेजे जाते थे।[२७]

रंगरेज : रंगाई और छपाई भी विशेषीकृत व्यवसाय माने जाते थे। कपड़ा रंगने वाले को रंगरेज कहा जाता था और उन्हें एक अलग जाति माना जाता था। आमतौर पर रंगने के लिए सब्जियों के रंगों का प्रयोग किया जाता था। लाल रंग चै या लाख से और नीला रंग नील से प्राप्त किया जाता था। केवल पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में नील की खेती की जाती थी। नील की उत्कृष्ट कोटि आगरा के निकट बयाना में पाई जाती थी।[२८] नील से रंग निकालना काफी आसान था और किसान ही नील निकालने कार्य करते थे।

इस तरह ग्राम समुदाय एक क्रियाशील इकाई थी जहां पर प्रत्येक जाति के काम धन्धे बंटे हुए थे। प्रत्येक जाति अपने-अपने कार्य से जानी जाती थी। ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषता थी कामगारों के विभिन्न समूह के कार्य विशेष का समन्वयपूर्ण एकीकरण।

सन्दर्भ

१. लॉयट डी, 'द एम्पायर ऑफ द ग्रेट मोगोल', अनु०जे०एस० होयलैंडर एंड एस० एन० बेनर्जी, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १६२८, द्वितीय संस्करण १६७४, पृ० ८४

२. फिच राल्फ, 'अर्ली ट्रैवल्स इन इंडिया', सं० विलियम फॉस्टर, लो प्राईस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पुनर्मुद्रित २००७, पृ० १६

३. पेल्सर्ट फ्रांसिस्को, 'जहांगीर्स इंडिया, रेमोन्स्ट्रैटी ऑफ फ्रांसिस्को पेल्सर्ट', अनु० डब्ल्यू० एच० मोरलैंड एण्ड पी० गाईल, एच० हैफर एण्ड सन्स लि०, कैम्ब्रिज, १६२५, पृ० ७७

४. अशरफ के० एम०, 'हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ', अनु० डॉ० के० एस० लाल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, २००६, पृ० २१८

५. बावरे थॉम्स, 'ए ज्योग्राफिकल एकाऊंट ऑफ कंट्रीज राऊंड द वे ऑफ बंगाल (१६६६-१६७६)', अनु० सर रिचर्ड करनॉक टैम्पल, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६६७, पृ० १५-३२

६. जहांगीर नुरूद्दीन, 'द तुजुक-ए-जहांगीरी', अनु० अलैक्जेण्डर रोजर्स, सं हेनरी बेवरीज, भाग-१, लो प्राईस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००६, पृ० ३५७-५८

७. लॉयट डी, पूर्वोक्त, पृ० ८७

८. त्रिवेदी के० के०, 'आगरा इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल प्रोफाइल ऑफ ए मुगल सूबा (१५८०-१७०७)', रवीश पब्लिशर्स, पुणे १६६८, पृ० १११

६. बावरे थॉम्स, पूर्वोक्त, पृ० ८३

१०. फजल अबुल, 'आईन-ए-अकबरी', अनु० एच० ब्लॉकमैन, खण्ड-१, क्राऊन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६८८, पृ० ३४१

११. हबीब इरफान, 'भारतीय इतिहास में मध्यकाल', अनु० रमेश रावत, ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्रा० लि०, नई दिल्ली, २००२, पृ० १०३

१२. मनूची निकोलो, 'स्टोरिया-डो-मोगोर (१६५३-१७०८)', अनु० विलियम इरविन, खण्ड-१, पब्लिशड एडिशन्स इंडियन्स, कलकत्ता, १६६५, पृ० १३२

१३. हबीब इरफान, पूर्वोक्त, पृ० ५७

१४. चन्द्र सतीश, 'मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति (८-१७वीं शताब्दी तक)', अनु० नरेश नदीम, ओरिएंट ब्लैकस्वान, २०१०, पृ० ३३३

१५. थेवनॉट, 'ए वॉयेज राऊण्ड द वर्ल्ड बाए थेवनॉट, सं० सुरेन्द्रनाथ सेन, इंडियन ट्रैवल्ज ऑफ थेवनॉट एण्ड करेरी', नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, १६४६, पृ० ५३

१६. बर्नियर फ्रांसिस्को, 'ट्रैवल्स इन द मुगल एम्पायर (१६५६-१६६८)', अनु० आर्चिवाल्ड कॉन्सटेबल, विसेंट स्मिथ, एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६६०, पृ० २८५

१७. बावरे थॉम्स, पूर्वोक्त, पृ० २४

१८. फॉस्टर विलियम, 'निकोलस विथिगंटन, अर्ली ट्रैवल्स इन इण्डिया', लो प्राईस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००७, पृ० २१६

१६. चौधरी तप्पनराय एवं इरफान हबीब, 'द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (१२००-१७५० ई०)', खण्ड - १, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, २००७, पृं० ३४२

२०. ग्रोवर बी० आर०, 'लैंड राईटस, लैंडेड हायरार्की एण्ड विलेज कम्यूनिटी ड्यूरिंग द मुगल ऐज', खण्ड-१, सं० अमृता ग्रोवर, अंजू ग्रोवर, के० सी० दुआ, लो प्राईस पब्लिकेशन, दिल्ली, २००५, पृ० ७६

२१. जहांगीर नुरूद्दीन, पूर्वोक्त, पृ० २३३

२२. ग्रोवर बी० आर०, पूर्वोक्त, पृ० ४५

२३. अशरफ के० एम०, पूर्वोक्त, पृ० २१

२४. फ्रांसिस्को पेल्सर्ट, पूर्वोक्त, पृ० ६०

२५. हबीब इरफान, 'द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया (१५५६-१७०७ ई०)' एशिया पब्लिशिंग हाऊस, न्यूयार्क, १६६३, पृ० ५८-५६

२६. सक्सेना आर० के०, 'मध्यकालीन इतिहास के आर्थिक पहलू (१२०६-१७०७ ई०)' पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, १६६६, पृ० ११

२७. अशरफ के० एम०, पूर्वोक्त, पृ० १८५

२८. लॉयट डी, पूर्वोक्त, पृ० ४५

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

तंत्र साधना में पंचमकार के प्रति समाज का दृष्टिकोण

❑ डा० गरिमा

वर्तमान समय में तंत्र का जो स्वरूप सामने है वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है क्योंकि आज समाज में तंत्र के नाम से लोगों के मन मस्तिष्क में एक ही छवि है मात्र जादू टोना, दूसरों का अहित करने वाली क्रिया। जो उच्च कोटि का स्वरूप तंत्र साधना का था वह अब नहीं रहा है, क्योंकि तंत्र का प्रयोग लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए करते हैं फिर चाहें वो गलत ही क्यों न हो। एक सबसे बड़ा कारण यह भी रहा कि लोगों में तंत्र का व्यापक प्रचार न होना क्योंकि तंत्र की जानकारी लोगों के पास थी ही नहीं जिससे कि लोगों के मन में भ्रम और शंकाएं तंत्र के प्रति आने लगीं। यदि इस साधना का ज्ञान उन तक पहुँचता तो यह दयनीय स्थिति शायद न आती।

तंत्र साधना एक ऐसी साधना है, जिससे दूसरों के मन को प्रभावित किया जा सकता है और उसकी गतिविधियों को अपनी इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है जैसे अस्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ बनाया जा सकता है। रोग, अनिष्ट, गृह, नजर आदि किसी भी गंभीर समस्या को इस साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है। मगर कुछ लोगों ने उसका गलत प्रयोग किया जैसे मारण, मोहन, वशीकरण आदि जिससे कि लोग तंत्र को गलत समझने लगें। तंत्र साधना में एक साधना पंचमकार नाम से प्रचलित है- उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण को उजागर करने का प्रयास है प्रस्तुत आलेख।

तंत्र साधना एक ऐसी साधना है, जिससे दूसरों के मन को प्रभावित किया जा सकता है और उसकी गतिविधियों को अपनी इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है जैसे अस्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ बनाया जा सकता है। रोग, अनिष्ट, गृह, नजर आदि किसी भी गंभीर समस्या को इस साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है। मगर कुछ लोगों ने उसका गलत प्रयोग किया जैसे मारण, मोहन, वशीकरण जिससे कि लोग तंत्र को गलत समझने लगें। उनके लिए तंत्र दूसरों का बुरा करने वाली क्रिया मात्र रह गया। पं. श्री राम शर्मा आचार्य कहते हैं कि ''तंत्र कोई बुरी चीज नहीं है, वह विशुद्ध विज्ञान है, वैज्ञानिक लोग यंत्रों और रासायनिक पदार्थों की सहायता से प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों का उपयोग करते हैं। तांत्रिक अपने को ऐसी रासायनिक एवं यांत्रिक स्थिति में ढाल लेता है कि अपने शरीर और मन को एक विशेष प्रकार से संचालित करके प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों का मनमाना उपयोग करें।[१]

तंत्र साधना में एक साधना पंचमकार नाम से प्रचलित है। इस साधना के प्रति भी लोगों में गलत धारणायें घर कर गयी हैं जबकि वास्तविकता यह नहीं है। पंचमकारों को तंत्र साधना में आध्यात्मिक मकार की संज्ञा दी गयी है जो कि योग साधकों को मोक्ष प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती है। तंत्र योग विद्या के विशिष्ट अध्ययन में पंचमकार से सम्बन्धित अनुकल्प का वर्णन प्राप्त होता है जिसका अर्थ यहाँ पर उससे है जो किसी वस्तु के बदले में ग्रहण की जाये। पंचमकार है- मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन।

१-मद्यसाधना- सामान्य भाषा में मद्य का अर्थ मदिरा या शराब से लिया जाता है परन्तु तंत्र योग में मद्य का अर्थ मदिरा से नहीं बल्कि उसके अनुकल्प नारियल पानी आदि से है। तंत्र साधक की सुरा के विषय में तंत्र महाविज्ञान में बतलाया गया है कि ''हे कुल नायिके उसकी विधि का श्रवण करो। गुड़ और अदरक के रस को मिलाने से ब्राह्मण की सुरा बनती है।''[२] मद्य का अर्थ बताते हुए रमेश चन्द्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ''हे पार्वती ब्रह्मरन्द्र से जो अमृत धारा क्षरित हो रही है उसका पान करने से साधक आनन्दमय हो जाता है इसी का नाम मद्य साधना है।''[३]

२- मांस साधना- शास्त्रों में कहीं पर भी मांस आदि का वर्णन नहीं मिलता इसको भी लोगों ने गलत दृष्टिकोण से विख्यात किया। महाभारत के शान्ति पर्व में बतलाया गया है कि ''मांस से हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती है, अधर्म की वृद्धि होती है, दुःख की उत्पत्ति होती है इसलिए मांस का त्याग करना ही उपयुक्त है।''[४] जैसे मद्य की तरह इसका भी अनुकल्प बताया गया है। इसके विषय में पं. श्री राम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि ''मांस के स्थान पर लवण, अदरक, गेहूँ, लहसुन से पूजा विधान बताया है।''[५]

३- मत्स्य साधना पंचमकार की तीसरी साधना है मत्स्य जिसका सामान्य अर्थ है मछली परन्तु यहाँ पर भी इसका अर्थ

❑ योग विभाग, साहू राम स्वरुप महिला महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

मछली न होकर इसका अनुकल्प लिया गया है। आचार्य श्री के दृष्टिकोण से देखें तो मत्स्य शब्द बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके नाम से एक अलग पुराण भी लिखा है। मत्स्य पुराण। इसमें सृष्टि रचना के कारण आदि के साथ-साथ एक लाख मत्स्य को भी बतलाया गया है वहाँ मत्स्य का अर्थ एक प्रकार का प्राण बतलाया गया है मत्स्य साधक के विषय में आचार्य श्री कहते हैं कि ''गंगा यमुना (इडा पिंगला) के भी दो मत्स्य (श्वास प्रश्वास) विचरण करते हैं। प्राणायाम के द्वारा जो इनका भक्षण करता है उसका नाम मत्स्य साधक है।''६

४- मुद्रा साधना- मुद्रा का नाम आते ही हमारे मस्तिष्क में एक ही छवि बनती है, वह है पैसा, रूपया। परन्तु दूसरी मुद्रा को हम जानते हैं योग के नाम से। इसमें अनेक मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है। लेकिन तंत्र में मुद्रा का तात्पर्य चावल, धान आदि से है जैसे कि योगिनी तंत्र में कहा गया है कि ''भ्रष्ट धन्यादि अर्थात् जो भुने हुए चर्वणीयदृव्य है उन्हीं को मुद्रा कहते हैं''[७] कहीं कहीं मुद्रा का अर्थ नवयुवती से भी लिया जाता है जो कि गलत है। शर्मा जी मुद्रा के विषय में कहते हैं ''मुद्रा शब्द मुद्र धातु से बना है, जिसका अर्थ प्रसन्न करना। उपासना में इसका नामकरण इसलिए किया गया है क्योंकि इससे देवताओं को प्रसन्नता होती है।''[८]

५- मैथुन साधना-जब मैथुन की बात आती है तो साधारण भाषा में स्त्री-पुरूष का मिलन ही मैथुन कहा जाता है लेकिन तंत्र में मैथुन का अर्थ स्त्री पुरूष के मिलन से नहीं है इस सन्दर्भ में पं. श्री राम शर्मा का मानना है कि ''स्त्री से अभिप्राय कुण्डलिनी शक्ति से है, जो हमारे अन्दर सोई पड़ी है इसका स्थान मूलाधार है। सहस्त्रार में शिव का स्थान है। इस शिवशक्ति का मिलन ही वास्तविक मिलन अथवा मैथुन है।''[९]

मैथुन के अनुकल्प के रूप में बताया गया है कि विधि पूर्वक पुष्पों को अर्पित करना। हमारे शास्त्रों में मैथुन साधना का बहुत ही उच्च स्तरीय अर्थ बताया गया है परन्तु सामान्य जन ने इसको गलत अर्थ में ही लिया। तंत्रसार में इस संदर्भ में कहा है कि ''पराशक्तियों के साथ आत्मा के विलास-रस में निमग्न रहना ही मुक्त आत्माओं का मैथुन है यहां किसी स्त्री इत्यादि का गृहण करना नहीं है।''[१०]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पंचमकार साधना का जो वास्तविक अर्थ है उसे जानने के बाद शायद ही कोई होगा जो इस तंत्र साधना को श्रद्धा की दृष्टि से न देखे जो भ्रान्तियां उत्पन्न हुई थीं वे हमारी अज्ञानता के कारण और गलत प्रचलन के कारण हुई और शब्दों के सीधे अर्थ लगाने से हुआ। इस संदर्भ में आचार्य श्री लिखते हैं कि ''वास्तव में तंत्र बहुत उच्च्य स्तर के ग्रंथ हैं। पंचमकारों से उनको बदनाम करना ठीक नहीं, उनके अलंकारिक रहस्यों को समझना अभीष्ठ है।''[११] अरूण कुमार पंचमकार का रहस्य बतलाते हुए लिखते हैं कि ''पंचमकार का विषय अत्यन्त गंभीर और रहस्यमय है बहिः साधना में पाँच भौतिक तत्वों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। मांस अग्नि तत्व प्रधान है, मदिरा, पृथ्वी, तत्व प्रधान है, मुद्रा, आकाश तत्व प्रधान है तात्विक दृष्टि से पंचम महाभूत तत्वों पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से पंचमकारों को साधना में स्वीकार किया जाता है।''[१२]

शोध प्रारूपः लोग पंचमकार साधना के विषय में कितना जानते हैं उनकी दृष्टि में यह साधना कैसी है इसका अर्थ/स्वरूप क्या हैं इसका आनुभविक अध्ययन करने के लिए नाथ नगरी के रूप में प्रख्यात उ.प्र. के बरेली महानगर का चयन किया गया। पुनः बरेली की पशुपति विहार कालोनी से सविचारपूर्ण निदर्शन विधि की सहायता से १०० लोगों का चयन किया गया जो प्रस्तुत अध्ययन के सूचनादाता हैं। सूचनादाताओं से सूचना संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया। इसके लिए एक अनुसूची तैयार की गयी जिसमें इस साधना से सम्बन्धित १८ प्रश्न सम्मिलित थे। सूचनादाताओं द्वारा दिये गये उत्तरों का विश्लेषण एवं परिणाम निम्नवत है।

उपलब्धियाँ

१- सूचनादाताओं से पूछा गया पहला प्रश्न था **''क्या पंचमकार साधना से हिंसा को बढ़ावा मिला''** अधिकांश (७४ प्रतिशत) लोगों ने हाँ में उत्तर दिया क्योंकि जनमानस में पर्याप्त जानकारी का अभाव रहा। मात्र २६ प्रतिशत लोगों ने ही इसका नकारात्मक उत्तर दिया अर्थात् जिन्हें पंचमकार की सही जानकारी थी। सामान्यता लोगों को इस विषय में बिल्कुल भी जानकारी नहीं है परिणामतः शब्द का गलत अर्थ ले लेते हैं इसलिए पंचमकार को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। आचार्य श्री इस साधना के विषय में बताते हैं कि ''वास्तव में तंत्र बहुत उच्चस्तर के ग्रन्थ हैं। पंचमकारों से उनको बदनाम करना ठीक नहीं है। उनके अलंकारिक रहस्यों को समझना अभीष्ट है।''[१३]

२- प्रश्न संख्या २ के आधार पर एक भी सही उत्तर नहीं मिला। प्रश्न था **''पंचमकार साधना में मद्य क्या है''** इसका एक भी उत्तर सही नहीं मिला। सामान्यजन तो मद्य को अपने-अपने स्तर से देखते हैं, यह लोग या तो मद्य को आदत के रूप में देखते हैं या अपने वर्चस्व

बचाने के रूप में, बहुत कम लोग हैं जो इसे औषधि के रूप में देखते हैं परन्तु सत्यता इनसे कहीं अलग है क्योंकि शास्त्रों में मद्य को अनुकल्प की संज्ञा दी गयी है। शास्त्रों में मद्य के विषय में कहा गया है कि ''ब्रह्मरन्ध्र सहस्र दल से जो सृवित होता है उसका पान करना ही मद्यपान है।''

३- तीसरा प्रश्न था **''समाज में मद्य के द्वारा महिलाओं और पुरूषों पर पड़ने वाला प्रभाव''** इसके अधिकांश (६८ प्रतिशत) उत्तर सही प्राप्त हुए। इसमें लोगों ने नकारात्मक प्रभाव मद्य का स्त्री पुरूषों पर बताया जो सत्य भी है क्योंकि वर्तमान समय में लोगों का एक ही दृष्टिकोण है कि मद्य से आर्थिक, मानसिक, शारीरिक समस्याओं के साथ ही पारिवारिक क्लेश भी बढ़ता है। इसी कारण से अनगिनत परिवार बिखर गये, अनेक असहनीय पीड़ाओं, तिरस्कार आदि के रूप में नकारात्मक प्रभाव भी उठाने पड़े। इसका एक कारण यह भी रहा कि उन्हें इसकी वास्तविकता ज्ञात नहीं थी मद्य एक अनुकल्प है इसमें फलों का रस, गुड़ व अदरक का रस, नारियल पानी आदि आते हैं परन्तु समय के साथ-साथ इस शब्द का अर्थ लोगों ने स्वार्थ पूर्ति हेतु अपने अनुरूप बदल लिया तंत्र शास्त्रों में कहीं भी वर्तमान समय में प्रचलित मद्य प्रयोग का कोई वर्णन नहीं

४- चौथा प्रश्न था **''मद्य के अनुकल्प क्या हैं''** इसका मात्र २० प्रतिशत उत्तर सही मिले। सामान्य जन तो अनभिज्ञ है कि मद्य के कोई अनुकल्प भी हैं उन्हें ज्ञात है तो केवल इतना कि शराब के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं जो व्यक्ति अपने स्तर और शौक के अनुरूप ग्रहण करता है। आज इनकी भाषा में अनुकल्प होंगे रम, वाइन आदि जो कि शास्त्रों में कहीं पर भी प्रयोगार्थ नहीं है।

५- पांचवा प्रश्न था **''समाज में मांस का स्थान''** इसके केवल १० प्रतिशत उत्तर ही सही दिये गये। मांस का नाम आते ही लोगों के मन मस्तिष्क में एक ही छवि मांसाहारी भोजन, दूसरा बलि, कुछ लोग पूजा हेतु उपयोग में लाते हैं कुछ लोग शक्ति के लिए इसका प्रयोग करते हैं। मांस शब्द का सही ज्ञान न होने के कारण लोग इसे केवल भोजन हेतु भोज्य पदार्थ के रूप मे स्वीकारते हैं जबकि वास्तविकता इसके कहीं विपरीत है।

६- छठा प्रश्न था **''समाज में बलि का स्वरूप''** इसके अधिकांश (७२ प्रतिशत) से सही उत्तर प्राप्त हुए। समाज में बलि के अनेक स्वरूप व्याप्त है जैसे कि तिल की पूजा, सकट के रूप में मनायी जाती है इस पर्व पर तिल का बकरा बनाकर उसकी बलि का प्रावधान है ऐसे ही दुर्गा पूजा, काली पूजा में नारियल की बलि का प्रावधान है और इन सभी से भिन्न बालाजी दरबार में भैरव बाबा के समक्ष दही की बलि की बात सामने आती है इतने विकल्प होने के बाद भी समाज पशु बलि, नर बलि को अधिक मानता है।

७- l krokaiz'u Fkk **''बलि का पूजा में महत्व''** इसके ४१ प्रतिशत लोगों से सही उत्तर प्राप्त हुए। समाज में जब भी बलि के महत्व की बात आती है तो सभी जन के मस्तिष्क में एक ही बात आती है वह है कष्ट का निवारण। जबकि इसका वास्तविक स्वरूप है 'इष्ट देव का भोग' जिससे कि वो प्रसन्न हो और उनकी कृपा प्राप्त हो सके इसके स्वरूप अवश्य अलग है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि बलि में पशुबलि ही हो इसमें नकारात्मक दृष्टिकोण की भी बलि का प्रावधान है।

८- आठवां प्रश्न था **''बलि का वास्तविक स्वरूप''** इसके ४० प्रतिशत ने सही उत्तर दिए। इस विषय में सामान्य जन काफी हद तक जागरूक दिखे। क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर में लगभग लोगों ने बुराई का त्याग और नकारात्मक सोच को बलि का स्वरूप देकर जागरूक होने का प्रमाण दिया है।

९- नवां प्रश्न था **''समाज की दृष्टि में मत्स्य साधक का तात्पर्य''** इसका सही उत्तर देने वाले मात्र २० प्रतिशत थे। इस तंत्र साधना के विषय में भी प्रायः लोग अनभिज्ञ थे। लोगों ने प्रायः मछली पूजन ही बताया जबकि वास्तविकता यह है कि यह साधना हमारे पुराणों से सम्बन्धित है। यह शब्द सृष्टि की रचना का स्रोत है।

१०- दसवाँ प्रश्न था **''योग की दृष्टि में मत्स्य साधक का अर्थ''** इसके भी सही उत्तर मात्र २१ प्रतिशत थे। यहाँ भी लोगों की वास्तविक ज्ञान नहीं था। योग की दृष्टि से देखें तो यह साधना मत्स्येन्द्रनाथ परम्परा के उद्गम स्रोत के रूप में देख सकते हैं क्योंकि शास्त्रों में शिवजी योग का गूढ़ज्ञान माता पार्वती को तालाब किनारे देने, वहाँ एक मछली द्वारा ज्ञान सुनने और अगले जन्म में मत्स्येन्द्र नाथ के रूप में नाथ परम्परा का उद्गम की कहानी सामने आती है। यह ज्ञान भी विद्वानों के अतिरिक्त सामान्य जन की पहुँच से बाहर था।

११- ग्यारहवाँ प्रश्न था **''तंत्र की दृष्टि में मत्स्य साधक का अर्थ''** इसका सही उत्तर देने वाले लोग नगण्य (११ प्रतिशत) ही थे। तंत्र में इस साधक का तात्पर्य यह है कि

मत्स्य अर्थात् श्वास-प्रश्वास जो साधक प्राणायाम द्वारा विचरण भक्षण करता है, उसका नाम मत्स्य साधक है। इस विषय में पं. श्री राम शर्मा आचार्य कहते हैं कि "गंगा-यमुना (इडा पिंगला) को भी दो मत्स्य (श्वास-प्रश्वास) विचरण करते हैं। प्राणायाम के द्वारा जो इनका भक्षण करता है उसका नाम मत्स्य साधक है।"१४

१२- जब लोगों से पूछा गया कि **"मत्स्य पुराण में मत्स्य शब्द का अर्थ"** क्या है तो मात्र ३५ प्रतिशत लोग ही सही जबाब दे पाये इससे एक बात तो स्पष्ट हो गयी कि मत्स्य साधक के विषय में लोग जानते हों या नहीं परन्तु पुराणों में भी मत्स्य शब्द आया है यह भली-भाँति जानते हैं। मत्स्य पुराण में सृष्टि रचना के कारण आदि के साथ-साथ एक कारण मत्स्य को भी बतलाया गया है वहाँ मत्स्य का अर्थ एक प्रकार का प्राण बताया गया है।

१३- सूचनादाताओं से प्रश्न किया गया कि **"समाज की दृष्टि में मुद्रा क्या है"** तो सभी १०० लोगों का उत्तर था धन जो कि सत्य भी था।

१४- जब लोगों से पूछा कि **"तंत्र में मुद्रा का क्या अर्थ है"** तो मात्र १६ सही उत्तर ही प्राप्त हो सके। क्योंकि यहाँ पर भी लोगों को सही ज्ञान का अभाव था, जबकि तंत्र में मुद्रा का अर्थ चवर्णीय द्रव्य से है न कि किसी अन्य वस्तु आदि से।

१५- पन्द्रहवें प्रश्न के मात्र ११ उत्तर ही सही मिले। प्रश्न था **"नवयुवती की तुलना मुद्रा से कहां की जाती है"** तो लोगों ने तंत्र का ही नाम लिया जबकि सत्यता यह नहीं थी। समाज अज्ञानता के कारण नवयुवती की तुलना मुद्रा से लगा बैठा।

१६- अगला प्रश्न था **"समाज की दृष्टि में मैथुन"** इसमें ८० प्रतिशत लोगों ने स्त्री और पुरूष के मिलन को मैथुन बताया जो कि उनकी नजर में तो सही था परन्तु वास्तविकता यह नहीं थी।

१७- अगले प्रश्न के ६६ प्रतिशत उत्तर सही प्राप्त हुए प्रश्न था **"योग की दृष्टि में मैथुन"** यहाँ लोगों के विचार उपरोक्त से बिल्कुल अलग थे कभी-कभी लोग अधिक जानकारी होने के कारण भ्रमित भी हो जाते हैं परन्तु यहाँ पर लोगों ने मैथुन का अर्थ इन्द्रिय संयम बताया इसका विस्तृत वर्णन योग दर्शन के अष्टांग योग के प्रथम अंग यम के उपांग ब्रह्मचर्य में प्राप्त होता है इसके अनुसार "ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"१५

१८- अंतिम प्रश्न के ३५ उत्तर सही मिले प्रश्न था, **"तंत्र की दृष्टि में मैथुन"** यहाँ पर जनमानस का कुछ सकारात्मक दृष्टिकोण नजर आया कुछ लोगों ने ही सही जबाब दिया वह यह कि शिव शक्ति का मिलन ही मैथुन है।

निष्कर्ष- उपर्युक्त पूर्ण विवरण के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जन मानस में तंत्र के स्वरूप तक का सही ज्ञान नहीं है। तंत्र की वास्तविकता से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं तो तंत्र की पंचमकार साधना तो और भी गूढ़ और उच्चस्तरीय है। लोगों में तंत्र के प्रति बहुत ही नकारात्मक दृष्टिकोण व्याप्त है जिसका एक कारण उसका सही प्रचार-प्रसार का न होना भी है। यदि तंत्र का सही ज्ञान सभी को समक्ष रखा होता या उचित प्रसार-प्रचार किया होता तो शायद लोगों के दृष्टिकोण में यह विद्या विकृत रूप में नहीं होती। जबकि वास्तविकता यह है कि यह विद्या जनमानस के सर्वांगीण विकास के लिए थी न कि अहित करने के लिए। यह भी सत्य है कि जो इसे भ्रम, ढोंग मानते हैं उन्हें एक बार स्वयं देखना, समझना होगा तो ही पता लगा सकेंगे कि तंत्र गलत है या सही।

संदर्भ

१- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, 'गायत्री महाविज्ञान', युग निर्माण योजना प्रेस गायत्री तपोभुमि, मथुरा ,२००८ पृ. ३८७

२- पं. आचार्य श्री राम शर्मा, 'तंत्र महाविज्ञान', संस्कृति संस्थान वेदनगर, बरेली, भाग एक, १९६४ पृ. ३२

३- अवस्थी पं. रमेश चन्द्र, 'योग तन्त्र और साधना', विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी पृ. ६०

४- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, 'सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र', अखण्ड जयोति संस्थान मथुरा १९९८ पृ. ८, ३६

५- तंत्र महाविज्ञान पूर्वोक्त, पृ. ६०

६- अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका, अगस्त १९९२ पृ. ३२

७- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. ८,४२

८- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. २६४

९- वही, पृ. २७१

१०- वही, पृ. २७१

११- वही, पृ. २७२

१२- शर्मा अरूण कुमार, 'कुण्डलिनी शक्ति', चौखम्भा वाराणसी, पृ. ५१०

१३- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. २७२

१४- अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा अगस्त १९९२ पृ. ३२

१५- आचार्य पं. श्री राम शर्मा, माता भगवती देवी शर्मा, 'सांख्य एवं योग दर्शन', वेदमाता गायत्री ट्रस्ट वेद विभाग शान्ति कुंज, हरिद्वार, २००० योगदर्शन पृ. ५६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

दीनदयाल अन्त्योदय योजना-राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (गरीबी उन्मूलन हेतु एक एकीकृत प्रयास)

❑ डा० श्रद्धा चन्द्रा

शहरी गरीबी बहुआयामी है। शहरी गरीब विभिन्न प्रकार के वंचनों-अपर्याप्त आवासीय सुविधाएं, मूलभूत सेवाओं जैसे- जल, स्वच्छता, जल निकासी, ठोस कचरा निस्तारण, सड़क, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा एवं आजीविका विकास के अवसर आदि से प्रभावित हैं। १२वीं पंचवर्षीय योजना में आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय शहरी गरीबों हेतु राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन लागू किया है जिसका उद्देश्य शहरी गरीब परिवारों के जमीनी स्तर के संस्थानों का निर्माण करके उनको लाभप्रद स्व-रोजगार और कौशल के आधार पर वेतन युक्त रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने में सक्षम बना कर उनकी गरीबी और असुरक्षा को दूर करना है जिससे उनकी जीविका में दीर्घकालीन सुधार हो सके। प्रस्तुत आलेख इस मिशन की आवश्यकता, सिद्धाँतों, घटकों एवं प्रशासन का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भूमिका : शहरी गरीबी बहुआयामी है। शहरी गरीब विभिन्न प्रकार के वंचनों-अपर्याप्त आवासीय सुविधाएं, मूलभूत सेवाओं जैसे- जल, स्वच्छता, जल निकासी, ठोस कचरा निस्तारण, सड़क, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा एवं आजीविका विकास के अवसर आदि से प्रभावित हैं। शहरी गरीबी के आयामों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (१) आवासीय जोखिम (भूमि, आश्रय, मूलभूत सेवाओं आदि तक पहुँच), (२) सामाजिक जोखिम (विभिन्न कारकों जैसे यौन, आयु, सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, अपर्याप्त सुनवाई एवं शासकीय संरचनाओं में भागीदारी आदि से सम्बन्धित वंचन, तथा (३) व्यवसायगत जोखिम (आजीविका, रोजगार एवं आय हेतु असंगठित क्षेत्रों पर निर्भरता, आजीविका सुरक्षा का अभाव तथा खराब कार्य की दशाएं आदि)। भारत में नगरीकरण के बढ़ने के साथ-साथ बड़े अनुपात मे ग्रामीण गरीब शहरों की ओर आजीविका तथा अन्य आर्थिक अवसरों की तलाश में पलायन करते हैं। देश की जनसंख्या में एक बड़ा अनुपात युवाओं का है और बढ़ते आर्थिक उदारीकरण तथा भौगोलीकरण के काल में कौशल विकास की महत्ता बढ़ी है। शहरी गरीबी उपशमन तथा गरीबों के लिए आजीविका विकास हेतु बहुआयामी अभिगम तथा रणनीतियों की आवश्यकता है।

शहरी गरीबी उपशमन तथा शहरी गरीबों के लिए आजीविका विकास हेतु स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना को १९९७ में आरम्भ किया गया। योजना को अधिक व्यापक बनाने हेतु वर्ष २००९ में योजना में संशोधन किये गये। योजना का क्रियान्वयन सामाजिक संरचनाओं-समुदाय विकास समिति, परिवेश विकास एवं परिवेश समूह के माध्यम से संचालित किया जाना है। योजना के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वरोजगार, महिलाओं हेतु समूह में स्वरोजगार, कौशल विकास हेतु प्रशिक्षण, बचत हेतु स्वयं सहायता समूहों का गठन एवं शहरी मजदूरीपरक रोजगार कार्यक्रम आदि घटक शामिल किया गया हैं।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना के क्रियान्वयन में अनेक अड़चनें परिलक्षित हुई हैं। कुछेक राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में योजना का संचालन सही ढंग से किया गया तथापि केरल, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, गुजरात, नई दिल्ली आदि राज्यों में योजना को मिशन मोड में संचालित किया गया। अधिकांश राज्यों में योजना के प्रभावी संचालन हेतु समुदाय आधारित संगठनों का ढांचा या तो सही ढ़ग से गठित नहीं किया गया या फिर वो प्रभावी ढ़ग से कार्यशील नहीं हुआ। लाभार्थियों के चयन मे भी पारदर्शिता और अन्य समस्याएं उभरी जबकि शहरी गरीबों की आजीविका हेतु कौशल प्रशिक्षण में एकीकृत अभिगम का अभाव रहा है। शहरी गरीबों के आजीविका विकास एवं निर्धनता उन्मूलन हेतु वित्तीय आवंटन भी अत्यधिक कम रहा है। योजना के संचालन में सामाजिक विकास कार्यक्रमों के साथ अभिसरण का अभाव रहा है और योजना के अन्तर्गत आजीविका विकास हेतु स्वयं सहायता समूहों के गठन एवं उनके संघों के गठन व संचालन पर पर्याप्त जोर नहीं दिया गया।

मिशन मोड अभियान की आवश्यकता : गरीबों के आजीविका विकास हेतु सरकार का अभिगम योजना आधारित

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

रहा है। १२वीं पंचवर्षीय योजना में शहरी गरीबों के आजीविका विकास हेतु पर्याप्त बल दिया गया है। आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय ने (आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय – वर्तमान में परिवर्तित नाम) शहरी गरीबों हेतु राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन लागू करने का विचार किया। मिशन ने संचालित स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना का स्थान लिया। मिशन को १२वीं व १३वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान चरणबद्ध तरीके से लागू किया गया। आरम्भ में एक लाख से अधिक शहरी आबादी वाले शहरों तथा जिला मुख्यालय वाले शहरों मे शुरू किया गया। वर्ष २०१७ से २०२२ के मध्य योजना को सभी शहरों तथा कस्बों में शुरू किया जायेगा।

मिशन के दिशा निर्देशक सिद्धान्त : शहरी गरीब गरीबी के कुचक्र से बाहर निकलकर अपने जीवन स्तर को सुधारने की प्रबल इच्छा रखते हैं। शहरी गरीबों के उत्प्रेरण हेतु सामाजिक संगठन तथा शहरी गरीबों के समूहों को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। आजीविका विकास के अवसरों का लाभ लेने के लिए सूचना, ज्ञान, कौशल विकास, उपकरण, आधारभूत संरचना, ऋण, विपणन, सामूहिक प्रयास, मूलभूत सेवाएं, सतत् आजीविका, आवासीय दशाओं में सुधार आदि की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मिशन का प्रमुख उद्देश्य शहरी गरीबों के लिए आजीविका विकास के अवसरों को बढ़ाने हेतु कौशल विकास एवं रोजगार सेवाएं, स्वयं सहायता समूहों के गठन, बैंक एवं बाजार से जुड़ाव, क्षमता संवर्द्धन आदि है।

भारत में शहर आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में शहरों का योगदान ६० प्रतिशत से अधिक है। भारत की जनगणना २०११ के अनुसार, भारत की शहरी जनसंख्या ३७.७ करोड़ है जो कि वर्ष २००१ की तुलना में ३१ प्रतिशत की वृद्धि दर्शाती है। अधिकतर शहरी गरीब अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में अपनी जीविका पाते हैं। शहरी गरीबों में शिक्षा और कौशल के निम्न स्तर के कारण वह उभरते हुए बाजारों द्वारा दिए जा रहे अवसरों का फायदा उठाने में असमर्थ होते हैं।

शहरी गरीबी के बहुआयामी होने के कारण शहरों और नगरों में गरीब लोगों द्वारा अनुभव की जा रही विभिन्न समस्याओं का समाधान व्यापक रूप से तथा एकीकृत तरीके से किए जाने की जरूरत है। आवासी असुरक्षा का निवारण जवाहर लाल नेहरू शहरी नवीकरण मिशन, राजीव आवास योजना जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से किया गया है और प्रधानमंत्री आवास योजना-सब के लिए आवास जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा रहा है। सामाजिक एवं व्यावसायिक असुरक्षा का निराकरण करने के लिए गरीबों के स्वंय सहायता समूह बनाना, बाजार की आवश्यकता के अनुसार उनके कौशल का विकास करना तथा अपना काम धन्धा शुरू करने के लिए ऋण उपलब्ध कराना सबसे अच्छा तरीका है।

इस उद्वेश्य को ध्यान में रखते हुए १२वीं पंचवर्षीय योजना में शहरी गरीबों के आजीविका विकास हेत पर्याप्त बल दिया गया है। आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय शहरी गरीबों हेतु राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन लागू किया है। मिशन को १२वीं एवं १३वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान चरणबद्ध तरीके से लागू किया जा रहा है।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) : राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) का उद्देश्य शहरी गरीब परिवारों के जमीनी स्तर के संस्थानों का निर्माण करके उनको लाभप्रद स्व-रोजगार और कौशल के आधार पर वेतन युक्त रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने में सक्षम बना कर उनकी गरीबी और असुरक्षा को दूर करना है जिससे उनकी जीविका में दीर्घकालीन सुधार हो सके।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) का लक्ष्य शहरी गरीब है। इन में से विशेष ध्यान शहरी बेघर, पथ विक्रेता, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, विकलांगों आदि जैसे वंचित समूहों पर है।

वित्तीय प्रावधान : मिशन को केन्द्र और राज्य के माध्यम ६० : ४० में संचालित किया जा रहा है।

शहरों का चयन : आरम्भ में १ लाख से अधिक शहरी आबादी वाले शहरों तथा जिला मुख्यालय वाले शहरों मे शुरू किया गया है। भारत सरकार द्वारा निर्देश जारी कर राज्यों को यह सुविधा प्रदान की गई है कि वो सम्पूर्ण घटक या आवश्यकतानुसार घटको का संचालन सभी नगर निकायों में किया जा सकता है।

मिशन के घटक : मिशन के अन्तर्गत निम्न प्रमुख घटक हैं। संक्षिप्त में घटको का विवरण निम्नवत् है :-

(१) सामाजिक गतिशीलता एवं संस्थागत विकास : स्वयं सहायता समूहों का गठन-इस घटक के अन्तर्गत शहरी गरीबों को स्वयं-सहायता समूहों (एस.एच.जी.) में संगठित करने और फिर उनको संघों में संगठित करने की योजना है।

क. स्वयं-सहायता समूहों (एस.एच.जी.) को आवर्ती निधि के रूप में १०,००० रूपए प्रति स्वयं-सहायता समूह (एस.एच.जी.) प्रदान किये जाने का प्रावधान।

ख. ५०,००० रूपए प्रति पंजीकृत क्षेत्र स्तरीय संघ (ए.एल.एफ.) को दी जायेगी ताकि वह अपने कार्यकलापों को

चला सकें।

ग. प्रत्येक स्वयं-सहायता समूह के गठन, दो वर्ष तक उनकी देख-भाल, सभी सदस्यों के प्रशिक्षण, बैंक से ऋण दिलाने, परिसंघ का गठन करने और अन्य संबंधित क्रियाकलापों के लिए रिसोर्स आर्गनाइजेशन को १०,००० रूपए खर्च किए जाने का प्रावधान।

शहरी आजीविका केन्द्र : शहरी गरीबों के सामाजिक आर्थिक उत्थान हेतु विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं की जानकारी उपलब्ध कराना एवं योजनाओं तक पहुँच सुगम करना। अनौपचारिक क्षेत्र के निपुण एवं प्रशिक्षित शहरी गरीब कामगारों को सूचीबद्ध एवं पंजीकृत कर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना। शहरवासियों को उनकी आवश्यकतानुसार अनौपचारिक क्षेत्र की गुणवत्तापरक भरोसेमन्द सेवाएं उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना एवं शहरी गरीबों के उत्पादों हेतु बाजार उपलब्ध कराना/बिक्री में सहयोग करना। शहरी आजीविका केन्द्र (सी.एल.सी.) की स्थापना में सहायता प्रदान करेगा। प्रत्येक शहर जीविका केन्द्र को १० लाख रू० की अनुदान सहायता प्रदान की जाएगी।

(२) क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण : प्रत्येक राज्य में एक राज्य मिशन प्रबधंन यूनिट (एस.एम.एम.यू.) और सभी एन. यू.एल.एम. शहरों में एक शहरी मिशन प्रबधंन यूनिट (सी. एम.एम.यू.), स्थापना का प्रावधान है। इन इकाईयों में राज्य मिशन प्रबंधकों, शहर मिशन प्रबंधकों और सामुदायिक आयोजकों (सी.ओ.) को रखे जाने का प्रावधान है। राज्य के कुल आंवटन का १२ प्रतिशत इस घटक के अन्तर्गत प्रबंधकों और सामुदायिक आयोजकों के वेतन एवं प्रशिक्षण पर व्यय किया जाना प्रावधानित है।

(३) कौशल प्रशिक्षण एवं सेवायोजन के माध्यम से रोजगार : ई.एस.टी. एंड पी. का उद्धेश्य बाजार की कौशल संबंधी मांग के अनुसार शहरी गरीबों को प्रशिक्षण प्रदान करना है ताकि वे स्व-रोजगार उद्यम स्थापित कर सकें अथवा वेतन युक्त रोजगार प्राप्त कर सकें।

कौशल प्रशिक्षण के लिए कौशल प्रशिक्षण प्रदाताओं को प्रति लाभार्थी, प्रति घण्टे की दर से भुगतान किये जाने का प्रावधान है। इसमें प्रशिक्षण संस्थान द्वारा प्रशिक्षण लागत, प्रशिक्षुओं को गतिशील करना, चयन, परामर्श, प्रशिक्षण सामग्री, प्रशिक्षक के शुल्क, प्रमाणन, अन्य विविध खर्चे और साथ ही सूक्ष्म उद्यम विकास/नियुक्ति (सेवायोजन) संबंधी खर्चे शामिल होंगे। कौशल प्रशिक्षण प्रदाताओं द्वारा न्यूनतम ७० प्रतिशत प्रशिक्षणार्थियों को सेवायोजना (जाबॅ प्लेसमेन्ट एवं स्व रोजगाार) करते हुए उनकी १२ माह तक ट्रेकिंग की जानी है।

(४) स्वरोजगार कार्यक्रम : इस घटक के अन्तर्गत शहरी गरीबों/उनके समूहों को उनके कौशल, प्रशिक्षण, योग्यता और स्थानीय दशाओं के अनुकूल लाभप्रद स्व-रोजगार उद्यमों/लघु उद्यमों की स्थापना करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने पर बल देता है।

व्यक्तिगत उद्यम स्थापित करने के लिए परियोजना लागत की उच्चतम सीमा २ लाख रूपए होगी। सामूहिक उद्यम हेतु स्थापित की जाने वाली परियोजनाओं की अधिकतम लागत १० लाख रूपये तक होगी। व्यक्तिगत अथवा सामूहिक उद्यम स्थापित करने के लिए बैंक ऋण पर ७ प्रतिशत से अधिक ब्याज पर अनुदान दिया जायेगा।

व्यक्तिगत/सामूहिक उद्यम हेतु रू. ५० हजार तक के ऋण/परियोजना पर लाभार्थी मार्जिन मनी का कोई प्रावधान नही है, रू. ५० हजार से रू. १० लाख तक के ऋण/परियोजना पर ५ प्रतिशत लाभार्थी मार्जिन मनी अनिवार्य है एवं यह लाभार्थी मार्जिन मनी किसी भी दशा में परियोजना लागत का १० प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए।

स्वयं सहायता समूहों को बैंक ऋण पर ७ प्रतिशत से अधिक ब्याज पर अनुदान, ऋण का समय पर भुगतान करने वाले महिला समूहों को अतिरिक्त ३ प्रतिशत ब्याज अनुदान प्रदान किया जायेगा।

(५) शहरी पथ विक्रेताओं को सहायता : इस घटक का मुख्य उद्देश्य शहरी पथ विक्रेताओं को उनके कार्य के लिये उपयुक्त स्थलों, संस्थागत ऋण, सामाजिक सुरक्षा और कौशल विकास के अवसर उपलब्ध कराने के साथ शहरी पथ विक्रेताओं का सर्वेक्षण कर उन्हें पहचान-पत्र जारी करना, शहरी पथ विक्रेता प्लान (सिटी स्ट्रीट वेन्डिंग प्लान) तैयार करना, शहर में वेन्डिंग जोन हेतु अवस्थापना विकास हेतु विस्तृत क्रियान्वयन प्लान (इम्प्लीमेन्टेशन प्लान) (डी०आई०पी०) तैयार करना, प्रशिक्षण एवं कौशल विकास, वित्तीय सहायता प्रदान करना है और सरकार की विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत उपलब्ध सहायता को पथ विक्रेताओं तक पहुँचाना है।

शहरी पथ विक्रेताओं को सभी प्रकार की सहायता भारत सरकार द्वारा दिनांक ०१ मई, २०१४ को जारी स्ट्रीट वेन्डर्स (प्रोटेक्शन ऑफ लिवलीहुड एण्ड रेगुलेशन ऑफ स्ट्रीट वेन्डिंग) एक्ट २०१४ के अनुरूप उपलब्ध कराई जानी हे।

एनयूएलएम के अंतर्गत उपलब्ध सम्पूर्ण बजट का ५ प्रतिशत तक इस घटक पर खर्चा किया जा सकेगा।

(६) शहरी बेघरों के लिए आश्रय की योजना : शहरी

बेघरों के लिए आश्रय की योजना (एस.यू.एच.) का मुख्य उद्देश्य शहरी बेघर लोगों को बुनियादी सुविधाओं युक्त आश्रय प्रदान करना है। शहरी बेघरों के लिए आश्रय सातों दिन चौबीस घंटे और सभी मौसम के लिए स्थाई बने होने चाहिये। प्रत्येक आश्रय, ५० से १०० व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करेगा। जिसमे प्रत्येक व्यक्ति हेतु कम से कम ५० वर्ग फिट का स्थान उपलब्ध कराया जाना प्रस्तावित है। ऐसे आश्रयों में जल, स्वछता, विद्युत, रसोई/खाना बनाने का स्थान, सामान्य मनोरंजन स्थल जैसी बुनियादी सामान्य सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। इसके साथ ही आंगनवाड़ी, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के साथ संपर्क, बाल परिचर्या सुविधाएं और अन्य सामाजिक सहायता कार्यक्रम भी सुनिश्चित कराए जायेंगे। **नये आश्रय** निर्माण के साथ-साथ वर्तमान/मौजूदा आश्रय/भवनों की मरम्मत/पुनरूद्धार भी किया जा सकता है। आश्रय के प्रचालन और अनुरक्षण (ओ. एंड एम.) के लिए भारत सरकार द्वारा ५ वर्षो के लिए प्रत्येक आश्रय के लिए प्रचालन और अनुरक्षण की लागत का ६० प्रतिशत दिया जायेगा।

(७) अभिनव एवं विशिष्ट परियोजनाएं : यह उपघटक अभिनव एवं विशेष परियोजना के रूप में किये जाने वाले नवाचार को बढ़ावा देने के साथ ही शहरी गरीबों को रोजगार से जोड़ने हेतु ऐसी गतिविधियों को सम्मिलित करने के लिए है जो मिशन के अन्य घटकों के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं हो पा रही है। इसके अन्तर्गत ऐसे प्रयास किये जायेंगे जो अपनी प्रकृति/क्षेत्र में अग्रणी, सार्वजनिक निजी सामुदायिक भागीदारी (पी०पी०सी०पी०) के माध्यम से शहरी आजीविका के स्थायी दृष्टिकोण को उत्प्रेरित करने वाले हो और शहरी गरीबी पर अपेक्षित प्रभाव डालने वाली सुनिश्चित तकनीक का प्रदर्शन करने वाली होनी चाहिए। यह परियोजनाएं शहरी गरीबों के संगठनों को आच्छादित करने वाली, अभिनव कौशल विकास कार्यक्रम का निरूपण एवं क्रियान्वयन करने वाली तकनीक, विपणन क्षमता संवर्धन आदि से संबंधित अथवा इनके संयोजन से संबंधित होनी चाहिए। ये अभिनव एवं विशेष परियोजनाएं शहरी गरीबी उपशमन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु शहरी गरीबों की स्थिति पर निश्चित प्रभाव डालने के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करेगी।

इन अभिनव एवं विशेष परियोजनाओं का संचालन, सामुदायिक संगठनों, गैर सरकारी संगठनों आदि, सरकारी संगठनों, निजी क्षेत्रों, औद्योगिक संघों, सरकारी विभाग/एजेन्सियों, स्थानीय नगर निकायों, राष्ट्रीय/राज्य/नगर संसाधन केन्द्रों या अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ भागीदारी के आधार पर किया जायेगा। ये परियोजनाएं पूर्णतः केन्द्र पोषित होंगी और इसके लिए किसी प्रकार के राज्यांश की आवश्यकता नहीं होगी।

(८) प्रशासनिक एवं अन्य व्यय : कुल आंवटन धनराशि का २ प्रतिशत प्रशासनिक एवं अन्य व्यय हेतु प्रस्तावित है।

(९) सूचना, शिक्षा और संचार : कुल आंवटन धनराशि का ३ प्रतिशत सूचना, शिक्षा और संचार (आई.ई.सी.) व्यय हेतु प्रस्तावित है।

प्रशासकीय व्यवस्था : मिशन के प्रभावी संचालन हेतु त्रिस्तरीय प्रशासकीय व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मिशन प्रबन्धन इकाई की स्थापना की गई है जो भारत सरकार के आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय (आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय - वर्तमान में परिवर्तित नाम) के अधीन होगा।

राज्य स्तर पर राज्य मिशन प्रबन्धन इकाई (एस.एम.एम.यू.) की स्थापना का प्रावधान है जो मिशन निदेशक की देखरेख में संचालित होगी।

शहर स्तर पर शहर मिशन प्रबन्धन इकाई (सी.एम.एम.यू) की स्थापना का प्रावधान है तीनों स्तरों पर पर्याप्त तकनीकी, प्रशासकीय एवं विषय विशेषज्ञों की तैनाती के प्रावधान किया गया है। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन का अभिगम (एप्रोच): **राष्ट्रीय शहरी** आजीविका मिशन एकीकृत रूप से शहरी गरीबी उपशमन एवं स्थाई आजीविका पर जोर देता है। अध्यनों एवं शोधों ये स्पष्ट हो चुका है कि गरीबी उपशमन हेतु मुख्यतः ३ टूल (औजार/रणनीति) हैः (१) स्वयं सहायता समूहो के माध्यम से लघु एवं छोटी-छोटी बचत, (२) व्यक्तिगत एवं समूह द्वारा सूक्ष्म उद्यम/स्वरोजगार की स्थापना एवं (३) कौषल प्रशिक्षण के माध्यम से शहरी गरीबों में कौशल विकास कर रोजगार/स्वरोजगार की स्थापना। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन इन्ही तीनो अभिगम (एप्रोच) पर आधारित है और साथ ही साथ शहरी पथ विक्रेताओं एवं शहरी बेघरों के लिए आश्रय पर विशेष ध्यान दे रहा है। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन सम्पूर्ण रूप से शहरी गरीबी दूर करने के लिय एक एकीकृत प्रयास है।

संदर्भ :

१. आवास एवं शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय (आवासन एवं शहरी कार्य मंत्रालय - वर्तमान में परिवर्तित नाम) की वेबसाईट।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

सूचना संचार प्रौद्योगिकी तथा बाल अपराध : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ अनुज कुमार

वर्तमान भारत में बढ़ते हुए औद्योगीकरण और नगरीकरण की बजह से गतिशील समाज में जटिलता तथा संक्रमण की स्थिति; जो कि 'विज्ञान तथा नवीन संचार प्रौद्योगिकी' का प्रतिफल है; में तीव्रतर गति से हो रहे विभिन्न परिवर्तनों के कारण अधिकाँशतः बालक-बालिकाओं में ऐसी आदतें एवं प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं कि वे प्रतिक्षण प्रतिपल ''सूचना संचार प्रौद्योगिकी'' के साधनों के सहारे ही जीवन जी रहे हैं; जिससे समाज में 'साँस्कृतिक विलम्बना' तथा 'अप-संस्कृति' की स्थितियाँ जनित हो गयी हैं। सम्प्रति इनसे पड़ने वाले विभिन्न प्रकार के दुष्प्रभावों से बालक-बालिकाएं परोक्षतः अपराधिक प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख तथा प्रेरित हो रहे हैं जिससे बाल-अपराधों तथा बाल अपराधियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो चिन्तन व घोर चिन्ता का विषय है। प्रस्तुत अध्ययन बच्चों को अपराध की दिशा में अभिप्रेरित करने में आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

यह सर्व स्वीकार्य तथ्य है कि आज के बालक (किशोर) कल के राष्ट्र निर्माता हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि बच्चे किसी भी परिवार, समुदाय व राष्ट्र की निधि एवं भविष्य होते हैं क्योंकि स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में बालकों की भूमिका व योगदान अहम् होता है। यदि यह भावी सन्तति ही अज्ञानतावश या जानबूझकर किन्हीं कारणोंवश दिग्भ्रमित हो जाय तो राष्ट्र की प्रगति एवं विकास स्वतः ही अवरूद्ध हो जावेगा। इसलिए बदलते भारत की परिस्थितियों में अपराध की ही भाँति 'बाल अपराध' को भी जन कल्याण में बाधक एक गम्भीर सामाजिक- समस्या के रूप में स्वीकार करना होगा; क्योंकि सामाजिक प्रथाओं, परम्पराओं एवं सामाजिक नियमों व कानूनों का उलंघन; वर्तमान समाज की सबसे बड़ी ज्वलन्त समस्या है। कानूनों का उलंघन तब होता है, जब समाज में परिवर्तन तीव्रता के साथ होते हैं, जिसकी परिणिति 'सामाजिक विघटन' के रूप में होती है। यहाँ पर यह उल्लेख करना प्रासंगिक तथा उपयुक्त ही है कि बढ़ते औद्योगीकरण और नगरीकरण की वजह से गतिशील समाज में जटिलता तथा संक्रमण की स्थिति; जो कि 'विज्ञान तथा नवीन संचार प्रौद्योगिकी' का प्रतिफल है; में तीव्रतर गति से हो रहे विभिन्न परिवर्तनों के कारण अधिकाँशतः बालक-बालिकाओं में ऐसी आदतें एवं प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं कि वे प्रतिक्षण प्रतिपल ''सूचना संचार प्रौद्योगिकी'' के साधनों के सहारे ही जीवन जी रहे हैं; जिससे समाज में 'साँस्कृतिक विलम्बना' तथा 'अप-संस्कृति' की स्थितियाँ जनित हो गयी हैं। सम्प्रति इनसे पड़ने वाले विभिन्न प्रकार के दुष्प्रभावों से बालक-बालिकाएं परोक्षतः अपराधिक प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख तथा प्रेरित हो रहे हैं जिससे बाल- अपराधों तथा बाल अपराधियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो चिन्तन व घोर चिन्ता का विषय है। लेकिन यह भी सच है कि हर बालक को समाज में ससम्मान जीवन जीने, समानता एवं सामाजिक न्याय पाने का भी अधिकार है। साथ ही समाज का यह भी दायित्व है कि ऐसे 'विचलित व्यवहारी' (भटकते) बालकों जिन पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर है को दिग्भ्रमित होने से कैसे बचाया जाय? उनका संरक्षण, उपचार, विकास तथा सामाजिक पुनर्वास कैसे किया जाय? ताकि सबल एवं सम्पन्न राष्ट्र की कल्पना साकार हो सके। शोध अध्येता ने उक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए, तथ्यपरक व वैज्ञानिक अध्ययन करने हेतु ''सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं बाल अपराधः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' को शोध-पत्र का विषय चुना है।

अध्ययन में प्रयुक्त सम्प्रत्यय : प्रस्तुत अध्ययन में मूलतः निम्न सम्प्रत्ययों को प्रयुक्त किया गया है-

(१) सूचना संचार प्रौद्योगिकी[1] : 'सूचना संचार प्रौद्योगिकी' एक समूह की भाँति है जो संचार संयंत्रों का संग्रह है जैसे कम्प्यूटर, सेटेलाइट प्रणाली, नेटवर्क आदि। सूचना संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग शिक्षा, व्यवसाय, स्वास्थ्य एवं पुस्तकालय में अग्रणी है। संचार के माध्यम से हम विभिन्न तरह की सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर यथाशीघ्र सम्प्रेषित कर सकते हैं। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण एवं संचार क्रान्ति के फलस्वरूप इलैक्ट्रानिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी का मुख्य घटक माना गया है, इसलिए इसे 'सूचना संचार प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है। 'सूचना जन संचार' के माध्यमों में रेडियो, दूरदर्शन, फिल्मस्, टेलीफोन, मोबाइल,

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र, अतर्रा डिग्री कालेज, अतर्रा बांदा (उ.प्र.)

सोशल साइट, कम्प्यूटर, इण्टरनेट, फैक्स आदि आते हैं। **'सूचना संचार** प्रौद्योगिकी' ने आज सम्पूर्ण विश्व को एक ऐसे रूप में स्थापित किया है जिसकी सहायता से सुदूर स्थित देशों से 'सम्प्रेषण' पल भर में आसानी से किया जा सकता है। यह वर्तमान औद्योगिक और तकनीकी समाज की देन व विशेषता है। तकनीकी क्रान्ति के बल पर ही आज वृहद् और व्यापक मानव समुदाय को सन्देष प्रेषित कर पाना सम्भव और आसान हो गया है। व्यापक रूप से उत्पादित ये सन्देश एवं उनका सम्प्रेषण प्रिन्ट एवं इलैक्ट्रोनिक मीडिया से प्रसारित किए जाते हैं।

उपर्युक्त साधनों से जब सूचनाओं का 'इनपुट' होता है तब सूचनाग्राही अपने अन्दर एक मत (Opinion) का निरूपण करता है। इस प्रकार मत, विचार, अनुभव और विश्वास की ओर संकेत करता है और यही मत (Opinion) अन्ततः धारणाओं में परिवर्तित हो जाता है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव; सूचनाग्राही की गतिविधियों तथा क्रियाकलापों पर पड़ना स्वाभाविक ही है।

(२) बाल अपराध : देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार 'बाल' एवं 'बाल अपराध' की अवधारणाएं समय-समय पर परिवर्तित होती रही हैं किन्तु सामान्यतः एक निश्चित आयु से कम तथा एक निश्चित आयु से अधिक, आयु के बालक/बालिकाओं द्वारा ऐसा कोई भी कृत्य जो उस समाज के स्वीकृत मूल्यों, मानदण्डों व प्रतिमानों तथा राज्य के प्रचलित कानूनों के विरूद्ध किया गया हो; बाल अपराध की श्रेणी के अन्तर्गत आता है। भारत में बाल अपराध को १८ वर्ष से कम आयु की लड़की तथा १६ वर्ष से कम आयु के लड़के द्वारा किया जाना माना गया है। परन्तु 'किशोर न्याय अधिनियमः १९८६' (The Juvenile Justice Act 1986) में 'बाल' शब्द की अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में १६ वर्ष से कम वय के लड़के तथा १८ वर्ष से कम वय की लड़की के रूप में स्पष्ट की गयी है। इस शोध में इसी आयु वर्ग को अध्ययन का आधार माना गया है।

कार्य सम्बन्धी संक्षिप्त पुनरावलोकन (Brief Review of the Related Work) :

वर्मा एस.सी[२] ने अपने आनुभविक अध्ययन के निष्कर्ष में लिखा है कि जिन बालकों पर देश का भविष्य निर्भर करता है, यदि वे ही असामान्य बालक हो जायेंगे तो देश की भावी उन्नति का मार्ग स्वतः ही अवरूद्ध हो जायेगा क्योंकि सभी प्रकार के बाल अपराध लोक कल्याण में बाधक व अहितकर सिद्ध होते हैं फिर भी आज भारत में बाल अपराध एवं बाल अपराधियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यही बजह है कि इसके कारणों और इसे कम करने के उपायों पर सभी विकसित तथा विकासशील देशों में गहन चिन्तन होने लगा है।

हंसा सेठ[३] ने मद्रास नगर की मलिन बस्तियों में बाल अपराधियों का अध्ययन करके बाल अपराधों को प्रमुखतः पाँच प्रकार (i) सम्पत्ति के विरूद्ध बाल अपराध (ii) राशनिंग नियमों के विरूद्ध बाल अपराध (iii) मद्य-निषेधाज्ञा के विरूद्ध (अनैतिक व्यापार) बाल अपराध (iv) यौनिक अपराध (v) भिक्षावृत्ति, आवारागर्दी, इत्यादि बताए हैं। बाल अपराधियों का विभिन्न चरों (आयु, लिंग, क्षेत्र, शिक्षा, आय) के आधार पर गहन अध्ययन करके सापेक्षिक निष्कर्ष दिया है कि आयु के आधार पर वर्गीकरण के अनुसार बाल अपराधी तीन तरह ७-१२ वर्ष के बाल अपराधी, १२-१६ वर्ष के बाल अपराधी, १६-२१ वर्ष के बाल अपराधी, लिंग-आधार पर बालक तथा बालिका अपराधी, क्षेत्र के आधार पर नगरीय तथा ग्रामीण बाल अपराधी, शिक्षागत आधार पर अशिक्षित व शिक्षित बाल अपराधी तथा परिवार की वार्षिक आय के आधार पर वर्गीकृत कर बताया कि लगभग तीन-चौथाई से अधिक बाल अपराधी अत्यन्त निर्धन परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं। स्पष्ट है कि 'गरीबी' बाल अपराध का एक प्रमुख कारण है।

अग्रवाल सुधीर[४] ने अपने अनुभवजन्य अध्ययन के आधार पर भग्न परिवार, बुरी संगति, अस्वस्थ्य व अश्लील मनोरंजन, आपत्तिजनक व गन्दा साहित्य, स्कूली विषम परिस्थितियाँ, अनैतिक माता-पिता, अपराधी क्षेत्र तथा नगरीकरण/औद्योगीकरण को बाल अपराध हेतु प्रमुख उत्तरदायी कारक पाया। आपने स्पष्ट किया है कि बाल अपराधी उन परिवारों या क्षेत्रों में अधिक होते हैं, जहाँ बच्चों को खेलने एवं मनोरंजन के स्वास्थ्यप्रद साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं ऐसी अवस्था में बालक सड़कों पर इधर उधर निरर्थक भटकते फिरते हैं, मलिन बस्तियों में तो इन सब साधनों का अभाव होता है जिसके कारण बच्चे बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं, भ्रमित (गुमराह) होकर गलत बातें सोचने लगते हैं। आपने यह भी लिखा है कि चलचित्रों, दूरदर्शन देखने वाले बच्चों में तो अपराधी गतिविधियों, अश्लीलता व नग्नचित्र देखने से सम्बन्धित अनेकों उत्तेजनाएं तथा ऐसे विचार जनित होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति उन्हें अपराधों की ओर धकेल देती हैं। मनोरंजन साधनों के अभाव में प्रायः बच्चे अपना खाली समय ऐसे लोगों की कुसंगति में काटने लगते हैं जो उन्हें गन्दी आदतें सिखा देते हैं ऐसी आदतें उन्हें स्वतः अपराधी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख कर देती हैं जिससे वे बाल अपराधी बन जाते हैं।

श्रीवास्तव शंकर सहाय[५] अपने ने अध्ययन में पाया कि (i) ६३ प्रतिशत आवारा बच्चे, गरीब परिवारों तथा मलिन बस्तियों के पाए गए जिनके परिवारों की वार्षिक आय १५०० रु० से भी कम थी (ii) शत प्रतिशत आवारा बच्चे अनैतिक परिवारों, सौतेली माँ के बच्चे, अनाथ तथा बुरी (गलत) संगति करने वाले पाए (iii) आयु की दृष्टि से ऐसे बच्चे १३-१५ आयु वर्ग (औसतन १४ वर्ष) के थे जो माता-पिता के नियंत्रण से परे; प्रवृत्ति के थे (iv) ये बच्चे घर से निकलकर सड़कों, सिनेमा घरों, रेलवे स्टेशन, बस स्टेण्ड, भीड़भाड़ वाले सार्वजनिक स्थानों पर निरूद्देश्य घूमते फिरते; आदतों वाले पाए गए तथा (v) इन बच्चों में बुरी आदतें- धूम्रपान, मद्यपान, गुटखा खाना, जुआ, जेबकटी, भिक्षावृत्ति, अनैतिक होना आदि पायी गयीं।

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :-

(१) सूचनादाताओं की वैयक्तिक एवं समाजार्थिक पृष्ठभूमि की जानकारी करना।

(२) बालकों को नकारात्मक सोच की दिशा में अभिप्रेरित करने में आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका का अध्ययन करना।

(३) बालकों की अपराधों की ओर विचलित/प्रेरित करने हेतु उत्तरदायी कारकों का अध्ययन करना।

परीक्षणार्थ परिकल्पनाएं :

(१) 'आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी' बाल अपराध वृद्धि में सकारात्मक भूमिका निभा रही है।

(२) बालकों द्वारा अस्वस्थ सूचनाओं की ग्राह्यता, उन्हें बाल अपराधों की ओर अभिप्रेरित करती है।

(३) आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी; बालकों पर बुरा प्रभाव डाल रही है।

पद्धतिशास्त्र : अध्ययन हेतु शोधार्थी ने कानपुर महानगर में संचालित बाल संरक्षण गृह, नौबस्ता तथा राजकीय बालिका संरक्षण गृह, स्वरूपनगर, कानपुर में वर्तमान में निरूद्ध कुल २०५ बाल अपराधियों (क्रमशः १४८ बालक तथा ५७ बालिकाओं) में से २५ प्रतिशत निदर्श के आधार पर ५१.२५ अर्थात् ५१ (४७ बालक, ४ बालिका) बाल अपराधियों को संयोग निदर्शन विधि से चुनकर ''साक्षात्कार- अनुसूची'' पद्धति से उनसे आमने-सामने की प्रत्यक्ष स्थिति में पूछताछ कर तत्सम्बन्धित तथ्य संकलित किए हैं; जिनके सांख्यकीय विश्लेषणोपरान्त सामान्यीकरण करते हुए निम्नवत् निष्कर्ष स्थापित किए हैं :-

अग्रांकित प्रस्तुत तालिका (१) के प्राथमिक तथ्यों के विश्लेषण के आलोक में स्पष्ट है कि अध्ययन किए गए कुल ५१ बाल अपराधियों में शैक्षिक दृष्टि सेः २० (१०.१६प्रतिशत) निरक्षर, १०(१६.६२प्रतिशत) प्राथमिक शिक्षा प्राप्त, १८(३५.२६प्रतिशत) प्राथमिक से अधिक तथा हाईस्कूल से कम एवं मात्र ३(५.६०प्रतिशत) बाल अपराधी हाईस्कूल व या अधिक शिक्षा प्राप्त पाए गए;

पारिवारिक पृष्ठभूमि की दृष्टि सेः ३५(६८.६३ प्रतिशत) बाल अपराधी माता-पिता के साथ रहने वाले, ७(१३.७३ प्रतिशत) अपने संरक्षकों के साथ रहने वाले और मात्र ६(१७.६४ प्रतिशत) बाल अपराधी गृहविहीन पाए गए; परिवार की आर्थिक स्थिति की दृष्टि सेः ३२(६२.७५प्रतिशत) बाल अपराधी निम्न आय वर्ग (२००० रू. मासिक तक पारिवारिक आय वाले), १४(२७.४५प्रतिशत) मध्यम आय वर्ग (२०००-६००० रू. तक मासिक आय और ५(६.८प्रतिशत) उच्च आय वर्ग (६००० रू. तथा अधिक मासिक आय) वाले पाए गए हैं, जिनमें ३४(६६.६७प्रतिशत) हिन्दू, १५(२६.४१प्रतिशत) इस्लामिक और मात्र २(३.६२प्रतिशत) सिक्ख व अन्य धर्मावलम्बी हैं, जाति वर्ग की दृष्टि सेः २३(४५.०६प्रतिशत) सामान्य वर्ग, १०(१६.६१प्रतिशत) पिछड़ा वर्ग तथा १८(३५.२०प्रतिशत) अनुसूचित हैं जिन समस्त ५१ बाल अपराधियों में से ३३(६४.७१प्रतिशत) नए (प्रथम) अपराधी, १२(२३.५२ प्रतिशत) पुराने अपराधी तथा ६(११.७७ प्रतिशत) बाल अपराधी, अपराध की पुनरावृत्ति वाले पाए गए हैं। सर्वाधिक ३४(६६.६७ प्रतिशत) बाल अपराधी १२ से १६ वर्ष आयु वर्ग के पाए गए हैं जिसे 'टीनएजर्स'[६] कहा जाता है। सुस्पष्ट है कि ''आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी'' बालकों पर बुरा प्रभाव डाल रही है (परिकल्पना नं.३ सत्य तथा सार्थक सिद्ध होती है)।

''**क्या वर्तमान** भारत में समाज संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है?'' इस प्रश्न के प्रत्युत्तरों पर निम्न तालिका (२) संक्षिप्त प्रकाश डालती है-

तालिका संख्या १

बाल अपराधियों की वैयक्तिक तथा समाजार्थिक पृष्ठभूमि

समाजार्थिक पृष्ठभूमि	परिवर्त्यों की आवृत्तियाँ (प्रतिशत)				प्रतिशत
शैक्षिक पृष्ठभूमि	निरक्षर २०(१०.१६)	प्राथमिक १०(१६.६२)	प्राथमिक से हाईस्कूल १८(३५.२६)	हाईस्कूल से अधिक ०३(०५.६०)	योग ५१(१००.००)
पारिवारिक पृष्ठभूमि	माता-पिता के साथ रहने वाले ३५(६८.६३)	अपने संरक्षकों के साथ रहने वाले ०७(१३.७३)	गृहविहीन ०६(१७.६४)		योग ५१(१००.००)
माता-पिता/संरक्षक की आर्थिक स्थिति	(२००० रू. तक मासिक) निम्न ३२(६२.७५)	(२०००-६००० रू. मासिक) मध्यम १४(२६.४५)	(६०००+ रू. मासिक) उच्च ०५(०६.८०)		योग ५१(१००.००)
धार्मिक संरचना	हिन्दू ३४(६६.६७)	इस्लाम १५(२६.४१)	सिक्ख व अन्य ०२(०३.६२)		योग ५१(१००.००)
जाति/वर्ग	सामान्य २३(४५.०६)	पिछड़ा वर्ग १०(१६.६१)	अनुसूचित १८(३५.२०)		योग ५१(१००.००)
अपराध की पुनरावृत्ति	नये (प्रथम) अपराधी ३३(६४.७१)	पुराने अपराधी १२(२३.५२)	अपराध की पुनरावृत्ति ०६(११.७७)		योग ५१(१००.००)
आयु वर्ग (वर्षों में)	७-१२ वर्ष ५(६.८०)	१२-१६ वर्ष ३४(६६.६७)	१६-१८ वर्ष १२(२३.५३)		योग ५१(१००.००)

तालिका संख्या २

वर्तमान समाज सूचना संचार प्रौद्योगिकी के कारण संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है?"

प्रत्युत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३६	७३.४७
नहीं	०५	०६.८०
'कह नहीं सकते'	०७	१३.५७
समस्त	५१	१००.००

७६.४७ प्रतिशत सूचनादाताओं के अभिमतों से स्पष्ट है कि वर्तमान भारत में बाल अपराधों में अभिवृद्धि का एक कारण यह भी है कि आधुनिक भारतीय समाज सूचना संचार प्रौद्योगिकी के कारण संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। उल्लेखनीय है कि संक्रमण की अवस्था में नवीन धारणाओं और प्राचीन परम्पराओं के मध्य असामंजस्य की स्थिति होती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूचना संचार के सन्दर्भ में प्रौद्योगिकी की उन्नति संक्रमण का एक कारण है। इसी संक्रमण के कारण बालकों द्वारा सूचना संचार प्रौद्योगिकी साधनों पर दर्शायी जा रही अस्वस्थ्य सूचनादाओं की ग्राह्यता उन्हें बाल-अपराधों की ओर प्रेरित करती हैं परिकल्पना २ सत्य व सार्थक सिद्ध होती है, निम्न तालिका ३ बालकों की अपराधों की ओर उन्मुखता हेतु उत्तरदायी कारकों पर संक्षिप्त प्रकाश डालती है-

तालिका संख्या ३

बालकों की अपराधों की ओर उन्मुखता हेतु उत्तरदायी कारक (बहुविकल्पीय तालिका)

उत्तरदायी कारक	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षा	१३	२५.४६
पारिवारिक दशाएं	०६	११.७६
सूचना संचार प्रौद्योगिकी के आधुनिक संसाधन	३२	६२.७५
अशिक्षा+पारिवारिक दशाएं	१३+६	३७.२५
पारिवारिक दशाएं+सूचना संचार प्रौद्योगिकी के	६+३२	७४.५१
सूचना संचार प्रौद्योगिकी + आधुनिक संसाधन, अशिक्षा	३२+१३	८८.२४
अशिक्षा+पारिवारिक दशाएं+ सूचना संचार प्रौद्योगिकी के आधुनिक संसाधन	१३+६+३२	१००.००

प्रसंगाधीन तालिका नं. ३ के आँकड़ों के विश्लेषण के प्रकाश में स्पष्ट है कि शत प्रतिशत सूचनादाताओं ने यह स्वीकार किया है कि आजकल बालकों के अपराधों की ओर उन्मुखता हेतु अशिक्षा, पारिवारिक दशाएं तथा सूचना संचार प्रौद्योगिकी के आधुनिक संसाधन; तीनों ही कारक उत्तरदायी हैं। इस तालिका के क्रमांक ३ की प्रतिशतता यह स्पष्ट करती है कि ''आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी के विभिन्न संसाधन'' बाल अपराधों की वृद्धि में सकारात्मक भूमिका-निर्वाह कर रहे हैं ख्परिकल्पना १ सत्य व सार्थक सिद्ध होती है,, शोधार्थी ने साँख्यकीय परीक्षण ''आकस्मिकता गुणाँक (Q) का परिकलन करके भी यह सत्यापित करने का प्रयास किया है कि ''बाल अपराधों की वृद्धि में 'आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकीय माध्यम' अहम् भूमिका निभा रहे हैं।'' सभी ५१ बाल अपराधियों (जिनका कि अध्ययन किया गया) से उक्त प्रश्न पूछकर प्राप्त प्रत्युत्तरों से "Q" का परिकलन इस प्रकार है-

तालिका संख्या ४

''क्या बाल अपराधवृद्धि में 'आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकीय माध्यम' अहम् भूमिका निभा रहे हैं?''

आकस्मिकता गुणाँक का परिकलन

अहम भूमिका	अपराधियों की आवृत्तियाँ		समस्त
	बालक	बालिका	
हाँ	४०	२	४२
नहीं	७	२	६
समस्त	४७	०४	५१

$$\text{आकस्मिकता गुणाँक (Q)} = \frac{AD - BC}{AD + BC} = \frac{40 \times 2 - 2 \times 7}{40 \times 2 + 2 \times 7} = \frac{80 - 14}{80 + 14} = \frac{66}{94}$$

= (+) 0.7021 (अत्यन्त उच्च कोटि का धनात्मक मान)

चूँकि आकस्मिकता गुणाँक (Q) का गणनात्मक मान (+)०.७०२१ (अत्यन्त उच्च कोटि का धनात्मक) प्राप्त हुआ है जो "Q" का प्रामाणिक मान (±)१ के मध्य है जो यह सिद्ध करता है कि 'आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकीय माध्यम' बाल अपराधि वृद्धि में अहम् भूमिका निभा रहे हैं। इस तथ्य से अध्ययन के उद्देश्य क्रमांक २ की भी सम्पुष्टि होती है। अध येता का मानना है कि भारतीय समाज की संक्रमण की स्थिति का मुख्य कारण सूचना संचार प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम एवं औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा उत्तर-आधुनिकीकरण है जिससे आधुनिक समाज में संक्रमण की स्थिति जनित हो रही हैं। अपराधों की संख्या में वृद्धि तथा अपराध करने के तौर तरीके बदल रहे हैं। सम्प्रति समाज में अनेक समस्याएं जन्म ले रही हैं। नई सन्तति (बालक बालिकाएं) जो कल का भारत हैं, जिनके कन्धों पर परिवार, समुदाय एवं राष्ट्र का भार आना है; यदि वे पहले से ही गलत मार्गों पर चलना सीख जायेंगे, तो देश का भविष्य कैसा होगा? भली भाँति स्पष्ट है; इसलिए परिवर्ती परिस्थितियों में 'बाल अपराध' को सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार करना होगा; और तद्नुसार समस्या का निदान खोजना होगा।

REFERENCES :

1. Sharma, H.M. 'Information Communication Technology & Hindi Literature', Prakashan Kendra, Pub., Lucknow, 2006, p. 67
2. Verma, S.C. 'The Young Delinquent : A Sociological Enquiry'; Pustak Kendra Publication, Lucknow, 1969, p. 36
3. Seth Hansa (et.al.) 'Juvenile Delinquency: A Deviant Behaviour – A case study of slums of Madras city'; in Indian Journal of Criminology, 2 Temple Lane, Alagappa Nagar, Madras-05, Vol. 38, July 2000
4. Agrawal Sudhir, 'A study of community factors of Juvenile Delinquency'; Published Research Paper in National Journal 'Samajic Sahyog', Shree Krishn Shodh Sansthan, Ujjain (M.P.), Vol. 32, 2003, pp. 70-78
5. Srivastav, S.S. ; Juvenile Vagrancy : A Socio-Ecological Survey of Kanpur & Lucknow; Asia Publishing House, Bombay, 1993
6. Kulkarni D.V. 'Juvenile Delinquency in India', Social Welfare, Delhi, Dec. 2004, p.347

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण विवाहित महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ० प्रदीप कुमार

आधारपीठिका : महिलाओं के विरूद्ध 'पारिवारिक हिंसा' एक गम्भीर सामाजिक समस्या है जिसमें घरेलू हिंसा कानून–२००५ के राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित किए जाने के बावजूद घरेलू (पारिवारिक) हिंसा के प्रकरणों में निरन्त वृद्धि हो रही है। यह महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा का 'एक प्रमुख प्रकार' है जिसे परिवार के अन्दर का निजी मामला मानते हुए अभी तक बाहर तक की जाँच पड़ताल से लगभग पूर्णतः छिपाकर रखा गया कहा जा सकता है। हाल के दशकों में महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार होने और महिलाओं के सार्वजनिक रूप से सक्रिय होने के कारण घरेलू हिंसा की जानकारी शनैः शनैः अब बाहर आने लगी है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह हिंसा बहुत व्यापक है। महिलाएं लोकलाज व अन्य कई कारणों से इसे चुपचाप सहन करती रहती हैं। महिलाओं के अतिरिक्त अब अन्य लोग भी स्वीकार करने लगे हैं कि यह केवल पारिवारिक मामला ही नहीं कहा जा सकता अपितु इस सन्दर्भ में कानूनी और सामाजिक पहल करना आवश्यक है। **'पारिवारिक हिंसा'** से आशय एक परिवार के सदस्य या सदस्यों द्वारा परिवार के ही किसी सदस्य के विरूद्ध हिंसात्मक व्यवहार करना अथवा उसे शारीरिक या मानसिक आघात पहुँचाना है। यह हिंसा धमकी, भयभीत करना, गाली गलौज (अवमानना), थप्पड़, लात घूँसों से मारना, उत्पीड़न, प्रताड़ित करना, जोर जबरदस्ती यौन सम्बन्ध करना, मार डालने का प्रयत्न तथा हत्या; किसी भी रूप में सम्भव है। 'पारिवारिक हिंसा' परिवार के किसी भी सदस्य के विरूद्ध हो सकती है; परन्तु प्रायः महिलाएं ही इसकी अधिक शिकार होती हैं।[1]

महिलाओं के विरूद्ध 'पारिवारिक हिंसा' एक गम्भीर सामाजिक समस्या है जिसमें घरेलू हिंसा कानून–२००५ के राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित किए जाने के बावजूद घरेलू (पारिवारिक) हिंसा के प्रकरणों में निरन्त वृद्धि हो रही है। यह महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा का 'एक प्रमुख प्रकार' है जिसे परिवार के अन्दर का निजी मामला मानते हुए अभी तक बाहर तक की जाँच पड़ताल से लगभग पूर्णतः छिपाकर रखा गया कहा जा सकता है। हाल के दशकों में महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार होने और महिलाओं के सार्वजनिक रूप से सक्रिय होने के कारण घरेलू हिंसा की जानकारी शनैः शनैः अब बाहर आने लगी है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह हिंसा बहुत व्यापक है।

साहित्य का पुनरावलोकन : आई.सी.आर.डब्ल्यू. ने टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स तथा पुलिस कमिश्नर बॉम्बे[2] द्वारा महिलाओं के लिए स्थापित विशेष सेल के आँकड़ों से स्पष्ट है कि विगत ५ वर्षों में इन प्रकरणों की संख्या तिगुनी हो गयी है, शादी के शुरू के सालों में महिलाएं शिकायतें लाती हैं लेकिन बाद में कम। मुख्य बात यह निकली कि वे तभी मामले दर्ज कराती हैं जब उन्हें परिवार के किसी पुरूष/ रिश्तेदार की स्वीकृति मिल जाय। नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इण्डियन यूनिवर्सिटी बैंगलूरू ने आई. सी.आर.डब्ल्यू. के सहयोग से किए अध्ययन[3] में पाया कि भारत में घरेलू हिंसा के स्वरूप और प्रवृत्तियों पर ''अदालती दस्तावेजों की आँख'' में कर्नाटक राज्य के १० वर्षों के अदालती प्रकरणों; और फैसलों की जाँच की तो पाया कि घरेलू हिंसा को परिवार से खुले समाज में लाने में जो कठिनाईयाँ हैं, इससे गवाह तथा दस्तावेज इकट्ठे करने और अदालत में पेश करने में कठिनाई होती है। देरी, समय और खर्च, परिवार की धमकियों और दबाव, महिला द्वारा तात्कालिक झंझटों से बचने की जरूरत आदि के कारणों से वे आरोप वापिस लेकर समझौता कर लेती हैं। अदालत की नजरों में भी यह हिंसा एक गौण मुद्दा है। अभी वर्ष २००० में ''इन्टरनेशनल सेन्टर फॉर रिसर्च ऑन वूमेन''[4] द्वारा अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार लगभग ५० प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि अपने विवाहित जीवन में कम से कम एक तरह की घरेलू हिंसा उनके साथ हुई, ४३ प्रतिशत से अधिक के साथ मानसिक हिंसा हुई। जिन्होंने शारीरिक हिंसा भुगती उनमें से लगभग आधी संख्या उनकी थी जिसके साथ हिंसा तब हुई जब वे गर्भवती थीं। इस अध्ययन में पाया गया कि यद्यपि आम धारणा यह है कि 'माँग' घरेलू हिंसा का कारण है, किन्तु केवल १२ प्रतिशत महिलाओं

❑ जसवन्त नगर, इटावा (उ०प्र०)

द्वारा सामान्य रूप से किए जाने वाले काम न करने के कारण थीं। इसमें से पत्नी द्वारा जिम्मेदारी पूरी तरह से न निभाने जैसे भोजन पकाना, बच्चों की देखभाल, घर गृहस्थी के दूसरे काम जो और कारण बताए गए उनमें ससुराल के रिश्तेदारों की देखभाल न करना, पड़ोसियों से बातचीत करना, दूसरे पुरूषों से बातें करना इत्यादि कारण शामिल थे। आश्चर्य की बात है कि महिलाएं इस हिंसा को काफी अंशों में स्वीकार करने योग्य मानती हैं और उनमें पति की गलती न समझकर अपनी गलती मानती हैं जो पुरूषों और महिलाओं की परिवार में भूमिकाओं, जिम्मेदारियों एवं स्थान के बारे में समझ को स्पष्ट करती है। एक सूचनादात्री ने स्वीकार किया कि ''मुझे अपने पति द्वारा कई बार पीटा गया है यद्यपि कभी भी अस्पताल जाने की नौबत नहीं आयी। कई बार गलती मेरी थी; मैं भोजन ठीक से नहीं पका पायी थी या उसे बताए बिना अपनी माँ से मिलने चली गयी थी तथा उसकी बात नहीं मानी, इसलिए वह गुस्सा हो गया और मुझे मारा पीटा, ६१ प्रतिशत सूचनादात्रियों ने बताया कि उनके मायके के लोगों, उनके पति के घर वालों या पड़ौसियों को इस घरेलू हिंसा की जानकारी थी।''

राम आहूजा[५] के अध्ययन के अनुसार पत्नी को पीटे जाने के साथ-साथ ३१.७ प्रतिशत मामलों में नशा तथा ६८.३ प्रतिशत नशा नहीं सम्मिलित था; हिलबर्मन एण्ड मन्सन[६] के अनुसार ६३प्रतिशत मामलों में नशा न करना पाया गया। जब वोल्फगेंग[७] ने ६७ प्रतिशत व टिकलेनवर्ग ने ७१ प्रतिशत मामलों में ऐसा देखा कि नशा न था। इससे स्पष्ट है कि 'मद्यपान' हिंसा का कारण नहीं है क्योंकि अधिकांशतः पति, अपनी पत्नी को तब पीटते हैं जब वे शराब/नशा नहीं किए होते हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत आनुभविक सूक्ष्म अध्ययन उ.प्र. के इटावा जनपद की करहल तहसील के करहल विकासखण्ड की एक ग्राम पंचायत देहुली के सर्वेक्षण जो ग्रामीण विवाहित महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा के सन्दर्भ में किया गया है, सम्बन्धी प्राथमिक तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित है जिसमें तथ्य संकलन ''साक्षात्कार अनुसूची'' व ''अवलोकन प्रविधि'' द्वारा घरेलू हिंसा की शिकार ''डोर-टू-डोर सर्वे'' द्वारा चिन्हित कुल ५० ग्रामीण विवाहित महिला सूचनादात्रियों के प्रत्यक्ष साक्षात्कारों; एवं तथ्य विश्लेषण कार्य ''साँख्यकीय पद्धति'' से करके ''व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प'' अपनाते हुए किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :

(१) सूचनादात्रियों की समाजार्थिक स्थिति की जानकारी करना।

(२) ग्रामीण विवाहित महिलाओं के प्रति पारिवारिक हिंसा के स्वरूपों का अध्ययन करना।

(३) पारिवारिक हिंसा के कारणों तथा विशेषताओं का अध यन करना।

(४) पारिवारिक हिंसा के प्रति उत्पीड़ितों, उत्पीड़कों तथा परिवार के अन्य सदस्यों के दृष्टिकोणों का अध्ययन करना।

(५) उन सकारात्मक विन्दुओं पर विचार करना जो 'विवाहित महिलाओं के प्रति पारिवारिक हिंसा' रोकने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

उपलब्धियाँ : अग्रांकित तालिका के तथ्यों से स्पष्ट है कि 'पृष्ठभूमि' की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों में विवाहित महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा १८ प्रतिशत है। सामान्य वर्ग के परिवारों में यह ५० प्रतिशत, अन्य पिछड़ा वर्ग के परिवारों में २८ प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति जनजाति के परिवारों में २२ प्रतिशत है। 'आर्थिक वर्ग की दृष्टि' से उच्च वर्ग में ४६ प्रतिशत, मध्यम वर्ग में १८ प्रतिशत तथा निम्न वर्गों में ३६ प्रतिशत है; 'उत्पीड़कों की आयु संरचना' के अनुसार २१ से ४२ वर्ष आयु वर्ग के पति अपनी पत्नियों के साथ घरेलू हिंसा अधिक करते हैं। इसके पश्चात् वे बहुत कम घरेलू हिंसा करते हैं या बिल्कुल बंद कर देते हैं। इसका कारण यह है कि ४३ वर्ष की आयु पार करने तक उनके बच्चे बड़े हो जाते हैं। अधिकतर किशोर व युवा पुत्रों द्वारा अपनी माता की पिटाई का विरोध भी किया जाने लगता है और तब तक पुत्र वधुएं भी आ जाती हैं, जो घरेलू कार्यों को संभाल लेती हैं। जिन पुरूषों का दूसरा विवाह हुआ है अथवा बड़ी मुश्किल से विवाह हुआ है, वे भी सामान्यतया अपनी पत्नियों को नहीं पीटते हैं। जिन स्त्रियों के पति शराब पीते हैं, वे ज्यादा उत्पीड़ित होती हैं, लेकिन ज्यादातर पति अपनी पत्नी को तब पीटते हैं जब वे मद्यपान नहीं किए होते हैं। उच्च शिक्षित पति अपनी पत्नी को नहीं पीटते हैं तथा शिक्षित पत्नियों के पिटने की सम्भावना कम होती है। जो परिवार आर्थिक कठिनाइयों से ग्रस्त हैं, उनमें महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाएं अधिक होती हैं। आत्मनिर्भर पत्नियों के पिटने की सम्भावना न्यूनतम होती है और प्रायः वे नहीं पिटती हैं। एक ऐसा भी मामला प्रकाश में आया जिसमें पत्नी के द्वारा अपने पति की पिटाई की जाती थी। इसे अपवाद माना जा सकता है।

अध्ययन से 'ग्रामीण विवाहित महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा के जो कारण' प्रकाश में आए हैं, उनमें पति की अहं भावना, अधिकार तथा प्रबलता की प्रवृत्ति, पति में हीनता की

तालिका नं. (१) : सूचनादात्रियों की समाजार्थिक स्थिति सम्बन्धी परिवर्त्य

सम्बन्धित परिवर्त्य	तत्सम्बन्धित आवृत्तियाँ (प्रतिशत)			समस्त (प्रतिशत)
पारिवारिक हिंसा की स्थिति	पारिवारिक हिंसा से पीड़ित महिलाएं ९(१८.००)	पारिवारिक हिंसा से मुक्त महिलाएं ४१(८२.००)	-- ०(००.००)	योग ५०(१००.००)
जाति/वर्ग	सामान्य २५(५०.००)	अन्य पिछड़ा १४(२८.००)	अनुसूचित ११(२२.००)	योग ५०(१००.००)
आर्थिक वर्ग	उच्च २३(४६.००)	मध्यम ९(१८.००)	निम्न १८(३६.००)	योग ५०(१००.००)
उत्पीड़क आयु वर्ग (वर्षों में)	१८-२१ वर्ष ११(२२.००)	२१-४२ वर्ष ३७(७४.००)	४३ वर्ष से अधिक २(४.००)	योग ५०(१००.००)
पति का शैक्षिक स्तर	अशिक्षित व प्राथमिक २६(५२.००)	माध्यमिक व इण्टर २०(४०.००)	उच्च शिक्षित ४(८.००)	योग ५०(१००.००)
मद्य व्यसनी	उच्च नशा २(४.००)	मध्यम नशा १७(३४.००)	होशोहवास (नशा नहीं) ३१(६२.००)	योग ५०(१००.००)
प्रथम प्राथमिकी दर्ज कराना	हाँ ४(८.००)	नहीं ४४(८८.००)	अनुत्तरित २(४.००)	योग ५०(१००.००)
उत्पीड़न का स्वरूप (प्रकार)	शारीरिक ३०(६०.००)	मानसिक १५(३०.००)	भावात्मक ५(१०.००)	योग ५०(१००.००)

भावना, परिवार के महिला सदस्यों के पारस्परिक झगड़े, घरेलू व अन्य कार्यों को पति की इच्छानुसार न करना, पत्नियों का अपने दायित्वों के प्रति लापरवाही बरतना, पत्नी का पति की पसंद के अनुरूप न होना, पुत्रियों की अधिक संख्या तथा दहेज की मांग आदि हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अनुसूचित जातियों में दहेज सम्बन्धी कोई मामला सामने नहीं आया। बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव भी इसका कारण है। कई बार पति बाहरी कारणों से तनावग्रस्त होकर घर में प्रवेश करते हैं और अपना सारा क्रोध पत्नी पर उतार देते हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ भी पत्नी के प्रति दुर्व्यवहार में योगदान देती हैं। आम तौर पर यह माना जाता है कि मद्यपान (नशा) भी हिंसा का एक कारण है। 'राम आहूजा' ने अपने अध्ययन में पाया कि पत्नी को पीटे जाने के साथ-साथ ३१.७ प्रतिशत मामलों में नशा भी सम्मिलित था। 'हिलबरमन और मन्सन' ने ९३ प्रतिशत मामलों ऐसा पाया और 'वोल्फगैंग' ने ६७ प्रतिशत व 'टिकलेनवर्ग' ने ७१ प्रतिशत मामलों में ऐसा देखा। प्रस्तुत अध्ययन से यह पता चलता है कि मद्यपान महिलाओं के विरूद्ध पारिवारिक हिंसा का कारण नहीं है, क्योंकि अधिकतर पति अपनी पत्नी को तब पीटते हैं जब वे शराब नहीं पिए होते हैं।

सभी पीड़ित पत्नियाँ यह मानती हैं कि उनकी गलती होने पर पति द्वारा पीटा जाना उचित है। उनकी गलती न होने पर उनकी पिटाई अनुचित है। कुछ मामले इतने गम्भीर नहीं थे कि उनकी पिटाई होनी चाहिए परन्तु हुई। सामान्यतया पीड़ित स्त्रियाँ न तो पुलिस में शिकायत करती हैं और न अपने मायके में। एक तो पिटाई ज्यादा गम्भीर नहीं होती और दूसरा कारण यह है कि वे यह मानती हैं कि उन्हें जीवन भर अपने पति के घर में ही रहना है, मायके में तो उनका सम्पूर्ण जीवन नहीं व्यतीत हो सकता। कुछ उत्पीड़ित महिलाएं ऐसी घटनाओं को अपने भाग्य से जोड़ लेती हैं और सोचती हैं कि उनके भाग्य में यही लिखा है।

दूसरी तरफ अपनी पत्नियों को पीटने वाले पतियों का मानना है कि वे अपनी पत्नियों को नहीं पीटना चाहते हैं, परन्तु पत्नियाँ ही उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करती हैं। पत्नियाँ स्वयं ऐसा व्यवहार करती हैं कि पतियों को गाली व पिटाई करनी पड़ती है। वे घरेलू कार्यों को ठीक से नहीं करती हैं, उनकी बात नहीं मानती हैं, व्यर्थ में बड़बड़ाती हैं आदि। राम आहूजा ने भी अपने अध्ययन में देखा कि पत्नी की पिटाई करने वाले पतियों ने अपनी पत्नी को पीठ पीछे बुराई करने वाली, उनकी माता, भाइ व बहिनों के साथ बुरा व्यवहार करने, घर की उपेक्षा

करने, सम्बन्धियों से बुरी बात करने, कुछ लोगों से गलत सम्बन्ध रखने, अपने ससुराल वालों का कहना मानने से इनकार करने, उन्हें लड़ाई वाले स्वभाव से क्रुद्ध करना तथा उनके मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप करने का दोषी पाया। पति द्वारा पत्नी की पिटाई के समय परिवार के अन्य सदस्य तटस्थ रहते हैं। उनको यह लगता है कि यह पति-पत्नी का व्यक्तिगत मामला है। गलती करने पर तो पत्नियाँ पिटती ही हैं; लेकिन किशोर एवं युवा पुत्रों द्वारा कई बार इसका विरोध तक किया जाता है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी पारिवारिक हिंसा की स्वीकार्यता व वैधानिकता पाई जाती है। न पीटने वाले पति तो यह मानते हैं कि गलती होने पर भी पत्नियों को नहीं पीटना चाहिए, किन्तु न पिटने वाली पत्नियाँ यह मानती हैं कि पत्नियाँ यदि गलती करेंगी तो पिटेंगी ही। पीटने वाले पति यह मानते हैं कि यदि पत्नियाँ कोई गलत कार्य करती हैं तो उनको सुधारने के लिए पीटना आवश्यक है। पिटने वाली पत्नियाँ यद्यपि पिटना नहीं चाहती हैं परन्तु कहीं न कहीं वे यह मान कर चलती हैं कि पति को उन्हें पीटने का अधिकार है। यह तो स्त्रियों का भाग्य है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में न केवल अधिकतर पुरूष बल्कि महिलाएं स्वयं इस प्रकार की हिंसा को तर्कसंगत, वैध, न्यायोचित रूप में स्वीकार करती हैं। इस न्यायोचित व वैधानिकता को 'परम्परागत समाजीकरण के सिद्धान्त' से समझा जा सकता है। 'सीमॉन द बोउवा' अपनी पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख करती है।[८] प्रत्येक सामाजिक संरचना में समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से पुरूषों में शक्ति तथा आक्रामकता के गुण स्वाभाविक रूप से विकसित किए जाते हैं, जबकि इसके विपरीत स्त्रियों में लज्जा तथा सहनशीलता के गुण विकसित किए जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में विवाहित महिलाएं स्वयं यह मानकर चलती हैं कि 'पुरूष' स्त्री से श्रेष्ठ हैं। अतः वह अपनी पत्नी के ऊपर तमाम अधिकार रखता है, यहाँ तक कि पीटने का भी।

अध्ययन के दौरान सूचनादाताओं ने यह भी स्वीकार किया है कि पिछले बीस पच्चीस वर्षों की अपेक्षा अब पत्नियों के साथ गाली-गलौज, मारपीट तथा दुर्व्यवहार कम हो गया है। शिक्षा में वृद्धि के साथ-साथ कुछ ऐसे सकारात्मक कारण हैं जिससे इस पारिवारिक हिंसा में कमी आई है। इनमें शिक्षा का प्रसार, गतिशीलता में वृद्धि 'घरेलू हिंसा कानून २००५ का क्रियान्वयन' इत्यादि कारक प्रमुख हैं। निःसन्देह शिक्षा के प्रचार से स्त्री व पुरूषों की मानसिकता में रचनात्मक परिवर्तन आया है। यातायात व संचार के साधनों में प्रगति होने से गतिशीलता में वृद्धि हुई है। जिन ग्रामीण लोगों का सम्पर्क नगरों तथा महानगरों से हुआ है, उनकी मानसिकता उक्त सन्दर्भ में परिवर्तित हुई है। शिक्षा तथा गतिशीलता से पुरूष की अपनी पत्नी को दासी मानने की प्रवृत्ति कम होती है और साथ ही महिलाओं की कार्यशैली में भी सुधार होता है। एक अन्य कारण आर्थिक स्थिति में सुधार है। इससे मानसिक तनाव में कमी आती है और पति-पत्नी के बीच लड़ाई-झगड़े के अवसरों की सम्भावना भी कम हो जाती है।

समस्या समाधान की दिशा में आवश्यकता इस बात की है घरेलू हिंसा रोकने और घरेलू हिंसा की शिकार महिला को स्थानीय समुदाय के स्तर पर ही मदद मिल जाये, इसकी पहल सामुदायिक स्तरों पर ही की जाये। इसके लिए परम्परागत विवाद निपटाने के स्थानीय तरीकों को अपनाने की जरूरत है। गुजरात, उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल के कुछ चुने हुए जिलों में 'महिला समाख्या' की ओर से 'नारी अदालत' और 'महिला पंच' के सफल प्रयोग हुए हैं। जिनमें स्थानीय समुदाय के लोगों और महिलाओं ने घरेलू हिंसा के प्रकरणों को सुलझाने और पीड़ित महिलाओं को सुलभ न्याय दिलाने और सहायता देने की पहल की है। आवश्यक है कि इस प्रदेश में भी स्थानीय तौर पर स्थानीय समुदाय और सामाजिक संस्थायें ऐसी पहल करें कि घरेलू हिंसात्मक विवाद न हों। इक्कीसवीं सदी में भी महिलायें घरेलू हिंसा सहती रहें यह किसी भी समुदाय के लिये स्वीकार्य नहीं होना चाहिए।

सन्दर्भ

१. बर्मन इन्दिरा, 'घरेलू हिंसा', त्रैमासिक राष्ट्रीय शोध पत्रिका 'सामाजिक सहयोग' उज्जैन (म.प्र.), अंक ५८, अप्रैल- जून २००६, पृष्ठ ७५-७६
२. टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोसल साइन्स एण्ड रिपोर्ट ऑफ स्पेशल सेल बॉम्बे पुलिस कमिश्नर, २०११
३. रिपोर्ट ऑफ नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इण्डियन यूनिवर्सिटी, बेंगलूरू एण्ड आई.सी.आर.डब्ल्यू. नई दिल्ली (रिपोर्ट), २०१३
४. 'क्राइम ब्यूरो' इण्टरनेशनल सेण्टर फॉर रिसर्च ऑन बूमेन, नई दिल्ली, रिपोर्ट : २०००
५. आहूजा राम; 'क्राइम अंगेस्ट वूमेन', रावत पब्लिकेसन्स जयपुर, १६८७
६. हिलबर्मन ई. एण्ड मन्सन एम.; 'सिक्स्टी बीटर्ड वूमेन', इन ऐन इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ विक्टोमोलॉजी, न्यूयार्क, १६६७
७. वॉल्फगेंग एम.ई., 'वॉयलेन्स इन द फेमिली', जॉन विले पब्लिकेशन्स न्यूयार्क, १६७८
८. रचना रंजना, 'घरेलू हिंसा का सामाजिक निर्माणः एक प्रघटनाशास्त्रीय व्याख्या', 'सामाजिकी' वार्षिक शोध पत्रिका, बी.एच.यू. वाराणसी (उ.प्र.) २००२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण क्षेत्र के बी. पी. एल. परिवारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ० सीताराम

समाज के सबसे निम्न वर्ग जिसे भारत सरकार ने बी० पी० एल० (गरीबी की रेखा से नीचे) के वर्ग में सम्मिलित किया है, यह समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसके पास मूलभूत सुविधाओं का अभाव पाया जाता है तथा जो वर्ग कठिन परिश्रम करके अपना जीवन-यापन करता है। इसके पास स्थायी रोजगार नही है तथा इसकी प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है। प्रस्तुत शोध ग्रामीण समाज के बी० पी० एल० परिवारों की समाजार्थिक गतिशीलता के एक समाजशास्त्रीय अध्ययन पर आधारित है।

बी० पी० एल० परिवारों की समस्याः ग्रामीण समाज में प्राचीनकाल से ही लोगों का जीवन समस्याओं से परिपूर्ण रहा है। व्यक्ति पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर रहकर अपना जीवन- यापन करता था। परन्तु वर्तमान समाज में प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक तरीके से जीवन व्यतीत कर रहा है। सामाजिक दृष्टिकोण से समाज का तीन प्रकार से विभाजन दिखायी पडता है। सबसे पहले उच्च वर्ग एवं द्वितीय मध्यम वर्ग तथा तीसरा निम्न वर्ग हैं। समाज के सबसे निम्न वर्ग जिसे भारत सरकार ने बी० पी० एल० (गरीबी की रेखा से नीचे) के वर्ग में सम्मिलित किया है, यह समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसके पास मूलभूत सुविधाओं का अभाव पाया जाता है तथा जो वर्ग कठिन परिश्रम करके अपना जीवन-यापन करता है। इसके पास स्थायी रोजगार नही है तथा इसकी प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है। प्रस्तुत शोध ग्रामीण समाज के बी० पी० एल० परिवारों की समाजार्थिक गतिशीलता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन पर आधारित है। इस अध्ययन के अंतर्गत बी० पी० एल० परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को ज्ञात करने के लिए ऑकडे एकत्रित किये गये जिससे यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि इन निर्धन वर्गो के जीवन- स्तर में कितना परिवर्तन आया है तथा केन्द्र एवं राज्य सरकार की इस बी० पी० एल० योजना का कमजोर वर्गो को क्या लाभ हुआ है। कमजोर वर्गो का जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए कौन- कौन से प्रयास किये जा सकते हैं तथा यह वर्ग किस प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है।

वह सरकारी योजनाओं से कितना संतुष्ट है। अपने परिवार का उत्तरदायित्व एवं पुत्र- पुत्रियों की शादी, आवास, शौचालय, व्यवसाय, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि इन समस्याओं को दूर करने के लिये किस प्रकार के प्रयास किये गये है तथा सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों का कितना योगदान है। इन सभी प्रयासों से कमजोर वर्ग बी० पी० एल० परिवारों के जीवन में कितनी सामाजिक स्थितिं में सुधार हुआ है कितनी सामाजिक गतिशीलता आयी है। भौतिक सुविधाओं के अभाव में इनका जीवन कौन सी कठिनाइयों से होकर गुजरता है जिसका इनके शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर क्या प्रभाव पड़ता है। समाज में आर्थिक असमानता असन्तोष को जन्म देती है जब किसी व्यक्ति के पास आय के साधन सीमित होते हैं और उसकी आय बहुत कम होती है जिससे वह व्यक्ति अपने जीवन में उपभोंग की जाने वाली प्राथमिक वस्तुये भी नही खरीद सकता है और समाज मे रहते हुये उसमें हीन भावना जन्म लेती है तथा वह व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रस्थिति से बहुत दूर पहुँच जाता है। ऐसे व्यक्ति को समाज के व्यक्ति तरह- तरह के आरोप लगाकर उसकी निर्धनता का उपहास उड़ाते रहते हैं ऐसे व्यक्तियों को ही सरकार ने गरीबी की रेखा के नीचे (बी० पी० एल०) की श्रेणी में रखकर उनकी विशेष आर्थिक सहायता की है जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा हो सके और वह समाज की मुख्य धारा में पहुँचकर सम्मानजनक जीवन प्राप्त कर सकें।

शोध प्रारचना : प्रस्तुत अध्ययन जनपद सहारनपुर के विकास खण्ड नागल की ७४ ग्राम पंचायतों में से २० ग्राम पंचायतों पर आधारित है। नागल ब्लाक से २० ग्राम पंचायतों में से प्रत्येक से दस-दस सूचनादाताओं का चयन सविचारपूर्ण निदर्शन विधि से किया गया। इस प्रकार २०० सूचनादाताओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया। अध्ययन पद्धति में साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन विधि को प्रयोग में लाया गया तथा प्राथमिक ऑकड़ों के साथ-साथ द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग भी किया गया।

शोध के उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र, ठा० कृपाल सिंह मैमोरियल पी० जी० कॉलेज, देवबन्द सहारनपुर (उ०प्र०)

निम्नलिखित रहे हैं

१. बी.पी.एल. परिवार की सूची में सम्मिलित होने पर जीवन स्तर में क्या परिवर्तन हुआ है?
२. बी.पी.एल. परिवारों के बच्चे किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रहे है ?
३. बी.पी.एल. परिवारों की विभिन्न समस्याये कौन सी है?
४. बी.पी.एल. परिवारों को सरकारी योजनाओं का कितना लाभ प्राप्त हुआ है?

अध्ययन में बी० पी० एल० श्रेणी में गाँव में ४६,००० रूपये वार्षिक आय वाले परिवारों को ही शामिल किया है। सरकार द्वारा बी.पी.एल. परिवारों के लिये निम्नलिखित योजनाएं चलाई जा रही हैं:-

१. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन योजना।
२. ग्रामीण महिला एवं बाल उत्थान योजना।
३. इन्दिरा आवास योजना।
४. विधवा एवं वृद्धा पेंशन योजना।
५. खाद्यान्न योजना।
६. निःशुल्क चिकित्सा सुविधा।
७. लोहिया ग्रामीण आवास योजना।
८. उज्जवला एल. पी. जी. गैस सिलेण्डर योजना इत्यादि।

तालिका संख्या- ०१

बी. पी. एल. परिवारों के सदस्यों की शिक्षा

शिक्षा	आवृति	प्रतिशत
अशिक्षित	६०	३०.००
प्राइमरी	८०	४०.००
जु० हाईस्कूल	४०	२०.००
हाईस्कूल	१५	०७.५०
इण्टरमीडिएट	०५	०२.५०
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ४० प्रतिशत सूचनादाताओं की शिक्षा प्राइमरी स्कूल तक ही सम्पन्न हुयी है दूसरे ३० प्रतिशत सूचनादाता अशिक्षित हैं इसके बाद २० प्रतिशत सूचनादाताओं की शिक्षा जूनियर हाईस्कूल तक ७.५० प्रतिशत हाई स्कूल तक तथा केवल २.५ प्रतिशत सूचनादाताओं ने इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा प्राप्त की है तथा वे सबसे अधिक शिक्षित हैं। इस तालिका से यह निष्कर्ष सामने आया है कि सबसे अधिक सूचनादाता प्राइमरी तक की शिक्षा प्राप्त कर सके हैं।

तालिका संख्या- ०२

बी. पी. एल. परिवारों की आय का विवरण

आय प्रतिमाह	आवृति	प्रतिशत
४ हजार	१२००	६०.००
३ हजार	६००	३०.००
२ हजार ५००	१०	०६.००
२ हजार	१०	०४.००
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका सं०-२ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ६० प्रतिशत सूचनादाताओं के परिवार को प्रतिमाह ४ हजार रूपये की आय हुई है उसके बाद ३० प्रतिशत सूचनादाताओं की ३ हजार रूपये प्रतिमाह की आय है और ०६ प्रतिशत ने २५०० रूपये प्रतिमाह आय होना बताया एवं ०४ प्रतिशत ने कहा है कि मात्र २ हजार रूपये प्रतिमाह आय होती है। तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांशतः बी. पी. एल. परिवार के वरिष्ठ सदस्यों की सबसे अधिक प्रतिमाह आय ४ हजार रूपये है।

तालिका संख्या- ०३

बी. पी. एल. परिवारों मे समस्या का निराकरण

समस्या का निराकरण	आवृति	प्रतिशत
आवास समस्या का निराकरण	१२०	६०.००
खाद्य सामग्री की समस्या का निराकरण	३०	१५.००
रोजगार की समस्या का निराकरण	२०	१०.००
वस्त्रों की समस्या का निराकरण	१२	०६.००
शिक्षा की समस्या का निराकरण	१०	०५.००
शादी की समस्या का निराकरण	०८	०४.००
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारणी -३ से स्पष्ट है कि ६० प्रतिशत सूचनादाताओं ने अपनी आवास समस्या का निराकरण होना स्वीकार किया है। १५ प्रतिशत ने खाद्य सामग्री की समस्या का, १० प्रतिशत ने रोजगार की समस्या का, ६ प्रतिशत ने वस्त्रों की समस्या का, ५ प्रतिशत ने बच्चों की शिक्षा की समस्या का और ४ प्रतिशत ने पुत्र- पुत्रियों की शादी की समस्या का निराकरण होना स्वीकार किया है। तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि सबसे अधिक परिवारों की आवास समस्या का निराकरण किया गया है।

तालिका संख्या- ०४

बच्चों की शिक्षा प्राप्त करने का विवरण

अंग्रेजी माध्यम	आवृति	प्रतिशत
हाँ	१०	०५.००
नही	१९०	९५.००
योग	२००	१००

तालिका संख्या- ०४ का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ९५ प्रतिशत सूचनादाताओं ने बताया है कि उनके बच्चे सरकारी प्राइमरी स्कूल से हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर रहे है तथा ०५ प्रतिशत ने बताया है कि उनके बच्चे निजी अंग्रेजी माध्यम के स्कूल से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सबसे अधिक परिवारों के बच्चे सरकारी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते हैं।

तालिका संख्या- ०५

बी.पी.एल. परिवारों के वरिष्ठ सदस्यों का व्यवसाय

व्यवसाय	आवृति	प्रतिशत
श्रमिक	२०	१०.००
कृषि श्रमिक	१२०	६०.००
ईट- भट्टे पर श्रमिक	१०	०५.००
लघु उद्योग में श्रमिक	२०	१०.००
सडक निर्माण में श्रमिक	२०	१०.००
आवास निर्माण में श्रमिक	१०	०५.००
योग	२००	१००

तालिका संख्या ०६ से स्पष्ट है कि ६० प्रतिशत सूचनादाताओं ने बताया है कि वे कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं जबकि १० प्रतिशत ने बताया कि केवल श्रमिक कार्य करते हैं।१० प्रतिशत ने बताया कि वे लघु उद्योग में श्रमिक कार्य करते हैं १० प्रतिशत ने स्वीकार किया है कि सडक निर्माण मे श्रमिक कार्य करते हैं जबकि ०५ प्रतिशत ने बताया कि वे ईट - भट्टे पर श्रमिक कार्य करते हैं।

तालिका संख्या ०६

पुत्र-पुत्रियों के विवाह में आर्थिक सहायता का विवरण

सहायता का विवरण	आवृति	प्रतिशत
जनप्रतिनिधि द्वारा	२०	१०.००
परिवार के सदस्यों द्वारा	८०	४०.००
रिश्तेदारों द्वारा	२०	१०.००
मित्रों द्वारा	२०	१०.००
सरकार द्वारा	४०	२०.००
समाज-सुधारकों द्वारा	२०	१०.००
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका ०६ के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सूचनादाताओं के पुत्र- पुत्रियों की शादी में ४० प्रतिशत आर्थिक सहायता उनके परिवार के सदस्यों द्वारा की गयी है जबकि २० प्रतिशत ने स्वीकार किया है कि सरकार ने उनकी आर्थिक सहायता प्रदान की है। १० प्रतिशत ने बताया है कि जनप्रतिनिधि के द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी गयी, १० प्रतिशत ने बताया है कि रिश्तेदारों द्वारा, १० प्रतिशत ने ही मित्रों के द्वारा एवं १० प्रतिशत ने ही समाज- सुधारकों द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करना स्वीकार किया है। यह निष्कर्ष हमारे सामने आया है कि पुत्र.- पुत्रियों की शादी मे सबसे अधिक आर्थिक सहायता परिवार के सदस्यों के द्वारा ही प्रदान की गयी है।

तालिका संख्या- ०७

गरीबी के कारण मानसिक तनाव का विवरण

कारण	आवृति	प्रतिशत
पुत्र-पुत्रियों की शिक्षा के कारण	२०	१०.००
पुत्र- पुत्रियों की शादी के कारण	९०	४५.००
स्थायी रोजगार न होने के कारण	५०	२५.००
भौतिक सुविधाओं का अभाव	१५	०७.००
समाज में सम्मान न मिलना	१५	०७.००
सामाजिक संबंधों को महत्व न मिलना	१०	०५.००
योग	२००	१००

सारणी संख्या -०७ के अवलोकन से स्पष्ट है कि ४५ प्रतिशत सूचनादाताओं ने बताया है वे गरीबी के कारण पुत्र- पुत्रियों की शादी के लिए तनावग्रस्त रहते हैं तथा २५ प्रतिशत ने स्पष्ट किया है कि वे स्थायी रोजगार न होने के कारण मानसिक तनाव मे रहते हैं, १० प्रतिशत ने बताया है कि वे पुत्र- पुत्रियों की शिक्षा के कारण, ७.०५ प्रतिशत भौतिक सुविधाओं के अभाव के कारण, ७.५० प्रतिशत समाज में सम्मान न मिलने के कारण तथा ५ प्रतिशत समाज में सामाजिक सम्बन्धों को महत्व न मिलने के कारण मानसिक तनाव में रहते हैं। तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि परिवारों में पुत्र- पुत्रियों के शादी की चिन्ता में माता- पिता को सबसे अधिक मानसिक तनाव का सामना करना पडता है।

तालिका संख्या- ०८

निर्धनता की श्रेणी में आने के कारण

निर्धनता में आने के कारण	आवृति	प्रतिशत
प्राकृतिक आपदा	२०	१०.००
दुर्घटना	२०	१०.००
व्यापार में हानि	१०	०५.००

अशिक्षित	६०	३०.००
स्थायी रोजगार न होना	४०	२०.००
समाजिक सहयोग न मिलना	१०	०५.००
अधिक समय बीमार रहना	१०	०५.००
सरकारी सहायता न मिलना	२०	१०.००
जातिय/साम्प्रदायिक हिंसा	१०	०५.००
योग	२००	१००

सारणी संख्या- ०८ से स्पष्ट है कि ३० प्रतिशत सूचनादाताओं ने निर्धनता/ बी. पी. एल. की श्रेणी में आने का कारण अशिक्षित होना स्वीकार किया है, २० प्रतिशत ने स्थायी रोजगार न होना, १० प्रतिशत ने प्राकृतिक आपदा के कारण, १० प्रतिशत ने सरकारी सहायता न मिलने के कारण, ५ प्रतिशत सामाजिक सहयोग न मिलने के कारण, ५ प्रतिशत अधिक समय बीमार रहने के कारण ५ प्रतिशत ने बताया है कि जातीय एवं साम्प्रदायिक हिंसा होने के कारण निर्धनता की श्रेणी में आए हुये हैं। यह निष्कर्ष हमारे सामने आया है कि सबसे अधिक निर्धनता पीढ़ी दर पीढ़ी अशिक्षित होने के कारण आयी है।

तालिका संख्या ६

बी. पी. एल. परिवार के आवास का विवरण

परिवार के आवास की स्थिति	आवृति	प्रतिशत
कच्चा आवास/बिना प्लास्टर आवास	३०	१५.००
पक्का एक कमरे का आवास	२०	१०.००
दो कमरों का आवास	६०	३०.००
किराये का आवास	००	००.००
बी.पी.एल. योजना से बना आवास	८०	४०.००
पक्का स्नानागार एवं शौचालय	१०	०५.००
योग	२००	१००

तालिका संख्या -६ के अवलोकन से स्पष्ट है कि ४० प्रतिशत सूचनादाताओं ने बी. पी. एल. योजना से बना आवास होना स्वीकार किया है जबकि ३० प्रतिशत ने बताया कि उनके पास सिर्फ दो कमरों वाला आवास है और १५ प्रतिशत ने स्वीकार किया कि उनके पास कच्चा/बिना प्लास्टर का आवास है तथा १० प्रतिशत ने बताया है कि उनके पास पक्का एक कमरे का आवास है जबकि ५ प्रतिशत ने बताया है कि पक्का स्नानागार एवं शौचालय की सुविधा उपलब्ध है। **इससे** यह निष्कर्ष निकलता है कि सबसे अधिक बी. पी. एल. परिवारों के पास सरकारी बी. पी. एल. योजना से बना आवास है।

निष्कर्षः समाज में सबसे निम्न वर्ग जिसमें बी. पी. एल. परिवारों की सामाजिक गतिशीलता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन करने पर पाया है कि समाज में इन परिवारों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में कोई बदलाव नही आया है सरकार ने बी. पी. एल. परिवारों की आय सीमा मे वृद्धि कर nh g&[1] बी.पी.एल. परिवारों को निःशुल्क बिजली कनेक्शन दिए जा रहे हैं।[2] बी.पी.एल. परिवारों को प्रशिक्षण देकर नौकरी की गारंटी दी जा रही है।[3] बी.पी.एल. परिवारों के स्वास्थ्य कार्ड बनाये जा रहे हैं।[4] इन परिवारों को बेटी के जन्म के समय आर्थिक सहायता दी जा रही है। बेटी के जन्म पर खुशियाँ बी.पी.एल. परिवारों में नई आशा जगा रही हैं।

सूचनादाताओं ने मात्र प्राइमरी स्कूल तक ही अपनी शिक्षा प्राप्त की है। और इनकी आय ४ हजार रूपये से अधिक नही है। इनकी आवास समस्या का निराकरण हो गया है। इनके बच्चे सरकारी स्कूलों मे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अधिकतर सूचनादाता कृषि श्रमिक के रूप में कार्य कर रहे हैं और पुत्र-पुत्रियों के विवाह में आर्थिक सहायता परिवार के लोग ही करते हैं। पुत्र- पुत्रियों के विवाह की चिन्ता में माता-पिता को मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है।

बी. पी. एल. परिवारों की निर्धनता का मूल कारण उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी अशिक्षित होना भी है। यह सरकारी योजनाओं में बने आवास में निवास करते हैं। इनके पास भौतिक सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। सरकार इनका स्थायी रोजगार एवं शिक्षा तथा जनसंख्या वृद्धि रोक पर ध्यान देकर योजनाये बनायी जानी चाहिये जिससे इन समाज के सबसे गरीब परिवारों के जीवन स्तर को बेहतर बनाया जा सके और कष्ट एवं पीड़ा से इन्हें छुटकारा दिलाया जा सके।

सन्दर्भ

१. हिन्दुस्तान, समाचार पत्र मेरठ 'बी. पी. एल. की आय सीमा में इजाफा' १६ अक्टूबर २०१५

२. अमर उजाला फरूखाबाद, 'बी.पी.एल. कार्ड धारकों को मुफ्त में बिजली कनेक्शन', १५ जनवरी २०१६, पंजाब केसरी 'बी.पी.एल. पविारों को मुफ्त बिजली' २१ जुलाई २०१७

३. अमर उजाला नई दिल्ली, 'बी.पी.एल. परिवारों के युवकों को प्रशिक्षण देकर नौकरी की गारंटी' १७ जनवरी २०१७

४. पंजाब केसरी 'बी.पी.एल. परिवारों का स्वास्थ्य कार्ड बने', २० फरवरी, २०१७

५. पंजाब केसरी, 'बी.पी.एल. परिवारों को पहली बेटी के जन्म पर आर्थिक सहायता' कुरूक्षेत्र, जुलाई २५, २०१७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

निर्धनता उन्मूलन में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना का प्रभाव

❑ कु. दीपाली वर्मा

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के अधिदेश में सभी निर्धन परिवारों तक पहुंच सुनिश्चित करना, उन्हे स्थायी जीविका अवसर उपलब्ध कराना और गरीबी से ऊपर आने तक उनका पोषण करना निहित है, ताकि वे अच्छा जीवन बसर कर सकें। इसके लिए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना में विभिन्न स्तरों पर समर्पित एवं संवेदनशील सहायता संरचनाओं की व्यवस्था की गई है। प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के बड़वानी जनपद पर आधारित है, में परियोजना के प्रति हितग्राहियों की जागरूकता इसके प्रभाव से निर्धता उन्मूलन तथा परियोजना के क्रियान्वयन से कमियों एवं अन्य समस्याओं को आलोकित करने का प्रयास किया गया है।

गरीब परिवारों के लिए परिसम्पत्तियों के सृजन तथा स्वरोजगार हेतु ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा वर्ष १९८० में समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) की शुरुआत की गई थी। इस संबंध में १९९९ में एक महत्वपूर्ण बदलाव आया जब IRDP को स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGV) के रुप में परिवर्तित किया गया। गरीबों को स्व-सहायता समूहों के रुप में संगठित करके स्वरोजगार उपलब्ध कराना, नई रणनीति का मुख्य अंग था। राज्यों में गरीबों के उन्मूलन हेतु गरीबों को एस एच जी में संगठित करने को एक महत्वपूर्ण आवश्यकता माना जा रहा है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के अधिदेश में सभी निर्धन परिवारों तक पहुंच सुनिश्चित करना, उन्हे स्थायी जीविका अवसर उपलब्ध कराना और गरीबी से ऊपर आने तक उनका पोषण करना निहित है, ताकि वे अच्छा जीवन बसर कर सकें। इसके लिए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना में विभिन्न स्तरों पर समर्पित एवं संवेदनशील सहायता संरचनाओं की व्यवस्था की गई है। इनसे निर्धनों की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है और वे शहरी माहौल से तारतम्य बैठाने में, वित्त एवं अन्य संसाधन प्राप्त करने और विभिन्न स्तरों पर संस्थापन के लिऐ सक्षम बनते हैं। ये संस्थान उपभोग संबंधी जरुरतों, ऋणमोचन, खाघ एवं स्वास्थ्य सुरक्षा तथा आजीविका सहित उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बचत, ऋण एवं अन्य वित्तीय सेवाएं प्रदान करते हैं। वे सदस्यों की जानकारी उनके कौशल परिसम्पत्तियों, अवसंरचनाओं, स्वयं की निधियों तथा अन्य संसाधनो में वृद्धि करते हैं। वे सदस्यों की आय में बढोत्तरी करते हैं, व्यय में कमी करते हैं, लाभदायक रोजगार में वृद्धि करते हैं और जोखिम में कमी करते हैं। परियोजना के माध्यम से जागरुक बनाते हैं तथा मोल-तोल क्षमता में वृद्धि होती है।

अध्ययन के उददेश्य :

१. परियोजना के प्रति लाभान्वित हितग्राहियों की जागरुकता एवं दृष्टिकोण ज्ञात करना ।

२. परियोजना के माध्यम से निर्धनता उन्मूलन के प्रभावों का अध्ययन करना।

३. परियोजना के क्रियान्वयन में कमियों एवं अन्य समस्याओं का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना :

१. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के प्रति जागरुक होने से हितग्राहियों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है।

२. परियोजना के द्वारा हितग्राहियों में निर्धनता उन्मूलन में बदलाव की स्थिति नही देखी गई है।

३. राष्ट्रीय ग्रामीण अजीविका परियोजना से हितग्राही पूर्णतः सन्तुष्ट नही हैं।

शोध प्रारुप : अनुसंधान कार्य प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनो प्रकार के आंकड़ों पर आधारित है, जिसमें जानकारी प्रदान करने वाले गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनो ही प्रकार के आंकडों का संग्रहण किया गया है। प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु प्रश्नावली अनुसूची को आधार बनाया गया है। द्वितीयक समंकों हेतु प्रकाशित प्रलेख, समाचार पत्र-पत्रिकाएं, जनगणना पुस्तिकाएं, जिला कार्यालय का वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन, प्रकाषित साहित्य व संबंधित शोध का प्रयोग किया गया। शोध विषय के अनुसार बड़वानी जिले की छः तहसीलों तथा सात विकासखंण्डों के गांवो का अध्ययन किया गया है। प्रत्येक गांव से १५-१५ परिवारों का चयन किया गया है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र के सात विकासखण्डों के १४ गांवों से २१० परिवारों के उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। संकलित आंकड़ों के विश्लेषण हेतु अकंगणितीय माध्य एवं

❑ शोध अध्येत्री, अटल बिहारी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

काई वर्ग विश्लेषण रीति का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियां :

१. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना से संबंधित सामान्य जागरुकता के अन्तर्गत परियोजना का नाम शत-प्रतिशत ग्रामीणों ने सुना है। परियोजना से संबंधित कार्य करने वाली संस्था की जानकारी ८५.२३ प्रतिशत पायी गयी।

तालिका क्रमांक १

सूचनादाताओं की योजना के प्रति जागरूकता

शिक्षा का स्तर	कुल संख्या	परियोजना का नाम सुना है	गांव में कार्यो की जानकारी है	गांव में हुए कार्यो के प्रकार की जानकारी है।	कार्य शुरू होने के समय की जानकारी है	कार्य कराने वाली संस्था की जानकारी है	अन्य कोई दूसरी योजना गांव में कार्यरत
निरक्षर	१२२ (५८.१०)	१२२ (१००)	११६ (९५.०८)	९४ (७७.००)	१०२ (८३.६०)	९१ (७४.५९)	३९ (३१.४६)
साक्षर	४८ (२२.८५)	४८ (१००)	४१ (८५.४१)	४० (८३.३३)	३७ (७७.०८)	३४ (७०.८३)	२६ (५४.१६)
प्राथमिक	३० (१४.२८)	३० (१००)	३० (१००)	२८ (९३.३३)	२५ (८३.३३)	२३ (७६.६६)	१८ (६०)
माध्यमिक	८ (३.८०)	८ (१००)	८ (१००)	६ (७५.००)	६ (७५.००)	५ (६२.५०)	४ (५०.००)
हाईस्कूल या अधिक	२ (०.९५)	२ (१००)	२ (१००)	२ (१००)	१ (५०.००)	२ (१००)	१ (५०.००)
योग	२१० (१००)	२१० (१००)	१९७ (९३.८०)	१७० (८१.९०)	१६९ (८०.४७)	१५५ (७२.८५)	८८ (४१.९०)

उक्त तालिका में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के सामान्य जागरुकता को हितग्राहियों की शिक्षा के स्तर से जोड़ा गया है। शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ जागरुकता में वृद्धि आनुपातिक रुप से अधिक देखी गयी है। गांव में किए जाने वाले कार्य, कार्य के प्रकार एवं कार्य शुरू होने के समय के संबंध में जानकारी तथा अन्य योजनाओं के बारे में जानकारी निरक्षरो की तुलना में साक्षरों में अधिक पाई गई।

तालिका क्रमांक २

सूचनादाताओं का सामाजिक-आर्थिक स्तर

सामाजिक आर्थिक स्तर	संख्या	प्रतिशत
निम्न	९५	४५.२४
मध्यम	१०४	४९.५२
उच्च	११	५.२४
कुल योग	२१०	१००.००

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के जनजातीय ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वयन के बाद यह धारणा प्रबल हुई है कि इन महती लाभकारी योजनाओं से स्वयं एवं क्षेत्र का सामाजिक एवं आर्थिक विकास संभव है। योजनाओं के प्रचार प्रसार एवं महिला जागरूकता से क्षेत्र में अशिक्षा, रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास जैसी कुरीतियों में कमी आयी है स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से जरूरत की छोटी छोटी आवश्यकताएं पूरी हाने लगी है कृषि फसलों से आमदनी बढी, ऋणग्रस्तता में कमी एवं बचत की भावना इन सब कारणों से जनजातीय क्षेत्रों में जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

तालिका क्रमांक ३

सूचनादाताओं की परिसंपत्तियां

प्रकार	परियोजना से पूर्व		परियोजना पश्चात	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
स्वयं की भूमि	२००	९५.००	२१०	१००
पट्टे की भूमि	०	०	६०	२८.५७
ट्रेक्टर	०	०	२६	१२.३८
साईकिल	२९	१३.८	१३८	६५.७२

सेलफोन	०	०	२०२	५६.२
मोटर साइकिल	०	०	३६	१७.१४
टी.वी.	२२	१०.४७	१६३	६१.६
रेडियों	४८	२२.८५	१३६	६४.७६

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना से पूर्व स्वयं की भूमि ६५ प्रतिशत हितग्राहियों के पास तथा पट्टे की भूमि किसी के पास नही थी, जो परियोजना के पश्चात् सभी के पास स्वयं की कृषि भूमि २८.५७ प्रतिशत हितग्राहियों के पास पट्टे की भूमि पर कृषि कार्य करते हुए पाये गये हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना के माध्यम से हितग्राहियों के पास आवागमन के लिऐ साईकिल व मोटर साईकिल संचार के साधन व मनोरंजन के साधनों में वृद्धि देखी गयी।

तालिका संख्या ४

सूचनादाताओं की बचत राशि

कुल बचत राशि	संख्या	प्रतिशत
५०० से अधिक	४८	२२.८५
१०००-३०००	१२२	५८.१०
३००० से अधिक	४०	१६.०५

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि परियोजना से जुडने के पश्चात् १००० से ३००० रुपये बचत करने वाली महिलाओं का प्रतिशत ५८.१० है तथा ५०० से १००० रुपये बचत करने वाली महिलाएं २२.३८ प्रतिशत है तथा १६.०५ प्रतिशत महिलाओं द्वारा ३००० रुपये से अधिक की बचत राशि जमा की गयी है। स्वयं सहायता समूह से ऋण उपलब्ध कराया जाता है। अब इन्हें ऋण के लिए साहूकार या महाजन के दरवाजे पर दस्तक नही देना पडता, साथ ही समूह से मिलने वाले ऋण पर ब्याज कम देना होता है। सूचनादाताओं की ऋणग्रस्तता संबंधी जानकारी लेने पर स्पष्ट हुआ कि २१० हितग्राही परिवारों में से केवल २२.३५ प्रतिशत हितग्राही ही ऋणग्रस्त पाये गये। **राष्ट्रीय ग्रामीण** आजीविका परियोजना के संबंध में हितग्राहियों का बौद्धिक स्तर में सकारात्मक प्रश्नों जैसे स्वयं की भूमि, योजना का लाभ, गतिविधि हेतु प्रशिक्षण , समूह के सदस्य के जीवन स्तर में वृद्धि अधिक देखी गयी। परियोजना से जुड़ने के पश्चात ७५.५२ प्रतिशत हितग्राहियों ने अपने जीवन स्तर में सुधार होना स्वीकार किया। परियोजना के माध्यम से आवागमन तथा संचार के साधनों में वृद्धि देखी गई।

निष्कर्ष : शासन की यह बहुद्देशीय परियोजना जनजाती गरीब, पिछडे क्षेत्र के लोगो एवं महिलाओं के सामाजिक आर्थिक उत्थान के साथ स्थायी आजीविका प्रदान करने के लिऐ की गयी है। परियोजना से जुड़ने के पश्चात् सम्पत्ति व बचत में वृद्धि हुई। उपर्युक्त परिणामों/तथ्यों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि परियोजना से जुड़ने एवं सक्रिय सहभागिता के द्वारा हितग्राहियों के कौशल उन्नयन, व्यक्तित्व विकास, आत्मविष्वास एवं आत्मनिर्भरता तथा संवाद की दशाओं को सकारात्मक बल मिला है। प्रस्तुत शोध के परिणाम दर्शाते हैं कि राष्ट्रीय ग्रामीण, आजीविका मिशन के माध्यम से हितग्राहियो की आय व बचत करने क्षमता में वृद्धि हुई जिससे निर्धनता उन्मूलन में सहायता प्राप्त हुई।

प्रमुख समस्याएं :

१. परियोजना द्वारा दिया जाने वाला अनुदान बहुत कम है, अनुदान सीमित होने के कारण परियोजना का उद्देश्य स्थायी आजीविका प्रदान करना, पूर्ण नहीं हो पाता।
२. नियमित बैठकों का अभाव भी एक प्रमुख समस्या के रुप में पाया गया।
३. कुछ हितग्राहियों ने परियोजना से प्राप्त अनुदान राशि का उपयोग अन्य कार्यो हेतु किया।
४. अशिक्षा, प्रशिक्षण का अभाव, तथा आपसी तालमेल का अभाव पाया गया।

सुझाव :

१. अनुदान राशि में वृद्धि एवं ऋण प्रदाना करना।
२. ग्राम सभा में भाग लेने हेतु प्रेरित करना।
३. प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ताकि हितग्राही की कार्यकौशल व उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सके।

सन्दर्भ

१. क्रियान्वयन मार्गदर्शिका-पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग, म.प्र.
२. माधवप्रसाद गुप्ता, 'पंचायती राज एवं जनजातीय विकास', रावत पब्लिकेशन्स, वर्ष २०१६
३. 'जनजाति एवं वंचित वर्ग', योजना जनवरी २०१४
४. Datta Soumyendra K. , Government Schemes and Impact on Rural livelihood, LAP Lambert Academic, 2011

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

राजस्थानी शैली के चित्रों में आभूषणों का प्रयोग

❑ डॉ० सारिका भारद्वाज

आभूषण प्राकृतिक रूप से सुन्दरता के प्रभावशाली साधन हैं। ये सुन्दरता, सम्पन्नता एवं वैभव का आभास तो दिलाते ही हैं अपितु लोकाचार की दृष्टि से भी बड़े आवश्यक माने जाते हैं। भारतीय कला क्षेत्र में राजस्थानी कला एक प्रभावशाली शैली है, जिसके गहन अध्ययन में रूचि होना एक कला प्रेमी के लिये स्वाभाविक है। राजस्थान भी आभूषणों का एक विचित्र राज्य है। आभूषण यहाँ की कुल देवियों के सुहाग के प्रतीक माने गये हैं। राजस्थानी चित्रकला में कलाकारों ने राजस्थानी आभूषणों का बहुत कलात्मक चित्रण किया है। प्रस्तुत आलेख राजस्थानी शैली के चित्रों में आभूषणों के प्रयोग एवं महत्व को उजागर करता है।

आभूषण प्राकृतिक रूप से सुन्दरता के लिये एक साधन है। चित्रकला में प्रतीक विषय का सरलतम एवं प्रभावशाली चित्रण हुआ इसके साथ ही आभूषण के प्रति प्रेम भी दर्शाया गया है। नारी की सौन्दर्य अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण अंग आभूषण है।

आभूषणों का अपना अलग ही महत्व होता है। यह रूप सौन्दर्य तो बढ़ाते हैं, साथ ही उनका शरीर विज्ञान तथा ज्योतिष शास्त्र से संबंध होता है। आभूषण सुंदरता, सम्पन्नता एवं वैभव का आभास दिलाते हैं। समाज में प्रतिष्ठा दिलाते हैं। लोकाचार की दृष्टि से आवश्यक एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी आभूषण सहयोग करते हैं। भारत के अनेक भागों में स्त्री तथा पुरूष आभूषण धारण किये हुए रहते हैं, खोजी मस्तिष्क के लिये यह एक प्रारम्भिक और परिवर्तन के शोध का विषय है। नारी का सदैव ही आभूषणों के प्रति विशेष लगाव रहा है। यह श्लोक भी इस बात की पुष्टि करता है।

रेखां प्रशंसत्याचार्या वर्तनां च विलक्षणाः
स्त्रियोभूषणमिच्छन्ति वर्णाधमितरे जनाः[1]

राजस्थानी चित्रकला का मूलक्षेत्र भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता है। राजस्थानी चित्रकला में अत्यन्त गूढ़ विषय को लेकर चित्रण अत्याधिक प्रभावशाली ढंग से हुआ है। इस कला में लौकिकता और परालौकिता का ऐसा सुमधुर संयोजन है, जो एक साधारण व्यक्ति तथा ज्ञानी दोनों को ही आनन्द देता है।

भारतीय कला क्षेत्र में राजस्थानी कला एक प्रभावशाली शैली है, जिसके गहन अध्ययन में रूचि होना एक कला प्रेमी के लिये स्वाभाविक है। राजस्थान भी आभूषणों का एक विचित्र राज्य है। आभूषण यहाँ की कुल देवियों के सुहाग के प्रतीक माने गये हैं। राजस्थानी चित्रकला में कलाकारों ने राजस्थानी आभूषणों का बहुत कलात्मक चित्रण किया है। यह लाख, कौढ़ी तथा रंग-बिरंगे धागों को सोने-चांदी तथा नग में जोड़कर बनाये जाते थे। (देखें चित्र संख्या 1)

राजस्थान एक विशाल मरूस्थलीय क्षेत्र है, जिसमें आठवीं से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो चुके थे। इस प्रदेश के शासक-राजपूत (राज-पुत्र) थे। उनकी सभ्यता की छाप आज भी समस्त उत्तरी भारत पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। राजस्थान की प्रमुख शैलियों में मेवाड़ शैली, जयपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, बूंदी शैली आदि हैं।[2]

मेवाड़ शैली में स्त्रियों को ग्रीवा, कमर, भुजाओं तथा कलाइयों में काले फुंदने तथा आभूषण पहने बनाया गया है। मेवाड़ की राजधानी ''उदयपुर'' अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है। उदयपुर का राजदरबार सदैव संगीत तथा नृत्य की लय से गूंजता रहा और यहाँ के महाराज्यों की जीवन पद्धति मध्यकालीन वैभव की प्रतीक थी। राजपूत सभ्यता की छाप मेवाड़ की चित्रकला में दिखाई पड़ती थी। एक हिन्दू राजकुमार के शाही आभूषण अधिकतर इस प्रकार होते थे- पगड़ी में लगाने की कलगी, पगड़ी के आभूषण, बहुमूल्य पत्थरों के कण्ठहार जिनमें बहुत से नग जड़े होते थे, जिनकों शायद मीनाकारी से सजाया जाता था। बाजूबन्द, कड़े, सोने की पायल जिन्हें सादे और मीनाकारी तथा बहुमूल्य नगों से जड़े होते थे।[3] महाराजा जसवन्त सिंह जोधपुर के राजा के व्यक्ति चित्र में उन्हें विभिन्न आभूषण पहने दिखाया गया है। (चित्र संख्या2)

उदयपुर में पगड़ी की कलगी के धागे से बना हुआ शीशा प्रयोग किया जाता था। बहुत से अमीर लोग उसको मजबूत सोने के धागों से बनवाते थे, जो कि सूर्य के प्रकाश में उतना ही चमकता था जितना कि उनके बहुमूल्य नग। कुछ राजकुमार बहुमूल्य पत्थरों की जड़ें जो कि गुच्छे में बनी होती थीं, जिन्हें

❑ एसोशिएट प्रोफेसर चित्रकला, विशाल कन्या पी.जी. कालेज, बरेली (उ.प्र.)

वे अपने सिरों में पहनने के लिए प्रयोग करते थे। महाराजा सज्जन सिंह के व्यक्ति चित्र से आभूषणों का महत्व और सौन्दर्य झलकता है। (चित्र संख्या ३)

धौलपुर के महाराजा का गले का हार जोकि बड़े-बड़े मोतियों की लड़ियों से बना हुआ था, बहुत से चित्रों में एक राजा अधिकतर एक और दोहरे मोतियों की लड़ें जो कुछ दूरी पर लालमणि या पन्नों से जड़ें होते थे, उन हारों को पहनते थे। एक गले में पहनने का आभूषण जो नगों से जड़ा होता था वह सीने के सबसे नीचे भाग में लटका होता था।

बूंदी परिवार १५५३ से वर्तमान समय तक आभूषणों के प्रयोग में बहुत अधिक प्रयोग करते थे। अधिकतर चित्रों में माला या फूलों की माला तथा दूसरे फूल भी प्रयोग किये जाते थे। मोतियों की बहुत सी लड़ें, मोती तथा हीरों के कंगन तथा अत्याधिक शानदार बाजुबंद, कंधे पर डालने वाली पट्टियाँ अँकुरा से सजे हुए जिनमें बहुमूल्य पत्थर लगे होते थे और एक विस्तृत सिर पर ओढ़ने वाली चादर में पन्ना की बूंदों से सजे होते थे।[४] उदय सिंह जो बहुत समय तक भक्त रहा वह केवल एक ताबीज पहनता था जो तुलसी या दूसरे पवित्र दानों के साथ लटका होता था। लगभग सभी लोग मोती और लाल पत्थर के बुंदे पहनते थे। कुछ चित्रों में जोकि स्थानीय कलाकारों के द्वारा बनाये जाते थे, उनमें यह परम्परा थी कि वे इन बहुमूल्य पत्थरों को आधे मोतियों या लालमणि से प्रदर्शित करते थे। जिन्हें कागज पर गोंद से चिपकाया जाता था। महाराजा रामसिंह एक विशाल चपटा सोने का हार पहनते थे। इसमें बहुत से हीरे जड़े हुए थे, जिसे वह अपनी पगड़ी के साथ पहनते थे। यह उनके परिवार का प्रतीक था।

कोटा राज्य के सरदार के चित्र से प्रतीत होता है कि वे गले के हारों से ज्यादा आकर्षित थे। जिन्हें लगभग सभी पहनते थे और वे मोतियों के बने होते थे, जो उनके सीने तक लटकते थे। महाराजा मोतियों की चार लड़ों को अपने कन्धे के शॉल में प्रयोग करते थे। यह उनके गले में लिपटा होता था।[५] (चित्र संख्या ४)

जैसलमेर के महाराजा जो सिंध की सीमा पर रहता था, उसे आभूषणों को पहनने का अच्छा शौक था। यह बहुमूल्य पत्थरों के बूंदे तथा मोतियों की लम्बी मालायें पहनते थे। इनमें कुछ अपने गले में सोने की जंजीर कसी हुई पहनते थे। धनौली परिवार जोकि जैसलमेर के राजपूत राजाओं की एक शाखा थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपने गले में मोतियों की दो या तीन लड़ें पहनना पसन्द करते थे। इनमें अधिकतर सिर में लगाने की कलगी और इसके साथ मोतियों की लड़ें, उनकी पगड़ी के पीरछे लटकी होती थी। ये प्रायः पारिवारिक आभूषण होते थे।

जयपुर के चित्र बहुत अच्छे तथा सुन्दर प्रतीत होते हैं। जयपुर के आभूषणों में सुन्दर आलेखन बनाये गये हैं। जयपुर के शीश के आभूषण, माथे के आभूषण, कान के आभूषण और नासिका के आभूषणों के चित्रण किए गये हैं। जयपुर और अजमेर के मध्य में छोटा सा राज्य किशनगढ़ अरावली पर्वत श्रेणियों से घिरा झील के किनारे बसा हुआ एक मनोरम स्थल है।

राजा राज सिंह के पुत्र सावंत सिंह अपनी पिता की रूचि के कारण कवि और कला मर्मज्ञ हुए जो नागरी दास के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने चित्र विद्या का विधिवत् अभ्यास किया।[६] नागरी राधा का ही दूसरा नाम है। अतः सावंत सिंह ने अपना नाम नागरी दास रख लिया। बनी ठनी इन्हीं की विमाता की दासी थीं जो कृष्ण भक्त थीं। बनी-ठनी का एक व्यक्ति चित्र निहाल चन्द ने बनाया था जो नारी सौन्दर्य का प्रतीक बना तथा राधा का रूप इसी के आधार पर कलाकारों ने चित्रित किया। (चित्र संख्या ५)

उस समय निहाल चन्द सावंत सिंह के दरबार के राज्य कलाकार के पद पर नियुक्त थे। अपने जीवन के अन्तिम दिन सावंत सिंह ने वृंन्दावन में बिताये। सावंत सिंह की मृत्यु के एक वर्ष बाद बनी-ठनी की भी मृत्यु हो गयी। वास्तव में किशनगढ़ चित्रशाला में मौलिक चित्रों का अंकन किया और इसी कारण किशनगढ़ शैली की आश्चर्यजनक उन्नति इसी काल में दिखाई देती है। किशनगढ़ कला का सम्पूर्ण भारतीय लघुचित्र कला में विशिष्ट स्थान है। जहाँ इसे सावंत सिंह से प्रेरणा मिली, वहाँ निहाल चन्द जैसे उत्तम चित्रकार की कल्पना भी मिली जो नागरी दास के सपनों को साकार कर सकी।

किशनगढ़ शैली के अधिकांश चित्रों में स्त्रियों का पहनावा, लहंगा, चोली तथा पारदर्शी आँचल है। गले, माथे, हाथों तथा कमर में आभूषण बनाये गये हैं, परन्तु सबसे अधिक महत्व का आभूषण बेसरि (नाक का आभूषण) है, जो अनोखे ढंग का है।[७] किशनगढ़ राजा लम्बे मोतियों की मालाओं को पहनते थे लेकिन उनके अधिकतर चित्रों में पतला सोने तथा हीरों का गुलबन्द होता था और उनकी पगड़ी में मोती तथा सोने की लड़ियाँ लगी होती थी। उदयपुर के प्रारम्भिक चित्र में पगड़ी की कल्गी के स्थान पर एक विशेष आकार का आभूषण होता था जैसा कि भगवान श्री कृष्ण के ताज पर प्रतीत होता है।

भरतपुर के चित्रों में कुछ राजा गले में सोने की जंजीरों का गुलबन्द पहनते थे जो कि बहुमूल्य पत्थरों से सजा होता था।

दूसरा गुलबन्द छोटे हीरे तथा लालमणि से सजा होता था। साधारण पगड़ी बहुमूल्य पत्थर से जड़े हुए आभूषण से ढकी होती थी। (चित्र संख्या ६)

राजस्थानी चित्रों में संयोग तथा वियोग की स्थितियों में उभरती नारी का अंकन बड़ा सरस तथा कलात्मक एवं भावात्मक है। अतः चित्रों में नित नये आकर्षक स्वर्ण आभूषण, मीने के आभूषण, नग जड़ित तथा मोतियों के आभूषण अपनी छटा बिखरते हुए प्रतीत होते हैं। एक तरफ कवि काव्य रचना कह रहे थे, दूसरी तरफ चित्रकार अपनी कल्पना के जादू से उसको जीवन्त बना रहे थे। राजस्थान के कुशल चित्रकारों ने लघु चित्रों के द्वारा नारी को आभूषणों से परिपूर्ण कर नायिका के मनोभावों की अभिव्यक्ति की है।

इसी प्रकार राजस्थानी शैली के बारह मासा के सभी चित्रों में नारी आभूषण का बहुत ही सुचारू रूप से भावात्मक चित्रण किया गया है। नायिका की संयोगावस्था या वियोगावस्था सभी में आभूषणों का पूर्णतया योगदान रहा है। (चित्र संख्या ७)

इस तरह राजस्थानी चित्रकला में मानवाकृतियों को आभूषणों से पूर्ण सुसज्जित बनाया है। चित्रकार ने सभी अंगों में पहने जाने वाले आभूषणों को कुशलता से चित्रित किया है कि वह देखकर ही पहचाने जाते हैं कि किस धातु या नग का इनमें प्रयोग है।

इस तरह राजस्थानी चित्रकला में मानवाकृतियों को आभूषणों से पूर्ण सुसज्जित बनाया है। चित्रकार ने सभी अंगों में पहने जाने वाले आभूषणों को कुशलता से चित्रित किया है कि वह देखकर ही पहचाने जाते हैं कि किस धातु या नग का इनमें प्रयोग है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आभूषणों का अपना अलग महत्व है। आभूषणों ने भारतीय संस्कृति के साथ-साथ भारतीय चित्रकला के चित्रों को पूर्ण करने तथा नारी सौन्दर्य को निखारने के लिये किस तरह के आभूषण स्त्री और पुरूष पहनते थे, हमें आसानी से पता चलता है। साथ-साथ ही हमें यह भी पता चलता है कि राजस्थानी शैली के चित्रों में आभूषणों का अधिक प्रयोग किया गया है।

चित्र संख्या १

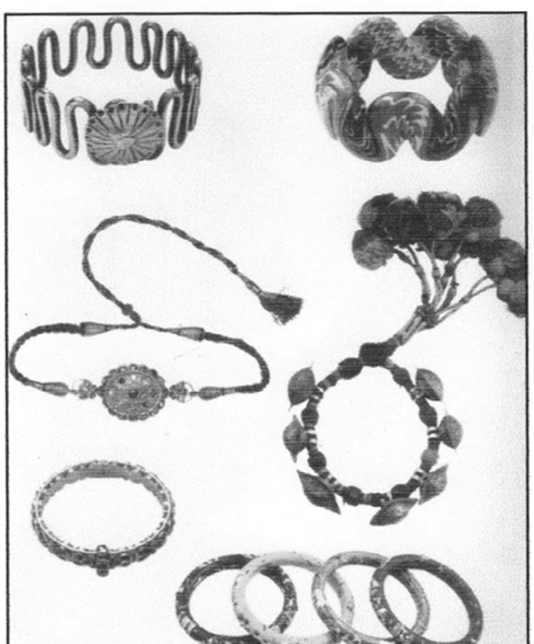

चित्र संख्या २

चित्र संख्या ३

चित्र संख्या ४

चित्र संख्या ५

चित्र संख्या ६

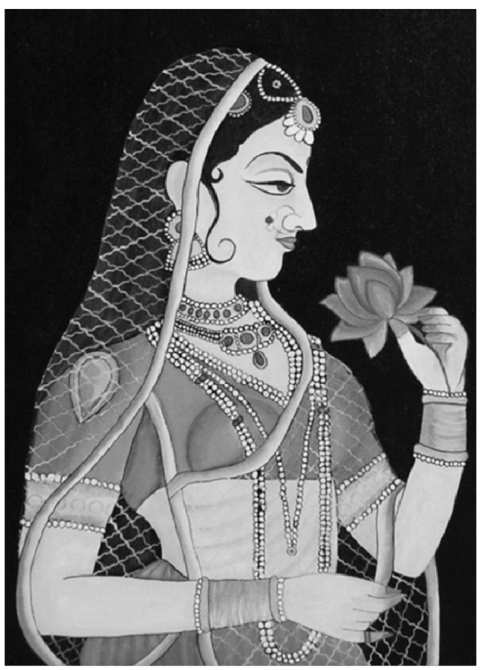

चित्र संख्या ७

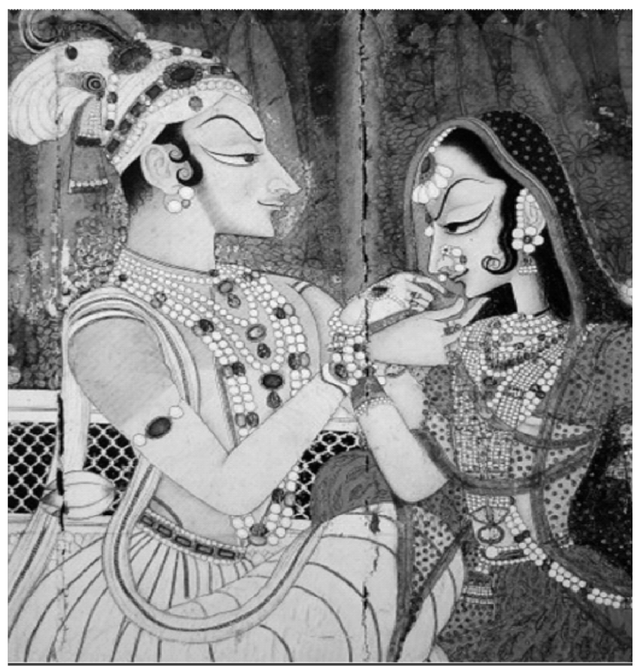

सन्दर्भ

१. महाभारत, अनुशासन पर्व–४६.५

२. अविनाश बहादुर वर्मा, 'भारतीय चित्रकला का इतिहास', रजा बर्की प्रेस, बरेली –२००२ पृ. १७५

३. थॉमस हॉलबिन हेन्डले, 'इंडियन ज्वैलरी' VOI-XII जुलाई १६०६, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, पृ. २१

४. प्रमोद चन्द्र, 'बूंदी पेन्टिंग, ललित कला अकादमी', नई दिल्ली १६५६

५. थॉमस हॉलविन हेन्डले, पूर्वोक्त, पृ. २३

६. एरिक डिक्सन, 'किशनगढ़ पेन्टिंग', नई दिल्ली, ललित कला अकादमी १६५६, पृ. १६

७. अविनाश बहादुर वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. १६६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

जगजीवन राम के सक्रिय राजनेता के रूप में उभरने की कथा कलकत्ता प्रसंग (1928-1932)

❑ **अनिल कुमार राम**

जगजीवन राम को एक दलित नेता के रूप में उस तरह महत्त्व देकर नहीं देखा जाता जिस तरह से भीमराव अम्बेडकर को देखा जाता है। शोधार्थियों का ध्यान इस ओर इसलिए भी कम गया है क्योंकि वे राष्ट्रीय आंदोलन से अलग दलित राजनैतिक धारा के पक्षपाती नहीं थे।[1] वे दलितों को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के भीतर रहकर अपने सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन के लिए प्रेरित करते रहे। इस कारण वे अम्बेडकर समेत अन्य दलित नेताओं से भिन्न थे और दलितों को कांग्रेस के साथ मिलकर संघर्ष करने के लिए प्रयत्नशील रहे। इस क्रम में जगजीवन राम के जीवन के उस प्रसंग की चर्चा कम हुई है जिसमें वे एक छात्र के रूप में पढाई के साथ साथ राजनैतिक चेतना निर्मित कर रहे थे। इस लघु आलेख में उनके कोलकाता में बिताए गए वर्षों के बारे में चर्चा की गयी है। इस बात की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है कि उनके लिए कोलकाता के विद्यार्थी जीवन के अनुभवों ने उनकी वैचारिक दृष्टि को दिशा दी।

जगजीवन राम को एक दलित नेता के रूप में उस तरह महत्त्व देकर नहीं देखा जाता जिस तरह से भीमराव अम्बेडकर को देखा जाता है। शोधार्थियों का ध्यान इस ओर इसलिए भी कम गया है क्योंकि वे राष्ट्रीय आंदोलन से अलग दलित राजनैतिक धारा के पक्षपाती नहीं थे। वे दलितों को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के भीतर रहकर अपने सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन के लिए प्रेरित करते रहे। इस कारण वे अम्बेडकर समेत अन्य दलित नेताओं से भिन्न थे और दलितों को कांग्रेस के साथ मिलकर संघर्ष करने के लिए प्रयत्नशील रहे। इस क्रम में जगजीवन राम के जीवन के उस प्रसंग की चर्चा कम हुई है जिसमें वे एक छात्र के रूप में पढाई के साथ साथ राजनैतिक चेतना निर्मित कर रहे थे। इस लघु आलेख में उनके कोलकाता में बिताए गए वर्षों के बारे में चर्चा की गयी है। इस बात की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है कि उनके लिए कोलकाता के विद्यार्थी जीवन के अनुभवों ने उनकी वैचारिक दृष्टि को दिशा दी जिसने एक सक्रिय राजनेता के रूप में उभरने का अवसर दिया।

१९२८ में जगजीवन राम बनारस से कोलकाता (उस समय कलकत्ता) आ गए। कहा जा सकता है कि कोलकाता में आने के बाद ही वे सक्रिय राजनैतिक जीवन की ओर उन्मुख हुए। कोलकाता में आकर उन्होंने खादी पहनना शुरु कर दिया था, लेकिन वे सब समय खादी नहीं पहना करते थे। खादी कपड़े का व्यवहार वे कभी-कभार किया करते थे। १९३२ तक उन्होंने इस क्रम को जारी रखा। वे अपने हाथ से काते गए सूत से बने खादी के कपडे पहना करते थे। छः महीने में वे इतना सूत जरुर कात लेते थे जिससे की उनकी साढ़े चार गज का धोती बन जाती थी। जगजीवन राम की माँ जगजीवन बाबू के साथ और अधिक बनारस में नहीं रह सकती थी क्योंकि लड़कियों की जिम्मेदारी तथा खेती बाड़ी के काम आदि की देख-भाल भी करनी थी। उन्होंने जगजीवन को सलाह दी कि वे कोलकाता जाकर अपने भाई संतलाल के साथ रह कर अपनी पढ़ाई करे। कोलकाता आने के बाद जो उनके अनुभव हुए उसके बारे में पढ़ते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इस शहर के सीमान्तों में मजदूरी करते हुए कठिन जीवन जीते हिन्दुस्तानी दलितों के ऐसे संसार से परिचित हुए जिससे वे अन्यथा न हो पाते।[2]

उन्होंने अपना नामांकन विद्यासागर कालेज में बी.एस.सी. में करवाया। जगजीवन बाबू एक कुशाग्र बुद्धि के छात्र थे। वे गणित तथा विज्ञान में हमेशा अपने सहपाठियों से आगे रहते थे। स्कूल के समय से ही वे गणित की परीक्षा में बहुत अच्छे अंक पाते रहे थे। स्कूल में वे सौ प्रतिशत अंक लाने वाले छात्र रह चुके थे। **जगजीवन** राम यह महसूस कर रहे थे की बनारस की तुलना में कोलकाता का परिवेश भिन्न है। कोलकाता में हजारों अछूत अपने संगठन के महत्व को समझते थे । कोलकाता में उनकी

❑ **शोध अध्येता, इतिहास विभाग, तिलका माझी विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)**
इस आलेख को लिखने के क्रम में मुझे प्रोफेसर गिरीश चंद्र पाण्डेय का जो सहयोग और आशीर्वाद मिला उसके लिए उनका मैं कृतज्ञ हूँ। साथ ही प्रोफेसर देबारती मजूमदार और आनंद सिंह बिष्ट (बूढ़ा जागेश्वर) ने भी आलेख लिखे जाने के समय जो सहयोग दिया उसके लिए उनका आभार ।

जाति के लोग काफी संख्या में रहते थे। वे हास्पिटल, चटकल, मोची का तथा अन्य कल-कारखानों में काम करते थे। इनमें से लगभग सैकड़ों की संख्या में लोग उनके गांव शाहाबाद के थे। उन्होंने अपने मन में यह बैठा लिया कि अगर उन्हें अछूतों के लिए काम करना है तो इसके लिए कोलकाता से बेहतर और कोई जगह हो ही नहीं सकती। यहाँ बनारस की तुलना में जाति भेद कम था। कोलकाता का सामाजिक स्तर अच्छा था। यहाँ कालेज के छात्र सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध थे। जगजीवन राम के लिए यह जगह जाति भेद जैसी बुराईयों से लड़ने के लिए बहुत अनुकूल थी। उन्होंने यह समझा कि छुआछूत जैसे अमानवीय दोष के बारे में लोगो को बताया जाए तो सामाजिक उत्थान की लड़ाई में बड़ी सुविधा होगी और छुआछूत को आसानी से मिटाया जा सकता है। पढ़े लिखे लोग इस सामाजिक कलंक के बारे में जान पाएंगे। जगजीवन राम ने अब यह निर्णय कर लिया कि से अब पढाई के साथ-साथ अछूतोद्धार का काम भी करेंगे। कालेज में पढाई के दौरान उन्होंने दो तरह के अध्यापकों और सहपाठियों के साथ संपर्क बढ़ाना शुरु किया एक तो वे जो उदार प्रगति के थे और जाति-भेद के नियमों से नहीं चलते थे। दूसरी ओर ऐसे लोग थे जो दलित जाति के थे और छुआछूत के दंश की पीड़ा का अनुभव करते थे। जगजीवन राम की विचार धारा के अध्यापक एवं सहपाठी भी इस बात से सहमत थे कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज के लिए अभिशाप है। वे यह मानते थे कि इस रोग से हिन्दू समाज को जल्द- से मुक्त करना होगा नहीं तो हिन्दू समाज नष्ट हो जायेगा।

जगजीवन राम मानने लगे थे कि एक हजार वर्ष के मुस्लिम शासन एवं तत्कालीन अंग्रेजी शासन के कारण हिन्दू समाज लगातार पिछड़ता और कमजोर होता गया था। इसका प्रमुख कारण है जाति प्रथा। सवर्ण जाति के लोग इस बात से जरुर खुश होंगें कि दलित इतना होते हुए भी बार-बार उनके पैरों के नीचे गिड़गिड़ाने के लिए मजबूर हैं। सवर्ण उन्हें पीड़ित करते हुए आनंद का अनुभव कर रहे हैं। यह पीड़ित और प्रताड़ित दलित समाज कभी भी अपने शत्रुओं का साथ नहीं देंगे। इससे हिन्दू समाज धीरे-धीरे टूटता और बिखरता चला जायेगा। और एक दिन कमजोर हो जायेगा। इससे विदेशी ताकतों को बल मिलेगा और वे भारत पर और अधिक शासन करने के लिए सुअवसर पाने में सफल हो पाएंगे।

जगजीवन राम इस बात से अवगत हो चुके थे कि जब तक भारतीय हिन्दू समाज सवर्ण और दलित दो टुकडों में रहेगा तब तक हमारा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहेगा। यह कभी भी आजाद नहीं हो पायेगा। इसलिए देश को गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए भारतीय हिन्दू समाज में समरसता लाकर जातीय भिन्नता और जातीय अस्पृश्यता का समूल नष्ट करना ही होगा।

जगजीवन राम कोलकाता में पढ़ाई के साथ-साथ हरिजनों को संगठित करने के काम में लगे रहे। इसके लिए उन्होंने अपने प्रमुख सजातीय लोगों से संपर्क बढ़ाना शुरु किया। इस दौरान वे विभिन्न नेताओं से मिला करते थे। वे विभिन्न तरह के सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यक्रमों में भी भाग लेने लगे। खाली समय में साहित्य का अध्ययन करते थे। रविदास सभा को संगठित करने में अपने समय को देने लगे। कोलकाता में होने वाले विभिन्न सभाओं में जाने लगे। सभाओं के भाषणों को वे बड़े ध्यान से सुनते थे अगर कहीं मौका मिलता तो भाषण देने से भी नहीं चूकते थे। जगजीवन राम अब इक्कीस वर्षीय एक नौजवान थे और कालेज के एक सक्रिय विद्यार्थी थे। वे एक आत्मविश्वासी व्यक्ति के रूप में उभर चुके थे। इन सभाओं में वे जातीय घृणा, अस्पृश्यता, मजदूरों के शोषण आदि मुद्दों पर भाषण देते। उनसे बड़ी आयु के लोग इस इक्कीस वर्षीय नौजवान का भाषण बड़े ध्यान से सुनते थे। दलितों को स्वयं संगठित होने, शिक्षित होने तथा मदिरा सेवन छोड़ने का सन्देश देने के लिए १९२८ तक कोलकाता के विभिन्न मुहल्लों में रविदास सभा का गठन हो चुका था। लोगों ने यह महसूस कर लिया कि जगजीवन राम बहुत संयम और धैर्य के साथ बोलते थे जिसका प्रभाव लोगों के मन पर गहराई से पड़ता था। कभी कभी जगजीवन राम को विरोध का भी सामना करना पड़ता था। दूसरी तरफ कोलकाता के कांग्रेस लीडर जगजीवन राम के कार्यकलाप पर नजर रखते थे एवं उससे प्रभावित भी होते थे। उन्होंने कोलकाता में मजदूरों एवं मिल श्रमिकों के साथ संगठन का काम करना शुरु किया इससे उनका संपर्क कम्युनिस्ट नेताओं एवं श्रमिकों से बढ़ा। उन दिनों कम्युनिस्ट लिटरेचर मास्को से चोरी-छुपे आता था एवं चोरी-छुपे पढ़ा जाता था। उन्होंने अंग्रेजी में प्रकाशित कार्ल मार्क्स का 'दास कैपिटल एवं कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' के अलावा अन्य बहुत सारी कम्युनिस्ट विचारधारा से संबन्धित किताबे पढ़ी। वे कम्युनिस्ट के मूलभूत सिद्धांतों से काफी प्रभावित हुए। मन्मथनाथ गुप्त, चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रान्तिकारी नेताओं के संपर्क में भी वे इस दौरान आए।

कोलकाता आने के कुछ ही महीने बाद १९२९ में अपने मित्रों सहपाठियों एवं शिक्षकों की मदद से कोलकाता के वेलिंग्टन स्क्वायर पार्क में हरिजनों एवं मजदूरों की एक सभा का

आयोजन किया। इस सभा में रविदास सभा को भी आमंत्रित किया गया था। जगजीवन जानते थे की वे अपने सजातीय लोगों में काफी लोकप्रिय हैं इसके साथ ही अन्य अछूत लोगों में भी भी उनकी गहरी पैठ थी। इस कारण इस मीटिंग में बड़ी तादाद में बंगाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के हरिजन मजदूरों ने भाग लिया। प्रेस में नोटिस भेजी गयी। विजयादशमी के कुछ दिन बाद इस मीटिंग का आयोजन किया गया। सैकडों की संख्या में जगजीवन बाबू के जिले शाहाबाद के लोग कोलकाता में काम करते थे जो कि जगजीवन बाबू के पिता के अनुयायी थे वे भी बड़ी संख्या में इस सभा में उपस्थित हुए। उनके पिता के अनुयायी (शिष्य) आते ही जगजीवन राम के मना करने के वावजूद उनके पांव छूते थे। अछूतोद्धार के लिए काम करने वाली कांग्रेस के द्वारा संचालित दलित सुधार सभा भी इस सभा में उपस्थित थी। इसे आमंत्रित नहीं किय गया था। यह जगजीवन बाबू द्वारा संचालित सभा में सीधे तौर पर भाग नहीं ले रही थी। वह यह देख रही थी कि कोलकाता की राजनीति में नया क्या होने वाला है। जगजीवन राम इससे पहले अपने घर बिहार में केवल एक ही महत्वपूर्ण कांग्रेस नेता से परिचित थे। लेकिन कोलकाता में वे स्वयं अछूतों के नेता के रूप में परिचित हुए और भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के बहुत सारे बड़े नेताओ से परिचित हुए।

वेलिंग्टन पार्क में हुई मीटिंग अपने आप में एक महत्वपूर्ण मीटिंग थी। यह मीटिंग जगजीवन बाबू के लिए भी काफी महत्व रखती थी। इस सभा में बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे।[४] उन्होंने अपने भाषण में कहा था- "हमारा देश आज जिस संकट से गुजर रहा है, उसका सबसे बड़ा कारण है हमारे समाज का पिछड़ापन। हमारे समाज में गरीबी है और शिक्षा का नितांत अभाव है। अशिक्षित तथा पिछड़ा होने के कारण हमारी सोच संकीर्ण हो गई है और हमारे अन्दर अनेक प्रकार के अंधविश्वास घर कर गए हैं, अनेक प्रकार की बुराइयाँ प्रवेश कर गयी हैं। हम अस्पृश्यता के प्रेत से चिपके घूम रहे है। दूर गाँव में जाकर देखिये-पूरा समाज जातीय विभाजन और जातीय घृणा का शिकार है। दलितों को अस्पृश्य समझा जाता है ,जो खेत में मेहनत करके अन्न उपजातें हैं, जो सबका पेट भरते हैं उन्हें हम अपने बराबर में बिठाने में शर्म का अनुभव करते हैं। उन्हें अस्पृश्य कहकर उनकी छाया से भी दूर रहना चाहते हैं। वे लोग जिनके लिये पसीना बहाते हैं, जो मजदूर उत्पादन का आधार-स्तम्भ हैं,वे ही भूखे और नंगे रहने पर विवश हैं ऊपर से उन्हें सवर्ण समाज की घृणा, उपेक्षा, शोषण और अपमान झेलना पड़ता है। हम जो यहाँ शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, हम जो किताबें लिखतें हैं और समचार-पत्रों में काम करतें हैं, हम जो विद्यालयों में पढ़ते और पढ़ाते हैं, हमें इस कटु सत्य को समझाना चाहिए कि जाति-प्रथा का जहर हमें खत्म कर देगा। मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति इतनी घृणा, इतनी उपेक्षा, फिर एक साथ रहना और तरक्की करना कैसे संभव है? मैं यहाँ बैठे सभी लोगों से उम्मीद करता हूँ कि वे जातीय घृणा का विरोध करने का संकल्प लेंगे और अपने-अपने कार्यक्षेत्र में इस घृणा को समाप्त करने का लगातार प्रयास करते रहेंगें।" उन्होने यह भी कहा - "एक बात और जो दबे-पिछड़े और अपमानित होने पर विवश हैं, उन्हें एक सच्चाई लेनी चाहिए कि जब तक वे अपने अन्दर की हीन ग्रंथि को तोड़कर पूरे आत्मविश्वास और संकल्प के साथ उठकर खड़े नहीं होंगे, तब तक उनका शोषण नहीं रुकेगा, उनकी गरीबी दूर नही होगी, उनका पिछड़ापन दूर नहीं होगा।"[५]

यह एक सफल सभा रही। इसका एक ऐतिहासिक महत्त्व है। विभिन्न समाचार पत्रों में उनके भाषण के अंश प्रकाशित हुए और कोलकाता के राजनैतिक हल्कों में यह चर्चा का विषय बन गया। इस तरह इक्कीस वर्षीय कालेज विद्यार्थी जगजीवन राम का नाम एक सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारवादी नेता के रूप में उभरने लगा। इस सभा के द्वारा जगजीवन राम का राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनी। इस सभा में कांग्रेस द्वारा शुरु की गयी 'दलित सुधार सभा' के कई वरिष्ठ नेता भी उपस्थित थे। इस मीटिंग के कारण जे.एम सेनगुप्ता, सुभाष चन्द्र बोस, बिधान चन्द्र राय और प्रफुल्ल चन्द्र घोष जैसे तमाम बड़े नेता जगजीवन राम से परिचित हुए एवं जगजीवन राम का राजनीति के प्रति उत्साह बढाया। जगजीवन राम ने देखा कि सुभाषचंद्र बोस मजदूरों के उत्थान के लिए बहुत ही कठिन परिश्रम कर रहे हैं। साथ ही वे समान रूप से हरिजन तथा दलितों के विकास के लिए भी प्रयास-रत थे। बोस का मानना था की इन दोनों श्रेणियों के उत्थान के बगैर भारत में कभी राजनैतिक एवं आर्थिक विकास संभव नहीं है। उन्होंने इन प्रमुख नेताओं से खुलकर बात की । इस बात-चीत के दौरान उन्हें लगा कि सामाजिक सुधार का सीधा संपर्क राजनीति से है। बगैर राजनैतिक सुधार के सामाजिक सुधार करना कठिन काम है। सुभाष चन्द्र बोस को लगा कि काँग्रेस के कई बड़े नेता कांग्रेस के मूल आदर्श से हटकर कार्य कर रहे हैं। वे पुरातन पंथी के रास्ते चल रहे है। सुभाष चन्द्र बोस सामाजिक एवं आर्थिक रूप से शोषित एवं प्रचंड रूप से संघर्षशील हरिजनों एवं दलितों की सारी शक्ति ट्रेड यूनियन संग्राम में लगा देना चाहते थे। वे भी हरिजनों एवं दलितों का सामाजिक

एवं आर्थिक विकास चाहते थे। दलितों के विषय में जगजीवन राम ने इन्हीं कार्यों का बीड़ा अपने हाथ में उठाया। इसी दौरान उनकी पहचान मारवाड़ी नौजवान और उत्साही राजनैतिक कार्यकर्ताओं जुगल किशोर बिड़ला, सीताराम सेकसरिया, बसंतलाल मुरारका, भागीरथ कनोड़िया और प्रभु दयाल हिम्मतसिहका से हुई।

दिसंबर १९२८ में कोलकाता में कांग्रेस के सम्मलेन का आयोजन किया गया इस सम्मलेन में गांधी जी भी उपस्थित थे। इस सम्मलेन में जगजीवन राम को गाँधी जी की उपस्थिति की जानकारी पहले से ही थी। इसी समय उन्हें गाँधी जी को देखने का मौका मिला।गांधी को देखने की प्रबल इच्छा के कारण वे वहां पहुंचे थे। इस समय उन्हें दूर से ही सही गांधी जी को देखने का मौका मिला था। रविदास सभा के संपर्क नें उनका राजनीति के प्रति मनोबल को पहले ही बढा दिया था।

१९३० में गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरु कर दिया था। इस आंदोलन के दौरान जगजीवन राम का कार्य उल्लेखनीय था। इस दौरान एक बार वे जेल जाते जाते बचे। पुलिस उन्हें गिरफ्तार नहीं कर पाई। हुआ यूं कि प्रेसीडेंसी कालेज के पास पुलिस लाठी चार्ज के लिए तैयार थी। उन पुलिसकर्मियों में अधिकांश भोजपुरी भाषी लोग थे। जगजीवन बड़े ही धैर्य और होशियारी से उन पुलिसवालों के साथ भोजपुरी में बातें करने लगे। इस कारण से वे गिरफ्तार होने से बच गए। उस आन्दोलन के दौरान वे गिरतार नहीं किये गए बावजूद इसके कि वे आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे । इस आन्दोलन में उन्होंने हैंडबिल और लीफलेट का लोगों में वितरण करने का काम किया था।

इस दौरान जब जब सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम करने की जरूरत हुई उन्होने काम किया लेकिन उनका पूरा ध्यान इस बात पर लगा रहा कि दलित के लिए कुछ करना बहुत जरूरी है, जगजीवन राम ने सोचा कि अगर इस तरह से दलित सिर्फ अपने भाग्य को कोसते रहे और अपने अन्दर बदलाव नहीं लाए तो स्वाधीनता के बाद भी ऊँची जाति के हिन्दू लोग इनका शोषण करते रहेंगे। उनके पिछड़ेपन के कारण करोड़ों दलितों को राष्ट्रीय राजनीति में कोई स्थान नहीं मिल पायेगा। उनकी अपनी कोई आवाज नहीं रहेगी और न ही उनकी समस्याओं को कोई सुनाने वाला होगा। अगर दलित इसी तरह से हिन्दू समाज में नकारे जाते रहे तो राजनैतिक स्वाधीनता का उनके जीवन में कोई मूल्य नहीं रहेगा। इस तरह अपने-आप को पूरी तरह समर्पित करके दलितों को संगठित करने का काम किया और अपने समाज के लोगों के सहयोग से रविदास सभा के रूप में एक शक्तिशाली संस्था का संगठन बनाया।[६]

सम्पूर्ण स्वराज्य के लिये १९२९ में रावी नदी के तट पर कांग्रेस के सम्मलेन में एक ऐतिहासिक फैसला लिया गया। ठीक इसी समय जगजीवन राम ने एक अछूत सम्मलेन किया था। यह दलित सम्मलेन बहुत ही सफल रहा।[७]

जगजीवन बाबू की कर्मठता को देखकर कुछ समय पश्चात नानक चाँद धुसिया उनसे मिलने आए। उन्होंने कहा कि वे कानपुर के स्वामी अछूतानंद के दूत हैं और वे कोलकाता के हिन्दू महासभा की शाखा को संगठित करने के लिए कोलकाता आये है। उन्होंने जगजीवन राम से कहा कि अछूतों के लिए कालेज स्थापित करने के लिए पैसे की आवश्यकता है। जगजीवन राम ने उन्हें रविदास सभा की मीटिंग में लाये और उसी समय पच्चीस रूपए इकट्ठा करके उन्हें प्रदान किये। परन्तु यह संपर्क अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। धुसिया बहुत ही ज्ञानी और विश्वासी व्यक्ति थे। यही कारण था कि उनकी ख्याति दिन पर दिन बढती ही जा रही थी। फजलुल हक के शासन काल में वे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में उभरे थे और आगे चल कर राय साहेब बने। बाद वे जगजीवन राम के संपर्क में आये। जगजीवन राम को उनके फौजी जीवन के बारे में बहुत सी जानकारियां मिली।

यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि जगजीवन राम ने काशी में रहते हुए वेद, उपनिषद आदि धर्म-ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। इन दिनों जगजीवन बाबू ने हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। काशी विश्वविद्यालय में पढ़ते समय वहां के पुस्तकालय में मौजूद उच्च कोटि के ग्रंथों का अध्ययन करते समय उन्हें यह पता चला कि भारतीय समाज में जातियाँ कैसे बनी तथा समाज के सबसे कर्मठ वर्ग को किस तरह दलित बना दिया गया। उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि कठिन शारीरिक परिश्रम करने वाली शूद्र जाति को दलित किसी धार्मिक आधार ने नहीं बनाया है बल्कि इसके पीछे कुछ स्वार्थी तत्त्वों का हाथ था। कुछ हद तक जिसे विद्वान वर्ग माना गया था उनकी भी इसमें जिम्मेवारी थी। उन्होंने ऐसा करके समाज के साथ छल किया है।

वे कहने लगे थे कि समाज के लिए इस सच को समझना आवश्यक है कि समाज का जो तबका अपने को बड़ा समझता है वह एक झूठे अहंकार से ही ऐसा मान रहा है। सच्चा हिन्दू धर्म कभी भी समाज को बाटने का काम नहीं करता और न ही किसीको अपमान करने का अधिकार देता है। जो मेहनत

करते हैं वे दलित कैसे कहलाये जा सकते हैं? यह प्रश्न उनके लिए बहुत ही बुनियादी प्रश्न बन गया था। उनके अनुसार दलित समुदाय (उस समय दलितों को 'डिप्रेस्ड क्लास' कहा जाता था) समाज के लिए परिश्रम करने में सबसे आगे रहे हैं। वे समाज की अर्थव्यवस्था के स्तम्भ है। जिस दिन यह स्तम्भ अपनी जगह से हट जाय उस दिन यह समाज धराशायी हो जाएगा। समाज के जिन लोगों को सवर्ण जाति अपमान करने के लिए हमेशा व्याकुल रहती है, उन्हें दलित समझती है, तथा उनकी उपेक्षा कराती है, उन्हें नारकीय जीवन जीने के लिए विवश करती है वही अगर सवर्ण जातियों के खेतों में काम करना छोड़ दे तो उनकी सारी हेकड़ी निकल जाएगी। सवर्ण जातियों द्वारा कथित छोटी जाति के लोगों को किसी भी सूरत में कम नहीं समझना चाहिए। अपने अन्दर जड़ जमा चुकी नीचता और क्षुद्रता की भावना को जड़ से उखाड़ फेकना होगा। दलितों को अपने अन्दर से हीनता की भावना को खत्म करके एक नए सिरे से जीवन सोचना होगा यह जगजीवन राम ने उसी समय समझ लिया था। उनके अनुसार दलितों को अपने बच्चों को पढ़ना लिखना सिखाना होगा, इस बात की बिलकुल चिंता किये बगैर कि समाज उनके साथ क्या व्यवहार करेगा। समाज के विरुद्ध एक साथ मिलकर तनकर खड़े रहें और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठायें। दलितों को दोहरी लड़ाई लड़ते हुए अपने जीवन स्तर को उंचा उठाना होगा। एक तो जो लोग जातीय आधार पर शोषण कर रहे हैं उनके खिलाफ तो दूसरी ओर अपने आचार-व्यवहार को बदलने की लड़ाई। जगजीवन राम उसी दौर में इन निष्कर्षों तक पहुँच गए थे।

उनके लिए यह सब करना बहुत आसान नहीं था। जगजीवन राम कोलकाता में जिस कालेज में पढ़ते थे उस कालेज का परिवेश इस काम के लिए अनुकूल नहीं था। वे उस कालेज में पढ़नेवाले एकमात्र बिहारी छात्र थे। वे बंगला जानते हुए भी हिंदी में ही बातचीत करते थे। यह उनके सहपाठियों को पसंद नहीं था। उनके सहपाठी चाहते थे की वे कक्षा में बंगला में ही बात करे। यह बात जगजीवन को एक चुनौतीपूर्ण लगी और उन्होंने कक्षा में कभी बंगला में बात नहीं की जबकि वे अपने घर में शरतचन्द्र एवं रविंद्रनाथ ठाकुर के अलावा अन्य बंगला के सुप्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाओं को बंगला में पढ़ा करते थे।

जगजीवन राम हरिजनों के द्वारा मरे हुए पशुओं के मांस खाने तथा मदिरा सेवन करने के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि जब तक हरिजन मांस एवं मदिरा का सेवन बंद नहीं करेंगें तब तक उनका उद्धार नहीं हो सकता।

बिहार के पटना में ६ नवम्बर, १९३२ को आयोजित प्रादेशिक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मलेन में वे एक प्रस्तावक के रूप में अपना दायित्व निभाते हैं। इस कांफ्रेंस में राजेंद्र प्रसाद मुख्य वक्ता थे। इस सभा में जगजीवन राम को भी आमंत्रित किय गया था। जगजीवन राम को बोलने का मौका दिया गया। उनका भाषण बहुत ही प्रभावपूर्ण रहा। उन्होंने कहा कि किसी को हरिजनों को नसीहत देने की जरुरत नहीं है कि वे साफसुथरे रहें एवं मांस एवं मदिरा का सेवन न करे। उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए यह सामाजिक न्याय का प्रश्न है। आर्य समाज के लोग भी इस सभा में उपस्थित थे जो जगजीवन राम को तीखी नजरों से देख रहे थे। प्राप्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजेंद्र प्रसाद इस नौजवान वक्ता के भाषण से बहुत प्रभावित हुए। राजेंद्र प्रसाद ने जगजीवन राम को पटना में आकर उनसे मिलने के लिए पत्र लिखा। इस समय जगजीवन राम आरा लौट आये थे। पत्र मिलते ही जगजीवन राम तुरंत पटना के लिए रवाना हुए राजेंद्र प्रसाद से मिलने के लिए। राजेंद्र प्रसाद ने जगजीवन राम को पटना में रह कर संगठन काम करने के लिए कहा। इन सारी बातों को राजेंद्र प्रसाद ने गाँधी जी को बताया तो गाँधी जी ने जवाब में कहा- "जगजीवन राम एक अनमोल रत्न हैं"। इसी बीच जगजीवन राम को महात्मा गाँधी से मिलने का दुबारा मौका मिला जब गाँधी जी राउंड टेबल कांफ्रेंस से भारत लौट रहे थे। महात्मा के स्वागत के लिए बाम्बे में एक 'पब्लिक रिसेप्शन' रखा गया था। इस 'रिसेप्शन' में जगजीवन राम को भी को आमंत्रित किया गया था। इस शुभ अवसर का फायदा उठाकर जगजीवन राम महात्मा गांधी से मिले। महात्मा ने उन्हें संगठन के कार्य से सम्बंधित कुछ सुझाव दिए। उसी महीने अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी लीग की आरा शाखा के वे सचिव नियुक्त किए गए।

जगजीवन राम यूँ तो पहले से ही दलित नेता के रूप में विख्यात हो चुके थे लेकिन जब वे हरिजन सेवक संघ के बिहार ब्रांच का सेक्रेटरी बने तब उनके लिए यह एक बहुत बड़ी सफलता थी। अभी वे तीस वर्ष के भी नहीं हुए थे। यह पहला अवसर था जब जगजीवन राम इतने बड़े पद पर आसीन हुए थे। यह कहने में कोइ संदेह नहीं होगा कि उन्होंने इस पद पर रहते हुए अपने दायित्वों का पालन सफलतापूर्वक किया। उनके कार्य से सभी लोग बहुत संतुष्ट एवं प्रभावित हुए। इस समय वे अपनी कालेज की पढाई पूरी कर चुके थे।[८]

इस बीच वे १९३१ में अपने गांव चंदवा चले गए। इसी

दौरान उनके बड़े भाई संत लाल भी अपनी नौकरी से रिटायर होकर गाँव चले आए । जगजीवन राम गांव जाकर भी दलितों के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे।

गांधी इरविन समझौता ५ मार्च, १६३१ को दिल्ली में हुआ था। इस समझौते के बाद गांधी जी 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को वापस लेकर गोलमेज सम्मलेन में हिस्सा लेने के लिए राजी हो गए। इस समय मध्यवर्गीय समाज पर गांधी जी के आन्दोलन का काफी गहरा प्रभाव पड़ा था इस लिए यह समाज ब्रिटिश समाज के विरुद्ध हो गया था। अतः अंग्रेजी हुकूमत सांप्रदायिक राजनीति का खेल खेलना शुरु कर सिद्ध करने की कोशिश करने लगी की कांग्रेस केवल हिन्दुओं की पार्टी है इस पार्टी के साथ हिन्दुस्तान के अन्य संप्रदाय- मुसलमान, दलित सिख आदि नहीं हैं और इस सांप्रदायिक राजनीतिक चाल को सरकारी प्रश्रय के कारण कुछ सफलता भी मिली।

इस समय जगजीवन राम की भूमिका एक ओर अंबेडकर जैसे दलितवादी नेताओं से भिन्न थी दूसरी ओर वे इस बात को भी मानने को भी स्वीकार नहीं करते थे कि इसे कम महत्व दें। जगजीवन राम इस बात को बखूबी समझ रहे थे कि अछूतों के सामाजिक सुधार करने के बजाए बहुत सारे नेता इसे एक राजनैतिक मुद्दा समझ रहे थे ।[६] जगजीवन राम ने मन ही मन यह प्रतिज्ञा की कि वे हरिजनों को मरते दम तक ऊँची जाति के हिन्दू नेताओं के द्वारा राजनैतिक रूप से शोषित नहीं होने देंगे।उनका सामाजिक विकास अवश्य करेंगे। वे रविदास सभा द्वारा सामाजिक उत्थान के कार्य में लगे रहे थे । उसी संकल्प को उन्होने बिहार जाकर कॉंग्रेस नेता के रूप में भी याद रखा।

देश की स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने वाले लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के साथ शोभी राम (जगजीवन राम के पिता) कई बार कांग्रेस की सभाओं में बैठ चुके थे। वे कांग्रेस के सदस्य थे। जगजीवन राम की माँ बसंती देवी कांग्रेस के सिद्धांतों से सहमत थीं और समय-समय पर उसे सहयोग भी किया करती थीं।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते समय जगजीवन राम ने मदन मोहन मालवीय जी जैसे कांग्रेस नेताओं को जातीय सामाजिक विषमता के समक्ष घुटने टेकते हुए देखा था फिर भी कांग्रेस में उनकी अटूट आस्था थी। इस सामाजिक बुराई के लिए वे समकालीन सामाजिक परिस्थितियों को उत्तरदायी मानते थे। जगजीवन बाबू को कांग्रेस की सामाजिक और राजनैतिक सुधार रूपी कार्यकलाप में विश्वास बढ़ता ही गया।

उत्तरी बिहार के सारण जिले के छपरा में एक कांफ्रेंस का आयोजन किया गया था। इस कांफ्रेंस में जगजीवन राम सर्वेसर्वा थे। हरिजन सेवक संघ के सेक्रेटरी अमृतलाल ठक्कर चाहते थे कि जगजीवन राम अपने-आप को हरिजनों के उत्थान के लिए एवं संघ के कार्य के लिए सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर दें। ठक्कर चाहते थे कि जगजीवन राम राजनैतिक संग्राम से दूर ही रहें। लेकिन जगजीवन राम के लिए दोनों संग्राम एक ही उद्देश्य के लिए था और वह उद्देश्य था- हरिजनों, दलितों और पिछड़ों का उत्थान।

इस समय ही भारतीय राजनीति के उदीयमान लोकप्रिय राष्ट्रीय एवं दलितोद्धार आन्दोलन के नेता के रूप में जगजीवन राम को प्रतिष्ठा मिली । इस घटना से सम्बंधित जगजीवन राम ने गांधी जी को एक पत्र लिखा थे जिसके जवाब में गाँधी जी के सचिव ने कहा था- वे सवर्ण हिन्दुओं और दलितों के बीच पृथक्करण को घातक मानते थे।[१०] स्पष्ट है कि जगजीवन राम के लिए अंबेडकर की तुलना में गांधी का चिंतन अधिक निकट का था।

एक बार महात्मा गांधी ने अपनी लेखनी में हरिजनों की तुलना गाय से कर दी थी। इस पर जगजीवन राम ने गांधी जी को एक पत्र लिख कर इस बात की शिकायत की थी। महात्मा ने उनके पत्र का उत्तर देते हुए कहा था कि उनके कहने का आशय वह नहीं है जो वे समझ रहे हैं। बल्कि उनका आशय यह है कि जिस तरह हिन्दू धर्म में गाय को पूजनीय और पवित्र माना जाता है ठीक वही सम्मान हरिजनों के प्रति उनका है।

जगजीवन राम महात्मा से मिलकर यह समझ पाए थे कि वे हरिजन समस्या को बहुत ही गंभीरता से देखते हैं। इसे गांधी हिन्दू समाज के लिए कोढ़ के समान समझते हैं। लेकिन उनके सामने अभी भारत की स्वाधीनता की समस्या सबसे बड़ी समस्या है। जब तक भारत स्वाधीन नहीं हो जाता तब तक हरिजन समस्या का समाधान संभव नहीं है।

संदर्भ

१ देखें हितेन्द्र पटेल, 'आस्पेक्ट्स आफ द मोबिलाइजेशन्स आफ दलित इन बिहार (१९१३-१९५२)', कोन्टेम्प्ररी वाइस आफ दलित, सेज पब्लिकेशनस, अप्रैल, २०१७

२ कोलकाता में हिन्दी भाषी लोगों को 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता है। यह चलन अंग्रेजों ने शुरु किया था जिसे शिक्षित बंगाली समाज ने भी स्वीकार कर लिया था। इस विषय पर कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर मुझे मार्टिना चक्रवर्ती से मदद मिली। मैं अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध से परिचित कराने के लिए उनको आभार व्यक्त करता हूँ।

३ कोलकाता या किसी बड़े शहर में जाकर दलितों के बीच आपसी जातियों के भेद मिट से जाते हैं। पर फिर भी इस बात से जगजीवन राम को मदद मिली कि अधिकतर दलित उनकी जाति .'चमार', जिसे चर्मकार भी कहा जाता है, ही थे। उनके पिता की शाहबाद के दलितों के बीच एक संत की छवि थी। इस कारण उन्हें एक प्रकार से सम्मान की निगाह से भी देखा जाता रहा। (विस्तार के लिए देखें- रमेश चंद्र, संघ मित्रा, 'जगजीवन राम एंड हिज टाइम्स', कामनवेल्थ प्रेस, दिल्ली , २००३, पृ २ इन्द्राणी जगजीवन राम (उनकी पत्नी) ने अपनी पुस्तक माइल स्टोन्स पेंगुइन विकिंग २०१० में इसका विस्तार से उल्लेख किया है.

४ पंद्रह हजार की संख्या की उपस्थिति का उल्लेख लाइफ एंड वर्क्स आफ बाबू जगजीवन राम में एस आर शर्मा (२००६ सबलाइम पब्लिकेशनस, जयपुर इंडिया पेज ७२) ने किया है. दस हजार की संख्या का उल्लेख इंडियन फ्रीडम फाइटर सीरीज-२५ जगजीवन राम द हरिजन लीडर में एस आर बक्शी ने किया है। (अनमोल पब्लिकेशन्स दरियागंज नई दिल्ली १९९२ पृ. ६)। एक स्रोत ने पचास हजार की उपस्थिति का उल्लेख किया है। (बाबू जगजीवन राम लेखक एम. पी. कमल राज पाकेट बुक्स बुराड़ी दिल्ली पृ. २८) २०००० से २५००० की संख्या का उल्लेख इन्द्राणी जगजीवन राम (उनकी पत्नी) ने अपनी पुस्तक माइल स्टोन्स (पूर्वोक्त) में किया है। संख्या जो भी हो यह तय है कि कोलकाता में हजारों की संख्या में दलित इकट्ठा होकर अपनी मांगें रख रहे थे और उस सभा का नेतृत्व करने वालों में जगजीवन राम थे। अन्य कौन कौन थे इसके बारे में अब तक उपलब्ध तथ्यों के आधार पर कुछ कह पाना मुश्किल है।

५ एम. पी. कमल, 'बाबू जगजीवन राम', राज पाकेट बुक्स, दिल्ली पृ. २८, २९

६ इंद्राणी जगजीवन राम, पूर्वोक्त,, पृ-३९

७ वही, ,पृ-३९

८ चन्द्र रमेश एवं संघमित्रा, पूर्वोक्त, पृ. २

९ शर्मा एस आर, 'लाइफ एंड वर्क्स आफ बाबू जगजीवन राम', सबलाइम पब्लिकेशनस, जयपुर, २००६, पृ. ८६

१० जोगी सुनील, 'सामाजिक समता के अग्रदूत बाबू जगजीवन राम', डायमंड बुक्स, पृ. ६६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

बिहार : सवाल पहचान और अस्मिता का

❑ **डॉ. जयशंकर प्रसाद**

बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल, जब बिहार बंगाल प्रेसीडेंसी से अलग हुआ, को छोड़ कर यहाँ जाति एवं वर्ग विभेद को नकारने वाला कोई राज्य-केंद्रित आंदोलन कभी नहीं हुआ। अलग बिहार राज्य के उस वक्त के आंदोलनों का भी सामाजिक आधार सीमित था। जाति मुख्य सामाजिक खूँटा और वैयक्तिक पहचान का आधार बन गई। इसीलिए एक आम बिहारी की आज सिर्फ दो पहचान रह गई- एक जाति से जुड़ी और दूसरी देश से। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत बिहार की पहचान और अस्मिता के प्रश्न को विश्लेषित किया गया है।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल, जब बिहार बंगाल प्रेसीडेंसी से अलग हुआ, को छोड़ कर यहाँ जाति एवं वर्ग विभेद को नकारने वाला कोई राज्य-केंद्रित आंदोलन कभी नहीं हुआ। अलग बिहार राज्य के उस वक्त के आंदोलनों का भी सामाजिक आधार सीमित था। जाति मुख्य सामाजिक खूँटा और वैयक्तिक पहचान का आधार बन गई। इसीलिए एक आम बिहारी की आज सिर्फ दो पहचान रह गई- एक जाति से जुड़ी और दूसरी देश से।

१९४७ में आजादी के समय बिहार की स्थिति अन्य राज्यों से बुरी नहीं थी। वस्तुतः उस समय राज्य में दो बड़े निवेश किए गए थे। जमशेदपुर में टाटा द्वारा इस्पात कारखाना स्थापित करने का पूर्णतः देशी औद्योगिक उपक्रम आरंभिक बीसवीं सदी के पूरे औपनिवेशिक पटल पर संभवतः पहला और अकेला प्रयास था। आजादी से पहले भी डालमिया द्वारा बिहार के मैदानी हिस्से (डालमियानगर) में भारी औद्योगिक निवेश किया गया था। किंतु आजादी के बाद इन प्रयासों को और मजबूत एवं प्रोत्साहित करने के बजाए, बिहार की विकास-नीति कुछ ऐसी रही कि १९६१ के आते-आते बिहार पूरे देश में नीचे से दूसरे स्थान पर धकेल दिया गया। १९७१ तक बिहार सबसे आखिरी स्थान पर पहुँच गया। सन् २००० में बिहार विभाजन के बाद बिहार की आर्थिक दशा और भी खराब हो गई है।

प्रति व्यक्ति आय में सबसे नीचे और गरीबी में सबसे ऊपर होने के बावजूद बिहार ने कभी भी सामाजिक जड़ता का प्रदर्शन नहीं किया। विडम्बना तो यह है कि बिहार ने पिछले एक दशक में अनाज के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की, लेकिन राज्य की आय में नकारात्मक वृद्धि दिखी। सशक्तिकरण का क्षेत्र हो या सामाजिक चेतना का, बिहार कभी भी निरक्षरता (५२.४७ प्रतिशत) के बोझ तले दबा नहीं रहा। हिंदी पट्टी के अन्य राज्यों जिन्हें तिरस्कृत लहजे में "बीमारू" राज्य कहकर संबोधित किया जाता है, से अलग बिहार हमेशा से उद्वेलित और जुझारू रहा है।[1]

इसके बावजूद बिहार ने शिकायत नहीं की। बिहार की क्षेत्रीय संस्कृति ने न सिर्फ भारतीय राष्ट्रीयता को बल्कि राष्ट्रीय उद्योगीकरण को सींचा, अभिषिक्त किया। सिर्फ खनिज संपदा नहीं दी, बल्कि उनके लिए खुद को एक बड़े लुभावने उपभोक्ता बाजार के रूप में प्रस्तुत किया। यह तो जाहिर है कि अविभाजित बिहार में ऐसे मध्यवर्ती उद्योग शायद ही थे, जो उपभोक्ता समाज की जरूरतों को पूरा कर सकें। यह विडंबनापूर्ण ही है कि "मैगी" जैसी न्यूनतम पोषक तत्वों वाली खाद्य बिहार में सर्वाधिक सफल बाजार पा रही है। दिल्ली के बाद पटना में ही "मैगी" की सर्वाधिक बिक्री होती है।

हमारी समृद्ध लोकशास्त्रीय संस्कृति और बहुत ही स्वादिष्ट व्यंजनों के बावजूद हमारे स्थानीय कलाकारों अथवा व्यंजनों को 'स्थान-विशेष' का गौरव और पहचान हासिल नहीं हो पाती है।

अब यह आजाद भारत को सोचना है कि नई शताब्दी में भी बिहार के प्रति क्या वह मूक-बधिर रह सकता है? बिहार ने देश-दुनिया को बहुत कुछ दिया, अब उनकी बारी है कि वे अंधेरों से घिरे इस राज्य की ओर अभिमुख हो।[2] अक्सर हम कुछ विकसित राज्यों का अनोखा दृश्य देखते हैं। वे बिहार को थोड़ी सी मदद देने के सवाल पर भी तिक्त हो उठते हैं। बिहार ने कभी भी भारत को कमजोर कर अपना विकास नहीं चाहा, लेकिन इतना तो चाहेगा न कि उसे भी सूरज की सुनहरी धूप में आने का मौका मिले।

अब बिहार की पहचान के प्रति राजनीतिक संकीर्णता खत्म होनी चाहिए। बिहार का राष्ट्रीय राजनीति में निरंतर तल्लीन होना राज्य-हित के उसके एजेंडा को निष्फल करनेवाला

❑ **पी-एच.डी., तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)**

साबित हुआ है। बिहार का इस्तेमाल हमेशा से राजनीति की ऐसी विभिन्न रणनीतियों के परीक्षण की प्रयोगशाला की तरह किया जा रहा है, जिनका बाद में राष्ट्रीय स्तर पर अमल किया जाना है। राष्ट्रीय फलक पर अपने राजनीतिक एजेंडा को उकेरने के पूर्व महात्मा गांधी ने चंपारण की जमीन पर अपनी राजनीतिक रणनीतियों को ठोक-बजाकर ठीक किया था। गांधी की आधुनिक प्रतिमूर्ति जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति के लिए बिहार को ही मुख्य गढ़ बनाया। इन दोनों घटनाओं का सूत्रपात बिहार की राजनीतिक जमीन पर हुआ, जिसने भारत के इतिहास की दिशा मोड़ दी। चंपारण सत्याग्रह के बाद गांधी ने तत्कालीन कांग्रेस पार्टी को जनसंगठन में बदल दिया और दूसरी तरफ जे० पी० ने संपूर्ण क्रांति के बाद भाजपा (तत्कालीन जनसंघ) को राजनीतिक अस्पृश्यता से मुक्ति दिलाकर उसे देश की मुख्यधारा की पार्टी बना दिया।[३]

इन दोनों घटनाओं का सूत्रपात बिहार की राजनीतिक जमीन पर हुआ, जिसने भारत के इतिहास की दिशा मोड़ दी। इन ऐतिहासिक क्षणों को यहाँ संक्षेप में इसलिए पेश किया गया है ताकि विभिन्न आदर्शों, आदर्शवाद और सिद्धांत के प्रति बिहार समाज की ग्रहणशीलता और प्रबलता रेखांकित हों।

हाल के दिनों में बिहार ऐतिहासिक परिवर्तनों का चश्मदीद गवाह रहा। चुनावी सशक्तिकरण की बदौलत सामाजिक शक्तियों में उभरना तो सचमुच में अभूतपूर्व है। देश में कहीं भी इस तरीके के सत्ता-राजनीति के केन्द्र में आने की बात कल्पनातीत थी। पहले मुंगेरी लाल आयोग और बाद में मंडल आयोग ने समाज का लोकतंत्रीकरण किया और हाशिये पर पड़े तबकों को सामाजिक पहचान दी।

अब वक्त का तकाजा है कि बिहार अपनी "सामाजिक पहचान" को मजबूत करते हुए "क्षेत्रीय पहचान" की ओर अग्रसर हो। क्षेत्रीय सवाल पर सभी तबकों के बीच सामाजिक एकजुटता कायम करना संभव है। कारण क्षेत्रीय एकजुटता के लिए बहुजातीय और बहुवर्गीय समंजन अनिवार्य शर्त है। हमें पक्का विश्वास है कि आज राज्य में जो राजनीतिक सहमति प्रत्यक्ष नजर आ रही है, वह राज्य के विकास के लक्ष्य संधान के लिए उत्प्रेरक बन सकती है। अब राज्य में नए युग का प्रारंभ होना चाहिए, जिसमें "विकास की राजनीति" करने की बजाय सिर्फ और सिर्फ विकास के लिए हर राजनीतिक प्रयास तेज किये जाये।[४]

बिहार में आर्थिक पिछड़ेपन और उपराष्ट्रीयता के न बन पाने के कारणों को समझने के लिए हमें देश और काल के परिपेक्ष में इतिहास की गहन पड़ताल करनी पड़ेगी।

राष्ट्रीय आंदोलन और खास कर गांधी के समय बिहार अग्रणी स्थान पर था। लेकिन यह राष्ट्रवादी उत्साह यहाँ औद्योगिक उद्यम को जन्म नहीं दे पाया। उधर सामंत विरोधी किसान-सभा ने यहाँ कृषि उद्यम को बढ़ावा देना शुरू किया। बिहार में इस घटनाक्रम का जाति के मुद्दे से गहरा अंतर्संबंध है। अब सवाल उठता है कि प्रबल राष्ट्रीय भावना के बावजूद बिहार में क्षेत्रीय औद्योगिक उद्यम क्यों विकसित नहीं हो सका? दूसरी तरफ यह भी सवाल रखा जा सकता है कि क्या औद्योगीकरण उद्यम की विशाल इमारत भौतिक शक्तियों के अनुकूल विकास के बिना विकसित हो सकती है। इसीलिए बिहार के संदर्भ में दो समस्याएँ सामने है-

१. राष्ट्रीयता यहाँ उद्यम को जन्म देने में क्यों विफल रही, और
२. यहाँ पूंजीवादी उपक्रम के लिए भौतिक शक्तियाँ क्यों विकसित नहीं हो पाई?

आजादी के बाद बिहार में सुव्यवस्थित ढंग से आर्थिक विकास करने की कोशिश की गई। लेकिन औद्योगिक विकास की प्रचुर संभावना एवं संसाधन रहने के बावजूद बिहार एकदम निचले पायदान पर रहा। संयुक्त बिहार में देश का कुल ३० प्रतिशत खनिज उत्पादन होता था। तब भी बिहार सबसे ज्यादा अशहरीकृत रहा। ऐसा माना जाता है कि आजादी से पहले बिहार में जो भी औद्योगिक विकास हुआ, वह भारतीय और वैश्विक पूंजी के सहयोग से हुआ। लेकिन इसके विपरीत, बिहार में वृहद तौर पर औद्योगिक विकास तो तब हुआ जब भारत का वैश्विक पूंजीजगत से औपनिवेशिक आर्थिक संबंध dqN le; dsfy, det ljs gksx; kFkkA परंतु बिहार में इतनी भी औद्योगिक प्रगति नहीं हो पाई। उल्टे, इन संबंधों के मजबूत होने से पिछड़ापन और ठहराव और बढ़ा ही।

भारत में क्षेत्रीय प्रगति की बनावट समझने के लिए एक स्वतंत्र विश्लेषण की जरूरत होगी। पूर्वी क्षेत्र को ब्रिटिश पूंजी और शोषण का सर्वाधिक खमियाजा भुगतना पड़ा।[६] दरअसल, बिहार का पिछड़ापन एक अलग-अलग घटना नहीं है। बिहार का अल्पविकास इतिहास एवं संरचना से प्रभावित विकास प्रक्रिया का परिणाम है, जिसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीति की प्रकृति, संरचना और मूल्यांकन के संदर्भ में समझा जा सकता है। आजादी से पहले, बंगाल प्रेसीडेंसी (बिहार, बंगाल और उड़ीसा), साम्राज्यवादी अंग्रेजों का मुख्य चारागाह था। पूर्वी भारत के संसाधनों का उपयोग अंग्रेजों ने न केवल शेष भारत पर कब्जा करने के लिए किया, वरन् मद्रास एवं बॉम्बे प्रेसीडेंसियों के घाटों की भी इससे भरपाई की।[७]

अकाट्य सत्य है कि विभिन्न देशों में हुई औद्योगिक क्रांति का पूंजीवाद और राष्ट्रीयता के विकास से सीधा संबंध रहा है। बिहार जैसे राज्य में मंद औद्योगिक प्रगति को समझने में उपराष्ट्रीयता की ऐसी ही समान अवधारणा काफी सहायक होगी। बिहार १६१२ में अस्तित्व में आया और नौ दशक पर्याप्त होते हैं- एक राज्य के लिए अपनी उपराष्ट्रीय पहचान और इसकी महत्वपूर्ण घटक, आर्थिक राष्ट्रीयता को जन्म देने के लिए। इसी समयावधि में असम[८] और उड़ीसा[६] द्वारा अपनी उपराष्ट्रीय पहचान बना पाने की सफलता की पृष्ठभूमि में बिहार की असफलता हमें चौंकाती है। बिहार समेत ये दोनों राज्य बंगाल प्रेसीडेंसी का हिस्सा थे। लेकिन ये दोनों ही राज अपनी पिछड़ी आर्थिक दशा को बेहतर बनाने के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठा सके। जबकि शुरूआती आर्थिक विकास के लिए भी उपराष्ट्रीय जागरूकता पूर्व शर्त होती है। अब सवाल यह है कि क्या बिहार में किसी तरह की जन्मजात जाति-विषयक कमजोरी रही है, जिसके आलोक में बिहार की इस विफलता को समझा जा सकें? यह पूरी समस्या, जो एक जटिल ऐतिहासिक घटना है, एक गहरी वैज्ञानिक पड़ताल की मांग करती है।[१०]

राजनीतिक तौर पर बिहार ब्रिटिश काल से पहले भी बंगाल के साथ ही बंधा था, जिसके कारण भी वह आर्थिक पिछड़ेपन का शिकार हुआ। दूसरी तरफ हिंदी पट्टी का हिस्सा होने के नाते बिहार में भी 'यथास्थितिवाद' (कंजर्वेटिज्म) कायम रहा। जहाँ तीनों प्रेसिडेंसियों में रूढ़िवादी विरोधों के बावजूद कई समाज सुधारक आंदोलन चले, वही बिहार में आर्य समाज का आंदोलन, जिसे निचली जातियों में थोड़ी-बहुत स्वीकृति मिली, परिवर्तन के बजाए 'यथास्थितिवाद' का ही वाहक से सिद्ध हुआ। बिहार में सामाजिक आंदोलन की इकाई जाति थी, न कि गाँव अथवा क्षेत्र।[११] बहुजातीय सुधारवादी आंदोलन के उदाहरण यहाँ नहीं के बराबर है।

आर्थिक पिछड़ेपन की इस पृष्ठभूमि में बिहार अपना एक खंडित व्यक्तित्व ही बना पाया, जिसकी कोई देशिक पहचान (टेरीटोरियल एनटिटीज) थीं, यथा-भोजपुरी, मगही और मैथिली। ये सभी देशिक पहचाने जाति प्रथा पर आधारित थीं। भाषागत तौर पर इन बोलियों को 'बिहारी' भाषाओं के एक खाँचे में रखा जा सकता है। ये हिंदी से निश्चित ही अलग है और बांग्ला, असमिया और उड़िया से ज्यादा करीब है, क्योंकि ये सभी बोलियाँ एक ही मूल 'अर्धमगधी अपभ्रंश' से निकली है। बांग्ला या उड़िया के उलट, बिहार में कोई एक बिहारी भाषा का अब तक जन्म नहीं हो सका।[१२]

बंगाल से बिहार को अलग करने का आंदोलन, बिहार में क्षेत्रीय पहचान (उपराष्ट्रीयता के अर्थ में) बनाने की पहली कोशिश थी। क्षेत्रीय स्तर पर इस आंदोलन में लोगों की भागीदारी को धार्मिक समूहों, जाति-समूहों और क्षेत्रीय इकाइयों का समर्थन मिला हुआ था।[१३] पश्चिमी रंग-ढंग वाले बिहारी एलीट ने इस आंदोलन को नेतृत्व दिया था। तीन प्रमुख कारकों- बिहारी बुद्धिजीवी वर्ग, बंगाली प्रवासी वर्ग और ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बिहार की क्षेत्रीय और आर्थिक चेतना का चरित्र तय किया।

सबसे पहले हम देशी एलीट की चर्चा करते हैं। इतिहासकारों ने इस वर्ग को एक समूह माना है। अलग बिहार के लिए आंदोलन का नेतृत्व पढ़े-लिखे और 'प्रोफेशनल एलीट' कर रहे थे। इनमें बिहारी उद्यमी शामिल नहीं थे।[१४] ऐसा बिहार में सामंतवाद के हावी होने के कारण था। इन एलीट का सामाजिक आधार सीमित था। यह आंदोलन नौकरी और शिक्षा में बिहारियों के साथ किए जा रहे भेदभाव के इर्द-गिर्द ही घूम रहा था और इसके दूरगामी लक्ष्य नहीं थे। चूँकि यह आंदोलन बिहार को अलग करने मात्र को लेकर चल रहा था अतः बंगाल के 'बायकाट' आंदोलन (१६०५) के साथ कोई तालमेल नहीं कर सका। स्वदेशी आंदोलन में भागीदारी नहीं होने के कारण स्वतंत्र आर्थिक एजेंडा विकसित करने के मामले में भी बिहार के आंदोलन की बौद्धिक छवि बुरी तरह प्रभावित हुई। स्वदेशी आंदोलन के समय जहाँ उड़ीसा में ३०० से ज्यादा इकाइयाँ सक्रिय थीं, वहीं बिहार में मात्र तीन इकाइयाँ थी, वह भी केवल भागलपुर में। चूँकि इनका संचालन मुख्यतः बंगाली बाशिंदे कर रहे थे, इन्हें तिरस्कारवश 'बाबू-तमाशा' कहा जाता था।[१५]

बिहार को अलग करने की मांग को लेकर चल रहे इस आंदोलन की 'वर्गीय सीमा' इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि बिहार में आर्थिक राष्ट्रीयता को लेकर किसी राजनीतिक सोच का सर्वथा अभाव था। नौकरियों में स्थानीय लोगों के लिए आरक्षण की मांग तक सीमित होने के कारण लोग इस आंदोलन को और ऊपर नहीं उठा सके। ब्रिटिश शासन ने बिहार की अर्थव्यवस्था और विकास को बाधित किया। एक ओर इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति चल रही थी तो दूसरी तरफ भारत के मैदानी हिस्से और खासकर बिहार में सुनियोजित ढंग से औद्योगीकीकरण को रोका जा रहा था, जो पहले से ही लड़खड़ा रहा था।[१६]

अब दूसरे कारक बंगाली बाशिंदे को लें। बंगाल के साथ बिहार का राजनीतिक संपर्क तो था, पर वह ज्यादा हिंदी पट्टी

से नहीं जुड़ा था। इसलिए बंगाली लोग स्वयं को यहाँ की स्थानीय आबादी से नहीं जोड़ पाए। साथ ही वे अपने आपको सांस्कृतिक तौर पर श्रेष्ठतर और ज्यादा कुलीन समझते थे, क्योंकि औपनिवेशिक शासन में नौकरी करने वाले लोगों में बंगालियों की तादाद ही ज्यादा थी। थोड़े-बहुत योगदान को छोड़कर इन 'मध्यवर्गीय बंगालियों' ने बंगाल में फैल रहे आधुनिक विचारों को पिछड़े क्षेत्रों तक लाने में कोई रुचि नहीं दिखाई। फलतः इन पिछड़े क्षेत्रों में 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' लाने में उनकी कोई ऐतिहासिक भूमिका नहीं रही।[१७]

बंगाली पुनर्जागरण भी अपने भौगोलिक सीमाओं से बाहर आकर पिछड़े क्षेत्रों, खासकर बिहार में कोई जागृति पैदा नहीं कर सका। ब्रह्मसमाज जैसे सुधारवादी आंदोलन भी बिहार में अपनी जड़े नहीं जमा सके। तथाकथित बंगाली पुनर्जागरण की यह घोर विफलता ही थी कि वह अपनी 'सबसे अलग रहने की संकीर्णता' से बाहर आकर, बिहार के साथ कोई मजबूत संबंध नहीं बन पाया।[१८]

बंगाल अपने एलीट स्वभाव के कारण बिहार की सामान्य समस्याओं के प्रति कमोबेश उदासीन नहीं रहा। उदाहरण के लिए १६ वीं सदी में बंगाल ने लोगों के दमन के खिलाफ सफल लड़ाई तो लड़ी, लेकिन इस आंदोलन को बिहार तक नहीं पहुंचाया वस्तुतः बिहार को लगभग आधी सदी तक इंतजार करना पड़ा। जब गांधी आए तब नीहलों के खिलाफ उन्होंने बिहार में लड़ाई की शुरुआत की। इन आंदोलन के साथ बिहार राष्ट्रीयता की गांधीवादी लहर में शामिल तो हो गया पर बिना कोई ठोस उपराष्ट्रीयता विकसित किए इसने उसकी क्षेत्रीय पहचान, झारखंड, भोजपुर, मैथिली जैसी उपक्षेत्रीय इकाइयों और जातियों के दलदल में ही फंस कर रह गई।

तीसरा कारण है- औपनिवेशिक शासन। बंगाल में बायकाट मूवमेंट को देखते हुए अंग्रेज शासक सतर्क हो गए थे कि कहीं बिहार में भी ऐसा आंदोलन शुरु ना हो जाए। बंगाल-विभाजन के बाद 'स्वदेशी' आंदोलन बहुत सफल रहा था। मध्य वर्गीय बंगाली युवा क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम दे रहे थे। ऐसी स्थिति में अंग्रेज शासक बंगालियों को नौकरियाँ दिए जाने के बिहारी विरोध का समर्थन करने को बाध्य हो गए।[१९]

गांधी युग में बिहार राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य केंद्र बन गया। अखिल भारतीय राजनीति की ओर बिहार का यह शिफ्ट काफी मायने रखता है। पहला, यह राष्ट्रीय राजनीति में पश्चिम भारत के उभार को दर्शाता है। दूसरा, बिहार समेत पूरे भारत में मुख्यतः पश्चिम भारत के पूंजीपतियों का दबदबा बढ़ता जा रहा था। इसके साथ ही, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और क्षेत्रीय एलीट समूहों ने भी इनकी पैठ बढ़ती जा रही थी। कांग्रेस पार्टी स्वार्थों या हितों का एक लचीला संग बन गई, जो औपनिवेशिक कालीन भारत में राष्ट्रीयता के बहुस्तरों को एकीकृत कर सकती थी। ब्रिटिश के खिलाफ जाने की सेठियाओं की शुरुआती हिचक अब खत्म हो चुकी थी और अब वे कांग्रेसी मंच का महत्व समझने लगे थे, जिसे अपने स्वार्थो की पूर्ति के मजबूत हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था। दूसरी तरफ, मध्यमवर्गीय एलीट को एक शक्तिशाली धनाड्य वर्ग के समर्थन की जरुरत थी ताकि राष्ट्रीय आंदोलन के उत्साह और गति को कायम रखा जा l dß°

बिहारी उद्यमी अभी भी शैशवावस्था में ही है और बिहार में व्यापारिक समुदाय को शक्तिशाली नेतृत्व देने की क्षमता अब तक विकसित नहीं कर पाए हैं। उपराष्ट्रीय और सहगामी आर्थिक उद्यम के अभाव में पंगु होने के कारण बिहार का वह तबका, जिसने आजादी के बाद बिहार की बागडोर थामी, बिहार में कृषि और औद्योगिक प्रगति के लिए कोई कारगर दृष्टि नहीं तलाश पाए। वे जमींदारी प्रथा के उन्मूलन और सार्वजनिक क्षेत्र से जुड़े कुछ बड़े उपक्रमों की स्थापना से आगे नहीं बढ़ पाये। भूमि सुधार को गंभीरता से लागू नहीं किया गया। बिहार की विशाल खनिज संपदा का पहले ही अनुमान लगाया जा चुका था। २०वीं सदी के आरंभ में टाटा में भारी निवेश किया गया था। लेकिन आजादी के बाद, इस निजी निवेश में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई।[२१]

सन् २००० में बिहार के बंटवारे के बाद, बिहार को फिर से शुरूआत करने की जरूरत है। विकास की रणनीति और राजनीति में एक साझा सामाजिक नजरिया विकसित करना होगा। आर्थिक आयाम के बिना बिहार की उपराष्ट्रीयता कभी मजबूत नहीं हो सकेगी। लेकिन हमें खिन्न और हताश होने की जरूरत नहीं है। बहुत हो चुका बिहार-बैशिंग (बिहार की छवि को मलिन कर परोसने वाली बात)। हम 'बिहारी उपराष्ट्र' का एक नया इतिहास रचें, लेकिन यह तभी संभव होगा जब हम पुनः उठ खड़े होकर बिहार की एक नई पहचान पेश करेंगे। आज बिहार का मतलब 'भ्रष्टाचार और अराजकता' कतई नहीं है, बल्कि सुशासन से है। माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार जी के नेतृत्व में बिहार के उदय से ही बिहार की आलोचना करने वालों का मुँह बंद होगा। हम अपने राज्य के प्रदर्शन को बेहतर बनाये, अपनी को स्थिति को मजबूत करें और एक नई बिहारी पहचान के साथ दुनिया के सामने आए।

संदर्भ

१ हेमंत, 'बिहार विमर्श, बिहारीपन की साझी पहचान', प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, २००३, पृ०-१६-२०.

२. हेमंत, बिहार विमर्श, पृ०-२४.

३. वही, पृ०-२५.

४. वही, पृ०-२६.

५. शर्मा रामविलास, 'भाषा और समाज', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १६७७, पृ०-२७२.

६. गुप्ता निर्मल सेन, 'कास्ट एज एग्रेरियन फिनोमेनन इन बिहार, एग्रेरियन रिलेशंस इन इंडिया', सं०-अरविन्द एन० दास और नीलकांत, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, १६७६, पृ०-८३.

७. गुप्ता निर्मल सेन, 'दि पिपुल ऑफ बिहार इन एग्रेरियन टेन्शन, मूवमेंट एण्ड पीजेण्ट ऑर्गनाइजेशन इन बिहार', सं०-अरविन्द एन० दास और निर्मल सेन गुप्ता, नेषनल लेबर इंस्टीच्यूट, नयी दिल्ली (अप्रकाशित), पृ०-६.

८. गोहैन हिरैन, 'ओरिजिन्स ऑफ दि असमीज मिड्ल क्लास', सोशल साइंटिस्ट, एनुअल नं०, नयी दिल्ली, अगस्त, १६७८.

६. बारीक राधाकांत, 'गोपबन्धु एण्ड नेशनल मूवमेंट इन उड़ीसा', सोशल साइंटिस्ट, नयी दिल्ली, मई, १६७३.

१०. हेमन्त, बिहार विमर्श, पृ०-१०.

११. बागची अमिय के०, 'दि इण्डस्ट्रियलाइजेशन इन गेन्गेटिक बेल्ट ऑफ बिहार, इन एसेज इन ऑनर ऑफ सुशासन सरकार', सं०-बरूण डे, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, १६७६, पृ०-४४४-४६६.

१२. गुप्ता शैबाल, 'नन डेवलपमेंट ऑफ बिहार : ए केस ऑफ रिटायर्ड सबनेषनलिज्म, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली', बम्बई, १२ सितम्बर, १६८१, पृ०-२१४२.

१३. घोष अंजन और निर्मल सेन गुप्ता, 'नेशनलिटी क्वेश्चन इन झारखण्ड ए फोर्थ वर्ल्ड डायनामिक्स', आथर्स गिल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, १६८२, पृ०-४-५.

१४. सिन्हा सच्चिदानन्द, 'इण्टरनल कॉलोनी, ए स्टडी ऑफ रीजनल एक्सप्लायटेशन', मराल प्रकाशन, मुजफरपुर, १६७३, पृ०-१०.

१५. हेमन्त, बिहारी विमर्श, पृ०-३४.

१६. वही, पृ. ३४

१७. वही, पृ. ३५.

१८. वही, पृ. ३५

१६. वही, पृ. ३५-३६

२०. वही, पृ. ३६.

२१. वही, पृ. ३६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

निजी व्यवसाय में संलग्न महिलाओं की समाजार्थिक स्थिति

❑ सरस्वती भट्ट जोशी
❖ डॉ. रेनू प्रकाश

आदिकाल से ही महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपने वर्चस्व का उदाहरण प्रस्तुत करती आयी हैं। वे अपनी योग्यता, क्षमता एवं कार्यकुशलता के अनुरूप प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वहन करती आयी हैं। महिलाएं विभिन्न निजी व्यवसायों में जुड़कर अपने परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में अपना सहयोग प्रदान करती हैं फिर चाहे वे क्षेत्र संगठित हों या असंगठित इनका योगदान अविस्मरणीय है। सामान्य अर्थों में निजी व्यवसाय से तात्पर्य उस व्यवसाय से है जिसमें एक महिला स्वयं किसी भी प्रकार का कार्य जैसे - दुकान चलाना, हथकरघा, श्रम करना आदि में कार्यरत होती है। ये निजी व्यवसाय नारी को सशक्त बनाते हैं प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा नगर में निजी व्यवसायों में कार्यरत भोटिया जनजाति की महिलाओं की समाजार्थिक स्थिति का मूल्यांकन किया गया है।

आदिकाल से ही महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपने वर्चस्व का उदाहरण प्रस्तुत करती आयी हैं। वे अपनी योग्यता, क्षमता एवं कार्यकुशलता के अनुरूप प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वहन करती आयी हैं। महिलाएं विभिन्न निजी व्यवसायों में जुड़कर अपने परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में अपना सहयोग प्रदान करती हैं फिर चाहे वे क्षेत्र संगठित हों या असंगठित इनका योगदान अविस्मरणीय है।

सामान्य अर्थों में निजी व्यवसाय से तात्पर्य उस व्यवसाय से है जिसमें एक महिला स्वयं किसी भी प्रकार का कार्य जैसे - दुकान चलाना, हथकरघा, श्रम करना आदि में कार्यरत होती है। ये निजी व्यवसाय नारी को सशक्त बनाते हैं, इस प्रकार कार्यरत महिलाएं सशक्तिकरण को सार्थक करती हैं। भारत सरकार द्वारा वर्ष २००१ को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' घोषित किया गया है।

सशक्तिकरण का अभिप्राय एक महिला का सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक आदि प्रत्येक संगठित एवं असंगठित क्षेत्र में सुदृढ़ होने के साथ-साथ उसकी सकारात्मक सोच भी होनी चाहिए।

कार्यरत महिला की परिभाषा के अंतर्गत उन्हें कार्यरत की संज्ञा दी जाती है जो घर से बाहर कार्यक्षेत्र में अर्थोपार्जन करती है तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में कार्य करती है। अतएव यदि एक महिला जो किसी निजी व्यवसाय में कार्यरत है और अर्थोपार्जन के द्वारा परिवार की आय को बढ़ाने में अपना सहयोग प्रदान करती है, वह सशक्त कहलाएगी। इस प्रकार निजी व्यवसाय की कार्यगत परिस्थिति सशक्तिकरण की द्योतक है। भाग्यलक्ष्मी[1] के अनुसार ''महिलाओं की आर्थिक अधिकारिता के लिए महिलाओं और लड़कियों को शिक्षा के आसान तथा समान अवसर सुनिश्चित कर उन्हें आधुनिक व्यवसायों की अनिवार्य कौशलताएं प्रदान करनी चाहिए जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।''

साहित्य सर्वेक्षण : निजी व्यवसाय अथवा असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन कर स्वयं एवं अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ. करना है। इस प्रकार महिला आत्मनिर्भर रहते हुए आर्थिक एवं सामाजिक रूप से स्वतंत्र एवं सशक्त होती है। इस संदर्भ में पंडित जवाहर लाल नेहरू[2] का कथन है ''यदि आपको विकास करना है तो महिलाओं का विकास होने पर समाज का विकास स्वतः हो जायेगा।''

महिलाओं का सर्वांगीण सशक्तिकरण बेहतर तथा अधिक न्यायोचित समाज-निर्माण का अनिवार्य एवं आन्तरिक भाग है। महिला सशक्तिकरण के बारे में समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों, व्यवसायों एवं आर्थिक स्तरों से जुड़े व्यक्तियों (पुरूषों व महिला) दोनों की नजर में अलग-अलग मायने हैं, दृष्टिकोण हैं। एक ओर यह महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता या आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना है तो दूसरे रूप में पुरूषों के समान स्थिति को प्राप्त करना है। एक सोच के अनुसार यह पाश्चात्य या अत्याधुनिकता को अपनाना ही सशक्तिकरण है। उपरोक्त

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जीना परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
❖ असिसटेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जीना परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

सभी सशक्तिकरण की कतिपय पहलू मात्र है। जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महसूस करें तथा तमाम रूढ़िवादी व अप्रासंगिक रिवाजों, रूढ़ियों के बंधनों से पूरी तरह स्वतंत्र हो।[३]

शंकर जहां उमा और प्रेमलता पुजारी[४] के अनुसार ''महिलाओं ने अपने कार्य स्तर को खुद अपने ऊपर लगाये गये अनेक प्रकार के प्रतिबंधों से स्वतंत्र महिला प्रतिरूप में ढाला है और आर्थिक बराबरी के नाम पर स्वतंत्रता को प्राप्त किया है। साथ ही व्यवसाय में बराबरी के अवसर, साथी के चुनाव में स्वतंत्रता तथा सामाजिक स्तर को भी प्राप्त किया है।

प्रमिला कपूर[५] के अनुसार – ''आर्थिक लाभ की वजह से स्त्रियां नौकरी नहीं करती बल्कि इसके पीछे अन्य दूसरे सामाजिक कारण भी हैं जैसे अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करना, अपने लिये उच्च दर्जा प्राप्त करना, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना, लोगों से मिलने-जुलने की स्वतंत्रता प्राप्त करना, घर की चाहरदीवारी के ऊबने वाले वातावरण से राहत पाना, समाज के लाभार्थ कार्य करना आदि।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान द्वारा महिलाओं को समान दर्जा प्रदान किया गया है जिससे उनकी प्रस्थिति बेहतर हुई है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक लगभग सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने पुरूषों के समान कार्य करना प्रारम्भ किया। परिवार में महिलाओं के प्रकार्य संबंधों में होने वाले परिवर्तन और वृहद सामाजिक परिवेश में महिलाओं की सामाजिक और वैधानिक अयोग्यताओं में होने वाले सुधारों के कारण आज भारत में महिलाओं का अधिकार क्षेत्र अति व्यापक हो गया है।[६]

इलासाह तथा गोविन्द लाल ने उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा नगर में किए अपने अध्ययन के आधार पर कहा है कि शहर अल्मोड़ा में कार्यरत महिलाओं की स्थिति को उनके द्वारा प्राप्त किये गये आंकड़ों के आधार पर संतोषजनक कहा जा सकता है।[७] अनुपमा शर्मा ने अपने अध्ययन में पर्यटन उद्योग में कार्यरत महिलाओं में पाई जाने वाली व्यसायिक गतिशीलता और सामाजिक समायोजन से संबंधित उसके दृष्टिकोणों को जानने तथा उनमें विद्यमान व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा के संदर्भ में परिवार एवं कार्यस्थल की विविध भूमिकाओं तथा उनसे उत्पन्न तनावों तथा संघर्षों के बारे में कामकाजी महिलाओं के दृष्टिकोणों को जानने का प्रयास किया है।[८]

उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अल्मोड़ा नगर के निजी व्यवसाय में कार्यरत भोटिया जनजाति महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करना है।

शोध अभिकल्प : प्रस्तुत शोध पत्र में अन्वेषणात्मक एवं विवेचनात्मक शोध अभिकल्प का उपयोग कर तथ्यों के वास्तविक एवं यथार्थ विवरण को प्रस्तुत किया गया है। प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर अल्मोड़ा नगर में ३० महिलाएं ऐसी पायी गयीं जो असंगठित अथवा निजी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। प्रस्तुत शोध पत्र समग्र पर आधारित है अर्थात् अध्ययन ३० इकाइयों पर आधारित है। शोध हेतु प्राथमिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है तथा आंकड़े एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची तथा आवश्यकता अनुसार असहभागी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

उपलब्धियां : प्रस्तुत शोध निजी व्यवसाय में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को देखने का एक प्रयास है। अध्ययन में कार्यरत भोटिया जनजाति की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है –

१. प्रस्तुत अध्ययन में जनजातीय समाज की महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तुलनात्मक रूप से उच्च पायी गयी क्योंकि अधिकांश (६३.८ प्रतिशत) उत्तरदाताओं के पास स्वयं के आवास उपलब्ध हैं।
२. वर्तमान समय में गृहिणी एवं कार्यरत महिलाओं के तुलनात्मक महत्व के संदर्भ में यदि बात की जाए तो अधिकांश (८० प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने गृहिणी एवं कामकाजी दोनों भूमिकाओं को महत्व दिया है।
३. महिलाओं की सामाजिक स्थिति के संदर्भ में उन उत्तरदाताओं का प्रतिशत (३६.६७ प्रतिशत) समान है जिन्होंने कार्यरत महिलाओं की स्थिति को सामान्य एवं सम्मानजनक माना है।
४. शत् प्रतिशत उत्तरदाताओं के यहां शौचालय की व्यवस्था पायी गयी। यह इस बात की ओर इंगित करता है कि महिलाएं अपने स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति जागरूक हैं।
५. आर्थिक स्वतंत्रता के संदर्भ में उत्तरदाताओं का स्तर काफी उच्च पाया गया क्योंकि अध्ययन में ६३.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का स्वयं का व्यापार/व्यवसाय है।
६. अध्ययन में महिलाओं को विवाह संबंधी निर्णय लेने में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है क्योंकि ७० प्रतिशत उत्तरदाता अन्तर्जातीय विवाह को बुरा नहीं मानती हैं।
७. वर्तमान समय में सामाजिक तौर पर उच्चता एवं निम्नता का भेदभाव धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। हमारे उत्तरदाता भी इसके अपवाद नहीं हैं क्योंकि ६० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने समाज में इस प्रकार की स्थिति को अस्वीकार किया है।

८. महिलाओं का कार्यरत होना समाज द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। प्रस्तुत अध्ययन में भी ६३.३ उत्तरदाताओं का मानना है कि उनके व्यवसाय के संदर्भ में परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा किसी प्रकार का विरोध नहीं किया जाता है।

९. कार्य संतुष्टि व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में एक बड़ी भूमिका का निर्वहन करती है। प्रस्तुत अध्ययन में भी ९६.६७ उत्तरदाता अपने कार्य के प्रति संतुष्ट पायी गयीं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि अध्ययन में सम्मिलित महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सम्मानजनक एवं उच्च पायी गयी। ये उत्तरदाता पारिवारिक सदस्यों द्वारा किसी प्रकार के भी विरोध को अस्वीकार करती हैं। जैसा कि सभी जानते हैं कि जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति उच्च पायी जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में भी महिलाओं की स्थिति तुलनात्मक रूप से उच्च पायी गयी क्योंकि अधिकांशतः महिलाएं अपने निजी व्यवसाय/व्यापार में संलग्न हैं साथ ही किसी प्रकार के भी उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव को अस्वीकार करती हैं। विवाह संबंध में भी अंतर्जातीय विवाह को स्वीकृति प्रदान करती हैं। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में भी उत्तरदाताओं में कार्य संतुष्टि का स्तर उच्च पाया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है जिससे जनजातीय समाज भी अछूता नहीं है।

सुझाव :

१. अधिकांशतः महिलाओं में जागरूकता का अभाव पाया जाता है। अतएव प्रचार-प्रसार के माध्यम से महिलाओं को जागरूक करने हेतु सामाजिक तौर पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

२. निजी व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को बैंकों तथा सरकारी समितियों से न्यूनतम ब्याज पर ऋण की व्यवस्था होनी चाहिए।

३. कच्चे माल की उपलब्धता तथा हस्त निर्मित उत्पादों की बिक्री के लिए उचित बाजारों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

४. सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं से अवगत कराने के लिए समय-समय पर इन महिलाओं हेतु कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

५. स्व रोजगार में संलग्न महिलाओं को आर्थिक निवेश संबंधी जानकारी एवं समय-समय पर सरकार द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम दिया जाना चाहिए।

संदर्भ

१. भाग्यलक्ष्मी, जे०, 'महिला अधिकारिता : बहुत कुछ करना शेष', योजना वर्ष ४८, अंक ५, अगस्त २००४, पृ०-२६।

२. 'कुरूक्षेत्र'' अक्टूबर २०१४, पृ० २५।

३. शर्मा अनुपम तथा वार्षणेय संगीता ''इक्कीसवीं शताब्दी में महिला समस्याएं एवं संभावनाएं २०१३, अल्फा पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ० ६६-६७।

४. Shankarjaha, Uma, Premlata Pujara, 'Indian Women Today : Tradition Modernity and Challenge', 1998, Kanishka Publishers Distriluters New Delhi, P. 196.

५. Kapoor Pramila, 'Marriage and the Working Women in India', Vikas Publication, Delhi, 1970, P. 23.

६. गुडे, विलियम जे०, 'वर्ल्ड रिवोल्यूशन एण्ड फेमिली पैटर्न' दी फ्री प्रैस, न्यूयार्क कोलियर-मैकमिलन, लंदन, १९६८, पृ० २५६।

७. साह इला एवं गोविन्द लाल, 'कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक-सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन' राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १९ अंक १, जनवरी-जून २०१७, पृ. ८८

८. शर्मा अनुपमा, 'कार्यरत महिलाओं की व्यवसायिक गतिशीलता पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव', राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १८ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१६, पृ. ६३-७१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
Regd. No. UPHIN/1999/00955
वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
ISSN 0974-0074

जिला पंचायत के निर्वाचन में महिलाओं का आरक्षण एवं उनकी सहभागिता

❑ विमलेश कुमार

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य जिला पंचायत कन्नौज के निर्वाचन में महिलाओं के आरक्षण एवं उनकी सहभागिता की सही स्थिति का पता लगाना है कि क्या आधुनिक युग में जब हम संविधान के अनुसार जीवन यापन कर रहे है संविधान की प्रस्तावना महिलाओं और पुरूषों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की गारंटी देती है तब हमारे देश में २६ जनवरी १९५० के वाद महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में कितनी प्रगति हुई है। जब २००० व २००५ की जिला पंचायत कन्नौज का निर्वाचन हुआ तब कन्नौज जनपद की महिलाओ की सहभागिता तथा आरक्षण की सही स्थित क्या रही।

जहां महिलाओं ने वैदिक काल के वाद अपनी अवनति का काल देखा वहीं १९वीं सदी के नारी सुधार आदोलन ने महिलाओ की स्थिति में सुधार किया और भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त आरक्षण महिलाओ के विकास का नया आयाम स्थापित करने में कारगर साबित हुआ है। वहीं कन्नौज जनपद की महिलाएं घर की चाहर दीवारी से निकल कर सक्रिय राजनीति में अपना योगदान दे रहीं है। हालांकि जिस प्रदर्शन की उम्मीद होनी थी वह न सही किन्तु प्रदर्शन काफी हद तक उचित रहा है और भविष्य में भी बेहतर प्रदर्शन की आशा हैं।

प्रस्तावना- भारतीय स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ एवं मजबूत बनाने के लिए स्थानीय स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को सुदृढ़ किया जाना अति आवश्यक है जिसमें स्त्री और पुरूषों को बिना किसी भेदभाव के तथा उच्च एवं निम्न वर्ग को उनके आरक्षण के हिसाव से प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। स्थानीय स्वशासन के अन्तर्गत ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत का गठन श्री बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिश से किया गया जो स्थानीय स्वशासन के विकास में अति महत्वपूर्ण कदम है। वर्तमान सरकारों का जिला पंचायत के गठन में महिलाओं को दिया गया आरक्षण एवं उनकी सहभागिता का अध्ययन प्रस्तुत शोध का प्रमुख विषय है।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत शोध उत्तर प्रदेश के कन्नौज जनपद की जिला पंचायत के निर्वाचन २००० व २००५ पर आधारित है। इसके लिए सविचारपूर्ण निदर्शन विधि की सहायता से १५० पदाधिकारी सूचनादाताओं का चुनाव किया गया। सूचनादाताओं से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के उद्देश्यः प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नवत् रहे हैंः-

१-जनपद कन्नौज, उत्तर प्रदेश की जिला पंचायत के गठन में महिला सहभागिता का अध्ययन करना है।

२-जनपद कन्नौज, उत्तर प्रदेश के जिला पंचायत के निर्वाचन में महिलाओं के आरक्षण का अवलोकन करना है ।

३- जिला पंचायत जनपद कन्नौज, उत्तर प्रदेश की स्थानीय स्वशासन की सार्थकता की जांच करनी है।

भारतीय समाज में महिलाओं के प्रति समाज की मान्यता- भारतीय समाज में महिलाओं की स्थित सदैव से ही परिवर्तन शील रही है। महिलाओं की स्थिति में जितना परिवर्तन भारत में हुआ है। उतना किसी अन्य राष्ट्र में नहीं हुआ है महिलाएं प्रकृति की सृजनशीलता एवं रचनात्मक शक्ति का प्रतीक है। मानव आदिम व्यवस्था से लेकर वर्तमान समय के पुरूषों ने महिलाओं के प्रति संरक्षण तथा महिलाओं ने पुरूषों के प्रति समर्पण का भाव रखा। वैदिक काल में महिलाओं का उच्च स्थान था। महिला पुरूष की अर्धांगिनी समझी जाती थी। उस समय समाज में नारी का सम्मान होता था। महिलाओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ''जहां महिलाओं की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है।''[1] आध्यात्मिक समाज में 'सीताराम' या 'राधेश्याम' का उच्चारण समाज में महिलाओं (नारी) के अग्रणी स्वरूप का स्वतः ही निर्धारण करता हैं। कालान्तर में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया, अशिक्षा, पर्दाप्रथा, बाल विवाह, पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था ने उनका स्थान चौथे वर्ण से नीचे ला दिया जो केवल परतंत्रता में जन्म लेती है और परतंत्रता में मरती है। (बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति, प्रोड़ावस्था में पुत्र द्वारा संरक्षित)। **१९वीं सदी** में फिर से महिलाओं को लेकर नयी बहस शुरू

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान, ए०के० कालेज शिकोहाबाद फिरोजाबाद (उ.प्र.)

हुई। भारतीय समाज के प्रतिष्ठित और प्रबुद्ध वर्ग ने महिलाओं की स्थिति में सुधार का बीड़ा उठाया तथा महिलाओें की दयनीय स्थिति से मुक्त कराने का कार्य किया। जिसमें राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, श्रीमती एनीबेसेन्ट तथा महात्मा गाँधी का नाम अग्रणी समाज सुधारकों में गिना जायेगा। **सहभागिता** की प्रकृति सैद्धान्तिक आधार पर एक युग से दूसरे युग व एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र के साथ भिन्न होती है। उदाहरण के लिए शैक्षणिक प्रणाली व सूचना, संचार व्यवस्था, इनके स्तर व प्रक्रिया में मूलभूत अलगाव पाया जाता है। इसके अलावा अन्य कारण जो सहभागिता की प्रकृति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। वे हैं राष्ट्रीय परम्पराएं, राष्ट्र का राजनीतिक पर्यावरण, इतिहास शासकीय संस्थाओं की कार्यप्रणाली, राजनीतिक क्षेत्र में संघर्ष पूर्ण प्रतियोगिता तथा मत प्राप्त करने के उत्कृष्ट तरीके। इन सभी विषयों को राजनीतिक सहभागिता में अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। **जिला** पंचायत कन्नौज में स्थानीय शासन - ग्राम स्वशासन में जिला पंचायत का स्थान सर्वोपरि है यह त्रिस्तरीय व्यवस्था का शिखर माना गया है । श्री बलवन्त राय मेहता ने अपनी सिफारिश में जिला परिषद के विषय में कहा था कि जिला पंचायत का जिला स्तर पर होना अति आवश्यक है जो कि जिले के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न विभागों में आपसी तालमेल व सहयोग उत्पन्न कर सके और जिले के प्रशासन को व्यवस्थित ढंग से चलाने मे समर्थ हो सके। मेहता समिति का यह भी मानना है कि इसको इतना अधिक प्रभावशाली नहीं बनाया जाना चाहिए, इसका तो कार्य सिर्फ जिले के प्रशासन में कार्यरत सभी विभागों अंगो के आपसी सहायता करना है उन पर नियंत्रण रखने मात्र से अधिक नहीं होना चाहिए। प्रशासन की समस्त शक्तियां मेहता समिति ने जिला परिषद के अलावा क्षेत्र समिति को प्रदान की हैं जिससे उनको पंचायती राज का सबसे महत्व पूर्ण अंग बना दिया है।

जिला पंचायत की विशेषताएं- १. जिला पंचायत का नाम वही होगा जो उस जिले का नाम है। २. यह एक निकाय होगी और उसका एक स्थायी उत्तराधिकारी होगा। ३. वह अपने नाम से सम्पत्ति रख सकेगी, खरीद सकती है तथा बेच सकती है। ४. उसका कार्यालय एक एसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जाय किन्तु जब तक इस प्रकार का निर्धारण न मिल जाय तब तक उसी स्थान पर होगा । जहां पर वह उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत समिति व जिला परिषद संसोधन अध्यादेश १९६५ के आरम्भ के ठीक पहले स्थित थी।[१] ५.जिला पंचायत गठन गजट में अधिसूचित किया जायेगा।

जिला पंचायत की संरचना-१. जिले में स्थापित सभी क्षेत्र पंचायत प्रमुख। २. निर्वाचित सदस्य जो जिला पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा चयनित किये जाएगें तथा इस प्रयोजन के लिए पंचायत क्षेत्र ऐसी रीति से निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जायेगा कि प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या मुख्यतया ५०००० हो। ३. लोकसभा के सदस्य व राज्य की विधान सभा के सदस्य जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें पंचायत क्षेत्र का कोई सभावेश नहीं है। ४.राज्य सभा के सदस्य और राज्य की विधान परिषदों के सदस्य जो पंचायत क्षेत्र के अन्दर निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत है। ५. जिले के सभी नगरपालिकाओं के अध्यक्ष एवं जिला सहकारी संघ का अध्यक्ष।

जिला पंचायत में महिलओं के लिए आरक्षण- जिला पंचायत के स्थानों की कुल संख्या के अन्यून स्थान जिसमें निहित उपधारा (२)के अधीन आरक्षित स्थानों की संख्या भी महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगे तथा एंसे स्थान किसी भी पंचायत में अलग - अलग प्रादेशिक निर्वाच क्षेत्रों का चक्रानुक्रम से जैसा कि निश्चित किया जाये आवंटित किया जाएगा। अनुच्छेद ३३४ अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों के स्थानों का आरक्षण विनिर्दिष्ट समय की समाप्ति पर प्रभावी नहीं होगा।[३] इस धारा की कोई भी बात अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के व्यक्तियों और महिलाओं को आरक्षित स्थानों के लिए चुनाव लड़ने से नहीं रोक पायेगी।

उपलब्धियाँ

तालिका -१

आप राजनीतिक दल की सदस्य है-

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	७८	५२.००
नहीं	६०	४०.००
तटस्थ	१२	०८.००
योग	१५०	१००.००

उपरोक्त तालिका विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ५२.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने स्वीकार किया कि वे राजनीतिक दल की सक्रिय सदस्य है। वहीं ४०.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने स्वीकार किया कि वे राजनीतिक दल की सक्रिय सदस्य नहीं रहीं । जबकि ०८.०० प्रतिशत सूचनादाताओं अपना मत तटस्थ रहकर व्यक्त किया है।

अतः उपरोक्त तालिका महिलाओं की सहभागिता का जो

स्पष्टीकरण देती है उससे साफ स्पष्ट है कि महिलाओं की राजनीतिक में सहभागिता सक्रिय रूप से रही है।

शोधार्थी ने पुनः पदाधिकारी सूचनादाताओं से जानने का प्रयास किया उन्होंने प्रत्याशी की चयन नीति में किस नीति को अपनाया है अग्र तालिका से स्पष्ट किया गया है-

तालिका -२

प्रत्याशी चयन में आपकी नीति का आधार

विवरण	संख्या	प्रतिशत
प्रत्याषी की चयन नीति	३८	२५.३३
विभाजन की नीति	९२	६१.३३
चुनाव टालने की नीति	०५	०३.३४
हिंसात्मक नीति	०६	०४.००
दल-बदल नीति	०९	०६.००
योग	१५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका के विवरण से स्पष्ट है कि चुनाव साम, दाम, दण्ड एवं भेद से लड़े जाते है २००० व २००५ के जिला पंचायत के निर्वाचनों में ६१.३३ प्रतिशत पदाधिकारी सूचनादाताओं ने स्वीकार किया कि उन्होने चुनाव में विभाजन की नीति को अपनाकर प्रत्याशी का चयन किया है साथ ही दूसरे नम्बर पर एसे सूचना दाता जोकि २५.०० प्रतिशत है ने प्रत्याशी की चयन नीति का सहारा लेकर प्रत्याशी का चयन किया है।

चूंकि पदाधिकारी सूचनादाताओं में महिलाओं ने भी आरक्षण के हिसाव से पद धारण किया है अतः पदाधिकारी सूचनादाताओं में उनका शामिल होना स्वाभाविक है।

पुनः शोधार्थी ने जनपद कन्नौज की जिला पंचायत में महिलाओं के आरक्षण के बारे में जानने के लिए सैम्पुल सर्वेक्षण में पदाधिकारी सूचनादातओं के साथ सामान्य सूचनादाताओं जिनकी संख्या ३०० निर्धारित की उनसे महिलाओं के आरक्षण पर उनकी राय जानने का प्रयास किया

तालिका -३

जिला पंचायत में महिलाओं का आरक्षण उचित है तथा जिले का विकास सम्भव है

विवरण	पदाधिकारी सूचनादाता		सामान्य सूचनादाता	
	संख्या	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**
आरक्षण उचित व विकास सम्भव है	९२	६१.३३	१८५	६१.६६
न तो आरक्षण उचित है न विकास सम्भव है	३७	२४.६७	९२	३०.६७
उदासीन सूचनादाता	२१	१४.००	२३	०७.६७
योग	**१५०**	**१००.००**	**३००**	**१००.००**

उपर्युक्त तालिका के विवरण से स्पष्ट है कि कि ६१.३३ प्रतिशत पदाधिकारी सूचनादाता तथा ६१.६६ प्रतिशत सामान्य सूचनादाताओं ने स्वीकार किया कि महिलाओं को आरक्षण मिलना उचित है तथा उनसे जिले का विकास भी सम्भव है वहीं २४.६७ प्रतिशत पदाधिकारी सूचनादाताओं ने तथा ३०.६७ प्रतिशत सामान्य सूचनादाताओ ने स्वीकार किया कि न तो महिलाओं को आरक्षण मिलना उचित है और ना हीं उनसे जिले का विकास सम्भव है इसके पीछे उनका तर्क था कि महिलाएं सदन में बहुत कम उपस्थित रहती है जबकि १४ पदाधिकारी सूचनादाता एवं ०७.६७ प्रतिशत सामान्य सूचनादाताओं ने प्रश्नों का उत्तर देना उचित नहीं समझा।

निष्कर्ष :- अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि जनपद कन्नौज के जिला पंचायत में महिलाओं की सहभागिता का उचित प्रदर्शन रहा और आने वाले चुनावों में भी महिलाएं अपना प्रदर्शन बेहतर रखेगी।

संदर्भ

१. मनुस्मृति ३.५६

१. उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत अधिनियम १९६१(१९६१ का अधिनियम संशोधित २०००) उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. ६ सन् १९९४ द्वारा संशोधित २०००, हिन्द पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद २०००. पृ० १५-१६

३. भारत का संविधान- सातवां सस्करण २०१२, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद पृ०- १८३

४. विमलेश कुमार तालिका १,२ व ३ ''पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण एवं उनकी सहभागिताः जनपद कन्नौज के विशेष संन्दर्भ में सन् २००० व २००५ का निर्वाचन'' पी.एचडी. उपाधि हेतु डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध २०१७ पर आधारित

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

भारतीय राजनीति में वंशवाद एवं जाति प्रधान राजनीति

❑ **डॉ. उपमा अग्रवाल**

भारत की लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव विभिन्न राजनीतिक दर्शनों, विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों अथवा राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं के आधार पर नहीं वरन जाति के आधार पर लड़े जाते हैं। भारतीय राजनीति में जाति के अत्यधिक महत्व के कारण एक बार लोकनायक जयप्रकाश नरायन ने कहा था कि भारत में जाति सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक दल है।[1] प्रस्तुत आलेख भारतीय राजनीति में वंशवाद एवं जाति प्रधान राजनीति के विश्लेषण पर आधारित है।

''भड़ाना के इंका में जाने से गुर्जर समीकरणों में उलटफेर''[2] ''सैनी बिरादरी की कांग्रेस समर्थन देने की चेतावनी''[3], ''अंतत जातिवाद का सहारा लेते हैं राजनेता'',[4] ''जाति पूछकर पार्टियों में राजस्थान में उम्मीदवार चुनें''[5], ''जाति पर टिकी हैं हर दल की राजनीति''[6] हिन्दी समाचार पत्रों की उपर्युक्त दी हुई कुछ कतरने जो जनभावना का प्रतिनिधित्व करती है, से लगता है जैसे कि भारत की लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव विभिन्न राजनीतिक दर्शनों, विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों अथवा राष्ट्रीय मुद्‌दों और समस्याओं के आधार पर नहीं वरन जाति के आधार पर लड़े जाते हैं। यह अपने में बहुत बड़ा सत्य भी है कि एक जाति या दो-तीन जातियों का गठजोड़ वह राजनीति रूप में अपना कोई भी नाम रख लें चुनाव जातियों के आधार पर ही होता है। सन्‌ १९६१ के चुनाव में फक्रूद्‌दीन अली अहमद की कांग्रेस, जगजीवन राम की कांग्रेस, इन्दिरागांधी की कांग्रेस के नारे का-सीधा अर्थ ब्राहमण, मुस्लिम और हरिजन गठजोड़ था। चौ० चरण सिंह की पिछड़ों की राजनीति का नारा जाट, यादव, कुर्मी का गठजोड़ था। मायावती की सारी राजनीति हरिजन वोटों के इर्द-गिर्द घूमती है। सन्‌ १९७१ व १९८० के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को विजय प्राप्त होने का कारण था कि श्रीमति इन्दिरा गांधी, हरिजनों, ब्राह्मणों और मुसलमानों का जातीय समर्थन जुटाने में सफल हो गयीं।

बिहार का अगड़े और पिछड़ों का संघर्ष, महाराष्ट्र का मराठों और ब्राहमणों का संघर्ष, आन्ध्र का रेडडी और कम्माओं का संघर्ष, कर्नाटक का लिंगायत और आकोलीगा का संघर्ष, तमिलनाडु का ब्राहमण और छोटी जातियों का संघर्ष, केरल की इज्वा और नायर तथा उत्तराखण्ड में ब्राहमण और क्षत्रिय में बंटी राजनीति इस देश की जीवन्तता है। चाहें साम्यवादी दल हो, सौ वर्ष पुरानी कांग्रेस हो या सद्यजन्मी सद्यमरी जनता पार्टी व जनता दल हो कोई भी राजनैतिक दल जातीय धुव्रीकरण की उपेक्षा करके इस देश में राजनीति नहीं कर सकता। डॉ० राम मनोहर लोहिया के अनुसार ''पश्चिम बंगाल का कामगार काश्तकारी पक्ष और रिपब्लिकन पार्टी, दक्षिण हिन्दुस्तान का द्रविण मुनेत्र कणगम और पूर्वी हिन्दुस्तान की झारखण्ड पार्टी के साथ-साथ गणतन्त्र और जनता पार्टियां न केवल क्षेत्रीय पार्टियां हैं बल्कि जातीय पार्टियां भी हैं।[7]

इसे देश की राजनीति चिन्तन से प्रभावित न होकर जातीय संगठनों की क्षमता से प्रभावित है। राजनीति पर यह जातीय वर्चस्व इस देश की सामाजिक संरचना, आचार व्यवहार, रीति-रिवाज के सम्बन्धों का परिणाम है। इस देश में कोई भी बच्चा जिस जाति में जन्मता है वही जाति उसका समाज होती है, उस जाति के संस्कार, रीति-रिवाज, व्यवसाय उसके जीवन को विकसित करते हैं, उसी जाति में उसका विवाह होता है। सम्बन्धों की प्रगाढ़ता उसकी जाति में अभिन्न रूप से जुड़ती है और यह जातीय बंधन जो इस देश की समाज की धुरी थे, लोकतंत्र में वे भले ही सामाजिक रूप से टूटते दृष्टिगोचर होते हों, परन्तु राजनीति में अधिक सुदृढ और दुराग्रही रूप से विकसित हुए हैं। दिनकर के शब्दों में ''जिस देश में मनुष्य मनुष्य न होकर ब्राहमण, कुर्मी राजपूत, कायस्थ, या कहार समझा जाता हो, जिस देश के लोग अपनी भक्ति व प्रेम पर पहला अधिकार अपनी जाति वालों का समझते हों, जिस देश की एक जाति के लोग दूरी जाति के विद्धान को मूर्ख, दानी और कृपण, बली को दुर्बल सचरित्र को दुष्चरित्र और अपने जाति के मूर्ख को विद्धान और पापी को पुण्यात्मा समझते हों, उस देश की स्वतंत्रता और समृद्धि के विषय में यही कहा जा सकता है..................'रहिबे को अचरज है, गई तो अचरज कौन?[8]

रूडोल्फ के अनुसार ''राजनीतिक लोकतंत्र के नये संदर्भ

❑ **कैनाल रोड, देहरादून**

में भारतीय समाज में जाति एक केन्द्र बिन्दु बन चुकी है चाहे उसके अपने आप को लोकतांत्रिक राजनीति के तरीकों और मूल्यों के अनुकूल बना लिया है। निःसन्देह यह मुख्य साधन बन चुकी है जिसमें भारतीय जनता लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से सम्बन्धित हो गयी हैं।''[६]

इस देश का हजारों वर्ष का ज्ञात और अज्ञात इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश की सम्पूर्ण अस्मिता को जातिवाद ने प्रभावित किया है। प्रारम्भ में ये जातियां निश्चित रूप से कर्मणा रही होंगी। जब तक का पौराणिक इतिहास उपलब्ध है, जातियों का जन्मना स्वरूप ही हमारे सम्मुख है। मनुस्मृति के अनुसार- ''चारों वर्णों में सवर्णा अक्षत्योनि विवाहिता पत्नियों में वर्णानुक्रम से अर्थात ब्राहमण से ब्राहमणों में उत्पन्न, क्षत्रिय से क्षत्रियों में उत्पन्न हुई संतानें उसी जाति की समझी जानी चाहियें''[१०]

तत्कालीन बुद्धिजीवियों ने बड़ी चतुराई से राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित किया, स्वयं को ब्राहमण और राजा को ब्राहमणों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय घोषित किया। महाभारत के शान्तिपर्व में पुरोहित के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि ''राष्ट्र का योग क्षेम राजा में निहित है पर राजा का अपना योग क्षेम तो पुरोहित में ही निहित है। राज्य के सम्मुख जो इष्ट भय उपस्थित होता है उसका निवारण राजा द्वारा किया जाता है, पर प्रजा के अदृश्य भय का शमन तो पुरोहित ही करता है। ब्राहमणों के पास तप और बल का मन्त्र होता है और क्षत्रियों के पास अस्त्र और बाहु का। ब्रहमा और क्षत्रिय ईश्वर द्वारा एक योनि बनाकर उत्पन्न किये गये हैं ''[११]

अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिये अपना जन्म ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रियों का जन्म ब्रह्म की भुजाओं से प्रतिपादित किया। ब्राहमण और क्षत्रियों के भरण-पोषण के लिये एक वर्ग की आवश्यकता अनुभव की गयी होगी, जिसका जन्म जंघाओं से बताते हैं और बुद्धि बल और बाहुबल दोनों से कृत निर्बल रहे होगे उन्हें उपरोक्त वर्गों की सेवा का भार सौंप कर शुद्रों की उत्पत्ति की गयी होगी जिसका जन्म ब्रहमा के चरणों से बताते हैं। मनुस्मृति के अनुसार-समस्त संसार की भूख और सुरक्षा व्यवस्था तथा समृद्धि के लिये महातेजस्वी परमात्मा ने मुख, बाहु, जंघा ओर पैर की तुलना में निर्मितों के अर्थात क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्गों के पृथक-पृथक कर्म बनाये गये''।[१२]

आर्यो द्वारा इस देश में रहने वाले अनार्यों पर विजयी होने पर उन्हें दास बनाया गया जिन्हें सेवा कार्य सौंपा गया उनसे शुद्रों की उत्पत्ति हुई। आज भी देश के अनेक भागों में शुद्रों के नाम के साथ दास शब्द जुड़ा हुआ है। इस प्रकार आरम्भ में श्रम विभाजन के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों का वर्गीकरण कर्मणा ही कहा जायेगा। सीमित अवसरों की स्थित में पुत्र ने पिता का कार्य संभाला। उसमें निपुणता प्राप्त की। राजा का बेटा राजा गुरू का बेटा गुरू, सारथी का बेटा सारथी बना और कर्मणा वर्गीकरण स्वभावतः ही परंपरागत रूप से जन्मना होता चला गया।

समाज के विस्तार के साथ-साथ उसका भारत के विभिन्न भागों में फैलाव हुआ, अलग-अलग राज्य व्यवस्थायें हुई। जातियां से उपजातियां निकलीं, कहीं कुल के आधार पर, कहीं स्थान के आधार पर। महाभारत काल तक क्षत्रियों के दो ही कुल सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी पुराणों में उदधृत है। किन्तु महाभारत काल में अनेक वंश देखने को मिलते हैं-जैसे यादव, कुकुर भोज अन्धक वृष्णि गणराज्य थे और उन्होंने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता और पृथक सत्ता को कायम रखते हुए अपने को एक संघ में संगठित रखा हुआ था। महाभारत के विजय पर्व में भद्र, रोहितक आग्रेय और मालक जनपद का उल्लेख है।

आज वर्तमान युग में ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्रों सभी जातियों की सैकड़ों हजारों शाखाएं और उपशाखाएं देश के अलग-अलग भागों में भिन्न-भिन्न नामों से जानी जाती हैं। जब हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करते हैं तो मात्र दो जातियों ब्राहमण और क्षत्रियों के ही इतिहास का वर्णन करते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से राजा क्षत्रिय होता था और प्रछन्न रूप से उसको संचालित करने वाली शक्ति ब्राहमणों के हाथ में होती थी।

हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार- ''सर्वप्रथम राजा की सत्ता पर ब्राहमणों का नियंत्रण होता था। पुनर्भिषेक विधि द्वारा सिंहासनारूढ़ राजा को भी धर्मसत्ता के निर्देश पर सिंहासन छोड़ना पड़ता था। प्राचीन काल में ब्राहमण संस्कृति एवं शिक्षा के अधिष्ठाता माने जाते थे''। ऐतरय ब्राहमण एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है कि जन्मेजय जैसे शक्तिशाली राजा को भी ब्राहमणों के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। ....ब्राह्मणों का निरादर करने वाला वृष्णि -वंश भी नष्ट हो गया था।[१३]

देश की शासन व्यवस्था भले ही मुसलमानों या अंग्रेजों के हाथ में चली गयी किन्तु इस देश के समाज पर ब्राहमणों का यथावत शासन रहा। इस ब्राहमणी व्यवस्था ने अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिये इस देश की जातियों के बीच ऊँच-नीच, छुआ-छूत, छोटे-बड़े की भावना को जीवित रखने

का अथक प्रयास किया। जिस किसी ने भी इसका विरोध किया उसको ही ब्राहमणों का क्रोध झेलना पड़ा। राजा राम मोहन राय को उन्होंने समाज बहिष्कृत किया स्वामी दयानन्द पर अनेक प्रकार के आरोप लगाये, स्वतंत्रता के बाद जातीय दुराग्रह सामाजिक धरातल पर टूटते हुए लगने लगे। स्वतंत्र भारत में दो प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से विकसित हुई। एक प्रवृति ब्राहमणवाद के आश्रित-ब्राहमण और क्षत्रियों का वर्चस्व बनाये रखने की प्रवृति, दूसरी ओर राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, काका कालेकर, राम मनोहर लोहिया जैसे ब्राहमण बाद विरोधी। एक यथा-स्थितिवादी प्रवृति तो दूसरी ओर आदिवासियों, गिरिजनों व हरिजनों में समानता का अधिकार पाने की लालसा। ये दो प्रवृत्तियां इस देश की राजनीति को जातिवाद के माध्यम से आज संचालित कर रही हैं राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में ''यह दुर्भाग्य का विषय है कि राष्ट्रीय संस्था तक जातिवाद के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकी यद्यपि महात्मा गाँधी तथा उनके कर्मठ अनुयायी सदा इसका विरोध करते रहे प्रान्तीय स्तर तक जातिवाद के प्रभावशाली रूप के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बिहार के १९३६-३७ ई० के चुनावों में कांग्रेस कमेटी ने जाति के आधार पर कुछ चुनाव क्षेत्रों के लिये अपने उम्मीदवारों का चयन किया और उन्हें विजय दिलाने के विचार से इस आधार पर प्रयास किये x; s"A[१४]

स्वतंत्र भारत में जातिवाद का एक दूसरा रूप भी उभरा जब सम्पूर्णानन्द उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री थे तब मंत्रीमण्डल में सर्वाधिक वैश्य थे और नौकर शाही में वैश्यों का वर्चस्व था। जब चौ० चरण सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे तो जाटों की भी यही स्थिति रही। वीर बहादुर सिंह के काल में ठाकुरों, मुलायम सिंह के व अखिलेख यादव के काल में यादव और कल्याण सिंह के काल में लोध राजपूत अधिकारियों का वर्चस्व इस प्रदेश पर रहा है। देवरिया के लोहियावादी सांसद मोहन सिंह जी ने अपने साक्षात्कार में कहा कि ''इस देश में जाति बड़ी संगठित हैं। सारी बातों के बावजूद बनिये गाँधी जी से इस लिये जुड़े क्योंकि गाँधी बनिये थे। कायस्थ बिहार में इस लिये कांग्रेस में चले गये क्योंकि राजेन्द्र प्रसाद कायस्थ थे। बहुत सारे ब्राहमण परिवार उत्तर प्रदेश में आजादी की लड़ाई में इस लिये चले गये क्योंकि नेहरू और पंत उनकी जाति के थे।''[१५]

इस दृष्टि से देखा जाये तो राष्ट्रीय चेतना भी जातिवाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रही। जातिवाद विकृत और सुसंस्कृत जैसा भी हो वह स्वरूप देश की राजनीति पर हावी है। इस देश में चुनावी नारे भले ही जनहितकारी मुद्दों पर बनाये जायें देश की समस्याओं, गरीबी हटाओं, स्वराज, जैसे नारे दिये जायें। पर चुनाव विभिन्न राजनैतिक दर्शनों, आर्थिक सामाजिक समयाओं पर नहीं जातियों के मध्य लड़े जाते हैं। राजनीति में स्थापना उस आदमी की होती है जो जाति का बड़ा आदमी होता है। बड़े आदमी को परिभाषित करते हुए लोहिया ने कहा है-''जो उच्च जाति का हो, पैसे वाला हो और अंग्रेजी पढ़ा लिखा है। इन तीन गुणों में से जिसके पास दो गुण हैं वह बड़ा आदमी है। ऊँची जाति का हो पैसे वाला हो वह बड़ा आदमी है, धनवान हो अंग्रेजी पर उसका अधिकार हो वह बड़ा आदमी है''[१६]

किन्तु राममनोहर लोहिया की परिभाषा में एक गुण और जुड़ गया है कि इन दो गुणों के साथ जिनके पास बाहुबल भी हो वह जातीय नेता होता है। चाहे देवीलाल हों, सूरज देव सिंह हों, रविन्द्र किशोर साही हों, हरिशंकर तिवारी हों। जब जाति का बड़ा व्यक्ति बड़ा नेता बनता है तो उसका बेटा भी बड़ा व्यक्ति बनता है। मोतीलाल नेहरू के हाथ से कांग्रेस की बागडोर, जवाहरलाल नेहरू के हाथ में आती है, देवी लाल के हाथ से ओमप्रकाश चौटाला के हाथ में आती है, मुलायम सिंह यादव से अखिलेश यादव के हाथों में, बीजू पटनायक से नवीन पटनायक के हाथ में, लालू यादव से तेजस्वी यादव के हाथ में। माधवराव सिंधिया से ज्योतिरादित्य के हाथ में, फारूख अब्दुला से उमर अब्दुल्ला के हाथ में मुफ्ती महोम्मद से महबूबा मुफ्ती के हाथ में और यही वंशवाद है जिसे जातिवाद ने सबसे ज्यादा मजबूत किया है।

भारतीय राजनीति पर जाति का प्रभाव

१. भारतीय राजनीति में जातीयता से सामाजिक, राजनैतिक प्रशासनिक सभी प्रकार के निर्णय प्रभावित होते है।
२. सभी राजनैतिक दल अपने प्रत्याशियों का मनोनयन जातीय और धार्मिक आधार पर करते हैं। राष्ट्रीय छवि वाले नेतागण भी ऐसे चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़ने का दुःसाहस नहीं कर सकते जहाँ उनका स्वजातीय बाहुल्य न हो।
३. चुनाव प्रचार जातीय भावनाओं का ध्यान में रखकर किया जाता है। राम मनोहर लोहिया के अनुसार ''व्यवहारिक तथा यथार्थपूर्ण दृष्टिकोण से प्रभावशाली नेतागण जातिवाद के आधार पर प्रचार व विजय के यंत्रों में विश्वास रखते है। चाहें वह बाहरी रूप से ऐसे आग्रह करें कि जाति या सम्प्रदायवादी भेदभाव का उन्मूलन होना चाहिए''।[१७]
४. जातिगत प्रतिनिधित्व के आधार पर मंत्री मण्डलों का गठन करने का प्रचलन भी भारतीय राजनीति का हिस्सा

है सन् १९६७ में उत्तर प्रदेश में बनी संविदा सरकार के एक घटक जनसंघ के पास क्योंकि कोई हरिजन विधायक नहीं था इसलिए गैर विधायक राम सिंह जाटव को मंत्री बनाया गया। सन् १९९१ में भारतीय जनता पार्टी के पास कोई मुस्लिम विधायक नहीं था तो गैर विधायक रिजवी को मंत्री बनाया गया। बिहार में जे०डी०यू० व बी०जे०पी० गठबंधन की सरकार की शपथग्रहण समारोह में आज तक चैनल ने सभी बनाये गये मंत्रियों की जाति व विधानसभा क्षेत्र भी बताये। इससे यही स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में कोई व्यक्ति कितना धनी व गुणवान हो क्यों न हो अपने धर्म व जाति को ठुकरा कर राजनीति में उन्नति नहीं कर सकता। यदि मनुष्य राजनीति के संसार में ऊपर चढ़ना चाहते हैं तो उन्हें अपने साथ अपनी जाति व धर्म को लेकर चलना ही चाहिए।

संदर्भ

१. उद्धृत राठौर, जगदीश सिंह, 'उभरता ग्रामीण नेतृत्व', प्रकाश बुक डिपो, बरेली, १९८२, पृ. ३१
२. अमर उजाला, १० नवम्बर १९८९
३. अमर उजाला, १९ अक्टूबर, १९८९
४. अमर उजाला, ०६ नवम्बर, १९८९
५. जनसत्ता उमई, ०३ मई १९९१
६. अमर उजाला, ०३ मई, १९९१
७. लोहिया राम मनोहर, 'जाति प्रथा', नवहिन्द प्रकाशन १९६४, पृ. ६२
८. दिनकर रामधारी सिंह, 'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय', उदियाचल, पटना प्रथम संस्करण मार्च १९५६, पृ. ३२२
९. रूडोल्फ एल०आई० एण्ड एस० एच० रूडोल्फ 'पॉलिटिकल रोल ऑफ कास्ट एलोसिएक्स पैसीजिक ऐफेयर्स' अंक-३३ १ मार्च १९६०
१०. मनु स्मृति श्लोक संख्या ।७।३। सप्तम अध्याय। अनुवादक सुरेन्द्र कुमार आर्श साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिलवा।
११. महाभारत शान्ति पर्व उद्धृत सत्यकेतु विद्यालंकार पुस्तक 'प्राचीन भारत की राजनीति और शासन संस्थायें' सरस्वती सदन नई दिल्ली, पृ. २३३
१२. मनु स्मृति श्लोक संख्या ।।८७।।५०। अनु० पूर्वोक्त, पृ० १३२।
१३. चौधरी हेमचन्द्र राय, 'प्राचीन भारत का इतिहास', किताब महल इलाहाबद १९२३, पृ. १५२
१४. राजेन्द्र प्रसाद, 'आटो बायोग्राफी' प्रभात प्रकाशन सन् २०१०, पृ. ८२
१५. सिंह मोहन, सांसद देवरिया के साक्षात्कार के अंश
१६. लोहिया राम मनोहर, 'कास्ट सिस्टम इन इण्डिया' नवहिन्द प्रकाशन १९६४, पृ. १७२
१७. वही.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उत्तर प्रदेश विधान सभा के गठन में महिलाओं की सहभागिता : 15 वीं विधान सभा के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

❑ **नीलम गोयल**

प्रस्तुत शोध पत्र से स्पष्ट होता है कि गांधी जी का सपना जिसमें कि वे महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाना चाहते थे ताकि वे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का पूरी तरह निर्वहन कर सके। उनकी इच्छा के अनुरूप संविधान की प्रस्तावना में समानता की बात को स्वीकार किया गया भारत के संवैधानिक इतिहास में सन् १६२६ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इस वर्ष स्त्रियें ने पहली बार विधान मण्डलों में प्रवेश किया। १६४६ में निर्मित विधान सभा में कई महिलाएं निर्वाचित होकर आयी और इसके उपरांत स्वतंत्र भारत में तो केन्द्र और राज्य विधान मण्डलों में निरन्तर महिलाओं की सक्रियता बढ़ रही है भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समस्त महिलाओं और पुरूषों को '' सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय देने से सम्बन्धित है तथा जिसका आधार संविधान के अध्याय -४ नीति निर्देशक तत्व के अनु० ४० की धारा से जुड़ा हुआ है जिस पर १५ वीं विधानसभा में महिलाओं की सहभागिता पर गंभीरता पूर्वक सरकार द्वारा कार्य किया गया है। और आने वाले समय में महिलाएं और प्रगति की ओर अग्रसर होगी।

मनुष्य जाति के सम्पूर्ण विकास का इतिहास एक प्रकार के पुरूष जाति के विकास का क्रम है अथवा पुरूष प्रेरित विकास क्रम है इस विकास क्रम में नारी की भूमिका नगण्य ही रही है क्योकि नारी को पुरूष से दुर्बल हीन ओर अक्षम माना जाता रहा है सदियों से चली आ रही परम्पराओं को तोड़ना कठिन अवश्य ही रहा है परन्तु यह असम्भव किसी रूप में नहीं है । विज्ञान की उन्नति का दोहरा प्रभाव हो रहा है एक तरफ वह रूढ़िगत भ्रमों के जाल को तोड़ रहा है अर्थात् अब यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है कि नारी और पुरूष के बीच क्षमता के आधार पर भेद भाव अवैज्ञानिक है । १६ वीं सदी में सुधार आन्दोलन के द्वारा भारतीय स्त्रियों की समस्या पर विचार और कार्य आरम्भ हुआ था जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन में नारी शक्ति ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

स्त्रियों की राजनीतिक जागरूकता से सम्बन्धित विचार : एतिहासिक रूप से कहा जा सकता है कि भारत में सम्पूर्ण महिला आंदोलन महात्मागॉधी की राष्ट्रीय राजनीति का एक हिस्सा था।[१]

भारतीय संविधान के अनु० १६८ में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्य विधान मण्डल होगा जो कुछ राज्यों में दो सदनों तथा कुछ राज्यों में एक सदन से मिलकर बनेगा। दोनों सदनों के नाम क्रमशः विधान सभा एवं विधान परिषद होंगे। विधान सभा जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों का सदन होगा।[२] विधान मण्डल लोकतंत्र का मन्दिर है। संविधान द्वारा भारत के प्रत्येक राज्य में विधान सभा की व्यवस्था की गयी है राज्य विधान मण्डल में राज्यपाल और एक या दो सदन सम्मलित हैं।[३] सुभाष कश्यप लिखते हैं कि राज्य विधानमण्डल का निम्न सदन विधान सभा है जिसके सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित सदस्य होते हैं। कुछ राज्यों विधान परिष नामक उच्च सदन भी है जिसमें नाम निर्देशित और परोक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं।[४]

पायली के शब्दों में ''विधान सभा की रचना लोक सभा के ढांचे पर है तथा विधान परिषद की राज्य सभा की समानता है।[५]

गॉधी जी की प्रेंरणा से न केवल उच्च वर्ग की बल्कि सामान्य वर्ग की महिलाओं ने विभिन्न राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लिया था । १६१७ में श्रीमती सरोजनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं के एक प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में पुरूषों के साथ समानता के आधार पर स्त्रियों को मताधिकार दिये जाने की मॉग प्रस्तुत की थी और १६२१ में भारत की शिक्षित गृहणियों को मताधिकर प्राप्त हो गया था।[६]

भारत के संवैधानिक इतिहास में सन् १६२६ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इस वर्ष स्त्रियें ने पहली बार विधान मण्डलों में प्रवेश किया। १६४६ में निर्मित विधान सभा में कई महिलाएं निर्वाचित होकर आयी और इसके उपरांत स्वतंत्र भारत में तो केन्द्र और राज्य विधान मण्डलों में निरन्तर महिलाओं की सक्रियता बढ़ रही है।

विधान सभा चुनाव के माध्यम से अथवा चुनाव अभियान

❑ शोध अध्येत्री, राजनीति विज्ञान, ए.के. कालेज शिकोहाबाद फिरोजाबाद (उ.प्र.)

में सक्रिय भाग लेकर किसी भी नागरिकों द्वारा निभाई गई भूमिका सामूहिक दृष्टिकोण से जितनी अधिक महत्वपूर्ण होती है वह आवश्यक नहीं कि वही सहभागिता की भूमिका उस नागरिक की व्यक्तिगत क्षमता का मूल्यांकन हो अर्थात् सामूहिक सहभागिता की प्रक्रिया को भी महिला विशेश निजी वास्तविक क्षमता के मापदण्ड की प्रक्रिया की कसौटी नहीं कही जा सकती। सारपूर्ण तथ्य केवल तभी सम्भव है जब हम उन महिलाओं की व्यक्तिगत क्षमता द्वारा की गयी राजनीतिक सहभागिता का क्रमबद्ध अध्ययन करें।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थिनी ने तीनों प्रक्रियाओं- समस्या , परिकल्पना ता अभिकल्प को ध्यान में रखकर अपना अध्ययन प्रारम्भ किया है सर्वप्रथम समस्या का चयन उत्तर प्रदेश की राजनीति में महिलाओं की सहभागिता १५ वीं विधानसभा के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह अध्ययन भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समस्त महिलाओं और पुरूषों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय देने से सम्बन्धित है तथा जिसका आधार संविधान के अध्याय -४ नीति निर्देशक तत्व के अनु० ४० की धारा से जुड़ा हुआ है जिस पर १५ वीं विधान सभा में महिलाओं की सहभागिता पर गंभीरतापूर्वक सरकार द्वारा कार्य किया गया है।

शोधार्थिनी द्वारा प्रस्तुत अध्ययन हेतु सविचारपूर्ण निदर्शन विधि से ३०० महिलाओं को चुना गया जो राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त व्यक्तिगत भागीदारी रखती हैं का तथ्यपरक अध्ययन किया गया है। शोध साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त आंकड़ों पर विश्लेषित किया गया है।

सर्वेक्षण के दौरान महिला भागीदारी से व्यक्तिगत भागीदारी की सही क्षमता का आकलन करने के लिए कुछ निश्चित प्रश्न समूहों को निर्धारित किया गया है तथा निष्पक्ष सही उत्तर की प्राप्ति के उद्देश्य से उन्हें महिला सहभागिता के विषय में पूछा गया है। जिनको विभिन्न तालिकाओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

तालिका -१

आप किसी संगठन की सक्रिय सदस्य रही हैं-

विवरण	संख्या	प्रतिशत
सक्रिय सदस्य हैं	८५	२८.३४
सक्रिय सदस्य नहीं है।	२००	६६.६६
तटस्थ	१५	०५.००
योग ३००	१००.००	

तलिका १ से स्पष्ट होता है कि २८.३४ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि ये वे संगठन की सक्रिय सदस्य है। ६६.६६ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि वे किसी संगठन की सदस्य नहीं हैं । इसके पश्चात ०५ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने तटस्थ रहकर अपना मत व्यक्त किया है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रतिचयित अधिकांश महिलाएं किसी संगठन की सक्रिय सदस्य नहीं हैं।

पुनः प्रतिचयित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया कि ये संगठन की सदस्य बनने के बाद क्या अनुभव करती हैं। इसी संदर्भ में जो तथ्य प्राप्त हुए हैं उन्हें संग्रहीत कर तालिका २ में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका - २

संगठन के सदस्य बनने पर आपका अनुभव-

विवरण	संख्या	प्रतिशत
अच्छा अनुभव करती हैं।	८५	२८.३४
अच्छा अनुभव नहीं करती हैं।	२००	६६.६६
तटस्थ	१५	०५.००
योग	३००	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि २८.३४ प्रतिशत सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि वे संगठन की सदस्य बनने पर अच्छा अनुभव करती है। तथा ६६.६६ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया कि वे संगठन का सदस्य बनने पर अच्छा अनुभव नहीं करती तथा ०५ प्रतिशत महिलाओं ने तटस्थ रहकर अपना मत व्यक्त किया है।

शोधार्थिनी ने अंततः २००७ के विधानसभा चुनावों में महिलाओं के संगठन से यह जानने का प्रयाास किया कि क्या विधानसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश की सभी विधान सभा क्षेत्रों में महिला संगठनों द्वारा सहयोग किया गया । इस सम्बन्ध में जो भी तथ्य उभर कर सामने आये हैं उन्हें अग्रतालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका - ३

२००७ के विधान सभा चुनाव में महिला संगठनों द्वारा सहयोग का विवरण-

विवरण	संख्या	प्रतिशत
सहयोग किया है	८४	२८.००
सहयोग नहीं किया है।	२०५	६८.३३
तटस्थ	११	०३.६७
योग ३००	१००.००	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि २८ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि २००७ के विधान सभा चुनावों में महिला संगठन द्वारा सहयोग किया गया है। वहीं

६८.३३ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि २००७ के विधान सभा चुनावों में महिला संगठनों द्वारा सहयोग नहीं किया गया। इसके पश्चात ०३.६७ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने अपना मत तटस्थ रहकर व्यक्त किया है ।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि प्रतिचयित अधिकांश महिला सूचनादाताओं ने संगठनों द्वारा २००७ के विधान सभा चुनावों में सहयोग न करने की बात को स्वीकार किया है।

शोधार्थिनी ने प्रतिचयित महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया है कि २००७ में विधान सभा चुनावों में महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिला है इस सम्बन्ध में जो तथ्य उभर कर सामने आये हैं उन्हें एकत्र कर तालिका संख्या ४ में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका - ४

२००७ के विधान सभा चुनाव में महिलाओं को संविधान में व्यवस्था के अनुरूप प्रतिनिधित्व -

विवरण	संख्या	प्रतिशत
संविधानानुसार प्रतिनिधित्व मिला	७७	२५.६७
संविधानुसार प्रतिनिधित्व नहीं मिला	२१२	७०.६६
तटस्थ	११	०३.६७
योग	३००	१००.००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेशण से स्पष्ट होता है कि २५.६७ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि उत्तर प्रदेश में हुए विधान सभा चुनाव में महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिला है। इसके बाद ७०.६६ प्रतिशत महिला सूचनादाताओं ने स्वीकार किया है कि महिलाओं को प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। ३.६७ प्रतिशत एसी महिला सूचनादाता पायीं गयी जिन्होंने तटस्थ रहकर अपना मत व्यक्त किया है।

निष्कर्ष : सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि प्रतिचयित अधिकांश महिलाओं का मानना है कि २००७ के विधान सभा चुनावों में उत्तर प्रदेश में महिलाओं को प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

महिलाओं की शुद्ध राजनीतिक सहभागिता के सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुचती है कि २००७ में सभी दलों द्वारा विधान सभा चुनावों में महिलाओं को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया किन्तु महिलाओं की संख्या उम्मीदवारी व प्रतिनिधित्व आशानुरूप नहीं रहा किन्तु फिर भी भविष्य में महिलाएं राजनीति में सहभागिता प्रस्तुत कर नये आयाम स्थापित करेंगी।

सन्दर्भ

१. Vijay Agnew, 'Elite woman in Indian politics',Vikas publishing house New Delhi 1979 .p.p- 34 A

२. निवार्थी वैंकट सुब्बैरूया, 'आंध्र प्रदेश विधानमण्डल', शकधर, संविधान और संसद १६७६, पृ. ३८ ।

३. भारत का संविधान -अनु० -१६८। सातवां संस्करण- २०१२, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद पृ. ७८।

४. कश्यप सुभाष, 'संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष' मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ- १६७३ पृ. ३१।

५. पायली भारतीय संविधान १६७५ पृ. २३०

६. भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति, राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट का सार पृ. ११४

७. नीलम गोयल, तालिका -१, २, ३ एवं ४ ''उत्तर प्रदेश की राजनीति में महिलओं की सहभागिता- १५वीं विधानसभा के परिप्रेक्ष्य में'' अप्रकाशित शोध प्रबंध, बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, १६१५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जातकों में वर्णित व्यापारिक संगठन : एक ऐतिहासिक विवेचन

❑ डा. श्याम सुन्दर शर्मा

जातक कथा साहित्य सर्वप्रसिद्ध है। बुद्धवचन के भागों में से जातक एक हैं जिनके दृश्य सॉची, भरहुत आदि के स्तूपों (पिरामिडों) की वेष्ठनी पर खुदे मिलते हैं। जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। जातक ६ खण्डों में विभक्त हैं जिसमें व्यापारिक संगठन को भिम्न प्रकार परिभाषित किया गया है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत जातकों में वर्णित व्यापारिक संगठनों को प्रकाशित किया गया है।

जातक कथा साहित्य सर्वप्रसिद्ध है। बुद्धवचन के भागों में से जातक एक हैं जिनके दृश्य सॉची, भरहुत आदि के स्तूपों (पिरामिडों) की वेष्ठनी पर खुदे मिलते है। जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। जातक ६ खण्डों में विभक्त हैं जिसमें व्यापरिक संगठन को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है।

सामान्यतया लोगों के बीच होने वाले वस्तुओं और माल के विनिमय को व्यापार कहते हैं जो लाभ के उद्‌देश्य से किया जाता है। यदि विस्तृत अर्थ में देखा जाय तो व्यापार के अन्तर्गत उन सभी आर्थिक क्रियाओं का समावेश हो जाता है जिनका सम्बन्ध उत्पादित वस्तुओं के वितरण से होता है वस्तुओं का वितरण इसलिए किया जाता है कि उपभोग के लिए इनकी मांग की जाती है। इसी प्रकार संगठन को परिभाषित किया है। जब कभी दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी उपक्रम में साथ -साथ कार्य करते हैं तो इन व्यक्तियों के मध्य कार्य को बाँटने की आवश्यकता होती है, इसी का नाम संगठन है और यहीं से संगठन की क्रिया शुभारम्भ होती है। अंग्रेजी भाषा के शब्द organisation की उत्पत्ति organism से हुई हैं जिसका आशय देह के ऐसे टुकड़ों से है जो परस्पर इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक पूर्ण इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उर्विक के अनुसारः किसी कार्य को सम्पादित करने के लिए भिन्न-भिन्न क्रियाओं को किया जाये इसका निर्धारण करना एवं व्यक्तियों के बीच उन क्रियाओं के वितरण की व्यवस्था करना ही संगठन है।

शिल्पियों की भाँति वाणिज्यों के भी अपने संगठन थे तथा उनके संगठन के प्रधान को श्रेष्ठी अथवा सेट्ठी[1] कहते थे। यद्यपि आर. के मुखर्जी द्वारा संकेत किया गया हैं कि कभी-कभी विभिन्न प्रकार की श्रेणियों का नेतृत्व अकेले ज्येट्ठक द्वारा होता था।[2] लेकिन प्राचीन भारत में ऐसा चलन बहुत कम था। छठी शताब्दी ई.पू. में उद्योगों के विकास शहरों के वाणिज्यिक केन्द्र स्थापित होने, और व्यापार में महत्वपूर्ण वृद्धि होने से, कुशल व्यापार निष्पादन एवं आसान वित्त व्यवस्था की आवश्यकता हुई तथा एक ऐसा वर्ग उदित हुआ जिसे अधिकांश लोग सेट्ठि या नगर सेट्ठी के नाम से जानते थे। ये लोग खजांची बैंकर नागरिक, सम्पन्न व्यापारी और श्रेणियों के प्रमुख अध्यक्ष होते थे।[3] सेट्ठी उत्पादन नहीं करते थे बल्कि उत्पादकों को वित्त प्रदान करते है। ये उत्पादकों को नियन्त्रित करते थे और थोक व्यापर को बड़े बाजार[4], जैसे तक्षशिला, साकेत, श्रावस्ती, मिथिला, राजगृह वाराणसी आदि तक ले जाते थे। जहाँ तक व्यवसायिक बातों का सम्बन्ध हैं सेट्ठी अपने जनपद की वस्तुओं के थोक व्यापारी थे। वे काफिलों में बेचते थे। ऐसे सेट्ठी जिनके संशाधन बहुत कम था, महाविभैसेट्ठी' कहलाते थे[5] इसके अतिरिक्त ऐसे सेट्ठी जिनकी परम्परागत रूप से प्राप्त सम्पति संख्या में ४० से ८० कोटि होती थी अष्टकोटिविभव सेट्ठी कहलाते थे। ये अपने अभिकर्ताओं (कमान्तिक कमनुस्सा) दासों और नौकरों की सहायता से बड़ी यात्रा में लेन-देन का कार्य करते थे।

हमें यह उल्लेख नहीं मिलता है कि सेट्ठी का निर्वाचन व्यापारिक समुदाय के सदस्यों द्वारा ही होता था[6] सम्पति का लेखा रखने के लिए राजा द्वारा एक राज्याधिकारी नियुक्त होता था। एक बार सेट्ठी अपने पद पर नियुक्त हो जाता था तो वह जीवन पर्यन्त उस पद पर कार्य करता था और उसके मरणोपरान्त उसके पुत्र अथवा उसके उत्तराधिकारी को वह पद मिलता था। लेकिन जब वंशगत व्यापार टूट जाता था तो सेट्ठी का पद नगर के किसी दूसरे परिवार के पास चला जाता था[7] फिर भी ऐसी दशा में सम्भवतः राजा की अनुमति आवश्यक थी। इसकी पुष्टि के लिए जातक में विख्यात व्यापारी के पुत्र के वारे में उल्लेख मिलता है जिसने अपने पिता का व्यवसाय अपनाया और उसके पिता ने उसे व्यवसाय के

❑ अध्यक्ष : इतिहास विभाग, वृजराज सिंह (पी.जी.) कॉलेज, कुबेरपुर हाथवन्त फिरोजाबाद (उ.प्र.)

गुप्त भेदों और नैतिकताओं को सिखाया था।[८]

अंगुत्तर निकाय में मिलता है जहाँ कौशल के प्रसेन्नजित मगधके राजा विम्वसार से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें वे अपने यहाँ से एक सेट्ठी भेज दें जिसकी नियुक्त वे साकेत नगर के सेट्ठी के रूप में करेंगे तथा विम्बसार ने अंग के भडिड्यन के धनंजय को कौशल नरेश के पास भेजा था।[९] सेट्टी के पास एक कार्यालय (थाना) होता था। जहाँ पर वह व्यवसाय को दोहरे रूप में राज्याधिकारी के रूप में वह राजा के पास दिन में तीन बार जाता था।[१०] राजा की आज्ञा से रियायती कीमत आदि पर वस्तुओं की खरीद कार्य करता था। व्यापारी के रूप में वह शहर में क्रय -विक्रय करता था। विभिन्न वस्तुओं के बेचने स्वर्ण और सिक्कों के रूप में अधिक मौद्रिक संम्पति एवं बहुत अधिक मात्रा में अन्न भण्डार अपने पास रखता था। स्थानीय व्यापार और उद्योग को तो वह वित्त प्रदान करता ही था।[११]

कभी-कभी नगर सेट्ठी अथवा महासेट्ठी अपने अधीनस्थ सेट्ठियों जैसे कुलसेट्ठी और अनुसेट्ठी की सहायता से अपने व्यवसाय को संचालित करते थे। कभी-कभी महासेट्ठी पाँच सौ से एक हजार सेट्ठियों तक का संचालन करते थे। सेट्ठी व्यापारिक संघ का प्रधान होता था। जैसे- सावत्थी के महासेट्ठी अनाथपिण्डक व्यापारी वर्ग के मुखिया थे। जिस समय अनाथपिण्डक ने सावत्थी का जेतवन बुद्ध को दान दिया था उस समय वहाँ पर ५०० और भी सेट्ठी उपस्थित थे। अनाथपिण्डक एक बड़े व्यापारी समुदाय के मुखिया थे और उनके नीचे सेट्ठी ही नहीं बल्कि अनुसेट्ठी भी कार्य करते थे।[१२] राजा यह पद या तो किसी धनवान को देता था या फिर किसी को यह पद देना उसकी इच्छा पर निर्भर था। जातकों में श्रेष्ठी को राज्य पूजित नगर जनपद पूजित कहा गया है। सेट्ठी सम्मानित होने के साथ ही साथ बहुत धनवान भी होता था।

भिन्न-भिन्न वस्तुओं के व्यापारी भी अपना समयानुकूल संगठन बना लेते थे। जैसा कि जातकों में देखते हैं कि विभिन्न देशों से आये व्यापरियों में संघ बना और एक को प्रधान बनाकर धन अर्जित करने को प्रस्थान किया[१३] मिसेज राईस डेविडस के अनुसार यद्यपि यह कहा जा सकता है। कि थलमार्ग से यात्रा करनेवाले व्यापारियों में सात्थवाह शब्द से कुछ संगठन अथवा संघ का बोध होता है।[१४] सात्थवाह का पद वंशानुगत होता था। तथा वह व्यापारियों की सुविधाओं आदि का प्रबन्ध करता था। तकनीकी दृष्टि से देखने पर सात्थवाह" (सार्थ-प्रथा)[१५] प्राचीन भारतीय आर्थिक श्रेणियों की श्रृंखला में ही आती हैं। सात्थ से अभिप्राय समान पूँजी लगाने वाले ऐसे सचल व्यापारियों से था जो सुरक्षा की दृष्टि से संगठित होकर बाहरी मण्डियों में व्यापार करने के लिए जाते थे। सार्थे के सचल संगठन का नेतृत्व उनके एक नेता द्वारा होता था। नेता को सार्थवाह कहते थे सार्थ सदस्यों के लिए आज्ञापालन और नेता के प्रति विश्वास अनिवार्य शर्त थी। सार्थ सदस्य किस स्थान पर रूकेंगे? कैसा पानी पीयेंगे? कैसे खतरनाक स्थानों पर सावधानी बरतेंगे? इन सब बातों के लिए वे सार्थ- सदस्य सार्थवाह के निर्देशों पर निर्भर करते थे। जब कभी अकेला सेट्ठी इतनी सामर्थ्य रखता था कि वह अकेले ही सार्थ का संगठन कर सकता था तो वह अकेला ही संगठन बनाकर व्यापार के लिए निकल पडता था और सार्थ के दूसरे सदस्य उसके कर्मचारी होते थे। लेकिन अधिकांशतः कुछ व्यापारी दूसरे व्यापारियों को आमंत्रित कर संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी बना लेते थे। ऐसे अवसरों पर व्यापारियों को दूर देश में व्यापार करने के लिए प्रायः ढोलपीट कर और घंटियाँ बजाकर आमंत्रित करने का चलन था। व्यापारी लोग कुछ दिशा में आमंत्रित व्यापारियों को मिलने वाले लाभों का ज्ञापन भी करते थे। कभी-कभी वे आमंत्रित व्यापारियों को मुफ्त में खाना पीना कपड़ा दवाऐं और बर्तन आदि देने का वादा करते थे।

कभी यदि एक ही काफिले में इतनी अधिक चौपहिया गाड़ियाँ हो जाती थीं कि इन सब को नियन्त्रित करना सम्भव नही हो पाता था तो ऐसे में काफिलों दो भागों में बाँट दिया जाता था और दोनों काफिलों के लिए अलग-अलग सार्थवाह[१६] रखे जाते थे। इस कार्य से व्यापारियों को खाने पीने सहित दूसरे अन्य आवश्यक कार्यो में सुविधा हो जाती थी। वास्तव में प्राचीन भारत में काफिले और उनके सदस्य व्यापारियों में अनिवार्य रूप से कोई समझौता नही होता था पर निश्चय ही जहाज के चालक को काफिले के सभी सदस्यों की सम्मिलित सहमति से निर्दिष्ट किया जाता था। यद्यपि संगठित सार्थ सदस्यों के मध्य आपस में कोई विधि सम्मत वचनबद्धता नहीं होती थी।[१७] किसी भी सदस्य का अपने दल से सम्बन्ध विच्छेद करना बहुत बुरा माना जाता था।

काफिले वाले व्यापारियें का संगठन होता था और इसके मुखिया को सार्थवाह कहते थे और उसका कर्तव्य व्यापारियों की हर प्रकार से रक्षा करना था जैसा कि इसने गामणीचण्ड जातक में लालची बनियों को खतरों से आगाह किया या एक दूसरे स्थान पर काफिले के जंगल में प्रवेश करते समय जंगल के खतरों से सभी को आगाह किया और कहा कि जंगल के अमुक वृक्ष के फल को न खाऐं क्यों कि वह विषफल होता

है और जिन्होंने वह खा लिया था उनको उल्टियाँ कराकर चलुमधु पिलाकर अच्छाकर दिया।[१८] इस प्रकार सार्थ की आज्ञा का पालन किया जाता था। परन्तु कभी-कभी उसकी आज्ञा का उल्लंघन भी कर दिया जाता था जैसा कि ग्रामीण चण्ड जातक में लालची बनियों ने किया और सभी विनाश को प्राप्त हुऐ। दूसरे जातक में भी इस आज्ञा के उल्लंघन का विवरण है। सार्थवाह के साथ कुछ अन्य भी पदाधिकारी होते थे जैसे थल नियामक इत्यादि।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। कि प्राचीन भारत के सार्थ कई प्रकार के होते थे- प्रथम कुछ सार्थ वैयक्तिक व्यापारियों से मिलकर बने होते थे जिनमें सार्थ के नेता व सदस्यों के मध्य मालिक और नौकर सा सम्बन्ध होता था। ऐसे सार्थ वड़े व्यापारियों जैसे श्रावस्ती के अनाथपिण्डक के द्वारा संगठित और वित्त पोषित होते थे। द्वितीय सार्थ सदस्यता एक से अधिक व्यापारियों के द्वारा गृहण की जाती थी। ऐसे व्यापारिक सदस्य एक सी संविदात्मक वैधानिक क्षमता रखते थे और सभी सदस्यों को उनके द्वारा लगाई गई पूँजी के अनुपात में व्यवसाय का लाभ मिलता था।[१९] प्रायः उत्तरापथ के घोड़े के व्यापारी ऐसे संगठन बनाते थे। तृतीय, सार्थ के संगठन कमजोर होते थे यहाँ तक कि इस संगठन में समान दूरी तक जाने वाले गैर व्यवसायी लोग भी सम्मिलित होते थे। ऐसे संगठन का मुख्य उद्देश्य मात्र सम्मिलित संरक्षण ही होता था। अतएव जब सार्थ अपने अभीष्ट स्थान पर इस कुल सेट्ठी द्वारा सहयोग प्राप्त करते थे तीसरे प्रकार के सार्थ के अन्तर्गत आते थे।

सन्दर्भ

१. कौसल्यायन मदन्त आनन्द, 'जातक खण्ड-३', हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयोग, १६७१ पृ. ३४६।
२. मुखर्जी राधा कुमुद, 'लोकल गंवरमेंट इन ऐन्शियेन्ट इण्डिया', पृ. ७६।
३. पालि इंग्लिश डिकशनरी, पृ. २-३
४. जातक खण्ड ४, सम्बत् २००८, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रकाशन पृ. ४३, ३३१, ३४४
५. जातक खण्ड १, पृ. १४५ जातक खण्ड २, पृ. २८७ जातक खण्ड ३ पृ. ५६
६. आर. फिकः 'सोशल आर्गेनाइजेशन इन नार्थ ईस्टर्न इण्डिया इन बुद्धिस्ट टाइमम्स', कलकत्ता विश्वविद्यालय पृ. २५६
७. धम्मपद अष्ठकथा, खण्ड २, पृ. २५, मललेसकर, जे.पी. डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स दी जिल्दे लन्दन १६३६ पृ. २७०
८. जतक खण्ड ४, सम्बत् २००८, पूर्वोक्त, पृ. २५६
६. अंगुत्तर निकायः रोमन संस्करण रिचार्ड मारिस तथा एडमंड हार्डी १८८५-१६० पृ. १७२
१०. जातक खण्ड ३, सन् १६७१, पूर्वोक्त, पृ. ४७५
११. जातक खण्ड ४, सम्बत २००८, पूर्वोक्त, पृ. ३८
१२. जातक खण्ड ४, सम्बत २००८, पूर्वोक्त, पृ. ३८४
१३. जातक खण्ड ४, सम्बत २००८, पूर्वोक्त, पृ. ४६३
१४. ई.जे. रैम्सन द्वारा सम्पादित 'कैम्ब्रिज हिस्ट्रीऑफ इण्डिया', प्रथम खण्ड दिल्ली १६६२ पृ. १८८
१५. जातक खण्ड १ सम्वत् २०१३ पूर्वोक्त प्रकाशन पृ. ६८, खण्ड २ पृ. ६४ २३६
१६. दीर्घ निकाय १३ २३ जातक खण्ड १, सम्बत् २०१३ पूर्वोक्त प्रकाशन पृ. ६३
१७. जातक खण्ड १, पृ.१, ६८, खण्ड २, पृ. २३६,
१८. जातक खण्ड १, सम्बत् २०१३, पूर्वोक्त, पृ. ५३
१६. जातक खण्ड २, सम्वत् २०१४, पूर्वोक्त, पृ. ३१, २८७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

जैन दर्शन और आधुनिक भारतीय जनजीवन : मुनि पुलक सागर जी के साहित्य के सन्दर्भ में

❑ डा. नीति गोयल

इस भोग प्रधान युग में व्यक्ति की आकांक्षाओं की समाप्ति की कोई सीमा नहीं रही है। जिस वसुन्धरा पर कभी प्रेम, त्याग, दान, क्षमा आदि पुण्य कृत्यों के विशाल वृक्ष हुआ करते थे आज वहीं झूठ, दुराचार, अत्याचार, आतंक की आँधी, व्यसन के सोपान-सुरा आदि विलासिताओं ने विशाल वृक्षों की जड़ों को खोखला कर अपने बीजों का रोपण प्रारम्भ कर दिया है। ऐसे में संतों ने जनता की आर्त्तवाणी को ईश्वरीय करूणा के लेप से शीतलता प्रदान की है। जैन मुनि पुलक सागर जी महाराज ने अध्यात्म के पथ पर अग्रसर किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुनि श्री के जन कल्याणकारी तत्वों का वर्णन किया गया है जिनके द्वारा अध्यात्म आलौकिक हुआ है।

जब मनुष्य पृथ्वी पर आता है तब वह सभी सांसारिक बंधनों से मुक्त, निर्विकार, प्रकृति के वेश को ग्रहण किये होता है, परन्तु जन्म के कुछ समय उपरान्त ही वह धर्म, जाति, सगे-सम्बन्धी आदि सांसारिक मोह के चक्रव्यूह में फंसता चला जाता है जिससे वह सम्पूर्ण जीवन मुक्त तो हो नहीं पाता अपितु सुखी जीवन की चेष्टाओं के लिए संघर्षों से भी घिरा रहता है।

इस संसार के सच्चे हित-चिन्तकों ने तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर पर आने वाले इस बाह्य और अंतर्विरोधो से उपजे संकटों को पहचाना है। धर्म के क्षेत्र में कितने ही मत-मतान्तर, वाद, सम्प्रदाय आदि उठ खड़े हुए हैं, जिस कारण युवा पीढ़ी विभ्रम की अवस्था में अपने कर्तव्यों से विमूढ़ हो चुकी है। सामाजिक विषमतायें तरह-तरह से आम-जन का शोषण कर रही हैं। जाति-पाति का खण्डन, ब्राह्मणवाद से दो-दो हाथ आदि कुछ ऐसे ही वचन संतों की वाणी से सुने जाते हैं।

यद्यपि प्रकृति प्रदत्त वेष ही सत्य है परन्तु सत्य को आवरण करके इस संसार में मनुष्य उसी प्रकार भटकता रहता है जिस प्रकार कस्तूरी मृग उस सुगन्ध के पीछे सम्पूर्ण जीवन भटकता रहता है जो स्वयं उसी में विद्यमान रहती है। इस प्रकृति प्रदत्त वेष अर्थात दिगम्बरता को स्वीकार करने वाला ही सत्य का अन्वेषी होता है। वर्तमान युग में अपनी संस्कृति की आत्म संरक्षणता के लिए जैन संत मुनि श्री पुलक सागर जी महाराज का नाम अग्रणीय है।

मुनि श्री का विचार आते ही भोली-भाली निश्चल, निर्दोष, नक्षत्रों की भांति प्रकाशित, चन्द्र जैसी शीतलता, मंगलकारी छवि नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाती है। वैसे तो मुनि श्री के व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बांधना उचित प्रतीत नहीं होता है। मुनि श्री के विषय में जितने भी विचार आए उनके समक्ष तुच्छ प्रतीत होते हैं। कठोर अभिधार महाव्रतों का पालन करते हुए भी मुनि श्री टूटते परिवार, विध्वंस होते हुए जीवन मूल्यों को धर्म और अध्यात्म का आंचल देकर उन्हें राष्ट्रीय चेतना के साथ ज्वलंत, जीवन्त और जागृत कर रहे हैं। वे एक पथ के पथिक हो कर उस राजमार्ग पर प्रतिष्ठित हैं जहां से सारे पथ और पथिक अपनी राहों का अन्वेषण करते हैं। मुनि श्री असम्प्रदायिक मानव मूल्यों पर आधारित वैचारिक क्रान्ति के माध्यम से जन-जन की आस्था को आंदोलित कर राष्ट्र की मूर्छित काया में चेतना का संचार करने में सफल रहे हैं। धर्म की सीमित रेखाओं को तोड़कर प्रत्येक धर्म, प्रत्येक जन के सहयोग की भावनाओं के साथ मुनि श्री हैं।

मुनि श्री का जन्म '११ मई १९७०' को हुआ था। उनकी माता का नाम गोपीबाई तथा पिता का नाम भीकमचन्द्र है। मुनि श्री का जन्म स्थान छत्तीसगढ़ प्रान्त का घमतरी ग्राम है। उनके बचपन का नाम 'पारस' रखा गया। मात्र २३ वर्ष की अवस्था में ही मुनि श्री सांसारिक बंधनों को त्यागकर धर्म तथा जनसेवा की ओर अग्रसर हो गए। मुनि श्री की मुनि दीक्षा आचार्य श्री पुष्पदत्त जी द्वारा ११ दिसम्बर १९९५ को कानपुर में सम्पन्न हुई। जैन धर्म में जन्म लेने से ही कोई जैन नहीं हो जाता है अपितु जैन बनने व जैन होने में अंतर है। धर्म का जन्म से, सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं बल्कि साधना से अटूट सम्बन्ध है। मानव समाज को अंधकार, आडम्बरों, विलासिताओं, व्यसनों आदि कुरीतियों से बाहर निकालना ही धर्म का कार्य होता है। साथ ही धर्म की परिधि को इतना व्यापक बना दिया कि उसमे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि सभी एकजुट प्रतीत होते हैं। मुनि श्री ने मानवता को सर्वोपरी माना है। मुनि श्री जैनों के ही नहीं अपितु

❑ जसपुर, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)

जन-जन के हैं। अहिंसा, सत्संग, सत्य, लोभहीनता आदि गुणों को अनिवार्य मानते हुए मुनि श्री ने बाधक तत्वों पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। व्यसनों और सांसारिक भोगों में लिप्त व्यक्ति चाहे कितना ही तीर्थ-व्रत करे उसका उद्धार असम्भव है। अभिप्राय यह है कि आडम्बरों के पालन की तुलना में मनसा, वाचा, कर्मणा, शुचिता कायम रखने पर बल अधिक दिया है।

आज की युवा पीढ़ी विलासिताओं के जाल में उलझकर अपने पथ से भटकती जा रही है। यद्यपि युवा पीढ़ी भविष्य की नींव है और वह ही मद्यपान, मांस भक्षण, कुकर्म आदि विलास के साधनों के सहारे चलती रही तब समाज और राष्ट्र के पतन में देर नहीं होगी। विलासिताओं के साधन तो धीरे-धीरे की जाने वाली आत्महत्या है। जीवन स्तर को उच्च स्तर पर ले जाने में सुरा को सहयोगी समझा जाता है, जिस कारण युवा पीढ़ी जिनालय व शिवालय को छोड़कर मदिरालय में जीवन व्यतीत कर रही है। भारतीय संस्कृति के स्थान पर पाश्चात्य संस्कृति अपने पैर फैला रही है। जहाँ आदिकाल से चली आ रही रूढ़ियां चल रही हैं, वहीं संस्कृति का भी हनन होने लगा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का दुश्मन बन बैठा है। प्रत्येक मनुष्य सांसारिक भोगों की चाह में जन विरोधी प्रवृत्तियों में लिप्त होता जा रहा है। "पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण ने गुरू भारत की देवतुल्य संस्कृति, धार्मिक और पारस्परिक प्रेम की चिन्तन धारा को इतना विकृत कर दिया है कि पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्थायें चरमरा रही हैं।"

प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक जितने भी महापुरूष हुए हैं उन सभी की समाज को चेतना देने की प्रवृत्ति रही है, यदि समाज में संत ही न हों तब यह समाज, समाज न रह कर पशुशाला से अधिक न होगा। आज प्रत्येक मनुष्य के अंतर्मन को राम, महावीर, कृष्ण आदि बनना होगा तभी यह देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। "आज आवश्यकता सतगुरू के दशरथ की है जो महावीर के उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य रूपी दस रथों पर सवार होकर राम जैसे सत्य को प्रसून कर सके। आवश्यकता है ऐसे राम की जो कुमति की सूपर्नखाओं को नीचा दिखा सके। अंहकार के रावण को समाप्त कर इंद्रियों को जीत कर इंद्रजीत बने, तभी हम, हमारा धर्म, हमारा राष्ट्र सुरक्षित रह सकता है।"

ऐसे समाज को पुनः आवश्यकता है सच्चे संतों की, जिनका चिन्तन-मनन अध्यात्म की बाढ़ ला सके। "चिंता का विषय है, एक पीड़ा है संत की, एक दर्द है समाज का, एक पुकार है आने वाले समय की।"

जिस प्रकार लय-ताल में बंधे हुए शब्द ही गीत कहे जा सकते हैं, उसी प्रकार अध्यात्म के प्रत्येक पहलू को अन्तर्मन में स्थापित करने वाला मानव ही संत, गुरू कहलाने योग्य होता है। गुरूओं की परम्परा तो सदियों पुरानी है। हिन्दी साहित्य के पृष्ठों पर दृष्टि डाली जाए जो गुरूओं की महिमा का गान हमेशा ही होता रहा है। कबीर ने भी इस विषय में कहा है- "गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाँय, बलिहारी गुरू आपणे, गोविंद दियो बताए।" जैन धर्म में भी महावीर के अनुयायी कहते हैं- "अरिहंते शरणं पव्वज्जामि।" अर्थात् अरिहंत की शरण को प्राप्त होता हूँ। अध यात्म से जोड़ने का मुख्य कार्य गुरूओं के सहारे ही सम्भव है। सच्चे और ज्ञानी गुरूओं के बिना अध्यात्म की सीढ़ी चढ़ पाना असम्भव है। मुनि श्री के विचार में जिनके जीवन में गुरू का स्थान नहीं होता उसका तो जीवन शुरू ही नहीं होता है। परमात्मा से पूर्व गुरू जाप से पाप-संताप सभी नष्ट हो जाते हैं। देवशास्त्र पूजा के अतिरिक्त गुरू पूजा ही श्रेष्ठ होती है।

मुनि श्री ने आत्मा को परमात्मा का ही अंश माना है। जब तक मानव आत्मा से परिचित नहीं होगा तब तक परमात्मा को नहीं पहचान सकता है। परमात्मा वीतरागी है वह न तो भक्तों से प्रसन्न होता है और न ही दुखी होता है। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध अध्यात्म से है क्योंकि अध्यात्म द्वारा ही आत्मा को सांसारिक विलासों से निकालकर परमात्मा से मिलाना सम्भव है- "यदि नमस्कार मन में है तो मिट्टी के द्रोणाचार्य एकलव्य को धनुर्धारी बना देते हैं। यदि नमस्कार मन में है तो पत्थर की पिण्डी में से परमात्मा प्रकट हो जाता है।"

जब संतों द्वारा अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है, तब सर्वप्रथम निराकार, निर्विकार, ब्रह्म ज्योति का दर्शन होता है। जिस प्रकार काले घने बादलों से सूर्य तक छिप जाता है उसी प्रकार अध्यात्म के बिना सांसारिक मोह का बंधन मानव के अन्तर्मन को आवरित कर देता है। प्राण के अन्दर जो अविनाशी जीव है, जब साधना उसमें अपनी सुरति जोड़कर अभ्यासरत होती है तब जीव के आन्तरिक मन में ब्रह्म सूर्य की शक्ति से सूक्ष्म बिम्ब विद्यमान होने लगता है, यही साधना अध्यात्म है। अध्यात्म परमात्मा तक पहुंचने का सरल मार्ग है। संत श्री के विचार में मानव को अध यात्म से भी पूर्व मानव धर्म का अनुसरण करना अनिवार्य है। मनुष्य का धर्म है प्रतीक्षा करना न कि परीक्षा करना क्योंकि परीक्षा करने से व्यक्ति कार्य करते हुए भी नहीं कर पाता है। पुराने वृक्ष से प्रतीक्षा करनी सीखनी चाहिए क्योंकि वह पत्र विहीन खड़ा है, पक्षी भी नहीं बैठते हैं, तल में पथिक थके होने पर भी नहीं बैठते, माली जल देना नहीं चाहता पर वह फिर भी परमात्मा पर विश्वास कर बसंत की प्रतीक्षा करता है। प्रकृति का नियम होता है आज सुख है तो कल दुख। सुख के बाद दुख और

दुख के बाद सुख अनिवार्य होता है। किसी भी परिस्थिति में मनुष्य को अध्यात्म के पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। सुख हो या दुख प्रत्येक समय एक ही भाव होना अध्यात्म का मूल तत्व है-

"जाते-जाते सुख कह गया दुख से,
जब मैं नहीं रह पाया तो तू भी नहीं रह पाएगा,
सिंहासन यह कह रहा था राम से,
जब भवन में न रह पाये,
तो वन में भी नहीं रूक पाओगे।"

दूध और जल का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब अग्नि द्वारा दूध से जल को अलग किया जाता है तब दूध उबलकर अग्नि को समाप्त कर देता है। उसी प्रकार अध्यात्म में लीन मनुष्य सांसारिक भोगों से स्वयं को निकालकर परमात्म स्वरूप ब्रह्म में लीन हो जाता है। मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च आदि अनेक आध्यात्मिक स्थानों को बनाना तो सरल कार्य है परन्तु इन स्थानों द्वारा दिये गये ज्ञान को आत्मसात करना कठिन कार्य है क्योंकि सांसारिक जाल आत्मा को बांधे रखने का जटिल प्रयास करता है। सभी धर्म स्थल एक ही संदेश को अलग-अलग रूप से समझाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। सभी धर्म-सम्प्रदायों में विलासिताओं व सांसारिक भोग से होने वाली क्षति को स्पष्ट बताया गया है- कुरान में कहा गया है- 'अपनी आय का चौथा भाग खुदा की राह में लगा दो। बाइबिल कहती है- अपनी आय का कुछ हिस्सा लोगों की सेवा में खर्च कर दो।' जैन धर्म के पांच महाव्रतों को मुनि श्री ने सच्चे अध्यात्म को पाने का मार्ग बताया है- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। मन्दिर शब्द कहता है "मन हो स्थिर वही है मन्दिर।" मन स्थिर अध्यात्म से होता है किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं। गुरूद्वारा कहता है 'चल हमेशा गुरू के द्वारा ताकि मिले भव किनारा।' जीवन गुरू के द्वारा संचालित हो सम्प्रदाय द्वारा नहीं। धर्म-पंथ द्वारा अध्यात्म में लीन होकर सांसारिक विलासों से मुक्ति का पथ प्रशस्थ होता है। भगवान की नौ लब्धियों में से एक क्षयिकादान नाम की लब्धि मानव और अध्यात्म अर्थात आत्मा व परमात्मा में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करती है- "क्षयिका दान नाम की लब्धि क्या कह रही है? यदि हृदय होगा तो बात समझ में आयेगी, बुद्धि होगी तो बात गले में अटक जायेगी क्योंकि बुद्धि का काम सिर्फ अटकाना और भटकाना है। जबकि हृदय का काम उस परमात्मा से मिलना और मिलाना है। बुद्धि का जन्म मन से होता है और मन तो मन है कि एक क्षण में ब्रह्माण्ड घूम आये और एक क्षण में अपने आप को भूल जाए एक क्षण में आनन्द के वन में फूलों के साथ किलकारियां भरे, एक क्षण में गम के सूखे रेगिस्तान में भटकता फिरे, एक क्षण राम-राम दूसरे क्षण कसाई काम, मन इन्हीं कल्पनाओं में जीता है। वह कल्पनायें तो कर सकता है लेकिन जीवन कायाकल्प नहीं कर सकता। हृदय का जन्म आत्मा से हुआ करता है इसलिए हृदय आत्मा और परमात्मा की बातों को शीघ्र समझ लेता है।" अध्यात्म की राह पर चलते हुए भगवान महावीर के विचार दृष्टव्य होते हैं- "तुम मालिक बनो भिखारी नहीं, अपने आप के मालिक बनो दूसरों के मालिक बनने की कोशिश मत करना क्योंकि जहाँ से तुम दूसरों के मालिक बनने की कोशिश करोगे तो तुम पाओगे कि धीरे-धीरे भिखारी ही बन गए हो।"

इस संसार में सांसारिक विलासिताओं के चक्रव्यूह में फंसने के तो अनेक रास्ते मिलते हैं परन्तु वापस आने का एकमात्र पथ अध्यात्म के सहारे परमात्मा तक, ही है जो इस पथ पर अग्रणी होकर परमात्मा में लीन हो जाए वही मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

'तू मिट्टी है, अर्थी तेरी भले ही चांदी-सोने की।
दुनिया तो एक परिभाषा है पाकर सब कुछ खोने की'

इस प्रकार मुनि श्री क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी हैं। उनके इस व्यक्तित्व में अनन्य भक्त, सच्चे, परमात्म प्रेमी तथा शुद्ध मानव के रूप में दर्शन होते हैं। मुनि श्री नवीन जागरण युग के अग्रदूत हैं। जन-जन के हृदय में व्यक्ति के रूप में नहीं अपितु प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं जो समाज को, व्यक्ति को 'विलास से अध्यात्म की ओर' ले जाने का सफल प्रयास कर रहे हैं।

सन्दर्भ

१. मुनि पुलक सागर जी, 'हाय बुढ़ापा', पुलक ग्राफिक्स दिल्ली, २०१२, पृ० १३
२. मुनि पुलक सागर जी, 'राम बिना जग सूना' राजेश प्रिंटर्स, नई दिल्ली, २००१, पृ० २७
३. मुनि पुलक सागर जी, 'बोतल का तूफान', वीरेन्द्र कुमार जैन, आगरा, २००१, पृ० ०५
४. मुनि पुलक सागर जी, 'ऐसे भी जिया जाता है', पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, २००२, पृ० १२
५. मुनि पुलक सागर जी, 'आस्था और आराध्य' न्यू ऋषभ ऑफसेट प्रिंटर्स, मेरठ, पृ० २७
६. मुनि पुलक सागर जी, पूर्वोक्त, पृ० ०४
७. मुनि पुलक सागर जी, पूर्वोक्त, पृ० १०
८. मुनि पुलक सागर जी, पूर्वोक्त, पृ० ४५
९. मुनि पुलक सागर जी, 'आखिर क्यों ?', जैन प्रिंटिंग प्रेस, ग्वालियर, पृ. १३
१०. मुनि पुलक सागर जी, पूर्वोक्त, पृ० ०४
११. मुनि पुलक सागर जी, पूर्वोक्त, पृ० ०६
१२. मुनि पुलक सागर जी, 'भूख' पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, २००३, पृ० ०६
१३. मुनि पुलक सागर जी, 'मेरी आवाज सुनो', पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, २००३, पृ ०६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2017
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया : हिन्दूकरण के संदर्भ में एक अध्ययन

❑ मो० जावेदुल हक

भारतीय समाज में जनजाति समुदाय के लोगों में भारत की आजादी पूर्व से परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। आजादी के पश्चात् कई सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रभाव से जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया में तेजी आयी है। परसंस्कृतिग्रहण एक या अनेक अन्य संस्कृतियों के साथ संपर्क द्वारा एक समूह की संस्कृति का अर्जन व परिवर्तन है। जनजातियों में सांस्कृतिक परिवर्तन एवं परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया के कई आयाम हैं जिनमें हिन्दूकरण की प्रक्रिया का विशेष स्थान है। प्रस्तुत आलेख इसी तथ्य को प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया को जनजाति-जाति रुपांतरण एवं हिन्दूकरण के संदर्भ में देखा जा सकता है। हॉलाकि जनजाति एवं जाति, दोनों दो अलग-अलग सामाजिक संगठनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दू समाज में जातियों को श्रम के अनुवांशिक विभाजन, वंशानुक्रम, शुद्धता और अशुद्धता के सिद्धांत, नागरिक एवं धार्मिक अक्षमताओं आदि के द्वारा नियंत्रित माना जाता रहा है। दूसरी ओर, जनजातियों में उन विशेषताओं का अभाव पाया जाता है जो जातियों में थी। इन दोनों प्रकार के सामाजिक संगठनों को भिन्न सिद्धांतों द्वारा नियंत्रित माना जाता है। इसके अतिरिक्त, जाति समाज में गॉव को सांस्कृतिक रुप से विजातीय होने की अपेक्षा की जाती है और प्रत्येक जाति प्रथागत परंपराओं का विशिष्ट संयोजन अपनाती है। दूसरी ओर, जनजाति के लोग अपने समाज को सजातीय होने, या कम से कम विजातीय न होने की अपेक्षा करते है।[1]

जनजाति-जाति अन्तक्रिया तथा परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया विभिन्न राज्यों की विभिन्न जनजातियों में पायी जाती है। इसका एक अच्छा उदाहरण विनय कुमार पटनायक[2] द्वारा उड़ीसा के एक गाँव घोराबर में 'सबरस' जनजाति का किया गया अध्ययन है। इस जनजाति द्वारा परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया में से गुजरना निम्नलिखित परिवर्तनों में देखा जा सकता है:-

१ इस जनजाति में संरचनात्मक परिवर्तन समतावाद के त्याग (कम से कम कार्यात्मक निर्भरता के साथ) और जाति प्रथा के स्वीकार करने में देखा जा सकता है जिससे उस समुदाय में स्तरीकरण का प्रारंभ हो रहा है।

२ यह समुदाय संस्तरणात्मक रुप से संस्कारों की श्रेष्ठता के आधार पर चार खंडों में विभाजित है जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था से मिलता जुलता है। चारों विभागों में कार्यात्मक (व्यावसायिक) विभाजन भी है, जैसे चारों वर्णो में क्रमशः शिकार और युद्ध, पूजा पाठ, कृषि तथा नृत्य व गायन। अन्तर यह है कि जहाँ वर्णव्यवस्था में पूजा पाठ का सर्वोच्च सांस्कारिक स्थान है, इस जनजाति में इसका दूसरा स्थान है। दूसरे इस सबरस जनजाति में शुद्धता और अशुद्धता नहीं है जैसे कि जाति प्रथा में पाया जाता है। इस प्रकार सबरस अलग जाति के रुप में स्वीकृत है और गाँव में जनजाति नहीं मानी जाती ।

३. जाति प्रथा की तरह सबरस जनजाति में भी उप-जाति की अपनी पंचायत है जो समुदाय के रीति-रिवाजों और निषेधों पर निगाह रखते हैं।

४. सबरस जनजाति का प्रत्येक उप-विभाजन स्वयं को तीन सबरसों का उत्तराधिकारी मानता है जो कि हिन्दू पौराणिक कथाओं-महाभारत और रामायण में आते हैं।

५. हिन्दू संस्कृति के चिह्न सबरस विवाह रीति रिवाजों में पाये जाते हैं यद्यपि अर्न्जातीय विवाह नहीं होते। बहु-विवाह प्रथा निषिद्ध है। वधू मूल्य का स्थान दहेज ने ले लिया है।

सबरस लोगों के द्वारा हिन्दू मूल्यों का अनुपालन संस्कृतिकरण न कहकर परसंस्कृतिग्रहण इस कारण कहा जाता है क्योंकि :-

(क) परसंस्कृतिकरण का लाभ उच्च संस्कारी प्रस्थिति प्राप्ति न करना होकर आर्थिक लाभ प्राप्त करना है। जाति के रुप में हिन्दू पक्ष में शामिल होने से उन्हें लकड़ी काटने और टोकरी बनाने का कार्य स्थाई रुप से दे दिया गया है। वनों के कट जाने के बाद वे मजदूर हो गये हैं।

(ख) गतिशीलता के लिए अपनाया गया मॉडल ब्राह्मण वाला न होकर वैश्य मॉडल है जो संस्कारी श्रेष्ठता की अपेक्षा आर्थिक श्रेष्ठता को ही श्रेष्ठ मानता है क्योंकि सबरस अपने व्यवसायों के लिए तेलियों पर निर्भर रहते हैं। इसलिए उन्होंने तेलियों को संदर्भ-समूह के रुप में स्वीकार

❑ व्याख्याता, मानवशास्त्र विभाग, एम.ए.के. आजाद इंटर कॉलेज बसंतराय, गोड्डा, संथाल परगना (झारखंड)

कर लिया।

कुछ विद्वानों ने जनजाति के जाति की ओर रुपांतरण एवं परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया को स्वीकार किया। कोसाम्बी[३] का विचार है कि जनजातियों ने हिन्दू समाज में अपने विलय के प्रयास के तहत हिन्दू समाज की तकनीक को एक प्रमुख विधि के रुप में अपनाया। जनजातियों के विलियन का हिन्दू विधि उत्पादन की संगठनात्मक पद्धति के अंतर्गत काम करती है। जनजातियाँ उस व्यवस्था में इसलिए खिंच आती हैं क्योंकि इस व्यवस्था में उन्हें सुरक्षा मिलती है और यह व्यवस्था अप्रतियोगी है। इसी प्रकार बोस[४] ने जनजातियों के हिंदू समाज में मिल जाने का संदर्भ दिया है। अनेक आदिवासी समूहों ने अपने अर्ध-एकाकी निवासों से हटकर तथा मैदानों में प्रवेश करके हिन्दू जाति व्यवस्था के कई प्रतिमानों को स्वीकार कर लिया। आदिवासियों में बड़ी संख्या में सामाजिक सुधारों और धार्मिक आंदोलनों से यह साक्ष्य मिलता है कि उनमें हिन्दू जाति व्यवस्था में मिल जाने की इच्छा है। जनजातियाँ उत्पादन की संगठनात्मक पद्धति को माध्यम बना कर हिन्दू समाज में मिलने का प्रयास करती हैं।

जनजातियों के हिन्दू समाज में विलय के लिए संस्कृतिकरण की प्रक्रिया की भी बात सामने आती है जिसमें जनजातियों का उच्च जातीय प्रथाओं का पालन करना शामिल होता है जिसका समर्थन एम० एन० श्रीनिवास[५] ने किया है। इसी संदर्भ में संस्कृतिकरण को भी एक विधि के रुप में देखा जाता है जिसके द्वारा जनजातियाँ हिन्दू समाज में अपना विलय करती हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि गैर-जनजातियों के संपर्क में आनेवाली जनजातियों में कुछ परिवर्तन हुए हैं और ये परिवर्तन सामाजिक प्रक्रियाओं की जटिलता के माध्यम से हिन्दू समाज में समाविष्ट होने की दिशा में हुआ है। इन्हीं प्रक्रियाओं को विशेष रुप से संस्कृतिकरण एवं हिन्दूकरण के रुप में देखा गया। सिन्हा[६] ने राज्य के गठन के विधि के तहत जनजातियों के हिन्दू समाज में विलय की बात कही है।

इसके अतिरिक्त जनजातियों के वर्गीकरण में राय वर्मन[७] वेरियर एल्विन[८], रिजले[९], आदि ने जनजातियों के हिन्दूकरण की बात को स्वीकार किया। भिन्न-भिन्न मानव विज्ञानियों ने जनजातियों का भिन्न -भिन्न वर्गीकरण किया है, किंतु सभी ने हिंदू समाज में विलय की अवस्था का उल्लेख किया।रिजले ने चार प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जिससे हिन्दूकरण एवं जातियों के रुप में जनजातियों का रुपांतरण प्रभावित होता है। ये प्रक्रियाएँ हैं[१०]

१. मूल जनजाति के अग्रणी लोग किसी तरह अपनी दुनिया से बाहर निकल कर स्वतंत्र भूपति बन गए और स्वयं को किसी जानी मानी जाति में नामांकित कराने में सफल हो गए।
२. बहुत से आदिवासियों ने हिन्दू धर्म के सिद्धांतों को अपना लिया और वैष्णव बन गए और अपने जनजातीय नाम का त्याग कर दिया।
३. समग्र आदिवासियों या उनके एक भाग ने किसी नई जाति की शैली के अंतर्गत हिन्दूवाद की श्रेणियों में स्वयं को नामांकित किया जिससे पुरानी पहचान की तुलना में उनका मौजूदा नाम एवं स्तर बिल्कुल अलग है।
४. आदिवासियों की समग्र जनजाति या भाग धीरे-धीरे अपनी जनजातीय पहचान को छोड़े बिना हिंदू धर्म में परिवर्तित हो गये। इसमें पश्चिम बंगाल के भूमिज एक उदाहरण है। वे अपनी मूल भाषा को खो दिए और अब बंगला बोलते हैं वे अपने देवी-देवताओं के साथ-साथ हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं तथा इनमें से अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध पारिवारिक पुरोहित के रुप में ब्राह्मणों को रोजगार देते हैं। इसी तरह जनजाति जाति बन गई होगी और अपने मूल रीति-रिवाजों को भूलने लगी होगी।

डी० एन० मजुमदार[११] ने भी यह माना कि कई आदिवासी समूहों ने अपने एकांत निवास स्थान से बाहर आकर हिन्दू जाति व्यवस्था के कई प्रतिमानों को अपना लिया है, जिसमें आदिवासी या अर्द्धआदिवासी जनजाति का कोई भी सदस्य किसी विशिष्ट जाति या गोत्र को अपनाता है और स्वयं को उस विशिष्ट जाति के सदस्य के रुप में नामांकित कराने में सफल हो जाता है और धीरे-धीरे उस जाति के सदस्यों से विवाह जैसे संबंध भी कायम कर लेता है। हिन्दू जातियों से सांस्कृतिक संपर्को से जनजातियों ने हिन्दू आस्थाओं, अनुष्ठानों एवं रीति-रिवाजों को अपना लिया और इस तरह वे हिन्दू त्योहारों में भाग लेने लगे और हिन्दू मंदिर में जाने लगे।

इसी प्रकार घुर्ये[१२] ने तो जनजाति को पिछड़ी जाति का हिन्दू माना तथा यह माना कि सांस्कृतिक तथा भाषायी स्तर पर जनजाति हिन्दू ग्रामीण समुदायों से अलग नहीं है। इन्होंने भारत की जनजातियों को हिन्दू समाज का ही हिस्सा माना इस संदर्भ में इनका यह पक्ष रहा है कि संपूर्ण भारत में जनजातियाँ स्वयं को लगातार हिन्दू जातियाँ के साथ आत्मसात करती जा रही हैं। घूर्ये ने जनजातियों की समस्या के संबंध में यह कहा कि उनकी समस्या केवल जनजातियों की ही विशेष समस्या नहीं है, बल्कि ये समस्याएँ पिछ्ड़ी हिन्दू जाति के कृषकों की है। अतः वास्तव में जनजातियाँ पिछड़ी हिन्दू जाति एवं कृषक, दोनों हैं तथा जनजाति को आदिवासी कहना एक भ्रमित करने वाला तथ्य है।

जनजातियों में परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया की तीन श्रेणियाँ हैं। विभिन्न जनजातियों ने इन तीनों प्रक्रियाओं में से भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ अपनायी हैं। उदाहरणस्वरुप भीलों और मीनाओं ने सह -अस्तित्व की प्रथम प्रक्रिया अपनायी, उराँव और मुण्डा जनजाति ने हिन्दू समाज में विलय की दूसरी प्रक्रिया को अपनाया जबकि नगा और मिजों जनजातियों ने धर्म त्याग कर तीसरी प्रक्रिया को अपनाया। इसी प्रकार संथाल परगना क्षेत्र के संथालों में दूसरी और तीसरी प्रक्रिया को अलग-अलग रुप से अपनाने का उदाहरण मिलता है। संथालों का एक समूह हिन्दू समाज में विलय की प्रक्रिया को अपनाया और धार्मिक सदस्यता के रुप में वे अपने आप को हिन्दू धर्म का मानने लगे, यद्यपि वे हिन्दू समाजिक संगठन का महत्वपूर्ण आधार जाति व्यवस्था में पूरी तरह से एकीकृत नहीं हो सके। संथाल लोगों का एक अन्य समूह परिवर्तन की तीसरी प्रक्रिया अर्थात आत्मसातकरण के तहत स्वयं को बदल लिया और वे पूरी तरह से ईसाई हो गये। ईसाईमत ही उनके विश्वासों, मनोवृत्तियों एवं व्यवहार-प्रणाली का आधार है। हाँलाकि यहाँ यह भी स्पष्ट है कि ईसाई धर्म को मानने के बाबजूद ये लोग स्वयं को आदिवासी समाज से अलग नहीं मानते। यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हमारी सरकार ने सभी जनजातियों के सांस्कृतिक एकीकरण की समान नीति नहीं अपनाई, क्योंकि भिन्न-भिन्न आदिवासी विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में से गुजर रहे हैं और उनके लक्ष्य व आकांक्षाएँ भी अलग अलग हैं। स्वाभाविक रुप से विभिन्न जनजातियों के एकीकरण का स्तरभीअलग-अलग है।[१३]

हॅलाकि कुछ विद्वानों ने अपने अध्ययनों के माध्यम से जनजातियों के हिन्दूकरण की अवधारणा को अस्वीकृत भी किया है। हट्टन[१४] तथा बेली[१५] ने स्पस्ट रुप से अपना यह मत दिया कि जनजाति लोग हिन्दू नहीं बल्कि जीववादी है। यद्यपि यह सही है कि कुछ जनजातियों का हिन्दूकरण हुआ है लेकिन इसे स्पष्ट रुप से संस्कृतिकरण एवं जनजाति के जाति में परिवर्तित हो जाने की घटना नहीं मानी जा सकती है। इसका कारण यह है कि जनजातियों का लिए जाति के अनुक्रम में ऊपर की ओर उठ जाना महत्वपूर्ण नहीं रहा है तथा जाति संगठन से बाहर हिन्दू की आस्थाओं को मानना संभव नहीं है। साथ ही, यह भी सत्य है कि जनजातियों का हिन्दूकरण होने के बाबजूद वे जाति के संस्तरणात्मक संरचना में शामिल नहीं हुए हैं। ये बातें हमें कुछ संथालों द्वारा स्वयं को हिन्दू मानने के बाबजूद वे जाति-संरचना का हिस्सा नहीं बन सके हैं में देखने को मिलती है।

जनजातियों में परसंस्कृतिकरण की प्रक्रिया ऐसी है कि जनजातियाँ न तो अपनी पहचान खो रही हैं और न ही अपनी सांस्कृतिक विरासत ही। वे पूर्णतः हिन्दू नहीं हो रहे हैं। अनेक मानव वैज्ञानिकों ने इसे वह प्रक्रिया बतायी है जिसमें आदिवासी 'हिन्दूवाद' की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। इन आदिवासियों में संथाल, पाती राभा, भूमिज, उराँव, मुंड़ा, भील आदि प्रमुख हैं। हॉलाकि हिन्दुओं के कुछ सांस्कृतिक तत्वों को अपनाने का अर्थ उनका हिन्दू होना नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि ये आदिवासी अभी भी अपने आपकों जनजाति ही कहते हैं न कि पूरी तरह से हिन्दू। दूसरी ओर भारत के कुछ भागों में कुछ आदिवासियों ने ईसाईयत के कुछ गुणों को भी धारण कर लिया है जैसे नाग, मिजों, संथाल, ऊराँव, मुण्ड़ा, खरिया आदि। इन पर इसाईयत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

जनजातियों के परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया के प्रश्न की जाँच के दौरान इस बात को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि किसी जनजाति द्वारा हिन्दू आस्थाओं और प्रथाओं को अपनाने के बाद वे स्वयं को जनजाति के रुप में देखती हैं अथवा जाति के रुप में। इस विशिष्ट पहचान का यह पक्ष, जनजातियों द्वारा चलाए गए आंदोलनों, विशेषकर स्वायत्त्ता, भूमि, वन और रोजगार से संबंधित आंदोलनों से अधिक अन्यत्र कहीं इतनी स्पष्टयता से नजर नहीं आता है। इन आंदोलनों में, जाति और जनजाति के बीच का अंतर काफी अधिक रहा है। फिर भी हिन्दूकृत की गई जनजातियों ने जाति श्रेणियों की अपेक्षा उन समूहों के साथ एकजुटता दिखाई है जो स्वंय को जनजाति मानते हैं।

जिन महत्वपूर्ण तरीकों से जनजातियों ने हिन्दूकरण या संस्कृतिकरण को अपनाया था, उन्हें बहुत सारे मानवविज्ञानियों ने 'धार्मिक-सांस्कृतिक' आंदोलन माना है। इस आंदोलन को जनजातियों के बीच प्रचलित रुप से भगत आंदोलन कहा जाता है। वास्तव में, हिन्दूकरण अथवा परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया के बाबजूद जनजातियाँ अपने एक भाग को जनजाति और एक भाग को जाति नहीं मानती। उन्हें जनजातियों की प्रस्थिति से दूर हटा नहीं माना जाता है। इसकी अपेक्षा, अपने जीवन को बदलने के लिए अपनाए गए धार्मिक मूल्यों के आधार पर जनजातियों को विभिन्न वर्गो में वर्गीकृत किया गया है। इसलिए उन्हें ईसाई, भगत, सरना, आदि अलग-अलग बताया गया है। लेकिन इन परिवर्तनों के बावजूद जनजाति धर्म का मुख्य केंद्र अभी भी 'आत्मावाद' पर ही केंद्रित है।

हम इतना कह सकते हैं कि आदिवासी देश के वृहत् अर्थतंत्र एवं प्रजातंत्र की ओर आकर्षित हो रहे हैं। जनजातियाँ अब केवल अपने स्थानीय संस्कृति से ही पूरी तरह जुड़ी हुई नहीं रह गई है बल्कि ये वैश्विक समाज एवं संस्कृति से भी जुड़ रही हैं। भूमंडलीकरण के इस युग में उनके पृथ्थकरण की स्थिति पूरी

तरह नहीं रह पायी है। भूमंडलीकरण मुख्य रुप से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिक सहजगुणों का एक विनिमय है जो समाजों के बीच उस वक्त होता है जब वे एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के तहत संसार के सभी समाजों एवं संस्कृतियों के आपसी संपर्क बढ़ रहे हैं। एन्टॅनी गिड़न[१६] ने समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में भूमंडलीकरण को विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों के तीव्रीकरण के रुप में परिभाषित किया है जिसके माध्यम से सुदूरस्थान आपस में इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि एक स्थान में होने वाली घटनाएँ मीलों दूर किसी अन्य स्थान पर होने वाली प्रक्रिया से प्रभावित होती हैं और ये एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

संदर्भ :

१. डी० मेंडलबॉम, 'सोसाइटी इन इंडिया; चेंज एण्ड कान्टीन्यूटि' यूनिवर्सिटी ऑफ केलीफोर्निया प्रेस, वर्कली, १६७० पृ०, ५७७
२. विनय कुमार पटनायक, 'कॉनटेम्पोरटी सोसाईटीः ट्राईबल स्टडीज' (एडी) जार्ज फेफर एण्ड दीपक बेहरा, खंड १, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कं०, नई दिल्ली, १६६७, पृ०, ३१७–३२६
३. डी०डी० कोसाम्बी, 'दि कल्चर एण्ड सिवीलाईजेशन ऑफ एनिसियेन्ट इंडिया इन हिस्टोरिकल ऑउटलाईन', विकास पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली, १६७५ पृ० १८६
४. बोस एन० के०, 'दि हिन्दू मेथड्स ऑफ ट्राईबल एब्जॉरर्सन' साईंस एंड कल्चर, दिल्ली, १६४१, पृ. ७
५. श्रीनिवास एम० एन०, 'कास्ट इन मॉडर्न इंडिया', एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, १६६२
६. सिन्हा एस० सी०, 'ट्राइबल पॉलिटिक्स एण्ड स्टेट सिस्टम इन प्री- कॉलोनियल इस्टीम एंड नार्थ-ईस्ट इंडिया', सी० एम० एस०, कोलकाता, १६८७
७. बर्मन बी० के राय, 'ट्राईबल डेमोग्राफी ए प्रीलीमेनरी एप्राइजल' इन के० एस० सिंह(एडी) ट्राईबल शिच्यूएशन इन इंडिया; आई० आई० ए० एस०, शिमला, १६७२, पृ० २७४
८. वेरियर एल्विन, 'दी एबओरिजनल्स', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे १६४४
६. रिजले एच० एच०, 'दि पीपुल ऑफ इंडिया', सेक्रीटेरियट प्रेस, कोलकाता, १६१५
१०. मजुमदार डी० एन०, 'दी एफेयर्स ऑफ ए ट्राइबः ए स्टजी इन ट्राइबल डायनमिक्स', यूनिवर्सल पब्लिसर्स, लखनउ, १६५०
११. वही
१२. घूर्ये जी० एस०, 'दि एब्ऑरिजीनल्स, सोकॉल्ड एण्ड देयर फ्यूचर', पॉपुलर प्रेस, बॉम्बे, १६४३
१३. अहूजा राम 'भारतीय समाज', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००५ पृ० २८४
१४. हट्टन जे० एच०, 'कास्ट इन इंडिया' कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रीज, १६६३
१५. बेली एफ० जी०, 'कास्ट एण्ड नेशन' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; बॉम्बे, १६६०
१६. गिड़न एन्टनी, 'द थर्ड वेमर्ड एंड इट्स क्रिटिक्स', मास पॉलिटीकल प्रेस, माल्डन २००० पृ० ५६

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: बिरहोर महिलायें एवं बदलता परिवेश
लेखिका	: डॉ. आरती सिंह
प्रकाशक	: मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
प्रकाशन वर्ष	: २०१६
मूल्य	: रू. १२०
पृ. सं.	: २४८

वैश्वीकरण, औद्योगीकरण एवं अन्य सामाजिक परिवेश सामाजिक परिवर्तन को दिशा एवं गति देते हैं राष्ट्र एवं समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीति के परिदृश्य के साथ ही शासकीय नीतयों का प्रभाव समाज पर स्पष्ट देखा जा सकता है। इस तरह के बदलते परिवेश में बिरहोर महिलाओं की परिवर्तित होती भूमिका एवं परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए डॉ. आरती सिंह ने शोधात्मक तथ्यों के माध्यम से पुस्तक के कलेवर को समृद्ध बनाया है।

प्रस्तुत पुस्तक बिरहोर महिलायें एवं बदलता परिवेश में आरती सिंह ने छत्तीसगढ़ की सर्वाधिक पिछड़ी जनजातियों में से एक बिरहोर जनजाति के लोगों के विभिन्न पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण पुस्तक को शोध आधारित एवं वैज्ञानिक स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए आठ विभिन्न अध्यायों में संकलित किया है।

प्रथम अध्याय अध्ययन की विषयवस्तु, परिचय, अध्ययन पद्धति एवं अध्ययन क्षेत्र रायगढ़ जिले के परिचयात्मक प्रस्तुतीकरण से संबंधित है। इस अध्याय में लेखिका ने स्थापित संदर्भ अध्ययनों का उल्लेख किया है। अध्याय के भाग दो में अध्ययन क्षेत्र का परिचय मानचित्र, क्षेत्रफल, जनसंख्या, साक्षरता, प्रशासनिक इकाईयों आदि के आधार पर स्पष्ट किया है। भाग तीन में अध्ययन पद्धति को स्पष्ट किया है। अध्ययन हेतु निदर्शन के रूप में दैव निदर्शन पद्धति से ३२ गांवों के २६८ परिवारों में २५० महिला उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। अध्ययन पद्धति के अंतर्गत ही पूर्व साहित्य सर्वेक्षण भी सम्मिलित किया गया है तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

द्वितीय अध्याय बिरहोर जनजातियों की पारिवारिक संरचना और बिरहोर स्त्रियों की स्थिति पर आधारित है। पारिवारिक संरचना में परिवर्तन के साथ स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट किया है। वे कहती हैं कि बिरहोर जनजाति में परिवार संयुक्त तथा पितृसत्तात्मक होते हैं। वर्तमान परिवेश में तालिकाओं द्वारा लेखिका ने स्पष्ट किया है कि परिवार में मुख्यि के रूप में उनकी स्थिति, निर्णय लेने के संबंधों में महिलाओं की स्थिति तथा शिक्षा, नियंत्रण तथा आपसी संबंधों में परिवर्तन आया है।

अध्याय तीन में सामाजिक संरचना के परिवर्तनों के साथ बिरहोर महिलाओं को संबंधित किया गया है। सामाजिक संरचना में लेखिका नातेदारी, सामाजिक नियंत्रण, वेषभूषा, श्रृंगार, नृत्य एवं गीत शैली, संस्कार, जिसमें जन्म संस्कार, विवाह संस्कार आदि को सम्मिलित किया गया है। इनमें परिवर्तन के संबंध में नातेदारी व्यवस्था के सामाजिक सुरक्षा, नियंत्रण आदि के प्रभावों में कमी आयी है। श्रृंगार तथा वेषभूषा के संबंध जैसे गोदना गुदवाने की अनिवार्यता नहीं रही है। विवाह संस्कार में युवा पीढ़ी का हस्ताक्षेप बढ़ रहा है।

अध्याय चार में बिरहोर महिलाओं में आर्थिक एवं व्यवसायिक गतिशीलता को दर्शाया गया है जिसमें लेखिका ने स्पष्ट किया है कि जो परिवर्तन हुये हैं वे पारिवारिक हैं। कृषि, पशुपालन, तथा शिकार बिरहोर जनजाति के प्रमुख व्यवसाय हैं।

अध्याय पांच में धार्मिक एवं आंतरिक मूल्यों में परिवर्तन तथा बिरहोर परिवार में महिलाओं की भूमिका को दर्शाया है। अधिकांश की धर्म के प्रति आस्था कम हुई है तथा अंधविश्वास, मान्यतायें, श्रृंगार, खेलकूद, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि में परिवर्तन आये हैं।

अध्याय छः में बिरहोर महिलाओं में शैक्षणिक और राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तित स्वरूप का उल्लेख किया गया है। शैक्षणिक जीवन के संबंध में अनौपचारिक शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। राजनीतिक क्षेत्र में वर्तमान में राजनीतिक सहभागिता न के बराबर बढ़ी है, हालांकि पारिवारिक निर्णयों, सामाजिक निणर्यों में उनकी सहभागिता बढ़ती जा रही है। साक्षरता में सुधार हुआ है। राजनीतिक जागृति एवं नेतृत्व के साथ ही सामाजिक सक्रियता बढ़ी है। रूढ़िगत उपचार, झाड़-फूंक, टोना-टोटका से उपचार में विश्वास रखती हैं किन्तु आधुनिक चिकित्सा में भी विश्वास पैदा हुआ है। अंधविश्वास से बंधी महिलायें शगुन, अपशगुन, भूतप्रेत, गोदना आदि में ज्यादा आस्था रखती हैं।

अध्याय सात में बिरहोर जनजाति की महिलाओं के विकास हेतु शासकीय कार्यक्रमों का सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव तथा समस्याओं पर चर्चा की गई है। इस अध्याय में लेखिका ने विकास के लिए बनाये गए प्राधिकरणों, समितियों तथा विकास के अनेक कार्यक्रमों का उल्लेख किया है। समीक्षात्मक रूप में उन्होंने उल्लेख किया है कि इन क्षेत्रों में बसे ग्राम की जनसंख्या

कम होने के कारण सामान्य योजना का लाभ क्षेत्र के निवासियों को नही मिल पाता। इस अध्याय में ही लेखिका ने बिरहोर साक्षरता की आवश्यकता पर बल दिया है।

अध्याय आठ में लेखिका ने सम्पूर्ण अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। निष्कर्ष के रूप में लेखिका ने जनजातीय उत्थान के लिए नियोजित परिवर्तन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। विकास के कार्यक्रम इस प्रकार हों कि उनके सामाजिक मूल्यों के विपरीत ना हों। सामाजिक परम्पराओं के बिना समर्थन के कोई भी विकास की योजना सफल नहीं हो सकती, इसलिए इन क्षेत्रों का अध्ययन आवश्यक माना जाना चाहिए, यह लेखिका ने स्पष्ट किया है।

भारत सरकार और राज्य सरकार द्वारा संचालित योजनाओं, कार्यक्रमों के अतिरिक्त आधुनिक तकनीक और अन्य व्यवस्थाओं के बदलावों ने बिरहोर जनजाति को प्रभावित किया है। बिरहोर जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक सहित जीवन के अन्य पक्षों में लगातार बदलाव हो रहा है। इसी क्रम में बिरहोर जनजाति की महिलाओं के सामूहिक रीति-रिवाजों एवं कार्य करने की पद्धतियों में परिवर्तन हुए हैं।

बिरहोर जनजाति के लोग कभी रस्सी बनाने और बन्दर पकड़ने का काम करते थे किन्तु अब राज्य सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिये जाने के कारण ये कृषि कार्य में रूचि लेने लगे हैं। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि बिरहोर की समस्याओं का कारण अशिक्षा तथा प्रमुख समस्या तथाकथित सभ्य समाज द्वारा उनका शोषण है। पिछले कुछ समय से केन्द्र एवं राज्य सरकार ने इस समस्या को समझा है तथा इनकी समस्याओं को दूर करने के प्रयास आरम्भ किये हैं। इसके परिणामस्वरूप इनकी स्थिति में सुधार आरम्भ हुआ है।

आरती सिंह ने बिरहोर जनजाति का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर इनके जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का तथ्यपूर्ण विवरणात्मक परिचय दिया है। आरती से पहले कर्नल डॉल्टन, हर्बर्ट रिजले, रसेल और हीरालाल, शरतचन्द्र राय आदि ने बिरहोर जनजाति का अध ययन करते हुए अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को सम्मिलित किया है और अपने अध्ययन को उपयोगी एवं रोचक बनाने का प्रयास किया है।

जनजातीय सदस्य अपने नये मूल्यों के प्रति संघर्षशील हैं। जनजाति क्षेत्रों के कृषक, भूमिहीन मजदूर, निम्नवर्गीय जनता भी आज राजनीति चेतना से ओतप्रोत है। उनका पुराना राजनीतिक चिंतन बदलता जा रहा है। पहले वे राजनीति के प्रति उदासीन थे, अब वे राजनीति में गहरी दिलचस्पी लेने लगे हैं। वयस्क मताधिकार ने बिरहोर महिलाओं में एक प्रकार की राजनीतिक क्रांति ला दी है। बिरहोर महिलाएं जनप्रतिनिधियों तथा उनके कार्यों की खुलकर आलोचना करती हैं। ये लोग अपने समुचित दायरे से ऊपर उठ रहे हैं और राष्ट्रीय धारा से जुड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

आरती सिंह की पुस्तक को एक जनजाति का सूक्ष्म अध यन प्रस्तुत करने वाली पुस्तक के रूप में समझा जा सकता है। यह बिरहोर जनजाति की महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका को स्पष्ट करने के लिए अभिनव प्रयास है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पुस्तक का अकादमिक कलेवर समृद्ध एवं सुव्यवस्थित है। बिरहोर जनजाति के बारे में गहन अध्ययन एवं अनुसंधान के साथ ही सुधार व विकास के लिए नीति निर्माण में भी पुस्तक बेहद उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

समीक्षक - **डॉ. दिवाकर सिंह राजपूत**
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग
डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)